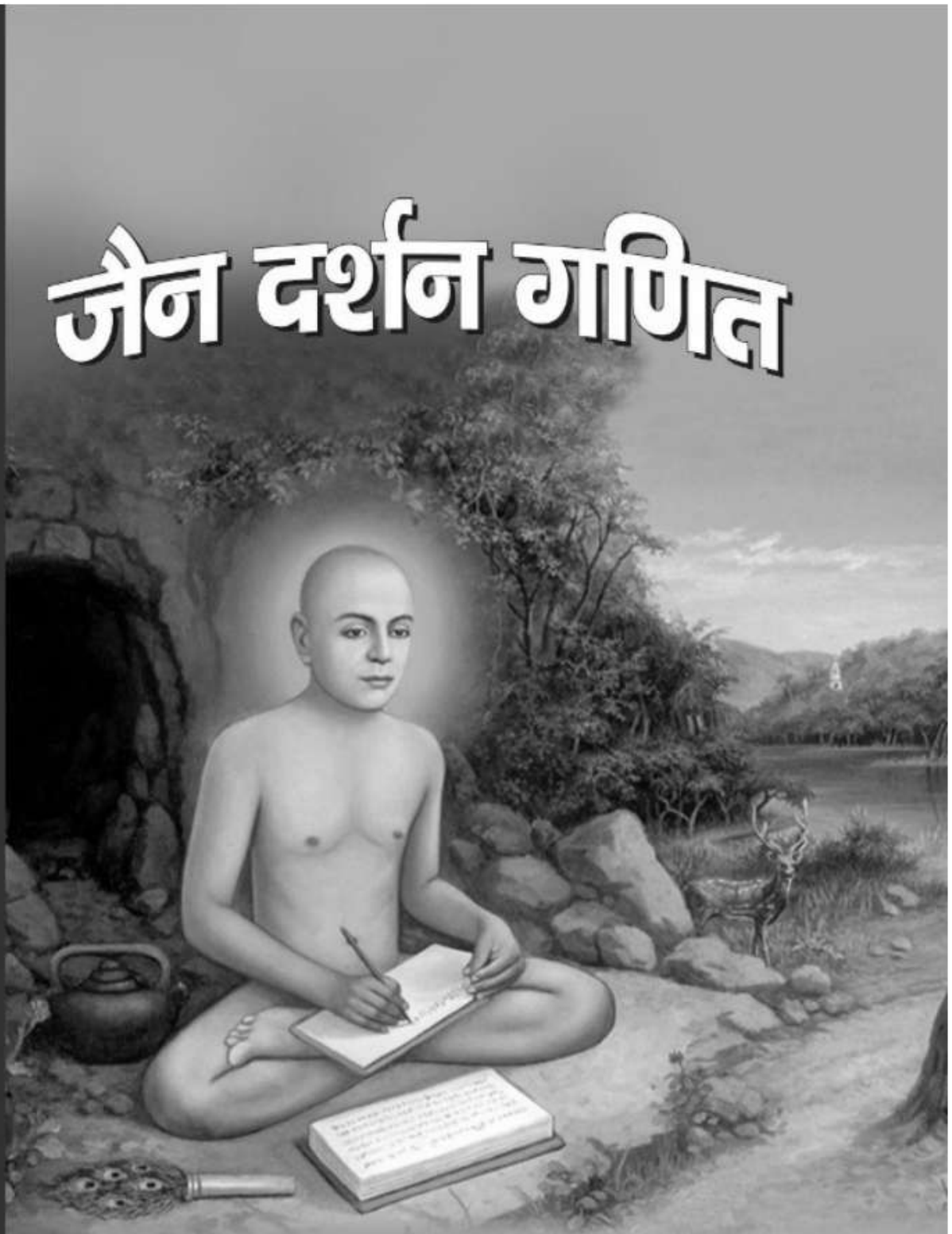
जैन दर्शन गणित

जैन दर्शन गणित



संकलन

आचार्य १०८ श्री धर्मभूषण जी महाराज

卐श्री वीतरागाय नमः卐

जैन दर्शन गणित

(जैन आध्यात्मिक तत्त्व चर्चा)

संकलनः

आचार्य श्री 108 धर्मभूषण जी महाराज

प्रकाशकः

अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन

मेरठ शाखा, मेरठ

卐 जैन दर्शन गणित 卐

प्रथम संस्करण	: सन् 1989, दिल्ली	
द्वितीय संस्करण	: सन् 1993, दिल्ली	
तृतीय संस्करण	: सन् 2001, मेरठ	(3000 प्रतियाँ)
चतुर्थ संस्करण	: सन् 2003, मेरठ	(1100 प्रतियाँ)
पंचम संस्करण	: सन् 2006, मेरठ	(3500 प्रतियाँ)
षष्टम् संस्करण	: सन् 2009, मेरठ	(1100 प्रतियाँ)
सप्तम् संस्करण	: सन् 2011, दिल्ली	(1000 प्रतियाँ)
अष्टम् संस्करण	: सन् 2014, दिल्ली	(1000 प्रतियाँ)
नवम् संस्करण	: सन् 2021, मेरठ	(1000 प्रतियाँ)

न्यौछावर धनराशि : रु. 70.00 केवल

मुद्रक :
यूरेशिया प्रिन्टिंग प्रेस
बाबा मनोहर नाथ मन्दिर के सामने,
सूरजकुण्ड रोड, मेरठ

: प्राप्ति स्थान :

***श्री 108 शान्तिनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर**
तीरगरान, मेरठ शहर-250 002
फोन : 9837637542, 9312461512

***श्री दिव्यांश जैन**
किशन फ्लोर मिल
रेलवे रोड, मेरठ 250 002
मोबाईल/वाट्सऐप : 9456481400

***श्री सौरभ जैन**
नवकार टैक्सटाईल
खन्दक बाजार, मेरठ 250 002
मोबाईल/वाट्सऐप : 9897241464

***श्री अतुल जैन**
शांतिनाथ एन्कलेव
निकट श्री 108 शान्तिनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर
तीरगरान, मेरठ शहर-250 002
मोबाईल/वाट्सऐप : 9312461512

***श्री पंकज जैन**
259, ठठेरवाड़ा, जैन औषधालय वाली गली,
मेरठ शहर-250 002
मोबाईल/वाट्सऐप : 9837637542

प्रस्तुत ग्रन्थ में आर्थिक सहयोग प्रदान करने वाले पुण्यार्जक

21,500.00	श्रीमति मगनमाला जैन पत्नी स्व०श्री नानक चन्द जैन (क्राकरी वाले परिवार), तीरगरान, मेरठ शहर
11,000.00	निशा जैन, मोनिका जैन, नेहा जैन, छीपी वाड़ा, मेरठ शहर
11,000.00	अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन (महिला शाखा), मेरठ शहर
5,151.00	श्री आशीष जैन पुत्र श्री सुभाष चन्द जैन, बीरू कुँआ, मेरठ शहर
5,100.00	श्रीमति नीलम जैन पत्नी श्री अजय कुमार जैन, छीपीवाड़ा, मेरठ शहर
5,100.00	अलका जैन, नीलाक्षी जैन, ठठेरवाड़ा, मेरठ शहर
5,000.00	श्री सौरभ जैन, नवकार टैक्सटाईल, खन्दक, मेरठ शहर
2,100.00	श्री शगुन जैन पुत्र श्री राजीव जैन, नेहरू रोड, मेरठ
2,100.00	श्री सचिन जैन पुत्र श्री राजेन्द्र कुमार जैन, राम गली, तीरगरान, मेरठ शहर
2,100.00	श्री हंस कुमार जैन (किताब वाले), नेहरू रोड, मेरठ
2,300.00	श्री निखिल जैन पुत्र श्री संजय जैन, पल्लवपुरम, मेरठ
2,100.00	श्री निखिल जैन शास्त्री, कोतमा (म.प्र.)
2,100.00	श्रीमति पूजा जैन, पीयूष जैन, गाजियाबाद
2,100.00	श्रीमति सीमा जैन पत्नी स्व०श्री ब्रजमोहन जैन, ब्रह्मपुरी, मेरठ

1,100.00 श्रीमति सन्तोष जैन पत्नी स्व०श्री सहदेव जैन, थापर नगर, मेरठ

1,100.00 श्रीमति अभिलाषा जैन, छीपीवाड़ा, मेरठ शहर

1,100.00 डा० विनोद जैन (हाई यूनानी दवाखाना वाले), वैली बाजार, मेरठ

1,100.00 नमन जैन पुत्र श्री मयंक जैन, बीरू कुँआ, मेरठ शहर

1,100.00 श्रीमति अंजू जैन पत्नी श्री गुलाब चन्द जैन (किताब वाले), पत्थर वालान, मेरठ शहर

1,100.00 श्रीमति कविता जैन पत्नी श्री पवन जैन, ऋषि नगर, मेरठ

1,100.00 श्रीमति रजनी जैन पत्नी स्व० श्री मुकेश जैन, देवलोक, मेरठ

प्रकाशन के सम्पादन के पुण्यार्जक

1. **डा० विनोद जैन** (हाई यूनानी दवाखाना वाले),
2. **श्री अजय कुमार जैन** छीपीवाड़ा
3. **श्री अनन्त जैन, शेखर जैन** (किताब वाले)
4. **श्री अतुल जैन** खन्दक बाजार
5. **श्रीमति कविता जैन** ऋषि नगर, बागपत रोड
6. **श्रीमति सन्तोष जैन** थापर नगर
7. **श्रीमति अलका जैन, संयम जैन** ठठेरवाड़ा

आचार्य परम्परा में
आचार्य श्री 108 धर्मभूषणजी महाराज

परम पूज्य आचार्य श्री 108 शान्तिसागर जी महाराज (छाणी)

परम पूज्य आचार्य श्री 108 सूर्यसागर जी महाराज

परम पूज्य आचार्य श्री 108 विजयसागर जी महाराज

परम पूज्य आचार्य श्री 108 विमलसागर जी महाराज (भिण्डवाले)

परम पूज्य आचार्य श्री 108 निर्मलसागर जी महाराज

समकालीन - परम पूज्य आचार्य श्री 108 जयसागर जी महाराज

परम पूज्य आचार्य श्री 108 शान्तिसागर जी महाराज (हस्तिनापुर वाले)

परम पूज्य आचार्य श्री 108 धर्मभूषण जी महाराज

शास्त्राभ्यास की महिमा

हे भव्य हो। शास्त्राभ्यास के अनेक अंग हैं। शब्द या अर्थ का बाँचना या सीखना, सिखाना, उपदेश देना, विचारना, सुनना, प्रश्न करना, समाधान जानना, बारंबार चर्चा करना इत्यादि अनेक अंग हैं, वहाँ जैसे बने तैसे अभ्यास करना, यदि सर्वशास्त्र का अभ्यास न बने तो इस शास्त्र में सुगम या दुर्गम अनेक अर्थों का निरूपण है, वहाँ जिसका बने उसका ही अभ्यास करना; परन्तु अभ्यास में आलसी न होना।

देखो! शास्त्राभ्यास की महिमा, जिसके होने पर परम्परा आत्मानुभव दशा को प्राप्त होता है, मोक्षरूपफल को प्राप्त होता है। यह तो दूर ही रहो, तत्काल ही इतने गुण प्रकट होते हैं – (1) क्रोधादि कषायों की तो मंदता होती है। (2) पंचेन्द्रियों के विषयां में प्रवृत्ति रुकती है। (3) अति चंचल मन भी एकाग्र होता है। (4) हिंसादि पाँच पाप नहीं होते। (5) स्तोक (अल्प) ज्ञान होने पर भी त्रिलोक के तीनकाल संबंधी चराचर पदार्थों का जानना होता है। (6) हेय-उपादेय की पहचान होती है। (7) आत्मज्ञान सन्मुख होता है अर्थात् ज्ञान आत्मसन्मुख होता है। (8) अधिक-अधिक ज्ञान होने पर आनन्द उत्पन्न होता है। (9) लोक में महिमा-यश विशेष होता है। (10) सातिशय पुण्य का बंध होता है। सो इत्यादिक गुण शास्त्राभ्यास करने से तत्काल ही उत्पन्न होते हैं; इसलिए शास्त्राभ्यास अवश्य करना।

तथा हे भव्य! शास्त्राभ्यास करने के समय की प्राप्ति महादुर्लभ है; कैसे सो कहते हैं।

एकेन्द्रियादि असंज्ञीपर्यंत जीवों को मन नहीं और नारकी वेदना से पीड़ित तिर्यंच विवेकरहित, देव विषयासक्त; इसलिए मनुष्यों को अनेक सामग्री मिलने पर शास्त्राभ्यास होता है। सो मनुष्यपर्याय की प्राप्ति ही द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से महादुर्लभ है।

वहाँ द्रव्य से तो लोक में मनुष्यजीव बहुत अल्प हैं, तुच्छ संख्यात-मात्र ही हैं, और अन्य जीवों से निगोदिया अनन्त हैं, दूसरे जीव असंख्यात हैं।

तथा क्षेत्र से मनुष्यों का क्षेत्र बहुत स्तोक (थोड़ा ही) अढ़ाई द्वीप मात्र ही है और अन्य जीवों में एकेन्द्रियों का क्षेत्र सर्व लोक है, दूसरों का कितने ही राजू प्रमाण है।

और काल से मनुष्य पर्याय में उत्कृष्ट रहने का काल स्तोक है, कर्मभूमि-अपेक्षा पृथक्त्व कोटिपूर्व मात्र है और अन्य पर्याय में उत्कृष्ट रहने का काल-एकेन्द्रिय में तो असंख्यात पुद्गल-परावर्तनमात्र और अन्यों में संख्यात पल्यमात्र है।

भाव अपेक्षा शीघ्र शुभाशुभपने से रहित ऐसे मनुष्यपर्याय के कारणरूप परिणाम होने अतिदुर्लभ है। अन्य पर्याय के कारण अशुभरूप या शुभरूप होने सुलभ हैं। अशुभरूप व शुभरूप परिणाम होना दुर्लभ हैं।

इस प्रकार शास्त्राभ्यास का कारण जो पर्याप्त कर्मभूमिया मनुष्यपर्याय उसका दुर्लभपना जानना।

-प्रस्तावना, सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका

जीवन परिचय

प.पू. 108 आचार्य गुरुवर श्री धर्मभूषण जी

ग्रहस्थ का नाम	: श्री प्रेम चंद जैन
जन्म स्थान	: करनावल (मेरठ) उ०प्र०
जन्म तिथि	: श्रावण शुक्ल सप्तमी वि०सं० 1996
पिता का नाम	: स्व० श्री डालचन्द जैन
माता का नाम	: स्व० श्रीमती हुक्मा देवी जैन
धर्मपत्नी का नाम	: स्व० श्रीमती शीलवती जैन
भाई	: स्व० श्री सलेक चन्द जैन एवं स्व० श्री रूप चन्द जैन
बहिन	: श्रीमती कमला देवी जैन एवं श्रीमती जय माला जैन
सुपुत्र व सुपुत्री	: श्री आदीश जैन, श्रीमती अञ्जना जैन
विवाह	: 15 वर्ष की आयु में
संयम मार्ग	: 17 वर्ष की आयु में शूद्र जल का त्याग प्रतिज्ञा आचार्य श्री 108 विमलसागर जी महाराज के समक्ष।
द्वितीय प्रतिमा	: भाद्रपद शुक्ल 15, वि०सं० 2021 में आचार्य श्री 108 शिव सागर जी महाराज से
ब्रह्मचर्य व्रत	: श्रावण शुक्ल सप्तमी वि०सं० 2025 में आचार्य श्री 108 विमलसागर जी महाराज से
क्षुल्लक दीक्षा	: रामपुर मनिहारन, जिला सहारनपुर में फाल्गुन शुक्ल दशमी वि०सं० 2037 में दिनांक 15 मार्च 1981 को आचार्य 108 श्री शांतिसागर जी महाराज से
मुनि दीक्षा	: आचार्य 108 श्री शांतिसागर जी महाराज हस्तिनापुर से गन्नौर मण्डी, जिला सोनीपत में, चैत्र कृष्ण 15, सम्वत् 2051 में, दिनांक 10 अप्रैल 1994 को।
आचार्य पद	: मुजफ्फरनगर ज्येष्ठ शुक्ल 3 सम्वत् 2054 दि. 8 जून 1997
मुनि दीक्षा प्रदत्त	: मुनि श्री 1058 ज्ञानभूषण 8 जून 1997, मुजफ्फरनगर, मुनि श्री 108 सम्यक्तव भूषण : 10 मार्च 2000, मेरठ, मुनि श्री 108 चारित्र भूषण जी 10 मार्च 2000, मेरठ, मुनि दीक्षा श्री 108 भारत भूषण जी 28 जनवरी 2007, हस्तिनापुर मुनि दीक्षा श्री क्षमा भूषण जी 9 मार्च 2008 हस्तिनापुर
समाधि	: 26 नवम्बर, 2010

आचार्य श्री धर्मभूषण जी के संघ के 24 नियम

1. संघ के साथ कोई आर्यिका, क्षुल्लिका व ब्रह्मचारिणी नहीं रहेगी।
2. संघ के त्यागीगण आहार व विहार के समय किसी भी प्रकार के बाज-साज नहीं बजने देंगे।
3. कोई भी त्यागी अपनी जन्म-तिथि व दीक्षा-तिथि नहीं मनवायेंगे।
4. संघ के आहार के पश्चात् किसी प्रकार का प्रसाद नहीं बटेगा।
5. किसी भी संस्था या मन्दिर निर्माण के लिये, संघ का कोई भी त्यागी चंदा एकत्रित नहीं करेगा।
6. आचार्य पुष्पदन्त, भूतबली एवं कुन्दकुन्द की आम्नाय के किसी भी ग्रन्थ का (चाहे वह कहीं से भी प्रकाशित हो) निषेध नहीं किया जायेगा। ना ही जिनवाणी माँ का अपमान होने देंगे।
7. अग्नि में धूप डालना, दीपक से आरती उतारना, निर्वाण दिवस के दिन किसी भी प्रकार का लड्डू चढ़वाना, सामग्री में हार-सिंगार के फूल का प्रयोग, पंचामृत एवं स्त्री द्वारा अभिषेक, भगवान को चंदन लगाना व हरे फूल एवं फल चढ़ाना - इस बीस पंथ की क्रियाओं का इस संघ में कोई समर्थन नहीं होगा।

8. कोई भी संघस्थ त्यागी वीतराग भगवान के सिवाय पद्मावती, क्षेत्रपाल व अन्य किसी भी देवी/देवताओं का किसी भी प्रकार से प्रचार-प्रसार नहीं करेगा।
9. आहारचर्या के समय किसी भी संघस्थ त्यागी का हरे सचित फलों से पड़गाहन नहीं होगा।
10. किसी भी संघस्थ त्यागी की दीपक आदि द्वारा आरती नहीं होगी।
11. पिच्छीधारी किसी भी त्यागी को वाहन का उपयोग करने की आज्ञा नहीं होगी।
12. संघस्थ कोई भी साधु अपने पास पिच्छी, कमण्डलु व शास्त्र के अलावा अन्य किसी भी प्रकार का परिग्रह नहीं रखेगा।
13. रात्रि में तेल-मालिश का निषेध होगा।
14. संघ में पंखा, कूलर व हीटर, टेलीफोन, मरकरी लाईट, एयर कंटीशन और मच्छरदानी एवं इसी प्रकार के अन्य साधनों का कोई भी त्यागी उपयोग नहीं करेगा।
15. आचार्य श्री की आज्ञा के बिना संघ में कोई कार्य नहीं होगा।
16. सभी महिलाओं के लिए त्यागियों का चरण स्पर्श वर्जित है। महिलाओं का सूर्यास्त के पश्चात् मुनियों के पास आना वर्जित है।
17. संघ के साधुओं को नकली दाँत लगाकर आहार लेना व दातार द्वारा नकली दाँत लगाकर देना, दोनों वर्जित हैं।
18. संघ के कोई भी त्यागी हल्दी, टमाटर, पपीता, भिण्डी, तरबूज, पत्ती वाली वनस्पति, आड़ू, लीची व टाटरी आदि

का उपयोग नहीं करेंगे व गैस व कुकर का बना भोजन नहीं लेंगे।

19. संघ का कोई भी त्यागी ऐसे मंच पर नहीं चलेगा जहाँ हरे फूलों का उपयोग किया गया हो।

20. संघस्थ साधुओं (मुनियों, ऐल्लक, क्षुल्लक) के केशलोंचन का कोई समारोह नहीं होगा एवं इसकी कोई पत्रिका भी नहीं छपेगी।

21. संघ का पिच्छीधारी कोई भी साधु रथयात्रा के साथ नहीं चलेगा व संघ में जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमा साथ नहीं रहेगी।

22. कोई भी साधु व्यक्तिगत कुटिया या मठ बनाकर नहीं रहेगा एवं सामाजिक स्थान उपलब्ध होते हुए किसी श्रावक के निवास स्थान पर नहीं ठहरेंगे।

23. संघ में कोई भी शिथिलता (जैसे- समय पर सामायिक, प्रतिक्रमण, भक्ति व स्वाध्याय न करना, किसी भी प्रकार की विकथा करना) सहन नहीं होगी। अगर कोई त्यागी नियम के विपरीत क्रिया करेगा तो उसे पद छोड़कर जाना होगा।

24. हमारा ध्येय समाज के पक्ष-विपक्ष में न उलझकर मात्र आत्म-कल्याण का ही है और समाज को भी आत्महित की ही प्रेरणा देना है।

नोट :-

उपर्युक्त नियमावली इसी संघ की आचार संहिता है, अन्य भी माने तो अच्छी बात है।

प्राक्कथन

मानवीय व धार्मिक मूल्यों में गिरावट का जो परिदृश्य उभर रहा है वह अत्यंत भयावह है। मानव की अमानवीय प्रवृत्तियाँ जिस स्तर पर है, वहाँ से लौटने की कोई उम्मीद नहीं दिख रही। अतीन्द्रिय के स्थान पर ऐन्द्रिकता का वर्चस्व है। अर्थ-दृष्टि प्रबल है, तत्व दृष्टि निर्बल। धर्मस्थल बढ़ रहे हैं, धर्म सिसक रहा है। भाषणों की भरमार है, आचरण नदारद है। दर्शन से शून्य हैं, प्रदर्शन ही एकमात्र सहारा है। छलना को प्रभावना समझा जा रहा है। शास्त्रों का सम्मान प्रकाशक देखकर, गुरुओं का सम्मान चकाचौंध (ग्लैमर) देखकर और जिनबिम्बों का सम्मान चमत्कार आदि देखकर होने लगा है। पूज्य और पूजकों की साँठ-गाँठ से धर्म-क्षेत्र में भी वर्चस्व की राजनीति ने गहरे पैर जमा लिए हैं। व्यक्तिवादिता की दीमक समाज को खोखला कर रही है। सर्वत्र अधिकार-बोध है, कर्तव्य-बोध कहीं नहीं। जिस वर्ग का यह कर्तव्य था कि वह समाज को संकीर्णताओं से निकालकर प्रबुद्ध बनाता, किन्तु उसकी उर्जा तो नवीन कुरीतियों व अंधविश्वासों को गढ़ने एवं भीड़ इकट्ठी करने की पैंतरेबाजी में संलग्न है। जिनवाणी के प्रवक्ताओं का अंदाज राजनीतिक दलों के प्रवक्ताओं जैसा हो गया है। 'सत्य सो मेरा' के स्थान पर 'मेरा सो सत्य'- यह स्थायी संहिता बन गई हैं। शिथिलाचार की पोषक नवीन-नवीन व्याख्यायें और प्रमाणों की खोज भी बदस्तूर जारी है।

बहरहाल, जब भी कुछ बहुत बुरा होता है तो उम्मीद बँधती है कि जरूर कुछ अच्छा होने वाला है। कुछ अच्छे की यह उम्मीद हमें निराश नहीं होने देती। जो भी हो, जीवन को मंगल से भरने की संभावनाओं का अभी अभाव नहीं हुआ है। इसका कारण यह है कि तीर्थकरों, केवलियों, श्रुतकेवलियों के विरह में भी उनकी निर्दोष वाणी आज भी सुरक्षित हैं। श्रुत रूपी सागर में से चुने हुए किसी एक अमृत वचन में रत्नत्रय व समाधि की असीम संभावनाएँ निहित होती हैं। अत: पतन के इस दौर में एक मात्र कोई आश्रय दिखाई देता है तो वह शास्त्र हैं। इस विषम काल में भी तीर्थकरों की वाणी आज हमारे बीच उपलब्ध है, इससे बड़ा सौभाग्य दूसरा नहीं हो सकता।

जिस समय अंतिम तीर्थकर भगवान महावीर को निर्वाण हुआ तब चतुर्थ दुषमा काल के तीन वर्ष, आठ माह और पंद्रह दिवस शेष थे। भगवान महावीर के पश्चात बासठ वर्षों में तीन अनुबद्ध केवली हुए - गौतमस्वामी, सुधर्मास्वामी और

जम्बूस्वामी। आखिरकार केवलियों का भी विरह हो गया और आगे के सौ वर्षों में पाँच श्रुतकेवली हुए - आचार्य विष्णु, आचार्य नंदिमित्र, आचार्य अपराजित, आचार्य गोवर्धन एवं आचार्य भद्रबाहु। इसके बाद एक-एक अंग का ज्ञान हीन होता गया और अंततः मात्र एक अंग (आचारांग) का ज्ञान ही शेष रह गया था।

हम जिस युग में श्वांसे ले रहे हैं यह अवसर्पिणी काल है। प्रत्येक कल्पकाल में समय का पहिया दो प्रकार से घूमता है, एक उत्सर्पिणी और दूसरा अवसर्पिणी। उत्सर्पिणी में सब कुछ वृद्धिंगत होता है और अवसर्पिणी में ह्रासोन्मुख। एक उत्थान का युग है और एक पतन का। वर्तमान युग अवसर्पिणी का है। इसका पंचम काल 'दुषमा' चल रहा है। इस युग में तीर्थंकर व केवली होने की पात्रता वाला जीव जन्म नहीं लेता। शेष शुभ संयोग भी धीरे-धीरे विलुप्त होते जाते हैं। शारीरिक बल, आत्मबल, स्वभाव की सरलता, सहृदयता, प्रबुद्धता, उच्च मानवीय मूल्य हमारे हाथ से खिसकते जाते हैं।

युग तेजी के साथ क्रूर करवटें ले रहा था। भगवान महावीर के निर्वाण के लगभग छह सौ वर्षों में मूल द्वादशांग विलुप्त हो गया। अंग और पूर्वों के कतिपय अंशों का ज्ञान गुरु-परंपरा से आचार्य धरसेन, आचार्य गुणधर, आचार्य भूतबलि-पुष्पदन्त, आचार्य कुन्दकुन्ददेव, आचार्य यतिवृषभ सदृश महान परोपकारी आचार्यों को हुआ और उन्होंने उपलब्ध ज्ञान को लिपिबद्ध करने का उपक्रम किया। यदि इन आचार्यों ने युगानुरूप शास्त्रों की रचना नहीं की होती तो इस युग का साधक-समुदाय तो सचमुच पानी से विलग मछली की तरह तड़प-तड़प कर मर जाता। तीर्थंकरों, केवलियों, श्रुतकेवलियों, अंग-ज्ञानियों के अभाव में इन श्रुतधर आचार्यों ने तीर्थकर की कमी महसूस नहीं होने दी। परमपिता तीर्थंकरदेव के विरह में पूर्वाचार्यों द्वारा लिपिबद्ध शास्त्रों ने ही हमें जीवित रखा। अतः पूर्वाचार्यों के इस अनंत उपकार से यह युग कभी उऋण नहीं हो सकता।

'आगम चक्खु साहू' (प्रवचनसार, गाथा 234) अर्थात 'साधु आगम-चक्षु हैं'। सांसारिक प्राणी दुनिया को चर्म-चक्षुओं से देखते हैं, किन्तु साधक-वर्ग तो सब कुछ आगम-रूपी चक्षुओं से देखता है। कलिकाल-सर्वज्ञ आचार्य कुन्दकुन्ददेव की उक्त घोषणा हमें स्मरण कराती है कि इस युग में साधना के आधार शास्त्र ही होगें। एक सच्चा साधक स्वयं के संपूर्ण जीवन को आगम की साक्षी में ही देखता है। जिस समय हमारे आँखों के सामने शास्त्र होता है उस उस समय हम अल्पज्ञ होते हुए भी अल्पज्ञ नहीं रहते। उस समय हम केवलज्ञान-रूपी चक्षुओं से समस्त संसार को

देखते हैं। छह द्रव्य, सात तत्व, स्वर्ग-नरक, आठ कर्म, भूत-भविष्यत-वर्तमान की चौबीसी, तीन लोक का वर्णन आदि विषय हम शास्त्रों के आधार पर ही तो जानते हैं। शास्त्र वह दिव्य दृष्टि है जिसके द्वारा हम विश्व के उन रहस्यों का साक्षात्कार करते हैं जिनको अल्पज्ञ कभी प्रत्यक्ष नहीं जान सकता। शास्त्र आँखों में लगाया जाने वाला वह अंजन है, जिसके लगाते ही हम उन अर्थों का साक्षात्कार कर लेते हैं, जो अर्थ एकमात्र सर्वज्ञ के ज्ञानगोचर होते हैं। आगम के बिना साधक का एक कदम भी चलना असंभव है।

यदि कोई अभागा जीव तुच्छ इन्द्रियों से सत्-असत् का निर्णय करेगा तो उसे पतित होने से कोई नहीं रोक सकता। यदि आँखों से पूँछा जाये कि 'दुनिया क्या है?', तो उसका तो एक ही उत्तर होगा कि 'ये रंग व आकृतियाँ ही दुनिया है।' इसी प्रकार यदि जिह्वा से पूँछा जाये कि 'दुनिया क्या है?', तो उसका यही उत्तर होगा कि 'ये खट्टा-मीठा आदि स्वाद ही दुनिया है।' इसी प्रकार स्पर्शनेन्द्रिय के लिए स्पर्श, कर्णेन्द्रिय के लिए ध्वनि और घ्राणेन्द्रिय के लिए गंध ही दुनिया है। यदि हम इन्हीं से इस विश्व का निर्णय करेंगे तो लोकोत्तर तत्वों का बोध असंभव हो जायेगा और हम बहिरात्मा ही बने रहेंगे। सागार हों या अनगार, सभी की साधना का आधार शास्त्र ही हैं। साधना के आधारभूत जीवादि सात तत्व, नौ पदार्थ, व्रत, शील, यम, नियम आदि सभी के सम्यक परिज्ञान के लिए शास्त्र ही शरणभूत हैं। अत: प्रत्येक जिज्ञासु का प्रथम कर्तव्य आगम का सेवन है। आचार्यवर कुन्दकुन्ददेव लिखते हैं -

एयग्गदो समणो एयग्गं णिच्छिदस्स अत्थेसु।
णिच्छित्ति आगमदो आगमचेट्ठा तदो जेट्ठा।।

प्रवचनसार- गाथा 232

(श्रमण एकाग्र होता है; एकाग्रता पदार्थों का निश्चय करने वाले के होती है; पदार्थों का निश्चय आगम द्वारा होता है। अत: आगम की चेष्टा अर्थात आगम का अभ्यास ही श्रेष्ठ चेष्ठा है।)

रयणसार में तो आचार्यवर यहाँ तक लिखते हैं - 'अज्झयणमेव झाणं' (गाथा 95) अर्थात 'पंचमकाल में शास्त्रों का अध्ययन ही ध्यान है।'

साधकों में साधु परमेष्ठी का स्थान सर्वश्रेष्ठ है। ज्ञान-ध्यान-तप में लीन रहना साधुओं की जीवन-शैली है। बारह प्रकार के तपों में आचार्यों ने स्वाध्याय का माहात्म्य इन शब्दों में बताया है -

बारसविहम्मि य तवे सब्बभंतरे बाहिरे कुसलदिट्ठे।
णवि अत्थि ण वि होहिदि सज्झाय सं तवो कम्मं।।

मूलाचार आ.वट्टकेर गाथा 976, एवं
भगवती आराधना आचार्य शिवार्य गाथा 106

(बारह प्रकार के अंतरंग और बहिरंग तपों में स्वाध्याय जैसा तप न है और न ही होगा।)

जिनवाणी का स्वाध्याय हमें जीवन का सही अर्थ-बोध कराता है। **"मैं कौन हूँ.. ., मेरा स्वरूप क्या है.., जीवन की सार्थकता क्या है..., जीवन में आकुलता क्यों है..., विपरीतताओं में हम बिखर क्यों जाते हैं..., सफलताओं में हम संतुलित क्यों नहीं रह पाते..., सबकुछ पाकर भी अंततः असंतुष्टी और बैचेनी क्यों बनी रहती है..., सुख के लिए एक भी पल प्रयत्न रुकता नहीं और सुख एक पल को मिलता नहीं.....आदि-आदि असंख्य सवालों का एक ही उपाय है, वह है स्वाध्याय। स्वाध्याय से ही हमें ज्ञान होता है कि ''मैं ज्ञान-दर्शनमयी एक शुद्धात्म द्रव्य हूँ।शरीरादि बाह्य पदार्थों में आत्मबुद्धि दुख का मूल कारण है। पर के साथ संलग्न होना ही आकुलता है। स्वरूप की विस्मृति ही जीवन में हर्ष-विषाद की उत्पादक है और स्वरूप की जागृति ही जीवन में समतारस की सृष्टि करती है। कोई अन्य वस्तु मुझे सुखी-दुखी नहीं कर सकती, बल्कि आत्मा से विमुखता ही समस्त आपदाओं की जननी है। सुख-दुख का कारण मेरे भीतर है अतः अन्य जीवों से उनसे उम्मीदें बाँधना, बैरभाव रखना, यह सब उन्मार्ग है। समस्त आरंभ-परिग्रह छोड़कर, प्राणीमात्र के प्रति साम्यभाव रखते हुए अपने परमात्मस्वरूप में स्थिरता ही सुन्दरतम जीवन-शैली है। लौकिक सुख-दुख कर्मोदय के अनुसार अपने-अपने समय पर होते हैं, इनमें राग-द्वेष करना व्यर्थ है। अपनी संपूर्ण ऊर्जा को बाहर से समेटकर अपने आत्मस्वरूप की उपलब्धि में झोंकना ही श्रेयस्कर है।''**

शास्त्रों को पढ़ने का अर्थ है स्वयं को पढ़ना। आगम एक जादुई दर्पण है जो हमें हमारा भूत-भविष्य-वर्तमान तीनों का बोध कराता है। आगम हमें भूतकाल में की गई भूलों की पुनर्रावृत्ति की संभावानाओं को क्षीण करता हुआ वर्तमान के सम्यक पुरुषार्थ को स्फुरायमान कर, सुनहरे भविष्य का मार्ग प्रशस्त करता है। आगम हमें कभी अकेला, असहाय, दीन-हीन, असमर्थ नहीं होने देता। जिस समय पूरी दुनिया

हमारा साथ छोड़ दे, कर्मोदय हमारी समस्त अनुकूलताओं को छीन ले, उस समय एक मात्र आगम ही है जो हमें अकेला नहीं होने देता। सामने मृत्यु खड़ी हुई हो, सबकुछ तहस-नहस करने को तैयार हो, उस समय आगम ही हमें मृत्यु के समक्ष पराक्रम के साथ आँख-में-आँख मिलाने की ताकत देता है। आगम की शरण में आकर मानो सारी आपदाएँ ही समाप्त हो गई हों। यही कारण है कि आचार्य शिवार्य लिखते हैं -

कंठगदेहि वि पाणेहि साहुणां आगमदो दु कादव्वो।"

भगवती आराधना- गाथा 156

(कंठगत प्राण होने पर भी साधुओं को आगम का सेवन करना चाहिए।)

जीवन के अंतिम क्षणों में किसी एक गाथा, श्लोक, सूत्र अथवा एक पद का ध्यान करते-करते साधक की समाधि हो जाती है। श्रुत के सेवन का महत्व बताते हुथा आचार्य वट्टकेर लिखते हैं -

विणयेण सुदमदीधं जदवि पमादेण होदि वि विस्सरिदं।
तमु तमुट्ठावदि परभवे केवलणाणं च आवहदि।।

मूलाचार - गाथा 286

(विनय से किया गया श्रुताभ्यास कदाचित प्रमादवश विस्मृत होने पर भी वह परभव में जीव को केवलज्ञान में स्थापित कर देता है।)

इस युग में जो भी जीव श्रुत-सेवा में संलग्न हैं वे सभी सागार-अनगार कोटि-कोटि बहुमान के योग्य हैं। जिनवाणी किसी भी जीव द्वारा लिखी हो, कहीं से भी प्रकाशित हों, वह पूज्य है। कलिकालसर्वज्ञ आचार्य समंतभद्रस्वामी द्वारा शास्त्र का जो स्वरूप निर्धारित किया है वह अद्भुत है-

आप्तोपज्ञमनुल्लंघ्यं-दृष्टेष्ट-विरोधकम।
तत्वोपदेश कृतसार्वं शास्त्रं कापथघट्टनम्।।

रत्नकरण्डश्रावकाचार - श्लोक 09

(शास्त्र आप्त के द्वारा कहा गया, वादियों के द्वारा अलंघ्य, प्रत्यक्ष-अनुमान से अबाधित, तत्वोपदेश करने वाला, सभी जीवों को हितकारी और मिथ्यामार्ग का खण्डन करने वाला है।)

आचार्यश्री ने जो कसौटी निर्धारित की है वह रोमांच पैदा कर देती है।

लेखन-प्रकाशन-संपादन को उपरोक्त कसौटी पर कसने से वर्तमान की अनेक विसंगतियों का समाधान हो सकता है। कतिपय विभाजनकारी शक्तियों ने शास्त्रों को भी लेखक, प्रकाशक, कालखण्ड आदि के नाम पर बाँटने के प्रयास किए और दुर्दैव से अभी भी जारी हैं। विभाजन द्वारा वर्चस्व की राजनीति करने वाली शक्तियों को समंतभद्रदेव का चिन्तन दिशाबोध दे सकता है।

वर्तमान दौर में कतिपय साधुओं ने चर्या के उच्च मानक स्थापित करते हुए धर्ममार्ग की गरिमा को बनाये रखा। इस परंपरा में आचार्य श्री धर्मभूषण जी महाराज का नाम विशेष स्मरणीय है। उनका तत्वज्ञान निर्मल था। उन्होंने धर्ममार्ग में सदैव शुद्ध आम्नाय का आग्रह रखा। सामाजिक राजनीति व विसंवादों से वे हमेशा दूर रहे। तत्वज्ञान और आम्नाय में उन्होंने कभी कोई समझौता नहीं किया। श्रुतसेवी विद्वानों पर उनका विशेष आशीष रहता था।

आचार्य श्री धर्मभूषण महाराज की श्रुतभक्ति से कौन अपरिचित है। प्रस्तुत कृति उनके क्षुल्लक जीवन में की गई श्रुतसेवा का जीवंत स्मारक है। क्षुल्लक श्री कुलभूषण जी महाराज (पश्चात आचार्य धर्मभूषण जी महाराज) के द्वारा संकलित इस पुस्तक का प्रथम प्रकाशन ईसवी सन 1989 में दिल्ली से प्रकाशित हुआ था। प्रारंभ में इसका आकार-प्रकार छोटा था, किन्तु बाद में अनेक उपयोगी सामग्री जुड़ती गई और प्रस्तुत आकार तैयार हो गया। प्रथम संस्करण आते ही समाज ने इसे हाथों-हाथ लिया। इस पुस्तक की माँग इतनी अधिक बढ़ी की अब तक इसके आठ संस्करण निकल चुके हैं। पाठकों की बड़ती हुई भारी माँग को देखते हुए यह नवम् संस्करण प्रकाशित होना सचमुच हर्ष का विषय है।

पुस्तक का नाम 'जैन दर्शन गणित' है। यद्यपि गणित करणानुयोग का विषय है, किन्तु इस पुस्तक में चारों अनुयोगों की सारभूत सामग्री का समावेश है। 'गणित' से आशय केवल इतना है कि इसमें 01 से लेकर 31 तक की संख्या में जो-जो भी है, उसका संकलन किया गया है।

संख्या के आधार पर सामग्री के संकलन का भाव क्षुल्लक जी के मन में अनायास नहीं आया, अपितु यह शैली द्वादशांगमयी श्रुत से प्रमाणित है। बारह अंगों में तीसरे 'ठाणांग' (स्थानांग) में 01 से 10 तक की संख्या में होने वाली वस्तुओं का संकलन इसी शैली में किया गया है। इस अंग का प्रमाण 4200 पद प्रमाण है। अतः विषयों के संकलन की यह शैली हमारे मूल द्वादशांग से प्रमाणित है। 01 से 31 तक

की संख्या में जो कुछ भी उपलब्ध शास्त्रों में है, वह प्राय: सब कुछ इस संकलन में आ गया है। यह संपूर्ण संकलन लेखक के अथक श्रम का जीवंत दस्तावेज है। इस श्रम में श्रुतभक्ति की वैसी ही मनोभूमि है जैसी किसी समय जैनेन्द्र सिद्धान्त कोशकार क्षुल्लक श्री जिनेन्द्र 'वर्णी' की थी।

संख्या के प्रारूप के अलावा सैकड़ों विषयों का विवरण देने से यह ग्रन्थ एक अनूठी रचना के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी है। संख्यात्मक विवरण के अलावा शेष विषय को मुख्यत: पाँच शीर्षकों में विभाजित किया है – 1. प्रथमानुयोग, 2. करणानुयोग, 3. चरणानुयोग, 4. द्रव्यानुयोग, 5. प्रतिक्रमण। इसके अलावा आखिर में कतिपय उपयोगी पाठों का संकलन किया गया है।

शास्त्रों की कथन करने की पद्धति को अनुयोग कहते हैं। शास्त्रों में समागत कथन-पद्धतियों को चार भागों में विभाजित किया गया है – प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग एवं द्रव्यानुयोग। ये सभी अनुयोग सर्वज्ञ-प्रणीत हैं। जैसे गाय के चारों स्तनों में से धवल, निरंजन, गुणकारी, मधुर दुग्ध निकलता है, उसी प्रकार इन चारों अनुयोगों से वीतरागता का अमृत झरता है। चारों ही अनुयोग मिलकर हमारे जीवन को परिपूर्ण बनाते हैं। चारों अनुयोगों में ये उक्त समानताएँ होते हुए भी चारों अनुयोगों की अपनी एक दुनिया है। इनकी शैली व सारोकारों में इतनी भिन्नता है कि कभी-कभी अनेक मिथ्या धारणाएँ भी पनप जाती हैं।

सामान्यत: चारों ही अनुयोग सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की साधना के लिए अनिवार्य हैं तथापि इनकी अपनी-अपनी एक अलग भूमिका भी है। ये चारों अनुयोग हमारे जीवन के विविध पहलुओं पर प्रकाश डालते हैं। हमारे जीवन के चार पहलू हैं- दृष्टि, भाव, आचरण और आदर्श। ये चारों ही अनुयोग हमारे जीवन के इन चारों पहलुओं को तराशते हैं। दृष्टि को तराशता है द्रव्यानुयोग, भावों की निर्मलता का प्रेरक है करणानुयोग, क्रिया को सुधारता है चरणानुयोग और हमारे संपूर्ण जीवन के उत्कर्ष के लिए आदर्श दिखाता है प्रथमानुयोग। द्रव्यानुयोग हमें बताता है कि हमारी स्वयं के प्रति कैसी दृष्टि होनी चाहिए; करणानुयोग बताता है कि हमारे भावों का क्या फल होता है; चरणानुयोग हमें बताता है कि हमारा व्यवहार कैसा हो; और प्रथमानुयोग हमारे जीवन का दर्पण है, जिसमें हम अपना प्रतिबिम्ब देख सकते हैं और अपनी दशा और दिशा का मूल्यांकन कर सकते हैं।

इस युग में अनुयोगों का सर्वप्रथम कथन आचार्य समंतभद्र स्वामी ने 'रत्नकरण्ड

श्रावकाचार' में किया है। परवर्ती शास्त्रों में चार अनुयोगों के स्वरूप पर अधिक विमर्श नहीं हुआ। एकमात्र आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी ने 'मोक्षमार्ग प्रकाशक' के आठवें अधिकार में इस विषय पर अद्‌भुत विमर्श किया है। यह विवेचन पण्डित टोडरमलजी के जीवन की संपूर्ण श्रुतसाधना का सारभूत है। अकेला यह एक ही प्रकरण उन्हें कालजयी बनाता है। आगम में प्रवेश के पूर्व प्रत्येक पात्र जीव को इसका अध्ययन अवश्य करना चाहिए।

जब हम अनुयोगों की पद्धति नहीं समझते तो अनेक आभास खड़े हो जाते हैं। यदि हम द्रव्यानुयोग से स्वयं की क्रिया को देखते हैं तो निश्चयाभास खड़ा होता है और यदि चरणानुयोग से स्वयं की दृष्टि का मूल्यांकन करेंगे तो व्यवहाराभास खड़ा होता है। यदि सावधानी और पारदर्शिता के बिना शास्त्रों का अध्ययन हो तो अनेक विसंगतियाँ भी खड़ी हो जाती हैं। अत: पाठक का यह दायित्व है कि शास्त्रों में जो प्ररूपणा जिस उद्देश्य से की गई हो उसे उसी रूप में ग्रहण करे।

'प्रथमानुयोग' में संकलित जैनधर्म की प्राचीनता, तीर्थंकरों का विवरण, संघ व पट्टावलियों का परिचय; प्रमुख ऐतिहासिक व्यक्तियों, गौरवशाली आचार्यों और कालजयी विद्वानों के व्यक्तित्व-कृतित्व का विवरण बहुत ही सारगर्भित है। चौबीस तीर्थंकरों के जीवन-संबंधी महत्वपूर्ण सारणियाँ अत्यन्त उपयोगी हैं। कतिपय विषय ऐसे भी हैं 'प्रथमानुयोग' में एतिहासिक तथ्यों के समावेश से इसके विषय की सीमा का विस्तार कर दिया गया है। समयसार, तत्त्वार्थसूत्र, रत्नकरण्डश्रावकाचार, द्रव्यसंग्रह, छहढाला आदि रचनाओं का परिचय देकर साहित्य के ऐतिहासिक तत्वों का समावेश भी सहज ही हो गया है। श्वेताम्बर-दिगम्बर के भेद, संघ आदि विषय ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

'करणानुयोग' में इस अनुयोग की प्रकृति के अनुरूप गणित की मुख्यता है। पंचपरमेष्ठी के गुण, कर्म की 148 प्रकृतियाँ, त्रिलोक, कालचक्र, गुणस्थान, शलाका-पुरुष, तीर्थंकर, मानस्तंभ, समवशरण, चक्रवर्ती, अकृत्रिम जिन-चैत्यालय आदि के वर्णन को पढ़कर सहज ही केवलज्ञान की महिमा से हृदय भर जाता है। आचार्य कुन्दकुन्ददेव लिखते हैं -

तिक्कालणिच्चविसमं सयलं सवत्थसंभवं चित्तं।
जुगवं जाणदि जोण्हं अहो हि णाणस्स माहप्पं।।

प्रवचनसार- गाथा 51

(तीनों काल में सदा विषम, अनेक प्रकार के, सभी क्षेत्रों के समस्त पदार्थों को जिनेन्द्रदेव का ज्ञान युगपत जानता है; अहो ज्ञान का माहात्म्य !)

'चरणानुयोग' में मुनिचर्या के अन्तर्गत आहार-शुद्धि, छह आवश्यक, सात शेष गुण आदि के वर्णन एवं श्रावकों से संबंधित अनेक व्यवहारिक बातों का विश्लेषण किया है। खासतौर पर आम्नाय में आने वाली अनेक क्रियाओं के निषेधार्थ विशेष प्रयत्न किया गया है। श्रावकों द्वारा किए जाने वाले विविध धार्मिक अनुष्ठानों में पद्मावती आदि देवी-देवताओं की पूजा, अग्नि व धूप का प्रयोग, निर्वाण लाडू , पंचामृत अभिषेक, स्त्री-अभिषेक, फूल चढ़ाना, दीपक से आरती, अखण्ड ज्योति, मूर्तियों को चन्दन लगाना, गंधोदक को मस्तक के अलावा अन्य अंगों पर लगाना, फणवाली प्रतिमाओं का चलन आदि क्रियाओं का कठोरता से निषेध किया गया है। मंदिर में लगने वाली चौरासी असातनाओं का उल्लेख भी विषय को अत्यन्त व्यवहारिक बना देता है।

'द्रव्यानुयोग' में छोटे-छोटे प्रश्नों के द्वारा षट्द्रव्यमयी विश्व के स्वरूप को अत्यन्त बोधगम्य शैली में प्रस्तुत किया है। द्रव्य-गुण-पर्याय का स्वरूप, छह द्रव्यों के लक्षण, सामान्य-विशेष गुण, सात तत्व, मोक्ष के प्रकार, जीव का स्वरूप एवं महिमा, सुख-दुख का स्वरूप, पुण्य-पाप की एकता, सम्यक्त्व की प्राप्ति का उपाय आदि विषय सचमुच मन को छूने वाले प्रकरण हैं।

लेखक ने निष्पक्षता के साथ आध्यात्मिक तत्वों को जिस निडरता के साथ प्रस्तुत किया है वह हृदय को आनंद से भर देता है। अन्यथा वर्तमान मे आध्यात्मिक प्ररूपणाओं पर कषायभाव के कारण अनेक प्रकार की छींटाकशी करते हुए शास्त्रों का अवर्णवाद किया जा रहा है। अध्यात्म में रुचिवंत जीवों कों हाशिये पर लाने के अनेक प्रयत्न किए जा रहे हैं। आगम की इस शैली को समाप्त करने का ही मानो व्रत लिया हो। अनेक-अनेक हथकण्डों से जीवों को अध्यात्म से दूर करने के प्रयत्न हो रहे हैं। आश्चर्य यह है कि ये सब उस वर्ग के द्वारा हो रहा है जो स्वयं को श्रमण संस्कृति का सबसे बढ़ा संरक्षक व संवर्धक मानता है। विभाजन की राजनीति करने वाले इस वर्ग ने समाज में विघटन की जो त्रासदी दी है, इतिहास इसके लिए उन्हें कभी क्षमा नहीं करेगा।

'प्रतिक्रमण' खण्ड में श्रावक प्रतिक्रमण एवं गौतमस्वामी द्वारा रचित प्रतिक्रमण पाठ के साथ-साथ विविध पाठों का संकलन इस रचना को साधना के स्तर पर भी

उपयोगी बनाता है। हिन्दी में अनूदित सामायिक पाठ, चौबीस तीर्थंकर वंदना, नीरव निर्झर, बारह भावना, वीतराग स्तोत्र, परमानंद स्तोत्र, परमात्म स्वरूप, प्रायश्चित्त विधि, विविध भक्तियाँ, कुन्दकुन्दशतक का पद्यानुवाद, समाधिमरण पाठ आदि का संकलन बहुत ही मार्मिक है। ये सभी पाठ इतने मनमोहक हैं कि साधक इनके जरिये अलग ही भावभूमि में पहुँच जाता है। सबसे अंत में कुछ अन्य उपयोगी सामग्री, जैसे - तेरहपंथ के तेरह नियम जैसे उपयोगी विषय भी हैं।

इस प्रकार यह संग्रह ग्रन्थ आचार्य श्री के क्षुल्लक जीवन की गहरी श्रुतभक्ति व साधनात्मक चिन्तन का प्रतिफलन है। इस संग्रह में शास्त्रीय, तात्विक, व्यवहारिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक तत्वों की व्यापक दिग्दर्शन कराया गया है। विविध-विविध विषयों के संकलन का ही यह परिणाम है कि किसी भी प्रकार का जिज्ञासु हो, हरेक जिज्ञासु की शंकाओं का समाधान एवं अज्ञान की निवृत्ति, इस रचना से सहज ही हो जाती है।

इस अद्भुत रचना के द्वारा अज्ञान की कारा टूटे और अखिल विश्व में सम्यग्ज्ञान का प्रकाश हो, यही भावना है। कहा है -

जेण तच्चं विवुज्झेज्ज जेण चित्तं णिरुज्झदि।
जेण अत्ता विसुज्झेज्ज तं णाणं जिणसासणे।।

मूलाचार- गाथा 267

(जिससे तत्व का बोध होता है, जिससे मन का निरोध होता है, जिससे आत्मा शुद्ध होता है, जिनशासन में उसका नाम ज्ञान है।)

वीर निर्वाण संवत 2547
श्रावण शुक्ल दशमी
16 अगस्त, 2021

डॉ. मनीष कुमार जैन
मेरठ (उत्तर प्रदेश)
मोबाइल नं. 9528762447

विषय सूची

क्रम संख्या		पृष्ठ संख्या
1.	एक	31
2.	दो	35
3.	तीन	43
4.	चार	53
5.	पाँच	64
6.	छह	75
7.	सात	82
8.	आठ	87
9.	नौ	94
10.	दस	99
11.	ग्यारह	107
12.	बारह	109
13.	तेरह	112
14.	चौदह	114
15.	पन्द्रह	118
16.	सोलह	119
17.	सत्रह	126
18.	अठारह	128
19.	उन्नीस	130
20.	बीस	131
21.	इक्कीस	133
22.	बाईस	134
23.	तेईस	135
24.	चौबीस	136
25.	पच्चीस	139
26.	छब्बीस	143
27.	सत्ताईस	143
28.	अट्ठाईस	144
29.	उन्तीस	146
30.	तीस	147
31.	इकतीस	148
32.	अनुयोगों के भेद	149

कुछ अन्य उपयोगी तत्व

प्रथमानुयोग

1. राज्य के पद	151
2. जैन धर्म की प्राचीनता	151
3. दिगम्बर वेश पाँच	152
4. तीर्थंकरों के बल का प्रमाण	153
5. महावीर स्वामी के बाद तीन केवली	153
6. स्थानक बाईस टोला श्वेताम्बर पंथ	155
7. स्थानक तेरह पंथ श्वेताम्बर पंथ की स्थापना	155
8. तीर्थंकरों के वर्ण	155
9. तीर्थंकरों के सिद्धत्व के आसन	155
10. तीर्थंकरों के वंश	155
11. तीर्थंकरों की मोक्षस्थली	155
12. ऐतिहासिक राज वंश	155
13. दिगम्बर मूल संघ	156
14. दिगम्बर जैन संघ	156
15. दिगम्बर जैनाभासी संघ	156
16. पट्टावलियें तथा गुर्वावलियें	157
17. पौराणिक राज वंश	158
18. संवत्सर निर्देश	158
19. वीर निर्वाण संवत् निर्देश	159
20. विक्रम संवत् निर्देश	159
21. ईसवी संवत्	160
22. गुप्त संवत् निर्देश	160
23. कुछ प्रसिद्ध ऐतिहासिक जैन पुरुष	161 से 165
24. बारह चक्रवर्ती	166
25. कुन्दकुन्द आचार्य	167
26. कुन्दकुन्दाचार्य की रचनाएँ	168
27. बनारसीदास	168
28. पं. टोडरमल	169
29. धर्मभूषण	169
30. आध्यात्मिक शास्त्र तथा उनके रचयिता	170
31. तत्त्वार्थ सूत्र	171
32. अष्टपाहुड़	172
33. पंचास्तिकाय	173

34. समयसार 174
35. नियमसार 175
36. प्रवचनसार 176
37. तत्त्वार्थसूत्र 177
38. छहढाला 177
39. रत्नकरण्ड श्रावकाचार 178
40. द्रव्य संग्रह 178
41. चौबीस तीर्थंकरों का चार्ट 179 से 192
42. तीर्थंकरों के पंचकल्याणक स्थान 193
43. तीर्थंकर काल में शलाका पुरुष 194
44. विदेह जाने वाले 123 जीव 195
45. कुछ प्रमुख जीवों की वर्तमान एवं भावी पर्यायें 196 से 198
46. सर्व दर्शन तालिका 199 से 202
47. 30 चौबीसी के 720 तीर्थंकर 203 से 208
48. एक समय में 170 तीर्थंकर 209 से 212
49. पात्र के भेद 213
50. श्वेताम्बर आम्नाय व दिगम्बर आम्नाय में मतभेद 214 से 220
51. तत्त्व बोध 221 से 224
52. तथ्य की बातें 225 से 227
53. संसार में अन्धे 227
54. अमूल्य विचार 228 से 229

करणानुयोग

1. अरहन्तों के छयालीय गुण 231
2. आचार्यों के 36 गुण 232
3. उपाध्यायों के 25 गुण 232
4. मुनियों के 108 गुण 232
5. मुनियों के 28 मूलगुण 232
6. क्षुल्लक, ऐल्लक व आर्यिका के 105 गुण 232
7. कर्मों की 148 प्रकृतियाँ 233
8. णमोकार मन्त्र 235
9. माला में 108 दाने क्यों 236
10. सौ इन्द्रों के नाम 236
11. वातवलय का प्रमाण व रंग 236
12. नरकों की भूमियों के रुढ़िगत नाम 237
13. नरकों की भूमियों के सार्थक नाम 237
14. रत्नप्रभा भूमि का विस्तार 237

15. नरकों के बिल 237
16. नरकों के प्रमाण 238
17. नरकों का विस्तार 238
18. नरकों में सम्यक्त्व के कारण 238
19. स्वर्ग के नाम 238
20. स्वर्गों में इन्द्रों का वर्णन 239
21. नन्दीश्वर द्वीप 239
22. जम्बूद्वीप की परिधि 239
23. जम्बूद्वीप नाम की सार्थकता 240
24. जम्बूद्वीप के सात क्षेत्र 240
25. जम्बूद्वीप से आगे के समुद्रों एवं द्वीपों का वर्णन 240
26. भरत क्षेत्र के छह खण्ड 240
27. म्लेच्छ खण्ड 241
28. विदेह क्षेत्र का समवसरण 241
29. मानस्तम्भ 241
30. तीर्थंकरों के चिन्ह की पहिचान 241
31. पाण्डुक शिला का वर्णन 241
32. तीर्थंकर माता का दूध नहीं पीते 242
33. तीर्थंकर के शरीर की विशेषताएँ 242
34. समवसरण का माहात्म्य 242
35. दिव्यध्वनि 243
36. मानुषोत्तर पर्वत 243
37. मल-मूत्र किसके नहीं होता 244
38. चन्द्रमा व सूर्य का प्रमाण 244
39. एक चन्द्रमा का परिग्रह 244
40. विमान तीन प्रकार के 244
41. सूर्य का गमन 244
42. जीवों में लेश्याओं का विधान 244
43. मनुष्य के भेद 245
44. चक्रवर्तियों का वर्णन 245
45. व्यक्तता - अव्यक्तता 247
46. पुद्गल द्रव्यों के भेदों का कथन 247
47. स्कन्धों के प्रकार 248
48. अँगुल के प्रकार 248
49. पाद से कोश पर्यन्त की परिभाषाएँ 249
50. योजन का माप 249

51. सागर का माप 249
52. चारों गतियों के जीवों की उत्कृष्ट आयु 249
53. अवगाहना 250
54. वैमानिकों के पटल 251
55. योनि के भेद 251
56. असंज्ञी जीव के विषय 251
57. शरीर के 5 प्रकार 252
58. शरीर की उत्कृष्ट स्थिति 252
59. निगोदिया जीव 253
60. क्षुद्र भव 253
61. निगोद और क्षुद्र भव में अन्तर 254
62. सम्मूर्छन मनुष्य निर्देश 254
63. अकृत्रिम जिन चैत्यालयों का वर्णन 254
64. मध्यलोक के अकृत्रिम जिन चैत्यालयों का वर्णन 254
65. उर्ध्वलोक के अकृत्रिम जिन चैत्यालयों का वर्णन 255
66. नयों के नाम एवं सामान्य परिचय 255
67. श्लाका पुरुष 256
68. आठ कर्मों के आठ सिद्धान्त 257
69. सात नरकों और सोलह स्वर्गों का आवागमन 258
70. कर्म व नोकर्म में अन्तर 258
71. कर्म जगत का सृष्टा है 259
72. कायक्लेश व परिषह में अन्तर 259
73. हुंडावसर्पिणी काल की विशेषताएँ 259
74. चतुर्थ काल की कुछ विशेषताएँ 260
75. पंचम काल की कुछ विशेषताएँ 260
76. पंचम काल में कल्कियों व उपकल्कियों का प्रमाण 261
77. कल्की के समय चतुर्संघ की स्थिति 261
78. प्रत्येक कल्की के काल में एक अवधिज्ञानी मुनि 261
79. छठे काल में 261
80. कालों का समय 262
81. सूर्य व चन्द्र ग्रहण के अर्थ में 263
82. सराग वीतराग चारित्र निर्देश 263
83. स्याद्वाद 263
84. गुणस्थान सम्बन्धी चर्चा 264 से 269
85. चौबीस दंडक 270 से 273
86. करुणानुयोग सम्बन्धी विभिन्न चार्ट 274 से 302

चरणानुयोग

1. 32 अन्तराय	303
2. आहार के 46 दोष	306
3. मुनि के षट् आवश्यक कार्य	311
4. मुनियों के सात शेष गुण	311
5. त्यागियों का परिग्रह परिमाण, इन्द्रिय संयम	312
6. प्रतिक्रमण के भेद	314
7. साधु को आजीविका करने का निषेध	314
8. पूजा के अंग	315
9. द्विदल के भेद	315
10. गोरस आदि के लक्षण	315
11. मूलबीज, अग्रबीज आदि के उदाहरण	315
12. धूप दशमी व्रत	316
13. पानी छानकर क्यों पीना चाहिये	316
14. पानी छानने की विधि	316
15. रात्रि भोजन क्यों हानिकारक	317
16. रात्रि भोजन में गृद्धता अधिक क्यों	317
17. पद्मावती आदि रागी - द्वेषी देवताओं की पूजन का निषेध	317
18. हवन एवं अग्नि में धूप डालने का निषेध	321
19. दीपक से आरती एवं अखंड ज्योति का निषेध	324
20. निर्वाण लड्डू चढ़ाने का निषेध	328
21. पंचामृत अभिषेक का निषेध	328
22. गंधोदक केवल मस्तक पर लगाना चाहिये	331
23. फूल चढ़ाने का निषेध	331
24. स्त्री द्वारा अभिषेक का निषेध	332
25. मन्दिर जी में चमड़े के प्रयोग का निषेध	333
26. मूर्ति को चन्दन लगाने का निषेध	333
27. मुनि का हिंसात्मक क्रिया के अनुमोदन का निषेध	334
28. पार्श्वनाथ भगवान की फणधारी प्रतिमा का निषेध	334
29. चौरासी आसातन	336, 337
30. बाईस परीषह	338 से 341

द्रव्यानुयोग

1. वस्तु स्वरूप क्या है	342
2. विश्व किसे कहते हैं	342
3. द्रव्य, गुण, पर्याय किसे कहते हैं	342
4. द्रव्य के प्रकार, परिभाषायें व सामान्य परिचय	342

5. जीव द्रव्य किसे कहते हैं 343
6. अरूपी किसे कहते हैं, कौन से द्रव्य अरूपी हैं 344
7. हमें केवल पुद्गल ही क्यों दिखाई देता है 344
8. विश्व में होने वाले कार्यों का कर्ता कौन 344
9. गुणों सम्बन्धी सामान्य चर्चा 345
10. तत्त्व कितने होते हैं 346
11. मोक्ष के प्रकार 346
12. नवदेव कौन से हैं 346
13. जीव का स्वरूप 347
14. पुद्गल का स्वरूप 347
15. उपयोग के भेद 348
16. संसार परिभ्रमण का कारण 348
17. दुःख - सुख क्या 348
18. क्या बाह्य संयोग सुख, दुःख के कारण हैं 348
19. दुःख दूर करने के उपाय 349
20. सुखार्थी को क्या करना योग्य 349
21. सम्यग्दर्शन क्या एवं प्राप्त करने का उपाय 349
22. राग - द्वेष क्या 350
23. मोक्ष मार्ग में पुण्य और पाप दोनों हेय क्यों 350
24. निज ज्ञायक भगवान की महिमा 351

प्रतिक्रमण

1. श्रावक प्रतिक्रमण एवं सामायिक पाठ (अमितगति) 352 से 369
2. चौबीस तीर्थंकर वन्दना एवं महावीर वन्दना 370 से 374
3. निर्वाण काण्ड (भाषा) 375, 376
4. नीरव निर्झर (युगलजी) 377 से 379
5. बारह भावना (पं० जयचन्द) 380
6. वीतराग स्तोत्र, परमानन्द स्तोत्र, परमात्म स्वरूप 381 से 384
7. सर्वदोष प्रायश्चित विधि एवं जाप्य 384 से 387
8. श्री गौतम स्वामी विरचित दैवसिक प्रतिक्रमण 388 से 404
9. कुन्दकुन्द शतक (डॉ. भारिल्ल) एवं जिनवाणी महत्व 405 से 418
10. समाधिमरण पाठ (कविवर सूरचन्द्र) 419 से 426

अन्य :

1. जिनवाणी स्तुति एवं अमूल्य तत्त्व विचार 427, 428
2. तेरह पंथ के तेरह नियम 429
3. आचार्य कुन्द कुन्द महिमा एवं भगवान महावीर के तीन सिद्धांत 430

ॐ

।। शास्त्र–स्वाध्याय का प्रारम्भिक मंगलाचरण।।

ॐ नमः सिद्धेभ्यः, ॐ जय जय जय, नमोऽतु नमोऽस्तु

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।

ओकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमो नमः।।

अविरलशब्दघनौघप्रक्षालितसकलभूतलमलकलंकाः।
मुनिभिरुषासिततीर्था सरस्वती! हरतु नो दुरितान्।।

अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

श्री परमगुरवे नमः, परम्पराचार्यगुरवे नमः

सकलकलुषविध्वंसकं, श्रेयसां परिवर्धकं, धर्मसम्बन्धकं, भव्यजीवमनः प्रतिबोधकारकं, पुण्यप्रकाशकं, पापप्रणाशकमिदं शास्त्रं श्रीसंयमप्रकाशनामधेयम् अस्य मूलग्रन्थकर्तारः श्रीसर्वज्ञदेवास्तुदुत्तरग्रन्थकर्तारः श्रीगणधरदेवाः प्रतिगणधरदेवास्तेषां वचनानुसारमासाद्य आचार्यश्रीकुन्दकुन्दाम्नाये आचार्यधर्मभूषणेण विरचितम्।

श्रोतारः सावधानतया शृण्वन्तु

मङ्गलं भगवान् वीरो मङ्गलं गौतमो गणी।
मङ्गलं कुन्दकुन्दार्यो जैनधर्मोऽस्तु मङ्गलम्॥

सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं सर्वकल्याणकारकम्।
प्रधानं सर्वधर्माणां जैन जयतु शासनम्॥

एक (1)

वंदित्तु सव्व-सिद्धे धुवमचल-मणो-वमं गदिं पत्ते।
वोच्छामि समयपाहुड - मिणमो सुद - केवली - भणिदं॥

1. इस युग के धर्म प्रवर्तक पहले तीर्थंकर श्री आदिनाथ जी। (इनको ऋषभदेव अथवा वृषभ भी कहा जाता है)
2. पहले तीर्थंकर का चिन्ह वृषभ है।
3. मैं एक शुद्ध आत्मा हूँ। (द्रव्य दृष्टि से नो-कर्म, द्रव्य-कर्म, भाव-कर्म से रहित चैतन्य द्रव्य)
4. धर्म का मूल सिर्फ सम्यग्दर्शन है।
5. धर्म का स्वरूप केवल अहिंसामयी है।
6. केवलज्ञान वीतरागता स्वरूप एक है।
7. सिद्ध शिला एक है। (लोक के शिखर पर)
8. पशु में अष्टापद एक है।
9. मुक्ति एक संहनन **(वज्रवृषभ नाराच संहनन)** से होती है।
10. मुक्ति दिगम्बर अवस्था से ही होती है।
11. मुक्ति साधु अवस्था से यानी निर्ग्रन्थ मुनिराज को ही होती है।
12. तीर्थंकर अपनी माँ के एक ही होता है।
13. तीर्थंकर महावीर का समवसरण एक योजन का था।
14. तीर्थंकर धर्मनाथ का छद्मस्थ काल एक वर्ष था।
15. धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य एवं आकाश द्रव्य एक - एक हैं।
16. अस्तिअकाय द्रव्य एक - काल द्रव्य है।
17. मूर्तिक द्रव्य एक - पुद्गल द्रव्य है।
18. जम्बूद्वीप एक है (पहला द्वीप)।
19. जम्बूद्वीप में सुमेरु पर्वत एक है।
20. धातकी खण्ड द्वीप एक है (दूसरा द्वीप)।
21. पुष्कर द्वीप एक है (तीसरा द्वीप)।
22. नंदीश्वर द्वीप एक है (आठवाँ द्वीप)।
23. लवण समुद्र एक है (जम्बूद्वीप के बाद पहला सागर)।
24. कालोदधि समुद्र एक है (धातकी खण्ड के बाद दूसरा सागर)।
25. स्वयम्भू रमण समुद्र एक है (अन्त का समुद्र)।

26. सर्वार्थसिद्धि एक है।
27. केवलज्ञान एक है (यह ज्ञान पाँच ज्ञानों में अकेला ही होता है)।
28. आहारक शरीर एक है (यह भावलिंगी मुनि के ही हो सकता है)।
29. महास्कन्ध एक है।
30. त्रसनाली एक है।
31. कार्माण शरीर एक है।(कर्मबंधानरूप वर्गणाओं को कार्माण शरीर कहते हैं)
32. पहली प्रतिमा दर्शन प्रतिमा है (सम्यग्दर्शन सहित पाँचवा गुणस्थान व एकदेश चरित्र)।
33. पहले गुणस्थान में अनन्त जीव है।
34. पहला गुणस्थान 'मिथ्यात्व' गुणस्थान है।
35. चौदहवें गुणस्थान में आयु प्राण एक ही रह जाता है।
36. कैलाश पर्वत से आदिनाथ मोक्ष प्राप्त करने वाले एक ही तीर्थंकर हैं।
37. चम्पापुर से वासुपूज्य मोक्ष प्राप्त करने वाले एक ही तीर्थंकर हैं।
38. गिरनार से नेमिनाथ मोक्ष प्राप्त करने वाले एक ही तीर्थंकर हैं।
39. पावापुर से महावीर मोक्ष प्राप्त करने वाले एक ही तीर्थंकर हैं।
40. चार इन्द्रिय भ्रमर का शरीर एक योजन तक का होता है।
41. पंचेन्द्रिय बड़े मगर मच्छ का शरीर एक हजार योजन तक होता है।
42. छठे काल में एक हाथ का शरीर रह जाता है।
43. पहला स्वर्ग सौधर्म है।
44. नव अनुदिश की अवगाहना एक हाथ मात्र होती है।
45. सर्वार्थसिद्धि के देवों का एक हाथ का शरीर होता है।
46. व्यतंर देवों के इन्द्रों की आयु एक पल्य है।
47. नरक की पहली पृथ्वी रत्नप्रभा (धम्मा) है।
48. सातवें नरक में इन्द्रक बिल एक है।
49. असैनी जीव पहले नरक से आगे नहीं जाते।
50. महातम प्रभा में एक इन्द्रक बिल है। (सातवाँ नरक)
51. ॐ या ह्रीं एक अक्षर के शब्द हैं।
52. नाम कर्म का एक भेद निर्माण कर्म है।
53. नाम कर्म का एक भेद अगुरुलघु कर्म है।
54. नाम कर्म का एक भेद उपघात कर्म है।
55. नाम कर्म का एक भेद परघात कर्म है।

56. नाम कर्म का एक भेद आताप कर्म है।
57. नाम कर्म का एक भेद उद्योत कर्म है।
58. नाम कर्म का एक भेद उच्छ्वास है।
59. नाम कर्म का एक भेद त्रस है।
60. नाम कर्म का एक भेद स्थावर है।
61. नाम कर्म का एक भेद बादर है।
62. नाम कर्म का एक भेद सूक्ष्म है।
63. नाम कर्म का एक भेद पर्याप्त है।
64. नाम कर्म का एक भेद अपर्याप्त कर्म है।
65. नाम कर्म का एक भेद प्रत्येक नाम कर्म है।
66. नाम कर्म का एक भेद साधारण नाम कर्म है।
67. एक स्थिर नाम कर्म है- एक अस्थिर नाम कर्म है।
68. एक शुभ नाम कर्म है- एक अशुभ नाम कर्म है।
69. एक सुभग नाम कर्म है- एक दुर्भग नाम कर्म है।
70. एक सुस्वर नाम कर्म है- एक दु:स्वर नाम कर्म है।
71. एक आदेय नाम कर्म है- एक अनादेय नाम कर्म है।
72. एक यश: कीर्ति नाम कर्म है।
73. एक अयश: नाम कर्म है।
74. एक तीर्थंकर नाम कर्म है।
75. निश्चय प्रधान एक शास्त्र मुख्य रूप से समयसार है।
76. व्यवहार प्रधान एक शास्त्र मुख्य रूप से तत्वार्थ सूत्र है।
77. बारह अंगों में प्रथम आचारांग है।
78. पहला पूर्व उत्पाद पूर्व है (पूर्व चौदह होते हैं)।
79. समवशरण की पहली सभा दिगम्बर मुनियों की होती है।
80. प्रथम कुलकर प्रतिश्रुति हुए (इस युग के आदि में)।
81. इस युग में प्रथम आहार दान तीर्थंकर आदिनाथ मुनि को हस्तिनापुर के राजा श्रेयांस ने दिया था।
82. प्रथम भावना अनित्य (बारह भावना में) भावना है।
83. दर्शन विशुद्धि (16 भावनाओं में प्रथम) या सम्यग्दर्शन की विशुद्धि बिना तीर्थंकर प्रकृति का बंध नहीं होता, बाकी भावना में कमी हो सकती है, यह पहला गुण जरूरी है।

84. वर्तमान अवसर्पिणी काल में सर्वप्रथम मोक्ष जाने वाले अनन्तवीर्य भगवान हैं। (ऋषभनाथ के पुत्र थे और ये तीसरे काल में ही मोक्ष गये।)

85. एक मुहूर्त में केवलज्ञान पाने वाले प्रथम चक्रवर्ती भरत वर्तमान अवसर्पिणी काल में हुए।

86. पहला नारायण त्रिपृष्ठ हुआ है। (अवसर्पिणी काल)*

87. पहला प्रति नारायण अश्वग्रीव हुआ है। (अवसर्पिणी काल)*

88. पहला बलभद्र विजय हुआ। (अवसर्पिणी काल)*

89. पहला नारद भीम हुआ। (अवसर्पिणी काल)*

* यें चारों ही 11 वें तीर्थंकर श्रेयांसनाथ जी के तीर्थकाल में हुए।

90. पहला चक्रवर्ती भरत (प्रथम तीर्थंकर श्री आदिनाथ के समय में)।

91. पहला कामदेव बाहुबली।

92. भरत - ऐरावत क्षेत्र में वर्तमान अवसर्पिणी के प्रथम सुषमा - सुषमा काल में उत्तम भोग भूमि होती हैं।

सम्यक्त्व की महिमा

हे भव्य जीवो ! तुम इस सम्यग्दर्शन रूपी अमृत का पान करो। यह सम्यग्दर्शन अनुपम सुख का भण्डार है, सर्व कल्याण का बीज है और संसार-समुद्र से पार उतरने के लिये जहाज है। इसे एक मात्र भव्य जीव ही प्राप्त कर सकते हैं। पाप रूपी वृक्ष को काटने के लिये यह कुल्हाड़ी के समान है। पवित्र तीर्थों में यही एक पवित्र तीर्थ है और मिथ्यात्व का आत्यंतिक नाशक है। - **ज्ञानार्णव**

भव्यो ! किंचित् मात्र लोभ से व भय से कुदेवादिक का सेवन करके जिससे अनन्तकाल पर्यन्त महादुःख सहना होता है ऐसा मिथ्यात्व भाव करना योग्य नहीं है। जैन धर्म में तो यह आम्नाय है कि पहले बड़ा पाप छुड़ाकर फिर छोटा पाप छुड़ाया है, इसलिये इस मिथ्यात्व को सप्त व्यसनादिक से भी बड़ा पाप जानकर पहले छुड़ाया है। - **मोक्ष मार्ग प्रकाशक**

प्रारम्भ में सर्व प्रकार के प्रयत्न से सम्यग्दर्शन उत्तम रीति से अंगीकार करना चाहिये, क्योंकि सम्यग्दर्शन के होने पर ही ज्ञान और चारित्र सम्यक्पने को प्राप्त होते हैं। - **पुरुषार्थ सिद्धयुपाय**

दो (2)

1. (1) जीव, (2) पुद्गल। इन दो का ही बंधान संसार है।
2. दूसरे तीर्थंकर – श्री अजितनाथ जी।
3. दूसरे तीर्थंकर का चिन्ह – हाथी है।
4. 1. स्व 2. पर का भेद-विज्ञान होने पर ही सम्यग्दर्शन होता है।
5. 1. पाप, 2. पुण्य
6. द्रव्य के दो प्रकार हैं- 1. जीवद्रव्य, 2. अजीवद्रव्य
7. 1. हेय, 2. उपादेय के विवेक से ही जीव का कल्याण होता है।
8. जीव की 2 वैभाविक परिणति – 1. राग, 2 द्वेष।
9. जीव के दो भेद – 1. संसारी, 2. मुक्त (मोक्ष)
10. जीव के 2 भेद (भव्यता की अपेक्षा से) – 1. भव्य, 2. अभव्य।
11. संसारी जीव के दो भेद – 1. त्रस, 2. स्थावर।
12. परमात्मा के दो भेद – 1.सकल परमात्मा, 2.निकल परमात्मा।
13. परमात्मा के दो भेद – 1. कारण परमात्मा, 2. कार्य परमात्मा।
14. भगवान के दो भेद – 1. अरहंत, 2. सिद्ध।
15. संयम के दो भेद – 1. प्राणी संयम, 2. इन्द्रियसंयम।
16. संयम के दो भेद – 1. देशव्रत, 2. सकलव्रत।
17. उपशम सम्यक्त्व के 2 भेद – 1. प्रथमोपशम, 2. द्वितीयोपशम।
18. सम्यक्त्व के दो भेद – 1.सराग सम्यक्त्व, 2.वीतराग सम्यक्त्व।
19. मिथ्यात्व के दो भेद – 1.गृहीत मिथ्यात्व, 2.अगृहीत मिथ्यात्व।
20. ज्ञान के दो भेद – 1. मिथ्याज्ञान, 2. सम्यग्ज्ञान।
21. चारित्र के दो भेद – 1. सराग चारित्र, 2. वीतराग चारित्र।
22. आकाश द्रव्य के दो भेद – 1. लोकाकाश, 2. अलोकाकाश।
23. काल द्रव्य के दो भेद – 1. व्यवहार काल, 2. निश्चय काल।
24. आस्रव के दो भेद – 1. भाव आस्रव, 2. द्रव्य आस्रव।
    भाव आस्रव जीव के अशुद्ध परिणाम।
    द्रव्य आस्रव जड़ की परिणति है।
25. आस्रव के दो भेद – 1. शुभास्रव, 2. अशुभास्रव।
26. आस्रव के दो भेद – 1. साम्परायिक (कषाय सहित),
    2. ईर्यापथ (कषाय रहित)।

27. बन्ध के 2 भेद – 1. शुभ बन्ध, 2. अशुभ बन्ध।
28. बन्ध के 2 भेद – 1. भाव बन्ध, 2. द्रव्य बन्ध।
29. संवर के 2 भेद – 1. भाव संवर, 2. द्रव्य संवर।
30. निर्जरा के 2 भेद – 1. भाव निर्जरा, 2. द्रव्य निर्जरा।
31. निर्जरा के 2 भेद – 1.सविपाक निर्जरा, 2.अविपाक निर्जरा।
(अविपाक निर्जरा ही कल्याणकारक है)।
32. मोक्ष के 2 भेद – 1. भाव मोक्ष, 2. द्रव्य मोक्ष।
33. पुण्य के 2 भेद – 1. भाव पुण्य, 2. द्रव्य पुण्य।
34. पाप के 2 भेद – 1. भाव पाप, 2. द्रव्य पाप।
35. उपयोग के 2 भेद – 1. शुद्ध उपयोग, 2. अशुद्ध उपयोग।
36. अशुद्ध उपयोग के 2 भेद – 1. शुभ उपयोग, 2. अशुभ उपयोग।
37. उपयोग के 2 भेद – 1. साकार, 2. निराकार।
38. उपयोग के 2 भेद – 1. दर्शनोपयोग, 2. ज्ञानोपयोग।
39. मनुष्य के 2 भेद – 1. आर्य, 2. मलेच्छ।
40. कर्मों की मूल प्रकृति दो प्रकार की–1.स्वमुख प्रकृति,2.परमुख प्रकृति
41. पुद्गल की 2 भेद पर्याय – 1. स्थूल, 2. सूक्ष्म।
42. मोहनीय कर्म के 2 भेद – 1. दर्शन मोह, 2. चारित्र मोह।
43. वेदनीय कर्म के 2 भेद – 1. साता वेदनीय, 2. असाता वेदनीय।
44. गोत्र कर्म के 2 भेद – 1. उच्च गोत्र कर्म, 2. नीच गोत्र कर्म।
45. हिंसा के 2 भेद – 1. द्रव्य हिंसा, 2. भाव हिंसा।
46. भाव हिंसा के 2 भेद–1. स्वभावी भाव हिंसा, 2. विभावी भाव हिंसा।
47. द्रव्य हिंसा के 2 भेद–1. स्वभावी द्रव्य हिंसा, 2. विभावी द्रव्य हिंसा।
48. नय के 2 भेद – 1. व्यवहार नय, 2. निश्चय नय।
49. दर्शन के 2 भेद – 1. मिथ्यादर्शन, 2. सम्यग्दर्शन।
50. चारित्र के 2 भेद – 1. मिथ्या चारित्र, 2. सम्यक्चारित्र।
51. निगोद दो प्रकार के – 1. नित्य निगोद, 2. इतर निगोद।
52. श्रेणी के दो प्रकार – 1. क्षपक श्रेणी, 2. उपशम श्रेणी।
53. दूसरा गुणस्थान – सासादन गुणस्थान।
54. सासादन गुणस्थान का एक ही मार्ग –
दूसरे गुणस्थान से जीव मिथ्यात्व गुणस्थान में ही आता है।
55. दूसरे गुणस्थान में बावन (52) करोड़ मनुष्य हैं।

56. सातवें गुणस्थान के 2 भेद – 1. स्वस्थान, 2. सातिशय।
57. सम्यक्त्व की उत्पत्ति के दो प्रकार– 1. निसर्गज, 2. अधिगमज।
58. श्रुत के 2 भेद – 1. द्रव्य, 2. भाव।
59. चेतना के 2 भेद – 1. दर्शन चेतना,2. ज्ञान चेतना।
60. आत्मा के 2 भाव – 1. स्वाभाविक, 2. वैभाविक।
61. प्रमाण के दो प्रकार – 1. प्रत्यक्ष, 2. परोक्ष।
62. प्रत्यक्ष प्रमाण के 2 भेद–1.सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष, 2.पारमार्थिक प्रत्यक्ष
63. परोक्ष प्रमाण ज्ञान के 2 भेद – 1. मतिज्ञान, 2. श्रुत ज्ञान।
64. प्रत्यक्ष प्रमाण ज्ञान के 2 भेद – 1. विकल प्रत्यक्ष, 2. सकल प्रत्यक्ष।
65. विकल प्रत्यक्ष ज्ञान के 2 भेद – 1.अवधिज्ञान,2.मन:पर्यय ज्ञान।
66. मति ज्ञान के 2 भेद – 1.सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष,2.परोक्ष।
67. मति ज्ञान के विषयभूत पदार्थ – 1. व्यक्त, 2. अव्यक्त।
68. श्रुत ज्ञान के 2 भेद – 1. अंग बाह्य, 2. अंग प्रविष्ट।
अथवा 1.अक्षरात्मक, 2.अनक्षरात्मक।
69. मन:पर्यय ज्ञान के 2 भेद – 1. ऋजुमति, 2. विपुलमति।
70. अवधिज्ञान के 2 भेद – 1. भवप्रत्यय, 2. गुणप्रत्यय।
71. पारमार्थिक प्रत्यक्ष के 2 भेद – 1. विकल पारमार्थिक,
2. सकल पारमार्थिक।
72. विकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष के 2 भेद– 1.अवधिज्ञान, 2.मन:पर्ययज्ञान।
73. आहारक के 2 भेद – 1. आहारक, 2. अनाहारक।
74. 1. विग्रह गति, 2. अविग्रह गति (पहली पर्याय छोड़ने के बाद दूसरी पर्याय धारण करने से पहले जीव की बीच की दशा)।
75. अविग्रह गति के 2 भेद – 1. मुक्त जीव, 2. संसारी जीव।
76. उपपाद जन्म के 2 प्रकार – 1. देवों का, 2. नारकियों का।
77. गर्भ, सम्मूर्छन के 2 प्रकार – 1. मनुष्यों का, 2. तिर्यंचों का।
78. दो गुण परमाणु में अधिक होने से बन्ध होता है।
79. वस्तु के यथार्थ सिद्धी के उपाय – 1. मुख्य, 2. गौण।
80. पर्याय दो – 1. अर्थ पर्याय, 2. व्यंजन पर्याय।
81. अर्थ पर्याय दो – 1. स्वभावी अर्थ पर्याय, 2. विभावी अर्थ पर्याय।
82. व्यंजन पर्याय दो – 1.स्वभावी व्यंजन पर्याय, 2. विभावी व्यंजन पर्याय।
83. 1. ज्ञेय, 2. ज्ञायक।

84. 1. भाव्य, 2. भावक।
85. 1. मेचक, 2. अमेचक।
86. 1. प्रतिबुद्ध, 2. अप्रतिबुद्ध।
87. 1. वेद्य, 2. वेदक।
88. गन्ध दो – सुगन्ध, दुर्गन्ध।
89. द्रव्य इन्द्रिय के दो भेद – 1. निवृत्ति, 2. उपकरण।
90. भाव इन्द्रिय के दो भेद – 1. लब्धि, 2. उपयोग।
91. 1. आगम पद्धति, 2. अध्यात्म पद्धति।
92. पर्याय के दो भेद – 1. सहभावी, 2. क्रमभावी।
93. विकलत्रय जीव की दो – दो लाख योनि होती हैं।
(दो इन्द्रिय से चार इन्द्रिय तक के जीव विकलत्रय कहलाते हैं)।
94. दूसरी प्रतिमा – व्रत प्रतिमा।
95. द्रव्य में दो प्रकार के गुण – 1. सामान्य गुण, 2. विशेष गुण।
96. वनस्पति के दो भेद – 1. प्रत्येक, 2. साधारण।
97. प्रत्येक वनस्पति के दो भेद – 1. सप्रतिष्ठित, 2. अप्रतिष्ठित।
98. जीव के दो भेद – 1. सूक्ष्म, 2. बादर।
99. भव्य मार्गणा के दो भेद – 1. भव्य, 2. अभव्य।
100. नारकियों के दो भेद – 1. पर्याप्तक, 2. निर्वृत्यपर्याप्तक।
101. देवों के दो भेद – 1. पर्याप्तक, 2. निवृत्यपर्याप्तक।
102. वैमानिक देवों के दो भेद – 1. कल्पोपन्न, 2. कल्पातीत।
103. काम इन्द्रिय दो – 1. स्पर्शन, 2. रसना।
104. तीर्थंकर अनंतनाथ का छद्मस्थ काल – दो वर्ष।
105. दो चक्रवर्ती नरक गये – 1. ब्रम्हदत्त, 2. सुभौम।
106. दो चक्रवर्ती स्वर्ग गये – 1. सनत कुमार, 2. मघवा।
107. दो तीर्थंकरों का लाल वर्ण – 1. पद्मप्रभ, 2. वासुपूज्य।
108. दो तीर्थंकरों का श्वेत वर्ण – 1. चन्द्रप्रभ, 2. पुष्पदंत।
109. दो तीर्थंकरों का नील वर्ण – 1. सुपार्श्वनाथ, 2. पार्श्वनाथ।
110. दो तीर्थंकरों का श्याम वर्ण – 1. मुनिसुव्रतनाथ, 2. नमिनाथ।
111. आदिनाथ भगवान के 2 नाम– 1. ऋषभदेव, 2. आदिनाथ।
112. पुष्पदन्त भगवान के 2 नाम – 1. सुविधिनाथ, 2. पुष्पदन्त।
113. सबसे प्रथम ग्रन्थ के रचयिता– 1. पुष्पदंत, 2. भूतबली।
114. ग्रैवेयिक के मध्य में अवगाहना – दो हाथ।

115. दूसरे नरक तक सरीसृप (रेंगने वाले जन्तु) जा सकते हैं।
116. नर, तिर्यंच - पंचेन्द्रिय ही स्वर्ग जा सकते हैं।
117. जीव दूसरे स्वर्ग से चयकर (निकलकर) स्थावर बन सकता है।
118. तीर्थंकर का जीव नरक अथवा स्वर्ग से ही आता है।
119. तीर्थंकर के दो कल्याणक - 1. ज्ञान, 2. निर्वाण।
120. तैजस शरीर के दो भेद - 1. भिन्न तैजस, 2. अभिन्न तैजस।
121. भिन्न तैजस के दो भेद - 1. शुभ तैजस, 2. अशुभ तैजस।
122. हिंसा का त्याग - अहिंसा
123. असत्य का त्याग - सत्य
124. चौर्य का त्याग - अचौर्य
125. अब्रम्हचर्य (कुशील) का त्याग- ब्रम्हचर्य
126. परिग्रह का त्याग - अपरिग्रह।
127. आलोचना के 2 भेद - 1. सामान्य आलोचना, 2. विशेष आलोचना।
128. सल्लेखना के 2 भेद - 1. कषाय सल्लेखना, 2. काय सल्लेखना।
129. स्निग्ध रूक्ष से बन्ध होता है।
130. 1. उपादान, 2. निमित्त।
131. 1. निमित्त, 2. नैमित्तिक।
132. प्राण के 2 भेद - 1. द्रव्य प्राण, 2. भाव प्राण।
133. परमाणु - 1. कारण रूप, 2. कार्य रूप।
134. सिद्ध में दो अक्षर हैं।
135. नाम कर्म की दो विहायोगति- 1. मनोज्ञ, 2. अमनोज्ञ।
136. औपशमिक भाव के दो भेद- 1. सम्यक्त्व भाव, 2. चारित्र भाव।
137. विक्रिया ऋद्धि के दो भेद - 1. आकाशगामित्व, 2. चारणत्व।
138. क्षेत्र ऋद्धि के 2 भेद - 1. अक्षीण महानसिक, 2. अक्षीण महालय।
139. किन्नर के दो इन्द्र - 1. किंपुरुष, 2. किन्नर।
140. किंपुरुष की दो अग्रदेवियाँ - 1. अवंतसा, 2. केतुमती।
141. किन्नर की दो अग्रदेवियाँ - 1. रतिषेणा, 2. रतिप्रिया।
142. किंपुरुष के दो इन्द्र - 1. सत्यपुरुष,2. महापुरुष।
143. सत्यपुरुष इन्द्र की दो देवियाँ - 1. रोहिणी, 2. नवमी।
144. महापुरुष इन्द्र की दो देवियाँ - 1. ह्रीं, 2. पुष्पवती।
145. महोरगों में दो इन्द्र - 1. महाकाय, 2. अतिकाय।

146. महाकाय की दो देवियाँ – 1. भोगा, 2. भोगवती।
147. अतिकाय की दो देवियाँ – 1. अनिंदिता, 2. पुष्पगंधी।
148. गन्धर्व जाति के देवों के दो इन्द्र – 1. गीतरति, 2. गीतरस।
149. गीतरति की दो अग्रदेवियाँ – 1. सरस्वती, 2. स्वरसेना।
150. गीतरस की दो अग्रदेवियाँ – 1. नंदिनी, 2. प्रियदर्शना।
151. यक्षों के दो इन्द्र – 1. मणिभद्र, 2. पूर्णभद्र।
152. मणिभद्र की दो देवियाँ – 1. कुंदा, 2. बहुपुत्र।
153. पूर्णभद्र की दो देवियाँ – 1. तारा, 2. उत्तमा।
154. राक्षसों के दो इन्द्र – 1. भीम, 2. महाभीम।
155. भीम की दो देवियाँ – 1. पद्मा, 2. वसुमित्र।
156. महाभीम की दो देवियाँ – 1. रत्नाढ़या, 2. कंचनप्रभा।
157. भूतों के दो इन्द्र – 1. सुरूप, 2. प्रतिरूप।
158. सुरूप की दो देवियाँ – 1. रूपवती, 2. बहुरूपा।
159. प्रतिरूप की दो देवियाँ – 1. सुमुखी, 2. सुसीमा।
160. पिशाचों के दो इन्द्र – 1. काल, 2. महाकाल।
161. काल की दो देवियाँ – 1. कमला, 2. कमलप्रभा।
162. महाकाल की दो देवियाँ – 1. उत्पला, 2. सुदर्शन।
163. ज्योतिषों के दो इन्द्र – 1. चन्द्रमा, 2. सूर्य।
164. भवनवासी देवों में असुर कुमार के दो इन्द्र –
1. चमर दक्षिणेन्द्र, 2. वैरोचन उत्तरेन्द्र।
165. नाग कुमार के दो इन्द्र– 1. भूतानन्द दक्षिणेन्द्र, 2.धरणानन्द उत्तरेन्द्र।
166. सुपर्ण कुमार के दो इन्द्र–1. वेणु दक्षिणेन्द्र, 2. वेणुधारी उत्तरेन्द्र।
167. द्वीप कुमार के दो इन्द्र – 1. पूर्ण, 2. वशिष्ट।
168. उदधि कुमार के दो इन्द्र – 1. जलप्रभ, 2.जलकान्त।
169. स्तनित कुमार के दो इन्द्र – 1. घोष, 2. महाघोष।
170. विद्युत कुमार के दो इन्द्र – 1. हरिषेण, 2. हरिकान्त।
171. दिक् कुमार के दो इन्द्र – 1. अमितगति, 2. अमितवाहन।
172. अग्नि कुमार के दो इन्द्र – 1. अग्निशिखी,2. अग्निवाहन।
173. वायु कुमार के दो इन्द्र – 1. वेलम्ब, 2. प्रभंजन।
174. पूजा के दो प्रकार – 1. द्रव्य पूजा, 2. भाव पूजा।
175. म्लेच्छ के दो भेद – 1. अन्तर्द्वीपज, 2. कर्मभूमिज।

176. दूसरा आहार दान तीर्थंकर को दिया ब्रम्हदत्त ने।
177. दूसरा स्वर्ग – ऐशान स्वर्ग, उत्कृष्ट आयु 2 सागर।
178. दूसरा नरक – शर्कराप्रभा (वंशा)।
179. दूसरा चक्रवर्ती – सगर (तीर्थंकर अजितनाथ के समय में)।
180. दूसरा नारायण – द्विपृष्ठ (तीर्थंकर वासुपूज्य के समय में)।
181. दूसरा बलभद्र – अचल (तीर्थंकर वासुपूज्य के समय में)।
182. दूसरा प्रतिनारायण – तारक (तीर्थंकर वासुपूज्य के समय में)।
183. दूसरा नारद – महाभीम
184. दूसरा रूद्र – जितशत्रु
185. दूसरा कुलकर – सन्मति
186. दूसरा कामदेव – प्रजापति
187. दूसरा अंग (बारह अंगों में) सूत्रकृतांग।
188. दूसरा पूर्व (चौदह पूर्वों में) अग्रायणी पूर्व।
189. दूसरी सभा में कल्पवासी देवियाँ समवसरण में।
190. दो भूमियाँ – 1. भोगभूमि, 2. कर्मभूमि।
191. भोगभूमि के 2 भेद – 1. सुभोगभूमि, 2. कुभोगभूमि।
192. जम्बूद्वीप में दो सूर्य, दो चन्द्रमा।
193. जम्बूद्वीप में भरत क्षेत्र से विदेह क्षेत्र तक दूना-दूना विस्तार।
194. धातकीखंड पुष्करद्वीप के दो-दो सुमेरु पर्वत (84,000 योजन ऊँचे)।
195. जम्बूद्वीप से लेकर लवण समुद्र आदि द्वीप-समुद्रों का विस्तार – जम्बूद्वीप से दुगुना-दुगुना।
196. स्वभाव दो प्रकार के – 1. सामान्य, 2. विशेष।
197. द्रव्यार्थिक नय के पहले 2 मूल भेद-1.शुद्ध द्रव्यार्थिक,2.अशुद्ध द्रव्यार्थिक।
198. काल के दो भेद – 1. उत्सर्पिणी, 2. अवसर्पिणी।
199. काल के 2 भेद – 1. व्यवहार काल, 2. निश्चय काल।
200. सुखमा – दुखमाकाल दो कोड़ा कोड़ी सागर का।
201. कुन्दकुन्द आचार्य के दो गुरु –
    1. दीक्षा गुरु – श्री जिनचन्द्र, 2. शिक्षा गुरु – श्री कुमार नन्दी।
202. श्वेताम्बर से दिगम्बर बने 2 महान आचार्य –
    1. आचार्य मानतुंग – भक्तामर स्तोत्र के रचयिता
    2. आचार्य हेमचन्द्र – वीतराग स्तोत्र के रचयिता

203. पंडित के 2 भेद – 1. लोभार्थी, 2. धर्मार्थी।
204. दिगम्बर मुनि के 2 भेद – 1. जिनकल्पी, 2. स्थविरकल्पी।
205. एकान्त के 2 भेद – 1. सम्यक्एकान्त, 2. मिथ्याएकान्त।
206. शल्य के 2 प्रकार – 1. द्रव्य शल्य, 2. भाव शल्य।
207. वीतराग छद्मस्थ के 2 भेद – 1. उपशान्त कषाय, 2. क्षीणकषाय।
208. जिन के दो भेद – 1. सयोगकेवली जिन, 2. अयोगकेवली जिन।
209. जिन के दो भेद – 1. देश जिन, 2. सकल जिन।
210. अपवाद – पूर्ण त्याग में असमर्थ, उत्सर्ग – पूर्ण त्याग में समर्थ।
211. सम्यग्दृष्टि व मिथ्यादृष्टि में अन्तर –
सम्यग्दृष्टि – जैसे हिरन कोमल घास खाता है, चुटकी की आवाज में ही भाग जाता है।
मिथ्यादृष्टि – जैसे बिल्ली चूहे को पकड़ती है, उपसर्ग आने पर भी चूहे को नहीं छोड़ती।
212. द्रव्य भेद – राग, द्वेष (व्यवहार)
द्रव्य अभेद – वीतरागता, मोक्षमार्ग (निश्चय)
213. सत्ता के 2 भेद – महासत्ता, अवान्तर सत्ता।
1. महासत्ता – सामान्य को महासत्ता कहते हैं।
2. अवान्तर सत्ता – विशेष को अवान्तर सत्ता कहते हैं।
214. द्रव्य पर्याय – व्यंजन पर्याय; गुण पर्याय – अर्थ पर्याय।
215. सहभावी – गुण, अन्वय; क्रमभावी – पर्याय, व्यतिरेक।
216. **व्यतिरेकी** अनेक को तथा **अन्वय** भिन्न-भिन्न को कहते हैं।
(जो अनेक होकर एक है उसे **अन्वयी** कहते हैं।)
217. तीर्थ के 2 भेद – द्रव्य तीर्थ, भाव तीर्थ।
218. 'त्याग' और 'दान' में अन्तर –
दान – पुण्य है। त्याग – धर्म है।
दानी – अभिनन्दित होता है। त्यागी – अभिवन्दित होता है।
दान – पर के निमित्त। त्याग – स्व के निमित्त।
219. संस्कृत भाषा के 2 भेद – 1. वैदिक संस्कृत, 2. लौकिक संस्कृत।
220. भारतीय संस्कृति के 2 भेद – 1. श्रमण संस्कृति, 2. वैदिक संस्कृति।

卐 卐 卐 卐 卐

तीन (3)

1. तीसरे तीर्थंकर **श्री सम्भवनाथ जी**।
2. तीसरे तीर्थंकर का चिन्ह **घोड़ा** है।
3. रत्नत्रय / सम्यक्त्व के तीन प्रकार –
   1. सम्यग्दर्शन, 2. सम्यग्ज्ञान, 3. सम्यक्चारित्र।
4. मिथ्यात्व तीन – 1. मिथ्यादर्शन, 2. मिथ्याज्ञान, 3. मिथ्याचारित्र।
5. योग तीन – 1. मन, 2. वचन, 3. काय।
6. गुप्ति तीन – 1. मनोगुप्ति, 2. वचनगुप्ति, 3. कायगुप्ति।
7. लोक तीन – 1. अधोलोक, 2. मध्यलोक, 3. ऊर्ध्वलोक।
8. पदार्थ तीन प्रकार के – 1. ज्ञेय, 2. हेय, 3. उपादेय; अर्थात् – जानने योग्य, छोड़ने योग्य, ग्रहण करने योग्य।
9. कुज्ञान तीन – 1. कुमति, 2. कुश्रुत, 3. कुअवधि।
10. अवधिज्ञान तीन – 1. देशावधि, 2. सर्वावधि, 3. परमावधि।
11. दिगम्बर तीन – 1. तेरह पंथी, 2. बीसपंथी, 3. तारणपंथी।
12. श्वेताम्बर तीन – 1. मंदिर पंथी, 2. स्थानकपंथी, 3. तेरहपंथी।
13. काल तीन – 1. भूतकाल, 2. भविष्यकाल, 3. वर्तमान काल।
14. संसारी लिंग तीन – 1. पुल्लिंग, 2. स्त्रिलिंग, 3. नपुंसक लिंग।
15. सामायिक तीन समय – 1. सुबह, 2. दोपहर, 3. शाम।
16. तीसरी प्रतिमा – सामायिक प्रतिमा।
17. पात्र तीन – 1. उत्तम, 2. मध्यम, 3. जघन्य।
18. साधु के तीन भेद – 1. उत्तम– मुनि, 2. मध्यम– ऐलक, आर्यिका, 3. जघन्य– क्षुल्लक, क्षुल्लिका।
19. शाश्वत भोगभूमियाँ तीन –
    1. उत्तम भोगभूमि – देवकुरु – उत्तर कुरु
    2. मध्यम भोगभूमि – हरि – रम्यक
    3. जघन्य भोगभूमि – हैमवत – हैरण्यवत
20. भवनत्रिक के तीन प्रकार – 1. भवनवासी, 2. व्यंतर, 3. ज्योतिषी।
21. वातवलय तीन–1.घनोदधि वातवलय,2.घनवातवलय,3.तनुवातवलय।

22. तीर्थंकर, कामदेव, चक्रवर्ती तीन पद के धारी –
1. शान्तिनाथजी, 2. कुन्थुनाथजी, 3. अरनाथजी।
23. तीर्थंकर तीन प्रकार के कल्याणक वाले होते हैं –
1. पाँच कल्याणक, 2. तीन कल्याणक, 3. दो कल्याणक।
24. तीर्थंकर के तीन कल्याणक – 1.तप, 2.ज्ञान, 3.निर्वाण(विदेह क्षेत्र में)
25. तीन तीर्थंकर पद्मासन से मोक्ष गये –
1. ऋषभदेव, 2. वासुपूज्य, 3. नेमिनाथ।
26. हस्तिनापुर में तीन तीर्थंकर के कल्याणक –
1. शान्तिनाथ, 2. कुन्थुनाथ, 3. अरनाथ।
27. तीर्थंकर महावीर के बाद तीन अनुबद्ध केवली –
1. गौतम गणधर, 2. सुधर्माचार्य, 3. जम्बूस्वामी।
28. विमलनाथ भगवान का छद्मस्थ काल – तीन वर्ष।
29. तीर्थंकर शीतलनाथ का छद्मस्थ काल – तीन वर्ष।
30. तीर्थंकर चन्द्रप्रभ का छद्मस्थ काल – तीन मास।
31. आत्मा की अवस्थायें तीन – 1. अन्तरात्मा, 2. बहिरात्मा, 3.परमात्मा।
32. आत्मा की विशेषतायें तीन – 1. द्रव्य, 2. गुण, 3. पर्याय।
33. तीन उपयोग – 1. अशुभ उपयोग, 2. शुभ उपयोग, 3. शुद्ध उपयोग।
34. सम्यक्त्व तीन –
1.औपशमिक सम्यक्त्व, 2.क्षायोपशमिक सम्यक्त्व, 3.क्षायिक सम्यक्त्व।
35. पारिमाणिक भाव तीन – 1. जीवत्व, 2. भव्यत्व, 3. अभव्यत्व।
36. जन्म के तीन प्रकार – 1. गर्भजन्म, 2. उपपादजन्म, 3. सम्मूर्छनजन्म।
37. गर्भजन्म के तीन प्रकार – 1. जरायुज, 2. अण्डज, 3. पोत।
38. कर्मभूमि क्षेत्र तीन – 1. भरत, 2. ऐरावत, 3. विदेह।
39. द्रव्य – 1. उत्पाद, 2. व्यय, 3. ध्रौव्य इन तीन से युक्त होता है।
40. 1. समरम्भ, 2. समारम्भ, 3. आरम्भ।
41. 1. कृत, 2. कारित, 3. अनुमोदना।
42. 1. मन, 2. वचन, 3. काय।
43. गुणव्रत तीन – 1. दिग्व्रत, 2. देशव्रत, 3. अनर्थदण्डत्यागव्रत।
44. सच्चे पूज्य केवल तीन – 1. देव, 2. शास्त्र, 3. गुरु।
45. आप्त के गुण तीन – 1. वीतरागी, 2. सर्वज्ञ, 3. हितोपदेशी।
46. मूढ़ता तीन – 1.देवमूढ़ता, 2.गुरुमूढ़ता, 3.लोकमूढ़ता।

47. साधु के उपकरण तीन –1. पिच्छी, 2. कमण्डलू, 3. शास्त्र।
48. चेतना के 3 प्रकार – 1.कर्म चेतना, 2.कर्मफल चेतना, 3.ज्ञान चेतना।
49. देश अवधि ज्ञान तीन –
    1. उत्तम देशावधि, 2. मध्यम देशावधि, 3. जघन्य देशावधि।
50. दर्शन मोहनीय तीन – 1.मिथ्यात्व, 2.सम्यग्मिथ्यात्व, 3.सम्यग्प्रकृति।
51. सल्लेखना तीन – 1.भक्त प्रत्याख्यान, 2.इंगिनी मरण, 3.प्रायोपगमन।
52. शल्य के 3 प्रकार – 1. माया, 2. मिथ्या, 3. निदान।
53. कर्म के 3 भेद – 1. द्रव्यकर्म, 2. भावकर्म, 3. नोकर्म।
54. भोजन तीन – 1. सात्विक, 2. राजसिक, 3. तामसिक।
55. बल तीन – 1. मनोबल, 2. वचनबल, 3. कायबल।
56. गारव तीन – 1. रस गारव, 2. ऋद्धि गारव, 3. सात गारव।
57. शुद्ध निश्चयनय के तीन भेद –
    1.परम शुद्ध निश्चयनय, 2.पूर्णशुद्ध निश्चयनय,3.एकदेशशुद्ध निश्चयनय।
58. इन तीन समुद्रों में जलचर जीव होते हैं –
    1. स्वयंभू रमण समुद्र, 2. लवण समुद्र, 3. कालोदधि समुद्र।
59. संसारी जीव के तीन प्रकार –
    1. लब्ध्यपर्याप्तक, 2. निर्वृत्यपर्याप्तक, 3. पर्याप्तक।
60. अग्निकायिक की उत्कृष्ट आयु – तीन दिन।
61. पाँच इन्द्रिय तिर्यंच जीव की उत्कृष्ट आयु – तीन पल्य।
62. तेजकाय के तीन लाख कोटि कुल।
63. तीसरा गुणस्थान मिश्र गुणस्थान है।
64. तीसरे गुणस्थान में 104 करोड़ मनुष्य हैं।
65. 15 वें व 16 वें स्वर्ग के देवों की अवगाहना तीन हाथ होती है।
66. तीसरे नरक का नाम बालुकाप्रभा (मेघा) है।
67. दूसरे नरक के जीव की उत्कृष्ट आयु तीन सागर है।
68. तीन इन्द्रिय कानखजूरे की उत्कृष्ट अवगाहना तीन कोस है।
69. पक्षी तीसरे नरक तक जा सकता है।
70. तीसरे नरक का जीव निकलकर तीर्थंकर तक हो सकता है।
71. पाँचवें नरक में कुल बिल 3 लाख –
    265 इन्द्रक; 2,99,735 प्रकीर्णक बिल।
72. रत्नप्रभा भूमि के तीन भाग–1.खरभाग, 2.पंकभाग, 3.अब्बहुल भाग।

73. तम: प्रभा के तीन इन्द्रक।
74. णमो अरिहंताणं के तीन भेद –
1. अरिहंताणं, 2. अरहंताणं, 3. अरुहंताणं।
75. जाप तीन प्रकार – 1. मानसिक, 2. वाचनिक, 3. उपान्सु।
76. जाप विधि तीन प्रकार –
1.कमल जाप्य, 2.हस्ताँगुलि जाप्य, 3.माला जाप्य।
77. भोग इन्द्रियाँ तीन– 1. घ्राण, 2 चक्षु, 3. कर्ण।
78. वस्तु को जानने के तीन साधन – 1. प्रमाण, 2. नय, 3. निक्षेप।
79. लक्षण के तीन दोष – 1. अव्याप्ति, 2. अतिव्याप्ति, 3. असंभव।
80. करण लब्धि के तीन भेद –
1. अध:करण, 2. अपूर्वकरण, 3. अनिवृत्तिकरण।
81. आत्मा के तीन प्रकार के परिणाम –
1. संक्लेश (तीव्र कषाय रूप)
2. विशुद्ध (मन्दकषाय रूप)।
3. शुद्ध (कषाय रहित)।
82. विमान तीन प्रकार के – 1. इन्द्रक, 2. श्रेणीबद्ध, 3. प्रकीर्णक।
83. पंच अग्नि तप तपने वाला इन तीन गतियों में से एक में जाता है –
1. भवनवासी, 2. व्यंतर, 3. ज्योतिषी।
84. उपवास के तीन भेद – 1. उत्तम, 2. मध्यम, 3. जघन्य।
85. मिथ्याज्ञान तीन– 1.संशय, 2.विपर्यय, 3. अनिश्चय (अनध्यवसाय)।
86. श्रावक के तीन भेद – 1. पाक्षिक, 2. नैष्ठिक, 3. साधक।
87. तीन अंगोपांग – 1. औदारिक, 2. वैक्रियिक, 3. आहारक।
88. अनन्त तीन प्रकार – 1.परीतानन्त, 2.युक्तानन्त, 3. अनन्तानन्त।
89. बल ऋद्धि के तीन भेद– 1. मन, 2. वचन, 3. काय।
90. पात्र के तीन भेद – 1.सुपात्र, 2. कुपात्र, 3. अपात्र।
91. सुपात्र के तीन भेद – 1. उत्तम, 2. मध्यम, 3. जघन्य।
92. उत्तम पात्र के तीन भेद –
1. उत्तम : तीर्थंकर मुनि,
2. मध्यम : गणधर ऋद्धिधारी मुनि,
3. जघन्य : सामान्य भावलिंगी मुनि।
93. मध्यम पात्र के तीन भेद – 1. ऐल्लक, 2. क्षुल्लक, 3. प्रतिमाधारी।

94. जघन्य पात्र के तीन भेद –

1. उत्तम	:	क्षायिक सम्यग्दृष्टि,
2. मध्यम	:	औपशमिक सम्यग्दृष्टि,
3. जघन्य	:	क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि।

95. कुपात्र के तीन भेद –

1. उत्तम	:	द्रव्यलिंगी मुनि,
2. मध्यम	:	द्रव्यलिंगी अणुव्रती,
3. जघन्य	:	अगृहीत मिथ्यादृष्टि।

96. अपात्र के तीन भेद –

1. उत्तम	:	परिग्रहधारी मुनि,
2. मध्यम	:	भाव और चरित्र से हीन गृहस्थ,
3. जघन्य	:	गृहीत और अगृहीत मिथ्यात्व सहित।

97. भव्य तीन – 1. निकट भव्य, 2. दूर भव्य, 3. दूरन्दूर भव्य।

98. तीन बल – 1. मनोबल, 2. वचनबल, 3. कायबल।

99. समवसरण की तीसरी सभा आर्यिकाओं की होती है।

100. तीसरा पूर्व वीर्यानुवाद पूर्व।

101. तीसरा अंग स्थानांग है।

102. प्राणायाम के तीन अंग होते हैं – 1. पूरक, 2. कुम्भक, 3. रेचक।

103. पल्य के तीन भेद – 1. व्यवहार पल्य, 2. उद्धार पल्य, 3. अद्धापल्य।

104. अवसर्पिणी व उत्सर्पिणी के सुषमा काल का प्रमाण 3 कोड़ा – कोड़ी सागर होता है।

105. तीसरा कुलकर क्षेमंकर।

106. तीसरा चक्रवर्ती मघवा है।

107. तीसरा कामदेव श्रीधर है।

108. तीसरा नारायण स्वयंभू है।

109. तीसरा बलभद्र धर्म है।

110. तीसरा प्रतिनारायण मेरक है।

111. तीसरा नारद रुद्र है।

112. तिर्यंच के तीन भेद –

1. स्थावर (एकेन्द्रिय जीव),
2. विकलत्रय (दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय व चार इन्द्रिय जीव),
3. पंचेन्द्रिय तिर्यंच (संज्ञी व असंज्ञी जीव)।

113. त्रिवर्ग – निक्षेप, नय और प्रमाण मय तर्क या युक्ति रूप प्रथम वर्ग है; छह द्रव्यों का निरूपक प्रवचन या आगम रूप दूसरा वर्ग है और शुद्ध अध्यात्म रूप तीसरा वर्ग है।

114. अँगुल तीन प्रकार – 1. उत्सेधांगुल, 2. प्रमाणांगुल, 3. आत्मांगुल।

115. असंख्यात तीन प्रकार –
1. परीतासंख्यात, 2. युक्तासंख्यात, 3. असंख्यातासंख्यात।

116. तीन उत्तम पुरुष – 1. जिन, 2. जिनवर, 3. जिनवरवृषभ।

117. तीसरे (मिश्र) गुणस्थान का मार्ग –
तीसरे गुणस्थान से यदि जीव ऊपर चढ़ता है तो चौथे गुणस्थान में जाता है और यदि नीचे गिरता है तो पहिले गुणस्थान में आता है।

118. गतियों के त्रिभंगी –
1. देव, नारकी जीव आयु के छह मास शेष रहने पर त्रिभंगी करते हैं।
2. भोग भूमि के मनुष्य और तिर्यंच आयु के नौ माह शेष रहने पर त्रिभंगी करते हैं।
3. कर्म भूमि के मनुष्य और एकेन्द्रिय आदि सभी तिर्यंच जीव अपनी पूर्ण आयु की त्रिभंगी करते हैं।

119. तीर्थंकर की दिव्यध्वनि निम्न तीन के कारण असमय में भी खिरती है– 1. गणधर, 2. इन्द्र, 3. चक्रवर्ती।

120. तीन तीर्थंकरों पर उपसर्ग हुआ –
1. श्री सुपार्श्वनाथ जी, 2. श्री पार्श्वनाथ जी, 3. श्री महावीर जी।

121. चक्रवर्ती की गति –
1. तीसरे मघवा और चौथे सनत कुमार – तीसरे स्वर्ग में,
2. आठवें सुभौम, बारहवें ब्रम्हदत्त – सातवें नरक में,
3. शेष आठ चक्रवर्ती मोक्ष में गये।

122. तीसरे नरक में जाने वाले कलकी –
पहला कलकी चतुर्मुख – सब राज्यों को वश में कर,
दूसरा उपकलकी – जीव क्रम दैत्य,
आखिरी कलकी – जलमंथन।

123. संहनन किसके नहीं है –
1.एक इन्द्रिय जीव, 2. नारकी, 3. देव – इनके संहनन का अभाव है।

124. वर्गणायें – अकर्म वर्गणायें, कर्म वर्गणायें, नोकर्म वर्गणायें।

125. सम्यग्दर्शन –

1. दर्शन आत्मा का एक अभिन्न **गुण** है।
2. श्रद्धा करना उसका **लक्षण** है।
3. सम्यग्दर्शन उसकी स्वभाव **अर्थ पर्याय** है।

126. सम्यग्ज्ञान –

1. ज्ञान आत्मा का एक अभिन्न **गुण** है।
2. जानना उसका **लक्षण** है।
3. सम्यग्ज्ञान उसकी स्वभाव **अर्थ पर्याय** है।

127. 1. सम्यग्दर्शन **बीजवत्** है।

2. सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र **वृक्षवत्** हैं।
3. मोक्ष **फलवत्** है।

128. लिंग 3 प्रकार के हैं (दर्शन पाहुड गाथा 18 के अनुसार) –

1. एक लिंग जिन मुनि का है।
2. दूसरा लिंग उत्कृष्ट श्रावक का है।
3. तीसरा लिंग आर्यिकाओं का है।

129. अध्यवसान के तीन भेद –

1. द्रव्य सम्बन्धी अध्यवसान,
2. गुण सम्बन्धी अध्यवसान,
3. पर्याय सम्बन्धी अध्यवसान।

(अध्यवसान विपरीत मान्यता को कहते हैं)

130. सिद्ध के तीन भेद –

1. असिद्ध – मिथ्यादृष्टि असिद्ध अर्थात् जिसका अर्थ बहिरात्मा,
2. नोसिद्ध – सम्यग्दृष्टि ईष्त् सिद्ध जिसका अर्थ अन्तरात्मा,
3. सिद्ध – रत्नत्र्य प्राप्त सिद्ध जिसका अर्थ परमात्मा।

131. योनि 3 प्रकार की –

1. शंखावर्त योनि – इसमें गर्भ नहीं रहता
2. कूर्मोन्नत योनि – इसमें तीर्थंकर, चक्रवर्ती, अर्धचक्री, नारायण, प्रतिनारायण और बलभद्र पैदा होते हैं।
3. वंशपत्र योनि – इसमें शेष सब जीव उत्पन्न होते हैं।

132. निसर्ग के 3 भेद –

1. मनो निसर्गाधिकरण,
2. वचन निसर्गाधिकरण,
3. काय निसर्गाधिकरण।

133. साधु के आहारकाल –

1. जघन्य – 3 मुहूर्त
2. मध्यम – 2 मुहूर्त
3. उत्कृष्ट – 1 मुहूर्त

134. लक्षण सदोष होता है– 1. अव्याप्ति, 2. अतिव्याप्ति, 3. असम्भव।

135. शुभ लेश्या तीन – 1. पीत, 2. पद्म, 3. शुक्ल।

136. अशुभ लेश्या तीन – 1. कृष्ण, 2. नील, 3. कापोत।

137. मकार तीन – 1. मद्य, 2. माँस, 3. मधु।

138. दर्शन मोहनीय के 3 भेद –

1. मिथ्यात्व, 2. सम्यग्मिथ्यात्व, 3. सम्यक्प्रकृति।

139. अनुगामी अवधि ज्ञान –

1. क्षेत्रानुगामी, 2. भवानुगामी, 3. उभयानुगामी।

140. अननुगामी अवधि ज्ञान –

1. क्षेत्राननुगामी, 2. भवाननुगामी, 3. उभयाननुगामी।

141. पंडित मरण सल्लेखना –

1. प्रायोपगमन, 2. इंगिनी, 3. भक्त प्रत्याख्यान।

142. वक्ता के तीन भेद – 1. सर्वज्ञ, 2. श्रुतकेवली, 3. आरातीय।

143. आत्म प्रदेश – 1. चल, 2. अचल, 3. चलाचल।

144. अविरति – 1. अनन्तानुबन्धी कषायोदय जनित,
2. अप्रत्याख्यानावरण कषायोदय जनित,
3. प्रत्याख्यानावरण कषायोदय जनित।

145. द्रव्यार्थिक नय – 1. नैगम, 2. संग्रह, 3. व्यवहार।

146. ज्ञानरूप नैगमनय – 1. भूत नैगम, 2. वर्तमान नैगम, 3. भावी नैगम।

147. अर्थरूप नैगमनय – 1.द्रव्य नैगम, 2.पर्याय नैगम, 3.द्रव्यपर्याय नैगम।

148. आगम पद्धति के नाम –

1. ज्ञान नय, 2. अर्थ नय, 3. व्यंजननय (शब्दनय)।

149. निमित्त के 3 भेद – 1. प्रेरक, 2. उदासीन, 3. बलाधान।

150. केवली समुद्घात में निराहार दशा – 1. प्रतर 2. लोकपूरण

धर्म क्या!

संसार में 'धर्म' ऐसा नाम तो समस्त लोक कहता है, परन्तु 'धर्म' शब्द का अर्थ तो इस प्रकार है - जो नरक- तिर्यंचादि गतियों में परिभ्रमण रूप दु:खों से आत्मा को छुड़ाकर उत्तम, आत्मीक, अविनाशी, अतीन्द्रिय, मोक्ष सुख में धर दे, वह धर्म है। ऐसा धर्म मोल (पैसा के बदले में) नहीं आता है, जो धन खर्च करके दान-सन्मानादि द्वारा ग्रहण कर लें; किसी का दिया नहीं मिलता है, जो सेवा-उपासना द्वारा प्रसन्न करके ले लिया जाय; मंदिर, पर्वत, जल, अग्नि, देवमूर्ति, तीर्थक्षेत्रादि में नहीं रखा है, जो वहाँ जाकर ले आयें; उपवास, व्रत, कायक्लेशादि तप से भी नहीं मिलता तथा शरीरादि कृश करने से भी नहीं मिलता है। देवाधिदेव के मंदिर में उपकरणदान, मण्डल पूजन आदि करे; घर छोड़कर वन-श्मशान आदि में निवास करने से तथा परमेश्वर के नाम-जाप आदि करके भी धर्म नहीं मिलता है।

'धर्म' तो आत्मा का स्वभाव है। पर-द्रव्यों में आत्मबुद्धि छोड़कर अपने ज्ञाता दृष्टारूप स्वभाव का श्रद्धान, अनुभव (ज्ञान) और ज्ञायक स्वभाव में ही प्रवर्तनरूप जो आचरण है, वह धर्म है।

– रत्नकरण्ड श्रावकाचार वचनिका, श्लोक 2

स्मरण रखने योग्य तीन बातें

1. इन तीनों से सदैव बचो –
   1. प्रतिष्ठा, 2. प्रदर्शन, 3. प्रतिस्पर्धा,
   1. बनावट, 2. दिखावट, 3. सजावट।
2. इन तीन के चक्कर से सावधान रहो –
   1. कीर्ति, 2. कंचन, 3. कामिनी,
   1. मंच, 2. माईक, 3. माला।
3. इन तीन के कारण कभी विवाद मत करो –
   1. जर, 2. जोरू, 3. जमीन।
4. तीन से घृणा मत करो –
   1. रोगी से, 2. दु:खी से, 3. नीच जाति वालों से।
5. तीन की संगत मत करो –
   1. वेश्या, 2. जुआरी, 3. शराबी।
6. तीन की मजाक न करो –
   1. अंगहीन की, 2. विधवा–अनाथ की, 3.दीन–दु:खी प्राणी की।
7. तीन को गुरु न बनाओ –
   1. स्त्री सेवक को, 2. धन के लोभी को, 3. घमण्डी को।
8. तीन का चिन्तन मत करो –
   1. स्त्री का, 2. धन का, 3. नास्तिक का।
9. तीन पर आस्था न करो –
   1. कूटनीति पर 2. दुराचार पर, 3. असत्य पर।
10. तीन बातों को मत देखो –
    1. अपने गुणों को, 2. दूसरों के दोषों को, 3.जीवों की रतिक्रीडा को।
11. तीन के सामने नम्र रहो –
    1. गुरुजन के, 2. विद्वान के, 3. राजपुरुष के।
12. तीन का कभी भी सेवन मत करो –
    1. मद्य 2. माँस, 3. मधु।

चार (4)

1. चौथे तीर्थंकर **अभिनन्दन नाथ जी**।
2. चौथे तीर्थंकर का चिह्न **बन्दर** है।
3. कषाय चार – 1. क्रोध, 2. मान, 3. माया, 4. लोभ।
4. क्रोध कषाय के चार भेद –
   1. अनन्तानुबन्धी क्रोध
   2. अप्रत्याख्यानावरण क्रोध
   3. प्रत्याख्यानावरण क्रोध
   4. संज्वलन क्रोध
5. मान कषाय के चार भेद –
   1. अनन्तानुबन्धी मान
   2. अप्रत्याख्यानावरण मान
   3. प्रत्याख्यानावरण मान
   4. संज्वलन मान
6. माया कषाय के चार भेद –
   1. अनन्तानुबन्धी माया
   2. अप्रत्याख्यानावरण माया
   3. प्रत्याख्यानावरण माया
   4. संज्वलन माया
7. लोभ कषाय के चार भेद –
   1. अनन्तानुबन्धी लोभ
   2. अप्रत्याख्यानावरण लोभ
   3. प्रत्याख्यानावरण लोभ
   4. संज्वलन लोभ
8. गति चार – 1. तिर्यंच, 2. नरक, 3. मनुष्य, 4. देव।
9. चार गतियों में चार कषायों की प्रमुखता –
   क्रोध की मुख्यता नरक गति में,
   मान की मुख्यता मनुष्य गति में,
   माया की मुख्यता तिर्यंच गति में,
   लोभ की मुख्यता देव गति में है।
10. देव चार – 1. भवनवासी, 2. व्यंतर, 3. ज्योतिषी, 4. वैमानिक।
11. संज्ञा चार–1.आहार संज्ञा, 2.भय संज्ञा, 3.मैथुन संज्ञा, 4.परिग्रह संज्ञा।
12. अनुयोग चार– 1. प्रथमानुयोग, 2. चरणानुयोग, 3. करणानुयोग, 4. द्रव्यानुयोग।
13. निक्षेप चार– 1. नाम निक्षेप, 2. स्थापना निक्षेप, 3. द्रव्य निक्षेप, 4. भाव निक्षेप।
14. लवण समुद्र में चार चन्द्रमा हैं।
15. लवण समुद्र में चार सूर्य हैं।

16. विग्रह गति चार –
    1. ऋजुगति (1 समय),
    2. पाणि मुक्ता (2 समय, 1 मोड़ा),
    3. लांगलिका (3 समय, 2 मोड़े),
    4. गोमूत्रिका (4 समय, 3 मोड़े)।
17. आराधना चार –
    1. सम्यग् आराधना, 2. ज्ञान आराधना,
    3. चारित्र आराधना, 4. तप आराधना।
18. शिक्षाव्रत चार –
    1. सामायिक, 2. प्रोषधोपवास,
    3. भोगोपभोग परिमाण, 4. अतिथि संविभाग।
19. दर्शन उपयोग चार– 1. चक्षु दर्शन, 2. अचक्षुदर्शन,
    3. अवधिदर्शन, 4. केवलदर्शन।
20. दिशा चार – 1. पूर्व, 2. पश्चिम, 3. उत्तर, 4. दक्षिण।
21. विदिशा चार – 1. ईशान, 2. आग्नेय, 3. नैर्ऋत्य, 4. वायव्य।
22. निर्जरा चार – 1. सकाम निर्जरा, 2. अकाम निर्जरा,
    3. सविपाक निर्जरा, 4. अविपाक निर्जरा।
23. मंगल चार – 1.अरहन्त मंगल, 2. सिद्ध मंगल, 3. साधु मंगल,
    4. केवली भगवान द्वारा बताया गया धर्ममंगल।
24. उत्तम चार – 1.अरहन्त उत्तम, 2.सिद्ध उत्तम, 3. साधु उत्तम,
    4. केवली भगवान द्वारा बताया गया धर्म उत्तम।
25. शरण चार – 1. अरहन्त शरण, 2. सिद्ध शरण, 3. साधु शरण,
    4. केवली भगवान द्वारा प्रणीत धर्म शरण।
26. दान चार – 1.आहारदान, 2.औषधिदान, 3.अभयदान, 4.ज्ञानदान।
27. दान की चार विशेषतायें – 1. विधि विशेष, 2. द्रव्य विशेष, 3. दातार विशेष, 4. पात्र विशेष।
28. दोष चार – 1. अतिक्रमण, 2. व्यतिक्रमण, 3. अतिचार, 4. अनाचार।
29. दोष के निवारण के चार उपाय – 1. आलोचना, 2. प्रतिक्रमण,
    3. प्रत्याख्यान, 4. प्रायश्चित।
30. संघ में चार – 1. मुनि, 2. आर्यिका, 3. श्रावक, 4. श्राविका होते हैं।
31. मुनि के चार प्रकार – 1. ऋषि, 2. मुनि, 3. यति, 4. अनगार।
32. हिंसा के चार प्रकार – 1. संकल्पी हिंसा, 2. उद्योगी हिंसा,
    3. आरम्भी हिंसा, 4. विरोधी हिंसा।

33. छोटा योजन – चार कोस।
34. पुद्गल के चार गुण– 1. स्पर्श, 2. रस, 3. गन्ध, 4. वर्ण।
35. प्राण के चार भेद – 1. इन्द्रिय, 2. बल, 3. आयु, 4. श्वासोच्छ्वास।
36. ध्यान के चार प्रकार –
    1. आर्त ध्यान, 2. रौद्र ध्यान, 3. धर्म ध्यान, 4. शुक्ल ध्यान।
37. आर्त ध्यान के चार भेद –
    1. इष्टवियोगज, 2. अनिष्ट संयोगज, 3. वेदनाजनित, 4. निदानज।
38. रौद्र ध्यान के चार भेद –
    1. हिंसानन्दी, 2. मृषानन्दी, 3. चौर्यानन्दी, 4. परिग्रहानन्दी।
39. धर्मध्यान के चार भेद –
    1.आज्ञाविचय, 2. अपायविचय, 3. विपाकविचय, 4. संस्थानविचय।
40. शुक्ल ध्यान के चार भेद –
    1.पृथक्त्ववितर्क वीचार, 2. एकत्ववितर्क अविचार,
    3. सूक्ष्म-क्रिया प्रतिपाति, 4. व्युपरत-क्रिया-निवर्ति।
41. बन्ध के चार भेद –
    1. प्रकृति बन्ध, 2. प्रदेश बन्ध, 3. स्थिति बन्ध, 4. अनुभाग बन्ध।
42. घाति कर्म चार –
    1. ज्ञानावरण, 2. दर्शनावरण, 3. मोहनीय, 4. अन्तराय।
43. अघाति कर्म चार – 1. वेदनीय, 2. आयुष्क, 3. नाम, 4. गोत्र।
44. चार कर्म के अभाव में केवलज्ञान –
    1. ज्ञानावरण, 2. दर्शनावरण, 3. मोहनीय, 4. अन्तराय।
45. शुभ प्रकृति का अनुभाग –
    1. गुड़ समान, 2. खांड समान, 3. शर्करा समान, 4. अमृत समान।
46. अशुभ अघाति प्रकृति का अनुभाग –
    1. नीम समान, 2. कांजी समान, 3. विष समान, 4. हलाहल समान।
47. घाति का अनुभाग –
    1.लता समान, 2.देवदारु समान, 3.अस्थि(हड्डी)समान, 4.शिला समान।
48. अवसर्पिणी के समय मोक्ष – चतुर्थ काल में।
49. एक विदेह क्षेत्र में चार तीर्थंकर सदैव विद्यमान रहते हैं।
50. अनन्त चतुष्टय चार –
    1. अनन्तदर्शन, 2. अनन्तज्ञान, 3. अनन्त सुख, 4. अनन्त वीर्य।

51. अंगार दोष चार –

1. संयोजन दोष, 2. अप्रमाण दोष, 3. अंगार दोष, 4. धूमदोष।

52. तीर्थंकर पार्श्वनाथ का छद्मस्थकाल – चार मास।

53. व्यवहार नय के चार भेद –

1. शुद्ध सद्भूत व्यवहार नय।
2. अशुद्ध सद्भूत व्यवहार नय।
3. अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय।
4. उपचरित असद्भूत व्यवहार नय।

54. विकथा चार –

1.भोजन कथा, 2.स्त्री कथा, 3.राज्य कथा, 4.अवनिपाल(राजा) कथा।

55. पुरुषार्थ चार – 1. धर्म, 2. अर्थ, 3. काम, 4. मोक्ष।

56. चार लाख पशु योनि।

57. चार लाख नरक योनि।

58. चार लाख देव योनि।

59. चौथी प्रतिमा – प्रोषधोपवास प्रतिमा।

60. पदार्थ को जानने के चार उपाय– 1.लक्षण, 2.प्रमाण, 3.नय, 4.निक्षेप।

61. मतिज्ञान के चार भेद – 1. अवग्रह, 2. ईहा, 3. अवाय, 4. धारणा।

62. स्वरुपाचरण चारित्र के चार भेद –

1. सम्यक्त्वाचरण चारित्र, 2. देश चारित्र,
3. सकल चारित्र, 4. यथाख्यात चारित्र।

63. भोगभूमि के तिर्यंचों के चार भेद –

1. निर्वृत्यपर्याप्तक थलचर, 2. पर्याप्तक थलचर,
3. निर्वृत्यपर्याप्तक नभचर, 4. पर्याप्तक नभचर।

(भोग भूमि में असैनी और जलचर तिर्यंच नहीं होते)।

64. उपशम श्रेणी के चार गुणस्थान –

1. आठवाँ गुणस्थान, 2. नौवाँ गुणस्थान,
3. दसवाँ गुणस्थान, 4. ग्यारहवाँ गुणस्थान।

65. क्षपक श्रेणी के चार गुणस्थान –

1. आठवाँ गुणस्थान, 2. नौवाँ गुणस्थान,
3. दसवाँ गुणस्थान, 4. बारहवाँ गुणस्थान।

66. चौथा गुणस्थान – अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान।
67. चौथे गुणस्थान में 700 करोड़ मनुष्य हैं।
68. सयोग केवली भगवान के चार प्राण होते हैं।
69. सर्प चौथे नरक तक जा सकता है।
70. चौथे नरक का निकला जीव केवली तक हो सकता है।
71. भावनाएँ चार होती हैं – 1. मैत्री, 2. प्रमोद, 3. कारुण्य, 4. माध्यस्थ।
72. चार विकट हैं –
    1. कर्मों में कर्म – मोहनीय कर्म।
    2. व्रतों में व्रत – ब्रम्हचर्य व्रत।
    3. इन्द्रियों में इन्द्रिय – रसना इन्द्रिय।
    4. गुप्तियों में गुप्ति – मनो गुप्ति।
73. वचन के चार योग –
    1. सत्यवचनयोग, 2. असत्यवचनयोग,
    3. उभयवचन योग, 4. अनुभयवचनयोग।
74. मन के चार योग –
    1. सत्यमनोयोग, 2. असत्यमनोयोग,
    3. उभयमनोयोग, 4. अनुभयमनोयोग।
75. सम्यग्दर्शन के चार सोपान –
    1. देव शास्त्र गुरु की यथार्थ श्रद्धा, 2. सात तत्वों की यथार्थ श्रद्धा,
    3. स्व–पर की यथार्थ श्रद्धा, 4. आत्मा की यथार्थ श्रद्धा।
76. सम्यग्ज्ञान के चार सोपान –
    1. शास्त्रों का अध्ययन, 2. नौ पदार्थों का ज्ञान,
    3. स्व–पर भेद विज्ञान, 4. स्व संवेदन ज्ञान।
77. सम्यक्चारित्र के चार सोपान –
    1. अशुभ से निवृत्ति, शुभ में प्रवृत्ति, 2. ज्ञान दर्शन की एकता,
    3. समता – शमता, 4. आत्मा में स्थिरता।
78. चार अनुयोग का कार्य –
    1. प्रथमानुयोग **अलंकार** है। 2. करणानुयोग **गणित** है।
    3. चरणानुयोग **नीति** है। 4. द्रव्यानुयोग **न्याय** है।
79. क्षेत्र विपाकी प्रकृति के चार भेद –
    1. नरकगत्यानुपूर्वी, 2. तिर्यग्गत्यानुपूर्वी,
    3. मनुष्यगत्यानुपूर्वी, 4. देवगत्यानुपूर्वी।

80. भव विपाकी प्रकृति के चार भेद –

1. नरकायु, 2. तिर्यंचायु, 3. मनुष्यायु, 4. देवायु।

81. अरिहंत में चार अक्षर हैं।

82. चार आश्रम (अन्य मतियों के अनुसार) –

1. ब्रम्हचर्य, 2. गृहस्थ, 3. वानप्रस्थ, 4. भिक्षुक(संन्यास) आश्रम।

83. प्रत्याख्यानावरण कषायोदय जनित अविरति से चार प्रकृतियों का बंध होता है–

1. प्रत्याख्यानावरण क्रोध, 2. प्रत्याख्यानावरण मान,

3. प्रत्याख्यानावरण माया, 4. प्रत्याख्यानावरण लोभ।

84. सातिशय अप्रमत्त में चार आवश्यक होते हैं –

1. समय–समय अनन्तगुणी विशुद्धि,

2. स्थिति बंधापसरण,

3. प्रशस्त प्रकृतियों का अनुभाग समय–समय अनन्तगुणा बढ़ता है,

4. अप्रशस्त प्रकृतियों का अनुभाग समय–समय अनन्तगुणा घटता है।

85. श्रावकों के लिए चार विश्राम हैं –

1. अणुव्रतों का पालन करना, 2. सामायिक करना,

3. उपवास रखना, 4. निशल्य होकर समाधिमरण करना।

86. दातार चार प्रकार के –

1.मक्खीचूस, 2.कंजूस, 3. उदारचित्त, 4. दातार।

87. चार अवस्थाएँ – 1. जागृत, 2. स्वप्न, 3. सुषुप्ति, 4. समाधि।

88. चार नीतियाँ – 1. साम, 2. दाम, 3. दण्ड, 4. भेद।

89. चार रिपु – 1. काम, 2. क्रोध, 3. लोभ, 4. मोह।

90. चार कर्म – 1. संचित, 2. प्रारब्ध, 3. क्रियमाण, 4. भावी।

91. चार पन (अवस्थाएँ)– 1. बाल, 2. युवा, 3. प्रौढ़, 4. वृद्ध।

92. चार युग (अन्य मतियों के अनुसार) –

1.सतयुग, 2.त्रेतायुग, 3. द्वापर युग, 4. कलियुग।

93. चार वेद (अन्य मतियों के अनुसार) –

1.ऋग्वेद, 2. सामवेद, 3. यजुर्वेद, 4. अथर्ववेद।

94. चार अनुयोग–1.प्रथमानुयोग, 2.करणानुयोग, 3.चरणानुयोग, 4.द्रव्यानुयोग।

95. चार वर्ण – 1. ब्राम्हण, 2. क्षत्रिय, 3. वैश्य, 4. शूद्र।

96. पंडित मरण के चार भेद –

1. व्यवहार पंडित, 2.सम्यक्त्व पंडित, 3.ज्ञान पंडित, 4.चारित्र पंडित।

97. चौथा चक्रवर्ती सनत कुमार (तीर्थंकर धर्मनाथ के तीर्थकाल में)।

98. चौथा कामदेव दर्शनभद्र।

99. चौथा कुलकर क्षेमंधर।

100. चौथा नारायण पुरुषोत्तम, चौथा प्रतिनारायण निशुम्भ।

101. चौथे बलभद्र सुप्रभ।

102. चौथा नारद महारूप, चौथा रूद्र वेश्वानर।

103. चौथा नरक पंकप्रभा (अंजना)।

104. चौथा स्वर्ग माहेन्द्र।

105. नौवें स्वर्ग से बारहवें स्वर्ग के देवों की अवगाहना चार हाथ।

106. धातकीखंड, पुष्कर द्वीप में दो-दो कुल चार मेरु पर्वत।

107. चौथा अंग – समवायांग।

108. चौथा पूर्व अस्ति – नास्ति प्रवाद पूर्व।

109. समवसरण की चौथी सभा –ज्योतिषी देवों की देवियाँ।

110. देव, नारकी व पंचेन्द्रिय तिर्यंचों की चार – चार लाख योनि।

111. सुखमा सुखमा काल 4 कोड़ा कोड़ी सागर का है।

112. स्वचतुष्टय की अपेक्षा वस्तु के चार नाम –

1.द्रव्य की अपेक्षा- **'पदार्थ'** 2. क्षेत्र की अपेक्षा- **'अस्तिकाय'**

3. काल की अपेक्षा- **'द्रव्य'** 4. भाव की अपेक्षा- **'तत्व'**।

113. आचार्य कुंद-कुंद के ग्रन्थों के प्रसिद्ध टीकाकार चार –

1. आचार्य अमृतचन्द्र मुनि, 2. आचार्य जयसेन मुनि,

3. पद्म प्रभमल धारि देव, 4. भट्टारक श्रुतसागर सूरि।

114. चार प्रकार के दु:ख –

1. भूख-प्यास से होने वाला **'सहज'** है।
2. शीत आदि वायु से होने वाला **'नैमित्तिक'** है।
3. रोग आदि से होने वाला **'देहज'** है।
4. अनिष्ट संयोग से होने वाला **'मानसिक'** है।

115. सुख के चार भेद –

1. इन्द्रिय जन्य सुख, 2. मानसिक सुख,

3. प्रशम जन्य सुख, 4. आत्मा से उत्पन्न अतीन्द्रिय सुख।

(लक्षण के द्वारा निज लक्ष्य का अनुभव करने पर आत्मिक सुख होता है)

116. मिथ्याज्ञान के चार रुप –

वस्तु के स्वरूप को –

1. न्यून जाने, 2. अधिक जाने, 3.विपरीत जाने, 4.संशय सहित जाने।

117. सम्यग्ज्ञान के चार रुप –

वस्तु के स्वरूप को –

1.न्यून न जाने, 2.अधिक न जाने, 3.विपरीत न जाने, 4.संशय रहित जाने।

118. अंतिम कलकी के समय का चर्तुसंघ –

1. वीरांगज नाम के मुनि,
2. सर्वश्री नाम की आर्यिका,
3. अग्निल नाम का श्रावक,
4. पुंगु नाम की श्राविका।

119. मिथ्यात्व गुणस्थान के चार मार्ग –

1. कोई जीव मिथ्यात्व से तीसरे गुणस्थान में जाता है।
2. कोई जीव मिथ्यात्व से चौथे गुणस्थान में जाता है।
3. कोई जीव मिथ्यात्व से पाँचवे गुणस्थान में जाता है।
4. कोई जीव मिथ्यात्व से सातवें गुणस्थान में जाता है।

120. चतुर्थ गुणस्थान (अव्रत सम्यग्दृष्टि) से जाने के मार्ग –

1. जीव नीचे गिरता है तो तीसरे, दूसरे व पहिले में आता है।
2. यदि ऊपर चढ़ता है तो पाँचवें या सातवें गुणस्थान में जाता है।

121. चारों गतियों में सम्यक्त्व की उत्पत्ति का समय –

तिर्यंच 8 दिन में	– द्वीप समुद्र में
(सम्मूर्छन और गर्भज तिर्यंच की पृथक-पृथक व्यवस्था है)	
मनुष्य के 8 वर्ष पूर्ण होने पर	– ढाई द्वीप में
चारों प्रकार के देवों में	– अन्तर्मुहूर्त के बाद
सातों ही नरकों में	– अन्तर्मुहूर्त के बाद

122. शास्त्र स्वाध्याय करने से पूर्व के चार सोपान –

1. मंगल, 2. आस्तिक्य, 3. शिष्टाचार, 4. उपकारी का स्मरण।

123. पाण्डुक शिला पर अवस्थित सिंहासन का प्रमाण –

4 कोस ऊँचा, स्फटिक मणि निर्मित

124. 8, 9, 10 व 11 वें गुणस्थान तक उपशम श्रेणी माँडने वाले जीवों की कुल संख्या – एक हजार एक सौ छियानवे (1196)।

125. 8, 9, 10 व 12 वें गुणस्थान तक क्षपक श्रेणी माँडने वाले जीवों की कुल संख्या – दो हजार तीन सौ बानवें (2392)।

126. चार पदों का एक श्लोक होता है व आठ अक्षर का एक पद होता है।

127. विकल चतुष्क - दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय और असैनी पंचेन्द्रिय, इन चार जीवों के असंप्राप्ता सृपाटिका संहनन होता है। इस संहनन का धारी आठवें स्वर्ग से ऊपर नहीं जाता है और तीसरे नरक से आगे नहीं जाता है।

128. 1. हिंस्य - जिसकी हिंसा की जाये उसको हिंस्य कहते हैं।
2. हिंसक - हिंसा करने वाले को हिंसक कहते हैं।
3. हिंसा - मारने की क्रिया को हिंसा कहते हैं।
4. हिंसा का फल - आस्रव बन्ध पूर्वक संसार उत्पत्ति है।

129. **'जिन'** में चार निक्षेप -

1. नाम निक्षेप: जिन नाम वाला व्यक्ति नाम निक्षेप है।
2. स्थापना निक्षेप: जिनेन्द्र देव की प्रतिमा स्थापित करना स्थापना निक्षेप है।
3. द्रव्य निक्षेप: जो आगे जिन होने वाले हैं वे द्रव्य निक्षेप है।
4. भाव निक्षेप: समवसरण में विराजमान भगवान भाव जिन हैं।

130. अभाव चार हैं -

1. प्रागभाव - वर्तमान पर्याय का पूर्व पर्याय में अभाव।
2. प्रध्वंसाभाव - वर्तमान पर्याय का अगली पर्याय में अभाव।
3. अन्योन्याभाव- वर्तमान कालीन एक पुद्गल स्कन्ध का वर्तमान कालीन दूसरे पुद्गल स्कन्ध की पर्याय में अभाव।
4. अत्यन्ताभाव - एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य में अभाव।

131. काल के चार भेद -

1. अनादि-अनन्त : जिसका प्रारम्भ और अन्त न हो। प्रत्येक द्रव्य तथा उसके गुण अनादि-अनन्त हैं।
2. अनादि-सान्त : जिसका प्रारम्भ तो न हो, अन्त हो जाये।
सम्यक्त्व होने के बाद अनादि के मिथ्यात्व का अभाव हो जाता है, अत: मिथ्यात्व अनादि-सान्त है।
3. सादि-सान्त : जिसका प्रारम्भ भी हो और अन्त भी हो;
सम्यक्त्व होने पर संवर और निर्जरा यहीं प्रारम्भ होकर यहीं समाप्त

हो जाने से सादि-सान्त हैं।

4. सादि-अनन्त : जिसका प्रारम्भ तो हो पर अन्त न हो; केवलज्ञान, सिद्ध दशा सादि-अनन्त है।

132. अजीवाधिकरण के चार भेद -

1. निर्वतना - 3 प्रकार, 2. निक्षेप - 4 प्रकार,
3. संयोग - 2 प्रकार, 4. निसर्ग - 3 प्रकार।

133. मिथ्यात्व के चार कारण -

पर में - कर्तृत्व बुद्धि, भोक्तृत्व बुद्धि, ममत्व बुद्धि, एकत्व बुद्धि।

134. सम्यक्त्व के चार कारण -

पर में - ज्ञाता बुद्धि, दृष्टा बुद्धि, निर्मोह बुद्धि, भेद बुद्धि।

135. पृथ्वी आदि स्थावर में प्रत्येक के निम्नानुसार चार भेद होते हैं -

1. पृथ्वी जीव, 2. पृथ्वीकायिक, 3. पृथ्वीकाय, 4. पृथ्वी।

136. असत्य के चार भेद -

1. भूत निन्हव (सत् प्रतिषेधन) 2. अभूतोद्भावन,
3. विपरीत, 4. निन्द्य (असत् वचन)।

137. संस्तर (आसन) के चार भेद -

1. भूमि, 2. शिला, 3. काष्ठ के पट्टे - तख्ते आदि
4. तृण तथा तृण की बनी चटाई-आसन आदि।

138. पर्यायार्थिक नय - 1. ऋजुसूत्र, 2. शब्द, 3. समभिरूढ़, 4. एवंभूत।

139. कायोत्सर्ग - 1. अत्थितात्थित, 2. उत्थित् निर्विष्ट,
3. उपविष्टोत्थित, 4. उपविष्ट निर्विष्ट।

140. स्वाध्याय सम्बन्धी शुद्धियाँ - 1.द्रव्य शुद्धि, 2. क्षेत्र शुद्धि,
3. काल शुद्धि, 4. भाव शुद्धि।

141. लोभ (जिसका त्याग शौच धर्म है) -

1. जीवन लोभ, 2. इन्द्रिय लोभ, 3. आरोग्य लोभ, 4. उपभोग लोभ।

142. बंध हेतु - 1. मिथ्यात्व, 2. अविरति, 3. कषाय, 4. योग।

143. मनुष्य - 1. आर्य, 2. म्लेच्छ, 3. भोगभूमियाँ, 4. कुभोगभूमियाँ।

144. क्षायोपशमिक ज्ञान - 1. मति, 2. श्रुत, 3. अवधि, 4. मन:पर्यय।

145. प्राप्यकारी इन्द्रियाँ – 1. स्पर्शन, 2. रसना, 3. घ्राण, 4. कर्ण।
146. उपादेय तत्व – 1. जीव, 2. संवर, 3. निर्जरा, 4. मोक्ष।
147. सम्यग्दृष्टि के 4 गुण– 1.प्रशम, 2.संवेग, 3. अनुकम्पा, 4. आस्तिक्य।
148. मेरू पर स्थित वन – 1. भद्रशाल, 2. सौमनस, 3. नंदन, 4. पांडुक।
149. पांडुक वन की शिलायें –
1. पांडुक शिला, 2. पांडुकम्बला शिला,
3. रक्ता शिला, 4. रक्तकाम्बला शिला।
150. शाश्वत शुद्ध द्रव्य – 1. धर्म, 2. अधर्म, 3. आकाश, 4. काल।
151. व्रतों में दोष –1.अतिक्रमण, 2.व्यतिक्रमण, 3. अतिचार, 4. अनाचार।
152. द्रव्य प्राण के भेद – 1. इन्द्रिय, 2. बल, 3. आयु, 4. श्वासोच्छ्वास।
153. धर्मकथा के अंग– 1. आक्षेपणी, 2.विक्षेपणी, 3.संवेदनी, 4.निर्वेदनी।
154. भाव शल्य – 1. दर्शन, 2. ज्ञान, 3. चारित्र, 4. योग।
155. जम्बूद्वीप के विदेह क्षेत्र में स्थित चार विद्यमान तीर्थंकर –
1. सीमंधरजी, 2. युगमंधरजी, 3. बाहुजी, 4. सुबाहुजी।
156. बलभद्र के 4 रत्न – 1. मूसल, 2. हल, 3. रथ, 4. रत्नावली।
157. नरकों के दुःख –
1. क्षेत्र जनित, 2. शारीरिक, 3. मानसिक, 4. असुरकृत।
158. समवसरण के चैत्य वृक्ष –
1. अशोक, 2. सदाच्छद, 3. चम्पक, 4. आम्र।
159. मनुष्यों के चार भेद (स्वभाव की अपेक्षा) –
1. उत्तम मनुष्य – किशमिश के समान
2. मध्यम मनुष्य – नारियल के समान
3. अधम मनुष्य – बेर के समान
4. अधमाधम मनुष्य – सुपारी के समान
160. अंधा, बहरा, गूँगा, लंगड़ा कौन?
अंधा – जो देव दर्शन नहीं करे
बहरा – जो जिनवाणी नहीं सुने
गूँगा – जो जिनेन्द्र स्तुति, पूजन, भजन नहीं करे
लंगड़ा – जो तीर्थों की यात्रा नहीं करे।

पाँच (5)

1. पाँचवें तीर्थंकर **श्री सुमतिनाथ जी**।
2. पाँचवें तीर्थंकर का चिह्न **चकवा** है।
3. पाँचवें कुलकर - सीमंकर।
4. पाँचवें चक्रवर्ती - शान्तिनाथ (कामदेव एवं तीर्थंकर भी)।
5. पाँचवें कामदेव - प्रसेनचंद्र।
6. पाँचवें नारायण - पुरुष सिंह।
7. पाँचवें प्रतिनारायण- निशुम्भ
8. पाँचवें बलभद्र - सुदर्शन।
9. व्रत पाँच - 1. अहिंसा, 2. सत्य, 3. अचौर्य, 4. ब्रम्हचर्य, 5. अपरिग्रह।
10. पाप पाँच - 1. हिंसा, 2. झूठ, 3. चोरी, 4. कुशील, 5. परिग्रह।
11. शरीर पाँच - 1. औदारिक, 2. वैक्रियक, 3. आहारक, 4. तैजस, 5. कार्माण।
12. भाव पाँच - 1.औपशमिक भाव, 2.क्षायिक भाव, 3.क्षायोपशमिक भाव, 4. औदायिक भाव, 5. पारिणामिक भाव।
13. समिति पाँच - 1.ईर्या समिति, 2.भाषा समिति, 3.एषणा समिति, 4. आदाननिक्षेपण समिति, 5.प्रतिष्ठापन(व्युत्सर्ग) समिति।
14. इन्द्रिय पाँच - 1. स्पर्शन, 2. रसना, 3. घ्राण, 4. चक्षु, 5. कर्ण।
15. आचार पाँच - 1.दर्शनाचार, 2.ज्ञानाचार, 3.चारित्राचार, 4.तपाचार, 5. वीर्याचार।
16. उदम्बरुल पाँच-1. बड़, 2. पीपल, 3. पाकर, 4. गूलर, 5. कठूमर।
17. मिथ्यात्व पाँच- 1.विपरीत, 2.एकान्त, 3.संशय, 4. विनय, 5. अज्ञान।
18. ज्ञान पाँच - 1. मतिज्ञान, 2. श्रुतज्ञान, 3. अवधिज्ञान, 4. मन:पर्ययज्ञान, 5. केवलज्ञान।
19. परमेष्ठी पाँच - 1.अरहन्त, 2.सिद्ध, 3.आचार्य, 4.उपाध्याय, 5.साधु।
20. अन्तराय कर्म के पाँच भेद - 1.दान अन्तराय, 2.लाभ अन्तराय, 3. भोग अन्तराय, 4.उपभोग अन्तराय, 5.वीर्य अन्तराय।
21. लब्धि पाँच - 1.क्षयोपशम लब्धि, 2.विशुद्धि लब्धि, 3.देशना लब्धि, 4.प्रायोग्य लब्धि, 5.करण लब्धि।

22. अनुत्तर विमान पाँच –
    1. विजय, 2. वैजयन्त, 3. जयन्त, 4. अपराजित, 5. सर्वार्थसिद्धि।
23. ज्योतिषी देव पाँच – 1. सूर्य, 2. चन्द्रमा, 3. ग्रह, 4. नक्षत्र, 5. तारे।
24. पाँचवा गुणस्थान देशविरत गुणस्थान है।
25. पाँचवें गुणस्थान में 13 करोड़ मनुष्य हैं।
26. तिर्यंच पाँचवें गुणस्थान से आगे नहीं जा सकते।
27. चौदहवें गुणस्थान का काल – 1.अ, 2. इ, 3. उ, 4. ऋ, 5. ऌ
    इन पाँच ह्रस्व स्वरों के उच्चारण काल मात्र।
28. महा विदेह क्षेत्र पाँच हैं।
29. भरत क्षेत्र पाँच हैं।
30. ऐरावत क्षेत्र पाँच हैं।
31. बाल ब्रम्हचारी तीर्थंकर पाँच हैं (पँचबालयति)–
    1. वासुपूज्य, 2. मल्लिनाथ, 3. नेमिनाथ, 4. पार्श्वनाथ, 5. महावीर।
32. म्लेच्छ खण्ड पाँच –पाँच हैं (प्रत्येक आर्यखण्ड संबंधी)।
33. सातवीं नरक भूमि में पाँच बिल नरक हैं।
34. लौकान्तिक देव पाँचवें स्वर्ग ब्रम्ह लोक के अन्त में हैं।
35. मेरू पाँच – 1.सुदर्शन, 2.विजय, 3.अचल, 4.मन्दर, 5.विद्युन्माली।
36. बन्ध के पाँच कारण –
    1. मिथ्यादर्शन, 2. अविरति, 3. प्रमाद, 4. कषाय, 5. योग।
37. मुनि पाँच प्रकार के –
    1. पुलाक, 2. बकुश, 3. कुशील, 4. निर्ग्रन्थ, 5. स्नातक।
38. अहिंसा व्रत के पाँच अतिचार –
    1. बन्ध, 2. वध, 3. छेदन, 4. अतिभारारोपण, 5. अन्नपाननिरोध।
39. सत्य व्रत के पाँच अतिचार –
    1. मिथ्योपदेश, 2. रहोभ्याख्यान, 3. कूटलेखक्रिया,
    4. न्यासापहार, 5. साकारमन्त्र भेद।
40. अचौर्य व्रत के पाँच अतिचार –
    1. स्तेनप्रयोग, 2. तदाहृतादान, 3. विरुद्धराज्यातिक्रम,
    4. हीनाधिक मानोन्मान, 5. प्रतिरूपक व्यवहार।

41. ब्रम्हचर्य व्रत के पाँच अतिचार –
    1. परविवाहकरण, 2. परगृहीतेत्वरिकागमन,
    3. अपरिगृहीतेत्वरिकागमन, 4. अनंगक्रीड़ा, 5. कामतीव्राभिनिवेश।
42. अपरिग्रह व्रत के पाँच अतिचार –
    1. क्षेत्र–वास्तु प्रमाणातिक्रम, 2. हिरण्य–सुवर्ण प्रमाणातिक्रम,
    3. धन–धान्य प्रमाणातिक्रम, 4. दासी–दास प्रमाणातिक्रम,
    5. कुप्य प्रमाणातिक्रम।
43. स्वाध्याय के पाँच भेद –
    1. वाचना, 2. पृच्छना, 3. अनुप्रेक्षा, 4. आम्नाय, 5. धर्मोपदेश।
44. समाधि मरण के पाँच अतिचार –
    1. जीवितासंशा, 2. मरणासंशा, 3. मित्रानुराग, 4. सुखानुबन्ध, 5. निदान।
45. अहिंसा व्रत की भावना पाँच –
    1. वचन गुप्ति, 2. मनोगुप्ति, 3. ईर्या समिति,
    4. आदाननिक्षेपण समिति, 5. आलोकित पान भोजन।
46. सत्य व्रत की भावना पाँच –
    1. क्रोध का त्याग, 2. लोभ का त्याग, 3. भय का त्याग,
    4. हास्य का त्याग, 5. अनुवीचि भाषण।
47. अचौर्य व्रत की भावना पाँच –
    1. खाली घर में रहना,
    2. किसी के छोड़े हुए स्थान में रहना,
    3. अन्य को अपने ठहरे स्थान में आने से रोकना नहीं,
    4. शास्त्र विहित भिक्षा की विधि में न्यूनाधिक नहीं करना,
    5. साधर्मी भाइयों से विसंवाद नहीं करना।
48. ब्रम्हचर्य व्रत की भावना पाँच –
    1. स्त्रियों में प्रीति उत्पन्न कराने वाली कथाओं के सुनने का त्याग।
    2. स्त्रियों के मनोहर अंगों को रागसहित देखने का त्याग।
    3. पूर्व काल में किये हुए विषय भोगों को स्मरण करने का त्याग।
    4. काम उद्दीपन करने वाले पुष्टिकर व इन्द्रियों की लालसा उत्पन्न करने वाले रसों का त्याग।
    5. शरीर को शृंगारयुक्त करने का त्याग।

49. अपरिग्रह व्रत की भावना पाँच –
1.स्पर्शन, 2.रसना, 3.घ्राण, 4.चक्षु, 5.कर्ण इन्द्रियों के स्पर्श आदि इष्ट-अनिष्ट विषयों में रागद्वेष के भाव का त्याग।

50. समाधि मरण के पाँच प्रकार –
1. बाल-बाल मरण, 2. बाल मरण, 3.बाल पण्डित मरण,
4. पण्डित मरण, 5. पण्डित-पण्डित मरण।

51. दर्शन मोहनीय बन्ध के पाँच कारण –
1. केवली का अवर्णवाद, 2. शास्त्र का अवर्णवाद,
3. संघ का अवर्णवाद, 4. धर्म का अवर्णवाद,
5. देवों का अवर्णवाद।

52. सम्यग्दर्शन के पाँच अतिचार –
1. शंका, 2. कांक्षा, 3. विचिकित्सा,
4. अन्यदृष्टि प्रशंसा, 5. अन्यदृष्टि संस्तव।

53. दिग्व्रत के पाँच अतिचार –
1. ऊर्ध्वव्यतिक्रम, 2.अधोव्यतिक्रम, 3.तिर्यग्व्यतिक्रम,
4. क्षेत्रवृद्धि, 5. स्मृत्यन्तराधान।

54. देशव्रत के पाँच अतिचार –
1. आनयन, 2. प्रेष्यप्रयोग, 3. शब्दानुपात,
4. रूपानुपात, 5. पुद्गलक्षेप।

55. अनर्थदण्डत्याग व्रत के पाँच अतिचार –
1. कन्दर्प, 2. कौत्कुच्य, 3. मौखर्य,
4. असमीक्ष्याधिकरण, 5. उपभोगपरिभोगानर्थक्य।

56. सामायिक व्रत के पाँच अतिचार –
1. मनोदु:प्रणिधान, 2.वाग्दु:प्रणिधान, 3.कायदु:प्रणिधान,
4. अनादर, 5. स्मृत्यनुपस्थान।

57. प्रोषधोपवास व्रत के पाँच अतिचार –
1. अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितोत्सर्ग, 2. अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितादान,
3. अप्रत्यवेक्षिाप्रमार्जित संस्तरोपक्रमण,
4. अनादर, 5. स्मृत्यनुपस्थान।

58. उपभोग परिभोग परिमाण व्रत के पाँच अतिचार –
1. सचित्ताहार, 2.सचित्त सम्बन्धाहार, 3.सचित्त संमिश्राहार,
4. अभिषवाहार, 5. दु:पक्वाहार।

59. परोक्ष मति ज्ञान के पाँच भेद –
1. स्मृति, 2. प्रत्यभिज्ञान, 3. तर्क, 4. अनुमान, 5. आगम।
60. अतिथि संविभाग व्रत के पाँच अतिचार –
1. सचित्तनिक्षेप, 2.सचित्तापिधान, 3. परव्यपदेश,
4. मात्सर्य, 5. कालातिक्रम।
61. विनय पाँच –
1. दर्शन विनय, 2. ज्ञान विनय, 3. चारित्र विनय,
4. तप विनय, 5. उपचार विनय।
62. अस्तिकाय पाँच– 1.जीव, 2 पुद्गल, 3.धर्म, 4.अधर्म, 5.आकाश।
63. रस पाँच – 1.खट्टा, 2.मीठा, 3.कड़वा, 4.कषैला, 5.चरपरा।
64. वर्ण पाँच – 1. काला, 2. पीला, 3. नीला, 4. सफेद, 5. लाल।
65. भूत पाँच – 1. पृथ्वी, 2. जल, 3. अग्नि, 4. वायु, 5. आकाश।
(अन्य मतियों के अनुसार)
66. पाँचवीं प्रतिमा – सचित्त त्याग प्रतिमा।
67. परावर्तन पाँच – 1. द्रव्य, 2. क्षेत्र, 3. काल, 4. भव, 5. भाव।
68. दान पाँच – 1. दयादत्ति, 2. पात्रदत्ति, 3. समदत्ति,
4. अन्वयदत्ति, 5. सकलदत्ति।
69. पाँचवें नरक तक सिंह जा सकता है।
70. पाँडव पाँच – 1.युधिष्ठिर, 2.भीम, 3.अर्जुन, 4.नकुल, 5.सहदेव।
71. तीर्थंकर महावीर के बाद पाँच श्रुत केवली –
1. विश्वनन्दी, 2. नन्दीमित्र, 3. अपराजित, 4. गोवर्धन, 5. भद्रबाहु।
72. तीर्थंकर महावीर के बाद पाँच महामुनि –
1. नक्षत्र, 2, जयपाल, 3. पाण्डु, 4. ध्रुवसेन,
5. कंसाचार्य दशांग विद्या के पारगामी।
73. पाँचवे नरक से निकलकर जीव मुनि तक हो सकता है।
74. परिव्राजक दंडी पाँचवे स्वर्ग से ऊपर नहीं जा सकता।
75. तीर्थंकरों के पाँच कल्याणक –
1. गर्भ, 2. जन्म, 3. तप, 4. ज्ञान, 5. मोक्ष।
76. कर्म इन्द्रियाँ पाँच – 1. पैर, 2. हाथ, 3. वचन, 4. गुदा, 5. उपस्थ।
77. पाँच अनुत्तर का एक पटल होता है।
78. पाँचवें नरक धूमप्रभा के पाँच इन्द्रक होते हैं।

79. ओम (ऊँ) में पंच परमेष्ठी सूचक पाँच अक्षर हैं –
1. अ, 2. अ, 3. आ, 4. उ, 5. म।

80. अ, सि, आ, उ, सा, में पाँच अक्षर पंच परमेष्ठी सूचक हैं।

81. अभक्ष्य के पाँच भेद –
1. बहुस्थावर हिंसाकारक, 2. त्रसहिंसाकारक,
3.प्रमादकारक (नशाकारक), 4.अनिष्टकारक, 5.अनुपसेव्य।

82. नाम कर्म की जाति अथवा शरीर प्रकृतियाँ पाँच –
1. एकेन्द्रिय, 2. द्वीन्द्रिय, 3. तेइन्द्रिय, 4. चतुरिन्द्रिय, 5. पंचेन्द्रिय।

83. नाम कर्म की बन्धन प्रकृतियाँ पाँच –
1. औदारिक बंधान, 2. वैक्रियिक बंधान, 3. आहारक बंधान,
4. तैजस बंधान, 5. कार्माण बंधान।

84. पाँच संघात प्रकृतियाँ – 1.औदारिक संघात, 2.वैक्रियिक संघात,
3. आहारक संघात, 4. तैजस संघात, 5. कार्मण संघात।

85. चारित्र के पाँच भेद –
1. सामायिक, 2. छेदोपस्थापना, 3. परिहारविशुद्धि,
4. सूक्ष्मसाम्पराय, 5. यथाख्यात।

86. अनऋद्धि प्राप्त आर्यों के पाँच भेद –
1. क्षेत्र आर्य, 2. जाति आर्य, 3. कर्म आर्य,
4. चारित्र आर्य, 5. दर्शन आर्य।

87. विवेक पाँच प्रकार –
1. इन्द्रिय विवेक, 2. कषाय विवेक, 3. उपाधि विवेक,
4. भक्तपान विवेक, 5. देह विवेक।

88. जिस साधु ने पंडितमरण करने का दृढ़ निश्चय कर लिया है, उसको इन पाँच शुद्धियों को धारण करना चाहिए –
1. आलोचना शुद्धि, 2. शैया संस्तर शुद्धि, 3. उपकरण शुद्धि,
4. भक्त पान शुद्धि, 5. वैयावृत्य करण शुद्धि।

89. निर्यापकाचार्य के अन्वेषण करने के लिए विहार करने वाले की विधि के पाँच प्रकार –
1.रात्रि प्रतिमा कुशल, 2. स्वाध्याय कुशल, 3. प्रश्न कुशल,
4. स्थडिलशायी, 5. आसक्ति रहित।

90. पाँचवा स्वर्ग – ब्रम्ह।
91. पाँचवे से आठवें स्वर्ग के देवों की अवगाहना पाँच हाथ होती है।
92. पाँचवा पूर्व – ज्ञान प्रवाद पूर्व।
93. पाँचवा अंग – व्याख्या प्रज्ञप्ति अंग।
94. समवसरण की पाँचवी सभा में व्यन्तर देवों की देवियाँ होती है।
95. तीर्थंकर की प्रथम पारणा के दिन आहारदाता के यहाँ नियम से पँच आश्चर्य होते हैं –
    1. रत्नवृष्टि (12,50,00,000) उत्कृष्ट व (1,25,000) जघन्य,
    2. देव दुन्दुभि,
    3. दिव्य पुष्पों की वृष्टि,
    4. जय-जय का उद्घोष,
    5. शीतल सुगन्धित वायु का बहना।
96. केवलज्ञान होते ही तीर्थंकर का शरीर 5,000 धनुष प्रमाण ऊर्ध्व गमन करता है।
97. पाँच पाण्डवों में से तीन (अर्जुन, भीम, युधिष्ठिर) मोक्ष गये और दो (नकुल और सहदेव) सर्वार्थ सिद्धि गये।
98. कुन्दकुन्द आचार्य गुरू की परम्परा पाँच –
    1. भद्रबाहु, 2. गुप्तिगुप्त, 3. माघनन्दी, 4. जिनचन्द्र, 5. कुन्दकुन्द।
99. केवल एक भव अवतार लेकर मोक्ष जाने वाले एक भवातारी पाँच –
    1. पाँचवे स्वर्ग के लौकान्तिक देव, 2. दक्षिणेन्द्र,
    3. इन्द्र की शचि, 4. लोकपाल,
    5. पाँच अनुत्तर विमानों के देव।
100. समवाय पाँच –
    1. स्वभाव, 2. पुरूषार्थ, 3. काल लब्धि,
    4. भवितव्य, 5. निमित्त।
101. धर्म के पाँच अंग निम्न हैं –
    1. णमोकार मन्त्र जैसा मन्त्र नहीं।
    2. वीतरागी जैसे देव नहीं।
    3. निर्ग्रन्थ जैसे गुरु नहीं।
    4. अहिंसा जैसा धर्म नहीं।
    5. आत्मध्यान जैसा ध्यान नहीं।

102. जैन धर्म की पाँच विशेषतायें हैं –

1. जैन धर्म भौतिक सम्पदा का प्रलोभन नहीं देता है।
2. जैन धर्म अवतारवाद को नहीं मानता है।
3. जैन धर्म अतिशय को नहीं मानता है।
4. जैन धर्म चमत्कार को भी नहीं मानता है।
5. जैन धर्म कर्तावाद को नहीं मानता है।

103. दाता के पाँच दूषण– 1. विलम्ब से देना, 2. विमुख होकर देना, 3.दुर्वचन, 4.निरादर, 5.देकर पश्चात्ताप करना।

104. निद्रा के पाँच भेद –

1.निद्रा, 2.निद्रा-निद्रा, 3.प्रचला, 4.प्रचला-प्रचला, 5.स्त्यानगृद्धि।

105. देशविरत (पाँचवें) गुणस्थान से जाने के पाँच मार्ग –

जीव यदि ऊपर चढ़ता है तो सातवें में जायेगा और
यदि नीचे गिरता है तो चौथे, तीसरे, दूसरे या पहिले में आयेगा।

106. अन्य दर्शन का स्वरूप –

1. न्याय वैशेषिक केवल नैगम नय के,
2. अद्वैतवादी और सांख्य केवल संग्रह नय के,
3. चार्वाक लोग केवल व्यवहार नय के,
4. बौद्ध लोग केवल ऋजूसूत्र नय के,
5. वैयाकरण केवल शब्द नय के।

107. मन के द्वारा परिणाम परिवर्तित होते हैं, उसकी पाँच भूमिकायें हैं –

1. क्षिप्त, 2. विक्षिप्त, 3. मूढ़, 4. चित्त निरोध, 5. एकाग्रता।
उपरोक्त भूमिकाओं में मन घूमता रहता है।

108. लब्धि अपर्याप्तक के भवों की संख्या –

एक इन्द्रिय में	–	66132 भव
दो इन्द्रिय में	–	80 भव
तीन इन्द्रिय में	–	60 भव
चार इन्द्रिय में	–	40 भव
पाँच इन्द्रिय में	–	24 भव
कुल योग	–	66336 भव

109. पाँच सूना – 1.बुहारी देना, 2.अग्नि जलाना, 3.जल भरना, 4. कूटना, 5. पीसना।

110. पैंतालिस लाख योजन विस्तार है –

1. सीमान्तक इन्द्रक बिल (प्रथम नरक), 2. ढाई द्वीप,
3. प्रथम स्वर्ग का ऋजुनामा विमान, 4. सिद्ध शिला,
5. सिद्ध क्षेत्र।

111. जीव के साथ संबंधित मुख्य वर्गणायें पाँच प्रकार की हैं –

1. आहार वर्गणा, 2. भाषा वर्गणा, 3. मनो वर्गणा,
4. तैजस वर्गणा, 5. कार्माण वर्गणा।

112. अर्थ व्यंजन योग संक्रान्ति –

1. अर्थ नाम ध्यान करने योग्य द्रव्य व पर्याय का है।
2. व्यंजन नाम वचन का है।
3. योग नाम काय, वचन, मन की क्रिया का है।
4. संक्रान्ति नाम पलटने का है।
5. इनमें जो द्रव्य को छोड़ उसकी पर्याय को ध्याता है तथा पर्याय को छोड़कर द्रव्य को ध्याता है तो अर्थ संक्रान्ति है।

113. मोक्ष पाँच प्रकार का होता है –

1. शक्ति मोक्ष, 2. दृष्टि मोक्ष, 3. मोह मोक्ष,
4. जीवन मोक्ष, 5. विदेह मोक्ष।

114. साधु की पाँच प्रकार की आहार चर्या –
भ्रामरी, गर्त्तपूरणी, उदराग्नि प्रशमन, अक्षमृक्षणी, गोचरी।

115. साध्वाभास के 5 भेद– पार्श्वस्थ, संसक्त, अवसन्न, मृगचारी, कुशील।

116. निमित्त – नैमित्तिक व कालिक क्रियाओं के भेद – दैवसिक, रात्रिक, पाक्षिकी, चातुर्मासिकी, वार्षिकी।

117. रंग, रूप, रुपया, राग और रसना – इन पाँच 'र' में लिप्तता संसार बढ़ाने का कारण हैं।

118. अजीव द्रव्य पाँच – 1.पुद्गल, 2.धर्म, 3.अधर्म, 4.आकाश, 5.काल।

119. अमूर्तिक द्रव्य – 1.जीव, 2.धर्म, 3.अधर्म, 4.आकाश, 5.काल।

120. (इज्जा) देवपूजा – 1. नित्यमह, 2. चतुर्मुख, 3. कल्पद्रुम,
4. अष्टान्हिका, 5. इन्द्रध्वज।

121. ज्ञानावरण कर्म की प्रकृतियाँ –

1. मतिज्ञानावरण, 2. श्रुतज्ञानावरण, 3. अवधिज्ञानावरण,
4. मन:पर्ययज्ञानावरण, 5. केवलज्ञानावरण।

122. पिंडस्थ ध्यान की धारणायें पाँच –

1. पृथ्वी धारणा, 2. अग्नि धारणा, 3. पवन धारणा,
4. जल धारणा, 5. तत्त्वरूपवती धारणा।

123. ब्रम्हचारी के पाँच भेद –

1. उपनय, 2. अवलम्ब, 3. अदीक्षा, 4. गूढ़, 5. नैष्ठिक।

124. द्विदल दोष के पाँच भेद –

1. अन्नद्विदल, 2. काष्ठ, 3. हरी, 4. शिखरनी, 5. काँजी।

125. उत्तम भावना –

1. तपोभावना, 2. श्रुतभावना, 3. सत्यभावना, 4. एकत्व भावना,
5. धृतिबलभावना।

126. संक्लिष्ट (कुत्सित) भावना के पाँच भेद –

1. कन्दर्पी, 2. कैल्विषी, 3. अभियोगिकी, 4. आसुरी, 5. संमोही।

127. माया के पाँच भेद –

1. निवृति, 2. उपधि, 3. सातिप्रयोग, 4. प्रणिधि, 5. प्रतिकुंचन।

128. विनय के पाँच भेद –

1. लोकानुवृति, 2. अर्थनिमित्तक, 3. कामतन्त्र, 4. भय, 5. मोक्ष।

129. तीर्थंकरों की निर्वाण भूमि पाँच –

1.कैलाशपर्वत, 2. गिरनार, 3. चम्पापुर, 4. पावापुर, 5. सम्मेदशिखर।

130. पूजा के अंग –

1. आह्वानन, 2. स्थापना, 3. सन्निधिकरण, 4. पूजन, 5. विसर्जन।

131. महावीर के पाँच नाम –

1. वर्धमान, 2. वीर, 3. अतिवीर, 4. सन्मति, 5. महावीर।

132. क्षुल्लक के पाँच भेद –

1. वानप्रस्थ क्षुल्लक, 2. नैष्ठिक क्षुल्लक, 3. गूढ़ क्षुल्लक,
4. वर्णी, 5. साधक क्षुल्लक।

133. पाँच अणुव्रत में प्रसिद्ध –

1. अहिंसाणुव्रत	–	मातंग
2. सत्याणुव्रत	–	धनदेव
3. अचौर्याणुव्रत	–	वारिषेण
4. ब्रम्हचर्याणुव्रत	–	नीलीबाई
5. परिग्रहपरिमाणव्रत	–	जयकुमार सेनापति

134. पाँच पापों में प्रसिद्ध –

1. हिंसा में	–	धनश्री
2. झूठ में	–	सत्यघोष
3. चोरी में	–	तापस
4. कुशील में	–	यमपाल
5. परिग्रह में	–	श्मश्रु नवनीत ब्राम्हण

135. पाँच मिथ्यात्वों में प्रसिद्ध –

1. विपरीत मिथ्यात्व में	–	याज्ञिक ब्राम्हण
2. एकान्त मिथ्यात्व में	–	घोष
3. विनय मिथ्यात्व में	–	शैव तापस
4. संशय मिथ्यात्व में	–	श्वेताम्बर मुँहपट्टी वाले
5. अज्ञान मिथ्यात्व में	–	मस्करी नाम (मुस्लिम)

136. प्राकृत भाषा के पाँच भेद –

1. मागधी, 2. अर्धमागधी, 3. शौरसैनी, 4. वैशाची, 5. चूलिका।

137. पाँच समझने योग्य बातें –

1. मिथ्यात्व का वमन, 2. सम्यक्त्व का उत्पन्न,
3. कषायों का शमन, 4. इन्द्रियों का दमन,
5. आत्मानुभवन।

138. पाँच त्यागने योग्य बातें –

(क) 1. कीर्ति, 2. कंचन, 3. कामिनी, 4. कुटुम्ब, 5. करिश्मा।
(ख) 1. प्रदर्शन, 2. प्रतिष्ठा, 3. प्रतिस्पर्धा, 4. पाप, 5. पैशून्य।
(ग) 1. मंच, 2. माला, 3. माईक, 4. मान, 5. माया।

139. पाँच ग्रहण करने योग्य बातें –

1. सम्यक्त्व, 2. श्रुत, 3. समता, 4. शान्ति, 5. सुख।

छह (6)

1. छठे तीर्थंकर **श्री पद्मप्रभजी**।
2. छठे तीर्थंकर का चिह्न **श्वेत कमल** है।
3. तीर्थंकर पद्मप्रभ का छद्मस्थ काल 6 मास।
4. अरहँत सिद्ध में छः अक्षर हैं।
5. ऊँ नमः सिद्धेभ्यः में छह अक्षर हैं।
6. छठा गुण स्थान – प्रमत्त विरत गुणस्थान है।
7. छठे गुणस्थान से तेरहवें गुणस्थान तक तीन कम नौ करोड़ जीव हैं।
8. तीर्थंकर मल्लिनाथ का छद्मस्थ काल– 6 दिन (सबसे कम समय)।
9. छठी प्रतिमा – रात्रि भुक्ति त्याग/दिवा मैथुन त्याग प्रतिमा।
10. षट् लेश्या –
    1. कृष्ण, 2. नील, 3. कापोत, 4. पीत, 5. पद्म, 6. शुक्ल।
11. द्रव्य लेश्या का वर्ण –
    1. काला, 2. गहरा नीला, 3. कबूतरी,
    4. पीला, 5. हल्का पीला/फीका गुलाबी, 6. सफेद।
12. भाव लेश्या –
    1. तीव्रतम, 2. तीव्रतर, 3. तीव्र, 4. मन्द, 5. मन्दतर, 6. मन्दतम।
13. गृहस्थ के षट् कार्य –
    1. असि, 2. मसि, 3. कृषि, 4. विद्या, 5. वाणिज्य, 6. शिल्प।
14. गृहस्थ के षट् आवश्यक कर्म –
    1. देवपूजा, 2. गुरुपासना, 3. स्वाध्याय, 4. संयम, 5. तप, 6. दान।
15. मुनि के षट् आवश्यक क्रियाएं –
    1.सामायिक, 2.स्तुति, 3.वन्दना, 4.स्वाध्याय, 5.प्रतिक्रमण, 6.कायोत्सर्ग।
16. षट् काय जीव –
    1. पृथ्वी, 2. जल, 3. अग्नि, 4. वायु, 5. वनस्पति, 6. त्रस।
17. षट् इन्द्रियाँ – 1.स्पर्शन, 2.रसना, 3.घ्राण, 4.चक्षु, 5.कर्ण, 6.मन।
18. द्रव्य छह – 1.जीव, 2.पुद्गल, 3.धर्म, 4.अधर्म, 5.आकाश, 6.काल।
19. छह खण्ड – पाँच म्लेच्छ खण्ड, एक आर्य खण्ड।
20. षट् काल –1. सुखमा सुखमा, 2. सुखमा, 3. सुखमा दुखमा,
    4. दुखमा सुखमा, 5. दुखमा, 6. दुखमा दुखमा।

21. जम्बूद्वीप के पर्वत छह –

1. हिमवान पर्वत, 2. महाहिमवान पर्वत, 3. निषध पर्वत,
4. नील पर्वत, 5. रुक्मी पर्वत, 6. शिखरिणी पर्वत।

22. शाश्वत भोगभूमि क्षेत्र छह –

1. देवकुरु, 2. उत्तर कुरू (उत्तम भोगभूमि),
3. हरिक्षेत्र, 4. रम्यकक्षेत्र (मध्यम भोगभूमि),
5. हैमवत, 6. हैरण्यवत् (जघन्य भोगभूमि)।

23. षट् दर्शन –1. वैशेषिक दर्शन, 2. न्याय दर्शन, 3. साँख्य दर्शन,
4. योग दर्शन, 5. पूर्व मीमांसा दर्शन,
6. उत्तर मीमांसा (वेदान्त) दर्शन।

24. छह देवी – 1. श्री, 2. ह्रीं, 3. धृति, 4. कीर्ति, 5. बुद्धि, 6. लक्ष्मी।

25. पर्याप्ति छह–1. आहार पर्याप्ति, 2. शरीर पर्याप्ति, 3. इन्द्रिय पर्याप्ति,
4.श्वासोच्छवास पर्याप्ति, 5.भाषा पर्याप्ति, 6.मनः पर्याप्ति।

26. छह अनायतन– 1.कुगुरु, 2.कुदेव, 3.कुधर्म (4,5,6)इन तीनों के सेवक।

27. षट् खण्डागम – (पुष्पदंत, भूतबलि) द्वारा रचित सबसे पहला ग्रन्थ।

28. छह दिशा – 1.पूर्व, 2.पश्चिम, 3.उत्तर, 4.दक्षिण, 5.ऊर्ध्व, 6.अधो।

29. छहढाला – पं० दौलतराम कृत जैन ग्रन्थ।

30. आहार छह प्रकार –

1. कर्माहार	–	मुख्यता नारकियों का
2. मानसिक आहार	–	मुख्यता देवों का
3. नोकर्माहार	–	मुख्यता अरहन्तों का
4. कवलाहार	–	मुख्यता मनुष्यों का
5. ओजाहार	–	मुख्यता पक्षियों का
6. लेपाहार	–	मुख्यता वनस्पति का

31. आसन छह प्रकार –

1. पद्मासन, 2. अर्धपद्मासन, 3. वज्रासन,
4. कमलासन, 5. सुखासन, 6. खड्गासन।

32. गुणप्रत्यय अवधिज्ञान छह प्रकार –

1. अनुगामी, 2. अननुगामी, 3. वर्धमान,
4. हीयमान, 5. अवस्थित, 6. अनवस्थित।

33. द्रव्य के अनन्त सामान्य गुणों में से मुख्य छः –

1. अस्तित्व, 2. वस्तुत्व, 3. द्रव्यत्व,
4. प्रमेयत्व, 5. अगुरूलघुत्व, 6. प्रदेशत्व।

34. संस्थान के छः भेद –

1. समचतुरस्र, 2. न्यगोध्रपरिमण्डल, 3. स्वाति,
4. कुब्जक, 5. वामन, 6. हुण्डक।

35. संहनन के छह प्रकार –

1.वज्रवृषभ नाराच संहनन, 2.वज्रनाराच संहनन,
3.नाराच संहनन, 4.अर्धनाराच संहनन,
5.कीलक संहनन, 6.असंप्राप्ता सृपाटिका संहनन।

36. सम्यक्त्व मार्गणा के छः भेद –

1. औपशमिक सम्यक्त्व, 2. क्षायोपशमिक सम्यक्त्व,
3. क्षायिक सम्यक्त्व, 4. सम्यक् मिथ्यात्व,
5. सासादन, 6. मिथ्यात्व।

37. छठे नरक तक नारी जा सकती है।

38. चौइन्द्रिय की उत्कृष्ट आयु 6 माह होती है।

39. छठे नरक से निकला जीव नर, पशु कदाचित सम्यक्त्वी भी हो सकता है और देशव्रती भी हो सकता है।

40. षट् रस – 1. नमक, 2. मीठा, 3. घी, 4. दूध, 5. दही, 6. तेल।

41. कारक छः– 1. कर्ता, 2. कर्म, 3. करण,
4. सम्प्रदान, 5. अपादान, 6. अधिकरण।

42. स्कन्ध छः– 1. बादर बादर, 2. बादर, 3. बादर सूक्ष्म,
4. सूक्ष्म बादर, 5. सूक्ष्म, 6. सूक्ष्म सूक्ष्म।

43. प्रमाद से छः प्रकृतियों का बन्ध होता है –

1. अस्थिर, 2. अशुभ, 3. असाता वेदनीय,
4. अयशः कीर्ति, 5. अरति, 6. शोक।

44. रस ऋद्धि के छः भेद – 1. आशीविष, 2. दृष्टिविष, 3.क्षीरस्रावी,
4. मधुस्रावी, 5. अमृतस्रावी, 6.सर्पिस्रावी।

45. द्वेष के छः भेद –

1.क्रोध, 2.मान, 3.अरति, 4.शोक, 5.भय, 6.जुगुप्सा।

46. बाह्य तप के छह प्रकार –

1. अनशन, 2. अवमौदर्य, 3. वृत्ति परिसंख्यान,
4. रसपरित्याग, 5. विविक्त शैयासन, 6. कायक्लेश।

47. अन्तरंग तप छह प्रकार –

1. प्रायश्चित, 2. विनय, 3. वैयावृत्य,
4. स्वाध्याय, 5. व्युत्सर्ग, 6. ध्यान।

48. छहढाला की विषय वस्तु –

1. पहली ढाल में चारों गतियों के दु:खों का वर्णन है।
2. दूसरी ढाल में मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र का वर्णन है।
3. तीसरी ढाल में सम्यग्दर्शन का वर्णन है।
4. चौथी ढाल में सम्यग्ज्ञान व एकदेश चरित्र का वर्णन है।
5. पाँचवी ढाल में बारह भावना का वर्णन है।
6. छठी ढाल में मुनियों के चारित्र का वर्णन है।

49. पर्यायार्थिक नय के छ: भेद –

1. अनादि नित्य पर्यायार्थिक नय
   जैसे- पुद्गल की पर्याय सुमेरु पर्वत आदि नित्य हैं।
2. सादि नित्य पर्यायार्थिक नय
   जैसे- सिद्ध पर्याय नित्य है।
3. सत्ता को गौण करके उत्पाद, व्यय को ग्रहण करने का है स्वभाव जिसका, ऐसा अनित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नय है।
   जैसे- पर्याय।
4. सत्ता सापेक्ष पर्याय को ग्रहण करना है स्वभाव जिसका, ऐसा अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय।
   जैसे- एक समय में पर्याय त्रयात्मक / उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यात्मक है।
5. कर्मोपाधि से निरपेक्ष पर्याय को ग्रहण करना है स्वभाव जिसका, ऐसा अनित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नय।
   जैसे- संसारी जीवों की पर्याय सिद्ध जीवों की पर्याय के समान शुद्ध है।
6. कर्मोपाधि से सापेक्ष पर्याय को ग्रहण करना है स्वभाव जिसका, ऐसा अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय।
   जैसे- संसारी जीवों का जन्म और मरण होता है।

50. सामायिक के छह भेद –

1. नाम सामायिक, 2. स्थापना सामायिक, 3. द्रव्य सामायिक,
4. क्षेत्र सामायिक, 5. काल सामायिक, 6. भाव सामायिक।

51. छह गुण हानि वृद्धि –

छह वृद्धि –	**छह हानि –**
1. अनन्त भाग वृद्धि,	1. अनन्त भाग हानि,
2. असंख्यात भाग वृद्धि,	2. असंख्यात भाग हानि,
3. संख्यात भाग वृद्धि,	3. संख्यात भाग हानि,
4. संख्यात गुण वृद्धि,	4. संख्यात गुण हानि,
5. असंख्यात गुण वृद्धि,	5. असंख्यात गुण हानि,
6. अनन्त गुण वृद्धि,	6. अनन्त गुण हानि।

52. कार्य पर से छः प्रश्न उठते हैं –

1. किसने किया?	–	कर्ता
2. क्या किया?	–	कर्म
3. किस साधन द्वारा किया?	–	करण
4. किसके लिए किया?	–	सम्प्रदान
5. किसमें से किया?	–	अपादान
6. किस आधार से किया?	–	अधिकरण

53. छठे (प्रमत्त) गुणस्थान से जाने के छह मार्ग हैं –
यदि जीव ऊपर चढ़ता है तो सातवें में जायेगा और नीचे गिरता है तो पाँचवें, चौथे, तीसरे, दूसरे या पहिले में जायेगा।

54. ऋतुएँ छह प्रकार की हैं –

1. बसन्त ऋतु (चैत्र और बैशाख में)
2. ग्रीष्म ऋतु (ज्येष्ठ व आषाढ़ में)
3. वर्षा ऋतु (श्रावण और भाद्रपद में)
4. शरद ऋतु (आसौज और कार्तिक में)
5. हेमन्त ऋतु (मंगसिर और पौष में)
6. शिशिर ऋतु (माघ और फाल्गुन में)

55. स्वर्गों के एक भवातारी देवों के नाम –

प्रथम स्वर्ग सौधर्म इन्द्र – तीसरा स्वर्ग सनतकुमार
पाँचवाँ स्वर्ग ब्रम्ह इन्द्र – नौवाँ स्वर्ग शुक्र इन्द्र

तेरहवाँ स्वर्ग आनत इन्द्र – पन्द्रहवाँ स्वर्ग आरण इन्द्र
ये 6 दक्षिणेन्द्र एक भवातारी होते हैं।

56. जो उत्तरेन्द्र छह हैं उनका एक भवातारी का नियम नहीं है।

57. चँवर किसके ऊपर कितने होते हैं –
    1. तीर्थंकर – 64 चँवर
    2. चक्रवर्ती – 32 चँवर
    3. नारायण – 16 चँवर
    4. मण्डलीक – 8 चँवर
    5. महाराजा – 2 चँवर
    6. राजा – 1 चँवर

58. मुनियों के आहार न करने के छह कारण –
    1. रोग, 2. उपसर्ग, 3. ब्रम्हचर्य की रक्षा,
    4. जीवदया, 5. तप, 6. सन्यास मरण।

59. रत्नत्रय और तत्त्वों को जानने के उपाय छह हैं –
    1. निर्देश – वस्तु स्वरूप का कथन
    2. स्वामित्व – वस्तु का अधिकारी (मालिकपन)
    3. साधन – उत्पत्ति का कारण
    4. अधिकरण – आधार
    5. स्थिति – काल मर्यादा
    6. विधान – भेद / प्रकार

60. छह कारणों से हिंसा के फल में हीनाधिकता (कमीवेशी) होती है –
    1. तीव्र भाव, 2. मन्द भाव,
    3. ज्ञात भाव, 4. अज्ञात भाव,
    5. अधिकरण, 6. वीर्य (शक्ति)।

61. शास्त्र लिखने, पढ़ने से पूर्व षट् आवश्यक –
    1. मंगल, 2. निमित्त, 3. हेतु,
    4. परिमाण, 5. नाम, 6. कर्त्ता।

62. व्याख्या प्रश्न –
    1. निर्देश, 2. स्वामित्व, 3. साधन,
    4. अधिकरण, 5. स्थिति, 6. विधान।

63. संवर के कारण –

1. गुप्ति,	2. समिति,	3. धर्म,
4. अनुप्रेक्षा,	5. परिषहजय,	6. चारित्र।

64. ज्ञानावरण व दर्शनावरण कर्म के आस्रव के कारण –

1. प्रदोषता,	2. निंहव,	3. मात्सर्य,
4. अंतराय,	5. आसादना,	6. उपघात।

65. असाता वेदनीय कर्म के आस्रव के कारण –

1. दुःख,	2. शोक,	3. ताप,
4. आक्रन्दन,	5. वध,	6. परिदेवन।

66. आवली के छह भेद –

1. अचलावली,	2. उच्छिष्टावली,	3. उदयावली,
4. द्वितीयावली,	5. बंधावली,	6. वृन्दावली।

तृष्णा की खाई खूब भरी, पर रिक्त रही वह रिक्त रही।

जगत में देखो! यदि लाखों का धन हो, तो भोगने में सभी नहीं आ जाता है, भोगने में तो आधा सेर अन्न आता है। तृष्णा ऐसी बढ़ती जाती है कि अब और धन बढ़ा लूँ; अहो! अन्य के पास तो पचास लाख धन हो गया, मेरे पास तो पाँच लाख ही है; अब और धन कैसे बढ़ाऊँ? कौन आरंभ करूँ, कौन उपाय करूँ, कौन राजादि को प्रसन्न करूँ, कौन व्यापार करूँ, किससे मित्रता करूँ जिसकी सलाह से मुझे धन की कमाई हो जाय, किस सेवक को अपने यहाँ काम करने को रख लूँ, जो मेरा थोड़ा धन खाय तथा बहुत धन कमाकर दे?

ऐसे हजारों दुर्ध्यान करता हुआ संसारी जीव समस्त राज्य, ऐश्वर्य छोड़कर महामूर्च्छा से अतिरौद्र परिणामों से मरकर नरक के घोर दुःख भोगता है। संसार में अनंत दुःखमय परिभ्रमण करता हुआ क्षुधा, तृषा, रोग, दारिद्र को भोगता हुआ अनंतकाल व्यतीत करता है।

अब इस घोरकाल में, कोई कुछ मोह निद्रा के उपशम होने से जिनेन्द्र भगवान के वचन से, कोई अत्यन्त विरले पुरूष सचेत होकर, अपने हित का विचार करते हुए, चार प्रकार के दानों में प्रवर्तन करते हैं।

–रत्नकरण्ड श्रावकाचार, श्लोक 117

सात (7)

1. सातवें तीर्थंकर – **श्री सुपार्श्वनाथ जी**।
2. सातवें तीर्थंकर का चिह्न साथिया है।
3. सातवीं प्रतिमा – ब्रम्हचर्य प्रतिमा।
4. सात तत्व – 1. जीव, 2. अजीव, 3. आस्रव, 4. बन्ध, 5. संवर, 6. निर्जरा, 7. मोक्ष।
5. सात नरक भूमियाँ –
   1. रत्नप्रभा, 2. शर्कराप्रभा, 3. बालुकाप्रभा, 4. पंकप्रभा, 5. धूमप्रभा, 6. तम:प्रभा, 7. महातम:प्रभा।
6. सात नरक भूमियों के रौढ़िक नाम –
   1. धम्मा, 2. वंशा, 3. मेघा, 4. अंजना, 5. अरिष्टा, 6. मघवी, 7. माघवी।
7. मुनि के सात शेष गुण –
   1. स्नान नहीं करना, 2. खड़े होकर आहार लेना, 3. केश-लोंच करना, 4. एक बार थोड़ा भोजन करना, 5. एक करवट से भूमि शयन, 6. दंत धावन नहीं करना, 7. नग्न रहना।
8. सात भय –
   1. इस लोक का भय, 2. परलोक का भय, 3.अकस्मात भय, 4. अरक्षा भय, 5. वेदना का भय, 6.मरण भय, 7. अगुप्ति भय।
9. सप्त भंगी –
   1. स्याद् अस्ति, 2. स्याद् नास्ति, 3. स्याद् अस्ति नास्ति, 4. स्याद् अवक्तव्य, 5. स्याद् अस्ति अवक्तव्य, 6. स्याद् नास्ति अवक्तव्य, 7. स्याद् अस्ति नास्ति अवक्तव्य।
10. सात नय –
    1. नैगमनय, 2. संग्रहनय, 3. व्यवहारनय, 4. ऋजुसूत्रनय, 5. शब्दनय, 6. समभिरूढ़नय, 7. एवंभूतनय।
11. सात शील –
    1. दिग्व्रत, 2. देशव्रत, 3. अनर्थदण्डत्यागव्रत, 4. सामायिक, 5. प्रोषधोपवास, 6. भोगोपभोगपरिमाण, 7. अतिथि संविभाग।

12. सप्त ऋषि –
    1. श्रीमन्य, 2. सुमन्य, 3. निश्चय, 4. सर्वसुन्दर,
    5. जयवान, 6. विनयलालस, 7. जयमित्र।
13. काययोग के सात भेद –
    1. औदारिक, 2.औदारिक मिश्र काय योग, 3.वैक्रियिक,
    4. वैक्रियिक मिश्र काय योग, 5. आहारक,
    6. आहारक मिश्र काय योग, 7. कार्मण काय योग।
14. सात व्यसन –
    1. जुआ खेलना, 2. चोरी करना, 3. शराब पीना, 4. परस्त्रीगमन,
    5. वेश्यागमन, 6. माँस खाना, 7. शिकार खेलना।
15. सातवें बलभद्र – नंदीमित्र
16. सातवें नारायण – पुरुषदत्त (नरसिंह)
17. सातवें प्रतिनारायण – प्रहरण
18. सातवें नारद – दुर्मुख
19. सातवें कुलकर – विमलवाहन
20. सातवें कामदेव – अग्निमुख
21. सातवें चक्रवर्ती – अरनाथ
22. सातवें रूद्र – पुण्डरीक
23. दो इन्द्रिय जीवों के कुल – सात लाख करोड़।
24. जलकायिक की उत्कृष्ट आयु सात हजार वर्ष है।
25. सात लाख जलकायिक योनि।
26. सात लाख पृथ्वीकायिक योनि।
27. सात लाख वायुकायिक योनि।
28. सात लाख अग्निकायिक योनि।
29. सात लाख नित्य निगोद योनि।
30. सात लाख इतर निगोद योनि।
31. सातवाँ गुणस्थान – अप्रमत्त विरत गुणस्थान।
32. समुद्घात सात –
    1. कषाय समुद्घात, 2. वेदना समुद्घात, 3.मारणान्तिक समुद्घात,
    4. आहारक समुद्घात, 5. तैजस समुद्घात, 6.केवली समुद्घात,
    7. वैक्रियिक समुद्घात।

33. भरत क्षेत्र में तीर्थंकर सुविधिनाथ से तीर्थंकर धर्मनाथ तक सात बार धर्म का लोप हुआ।
34. स्वर्ग में उत्कृष्ट शरीर सात हाथ ऊँचा होता है।
35. ज्योतिषी देवों की अवगाहना – सात धनुष।
36. सातवें नरक तक मगरमच्छ व मनुष्य जा सकता है।
37. सातवें नरक का जीव निकलकर पशु ही बन सकता है।
38. संयम मार्गणा के सात भेद –
    1. सामायिक, 2. छेदोपस्थापना, 3. परिहार विशुद्धि,
    4. सूक्ष्मसाम्पराय, 5. यथाख्यात, 6. संयमासंयम, 7. असंयम।
39. शरीर की सात धातु –
    1. रस, 2. रक्त, 3. माँस, 4. मेद,
    5. मज्जा, 6. अस्थि, 7. वीर्य।
40. शरीर की सात उपधातुएँ –
    1. वात, 2. पित्त, 3. कफ, 4. शिरा,
    5. स्नायु, 6. चाम, 7. जठराग्नि।
41. राक्षसों के सात भेद –
    1. भीम, 2. महाभीम, 3. विनायक, 4. उदक,
    5. राक्षस, 6. राक्षस-राक्षस, 7. ब्रम्हराक्षस।
42. भूतों के सात भेद –
    1. स्वरूप, 2. प्रतिरूप, 3. भूतोत्तम, 4. प्रतिभूत,
    5. महाभूत, 6. प्रतिच्छत्र, 7. आकाशभूत।
43. पंकप्रभा में सात इन्द्रक बिल होते हैं।
44. केवली के सात प्रकार –
    1. तीर्थंकर केवली, 2. अनुबद्ध केवली, 3. उपसर्ग केवली,
    4. अन्त:कृत केवली, 5. मूक केवली, 6. सातिशयकेवली,
    7. सामान्य केवली।
45. छठे काल के अन्त में मेघों के समूह सात प्रकार की निकृष्ट वस्तुओं की वर्षा सात-सात दिन तक करते हैं –
    1. संवर्तक वायु, 2. क्षार जल, 3. विष, 4. धुँआ,
    5. धूलि, 6. वज्र, 7. जलती हुई दुष्प्रेक्ष्य अग्नि ज्वाला।

46. उत्सर्पिणी काल के प्रारम्भ में सात-सात दिन तक जल, दूध, घी, अमृत व रस की वर्षा होती है एवं मन्द शीतल वायु चलती है।

47. ऋद्धियाँ सात प्रकार –
1. बुद्धि, 2. विक्रिया, 3. तप, 4. बल, 5. औषध, 6. रस, 7.अक्षीण।

48. तप ऋद्धि के सात भेद –
1. उग्रतप, 2. दीप्ततप, 3. तप्त तप, 4. महातप,
5. घोरतप, 6. घोरपराक्रम 7. घोर ब्रम्हचारित्व।

49. राग के सात भेद –
1. माया, 2. लोभ, 3. हास्य, 4. रति,
5. स्त्रीवेद, 6. पुरुषवेद, 7, नपुंसकवेद।

50. सात कार्य करते समय मौन –
1. पेशाब, 2. शौच, 3. भोजन, 4. स्नान,
5. सामायिक, 6. पूजा, 7. मैथुन।

51. जम्बूद्वीप के सात क्षेत्र –
1. भरत, 2. हैमवत, 3. हरि, 4. विदेह,
5. रम्यक, 6. हैरण्यवत, 7. ऐरावत।

52. दाता के सात गुण –
1. श्रद्धा, 2. तुष्टि, 3. विवेक,
4. अलुब्धता (अलोलुपता), 5. क्षमा,
6. शक्ति अनुसार दान, 7. भक्ति।

53. अप्रिय वचन के सात भेद –
1. परुष वचन , 2. कटुक, 3. बैरकारक, 4. कलहकारक,
5. भयकारक, 6. त्रासन, 7. अवलेहन।

54. प्रतिक्रमण, आलोचना के सात भेद –
1. दैवसिक, 2. रात्रिक, 3.ऐर्यापथिक, 4. पाक्षिक,
5. चतुर्मासिक, 6. सांवत्सरिक, 7. उत्तमार्थ।

55. ध्यान के योग्य सात आसन –
1. पर्यंकासन, 2.अर्धपर्यंकासन, 3. वज्रासन, 4. वीरासन,
5. सुखासन, 6. कमलासन, 7. कायोत्सर्ग।

56. सम्यग्दर्शन की घातक सात प्रकृतियाँ –
3 दर्शन मोहनीय की तथा 4 अनन्तानुबन्धी कषाय।

57. दान देने योग्य सात क्षेत्र –

1. पूजा, 2. प्रतिष्ठा, 3. तीर्थयात्रा, 4. पात्रदत्ति,
5. समदत्ति, 6. दयादत्ति, 7. अन्वयदत्ति।

58. समवसरण में नहीं होने वाली सात बातें –

1. भूख, 2. प्यास, 3. रोग, 4. शोक,
5. शत्रुभय, 6. चिन्ता, 7. द्रव्य मिथ्यात्व।

59. स्वर के सात भेद –

1. षड्ज, 2. ऋषभ, 3. गान्धार, 4. मध्यम,
5. पंचम, 6. धैवत, 7. निषाद।

60. नारायण के सात महारत्न –

1. शक्ति, 2. धनुष, 3. गदा, 4. चक्र,
5. कृपाण, 6. शंख, 7. दण्ड।

61. श्रावक के सात अन्तराय –

1. गीला चमड़ा या माँस देखने पर।
2. रजस्वला स्त्री व सूखा चमड़ा छू जाने पर।
3. मारो-काटो आदि कर्कश शब्द सुनने पर।
4. त्याग की हुई वस्तु खाने पर।
5. मरे हुए जीव-जन्तु भोजन में आने पर।
6. वमन होने पर।
7. बाल या ग्लानि आने पर।

62. सप्तव्यसनों में प्रसिद्ध व्यक्ति –

1. जुआ खेलना	–	पाण्डव राजा युधिष्ठिर
2. माँस खाना	–	राजा बक
3. मदिरा पीना	–	यादव कुमार
4. शिकार खेलना	–	ब्रम्हदत्त चक्रवर्ती
5. वेश्यागमन	–	चारुदत्त सेठ
6. चोरी करना	–	शिवभूति ब्राम्हण
7. परस्त्रीरमण (अभिलाषा)	–	रावण।

आठ (8)

1. आठवें तीर्थंकर – **श्री चन्दप्रभ जी**।
2. आठवें तीर्थंकर का चिह्न चन्द्रमा है।
3. योग के आठ भेद –
   1. यम, 2. नियम, 3. आसन, 4. प्राणायाम,
   5. प्रत्याहार, 6. धारणा, 7. ध्यान, 8. समाधि।
4. आठ मूलगुण –
   1. मद्य त्याग, 2. माँस त्याग,
   3. मधु त्याग, 4. पँच उदम्बर त्याग,
   5. रात्रि भोजन त्याग, 6. जीवदया,
   7. देवदर्शन, 8. जल छान कर काम में लेना।
5. कला आठ होती हैं –
   1. चित्रकला, 2. संगीतकला, 3. नृत्यकला, 4. काव्यकला,
   5. साहित्यकला, 6. लेखनकला, 7. वचनकला, 8. भक्तिकला।
6. कर्म आठ –
   1. ज्ञानावरण, 2. दर्शनावरण, 3. वेदनीय, 4. मोहनीय,
   5. आयु कर्म, 6. नाम कर्म, 7. गोत्र कर्म, 8.अन्तराय कर्म।
7. सिद्धों के आठ गुण –
   1. सम्यक्त्व, 2. ज्ञान, 3. दर्शन, 4. वीर्यत्व,
   5. सूक्ष्मत्व, 6. अवगाहनत्व, 7. अगुरुलघुत्व, 8.अव्याबाधत्व।
8. व्यंतर देवों के आठ प्रकार –
   1. किन्नर, 2. किंपुरुष, 3. महोरग, 4. गन्धर्व,
   5. यक्ष, 6. राक्षस, 7. भूत, 8. पिशाच।
9. आठ प्रातिहार्य –
   1. सिंहासन, 2. पुष्पवृष्टि, 3. अशोक वृक्ष,
   4. प्रभामण्डल (भामण्डल), 5. दिव्य ध्वनि,
   6. दुन्दुभि (बाजों का बजना), 7. तीन छत्र, 8. चौसठ चँवर।
10. समवसरण की आठ भूमियाँ –
    1. चैत्य प्रसाद भूमि, 2. खातिका भूमि, 3. लता भूमि
    4. गृहआँगन भूमि, 5. उपवन भूमि, 6.ध्वज भूमि,
    7. कल्प भूमि, 8. मण्डप भूमि।

11. स्पर्श आठ –

1. कठोर, 2. कोमल, 3. हल्का, 4. भारी,
5. ठंडा, 6. गरम, 7. चिकना, 8. रूखा।

12. आठवीं प्रतिमा – आरम्भ त्याग प्रतिमा
13. आठवाँ गुणस्थान – अपूर्वकरण गुणस्थान
14. आठवें बलभद्र – रामचंद्र
15. आठवें नारायण – लक्ष्मण
16. आठवें प्रतिनारायण – रावण
17. आठवें नारद – नरकमुख
18. आठवें कुलकर – चक्षुष्मान
19. आठवें कामदेव – सनत चक्रवर्ती
20. आठवें चक्रवर्ती – सुभौम
21. आठवें रूद्र – अजितंधर
22. सम्यग्दर्शन के आठ गुण –

1. नि:शंकित, 2. नि:कांक्षित, 3. निर्विचिकित्सा,
4. अमूढ़दृष्टि, 5. उपगूहन, 6. स्थितिकरण,
7. वात्सल्य, 8. प्रभावना।

23. सम्यग्दर्शन के आठ दोष –

1. शंका, 2. कांक्षा, 3. विचिकित्सा, 4. मूढ़दृष्टि,
5. अनुपगूहन, 6. अस्थितिकरण, 7. अवात्सल्य, 8.अप्रभावना।

24. मद आठ प्रकार –

1. कुल का, 2. जाति का, 3. रूप का, 4. ज्ञान का,
5. धन का, 6. बल का, 7. तप का, 8. प्रभुता का।

25. आठ मंगल द्रव्य –

1. चँवर, 2. छत्र, 3. झारी, 4. दर्पण,
5. कलश, 6.बीजना (पंखा), 7. स्वस्तिक, 8. ध्वजा।

26. ज्ञानोपयोग आठ –

1. मतिज्ञान, 2. श्रुतज्ञान, 3.अवधिज्ञान,
4. मन:पर्ययज्ञान, 5. केवलज्ञान, 6. कुमति,
7. कुश्रुत, 8. कुअवधि।

27. आठ जगह निगोद नहीं होते –
    1. नारकी शरीर, 2. देव शरीर,
    3. आहारक शरीर, 4. केवली भगवान का शरीर,
    5. पृथ्वी, 6. जल, 7. अग्नि, 8. वायु।
28. आचार्यों के आठ गुण –
    1. आचारवान, 2. आधारवान, 3. व्यवहारवान, 4. प्रकर्ता,
    5. अपायोपायविदर्शी, 6. अवपीड्क, 7. अपरिस्त्रावी, 8. निर्यापक।
29. तीन इन्द्रिय जीवों के आठ लाख कोटि कुल।
30. आठ चक्रवर्ती मोक्ष गये –
    1. भरत, 2. सगर, 3. शान्तिनाथ, 4. कुन्थुनाथ,
    5. अरनाथ, 6. महापद्म, 7. हरिषेण, 8. जय।
31. सम्यक्त्व के आठ गुण –
    1. निर्वेद, 2. निन्दा, 3. गर्हा, 4. उपशम,
    5. भक्ति, 6. वात्सल्य, 7. अनुकम्पा, 8. संवेग।
32. ज्ञान के आठ अंग –
    1. व्यंजनाचार, 2. अर्थाचार, 3. उभयाचार, 4. कालाचार,
    5. विनयाचार, 6.उपधानाचार, 7. बहुमानाचार, 8.अनिन्हवाचार।
33. औषधि ऋद्धि के आठ भेद –
    1. आमर्शौषधि, 2. क्ष्वेलौषधि, 3. जल्लौषधि, 4. मलौषधि,
    5. विट्औषधि, 6. सर्वोषधि, 7. मुखनिर्विष, 8.दृष्टि निर्विष।
34. लौकिक नाटक रस आठ –
    1. श्रंगार, 2. हास्य, 3. करुण, 4. रौद्र,
    5. वीर, 6. भयानक, 7. वीभत्स, 8. अद्भुत।
35. पूजा के द्रव्य आठ –
    1. जल, 2. चन्दन, 3. अक्षत, 4. पुष्प,
    5. नैवेद्य, 6. दीप, 7. धूप, 8. फल।
36. सामायिक के लिए आठ साधन –
    1. योग्य क्षेत्र, 2.योग्य काल, 3.योग्य आसन, 4.योग्यविनय,
    5. मन:शुद्धि, 6.वचन शुद्धि, 7.कायशुद्धि, 8.भावशुद्धि।
37. सरागचारित्र अवस्था में दोषों की शुद्धि के आठ उपाय –
    1. प्रतिक्रमण, 2. प्रतिसरण, 3. प्रतिहार, 4. धारणा,
    5.निवृत्ति, 6. निन्दा, 7. गर्हा, 8. शुद्धि।

38. आठवें गुणस्थान की विशेषता –

1. प्रतिसमय अनन्तगुणी विशुद्धि।
2. पूर्वबद्ध कर्मों का असंख्यात गुणा स्थिति कांडक घात।
3. नवीन स्थिति बंध कम होता जाता है।
4. पूर्वबद्ध कर्मों का असंख्यात गुणा अनुभाग कांडक घात।
5. गुण श्रेणी निर्जरा।
6. गुण संक्रमण अर्थात् अनेक अशुभ प्रकृतियाँ शुभ में बदल जाती है।
7. भिन्न समयवर्ती जीवों के परिणाम असमान ही होते हैं।
8. एक समय अर्थात् समान समयवर्ती जीवों के परिणाम समान तथा असमान दोनों ही प्रकार के होते हैं।
9. यहाँ उपशम श्रेणी चढ़ते समय पहले भाग में मरण नहीं होता जबकि अन्य भागों में हो सकता है।
   उपशम श्रेणी से गिरते समय सभी भागों में मरण सम्भव है।
   क्षपक श्रेणी वालों का कहीं मरण नहीं, परन्तु चौदहवें गुणस्थान के अन्त में निर्वाण होता है।

39. मुनियों की आठ शुद्धि –
भाव, काय, विनय, ईर्यापथ, भिक्षा, प्रतिष्ठापन, शयनासन, वाक्यशुद्धि।

40. लोभ के आठ प्रकार –

1. स्व जीवित लोभ,	2. पर जीवित लोभ,
3. स्व आरोग्य लोभ,	4. पर आरोग्य लोभ,
5. स्व उपभोग्य लोभ,	6. पर उपभोग्य लोभ,
7. स्व इन्द्रिय लोभ,	8. पर इन्द्रिय लोभ।

इन आठ प्रकार के लोभ के वशीभूत होकर जीव इस भव में और पर भव में अनेक दुःखों को पाता है और संसार परिभ्रमण करता है।

41. श्रावक के आठ मूलगुण –
3 मकार का त्याग, 5 अणुव्रत का पालन, अथवा
3 मकार का त्याग, 5 उदुम्बर का त्याग

42. केवली के आठ भेद –

1. तीर्थंकर,	2. सातिशय,	3. सामान्य,	4. उपसर्ग,
5. अंतकृत,	6. मूक,	7. अनुबद्ध,	8. सतत।

43. मानव शरीर के आठ अंग –
दो हाथ, दो पाँव, नितम्ब, पीठ, वक्षस्थल, मस्तक।

44. अष्टांग महानिमित्त –

1. अंतरीक्ष,	2. भोम,	3. अंग,	4. स्वर,
5. व्यंजन,	6. लक्षण,	7. चिन्ह,	8. स्वप्न।

45. अवबोध प्रश्न –

1. सत,	2. संख्या,	3. क्षेत्र,	4. स्पर्शन,
5. काल,	6. अन्तर,	7. भाव,	8. अल्पबहुत्व।

46. लौकान्तिक देव –

1. सारस्वत,	2. आदित्य,	3. वन्हि,	4. अरूण,
5. गर्दतोय,	6. तुषित,	7. अव्याबाध,	8. अरिष्ट।

47. अष्ट प्रवचन मातृका –
5 समिति एवं 3 गुप्ति का ज्ञान।

48. निमित्त के आठ भेद –

1. प्रेरक,	2. उदासीन,	3. भावरूप,	4. अभावरूप,
5. अंतरंग,	6. बाह्य,	7. मुख्य,	8. गौण।

49. आठ भूमियाँ –
7 नरक भूमि एवं 1 सिद्धशिला।

50. पिण्ड शुद्धि –

1. उद्गम शुद्धि,	2. उत्पाद शुद्धि,	3. आहार शुद्धि,
4. संयोग शुद्धि,	5. प्रमाण शुद्धि,	6. अंगार शुद्धि,
7. धूम शुद्धि,	8. हेतु शुद्धि।	

51. द्रव्य में विरोधी धर्म –

1. अस्तित्व,	2. नास्तित्व,	3. नित्यत्व,	4. अनित्यत्व,
5. एकत्व,	6. अनेकत्व,	7. भेदत्व,	8. अभेदत्व।

52. 8 प्रकार के व्यन्तर देवों के भवनों में क्रम से होने वाले चैत्यवृक्ष –

1.अशोक,	2. चम्पक,	3. नागद्रुम,	4. तम्बक,
5. न्यग्रोध (बट),	6. कण्टक,	7. तुलसी,	8. कदम्ब।

53. सम्यक्त्व के आठ अंगों में प्रसिद्ध –

1. निशंकित अंग	–	अंजन चोर
2. निकांक्षित अंग	–	अनन्तमती
3. निर्विचिकित्सा अंग	–	उद्दायन राजा

4. अमूढ़दृष्टि अंग – रेवती रानी
5. उपगूहन अंग – जिनेन्द्र भक्त सेठ
6. स्थितिकरण अंग – वारिषेण कुमार
7. वात्सल्य अंग – विष्णु कुमार मुनि
8. प्रभावना अंग – वज्र कुमार मुनि।

54. आठ कर्मों की उत्कृष्ट एवं जघन्य स्थिति –

कर्म	उत्कृष्ट	जघन्य
1. ज्ञानावरण	30 कोड़ाकोड़ी सागर	अन्तर्मुहूर्त
2. दर्शनावरण	''	''
3. वेदनीय	''	12 मुहूर्त
4. मोहनीय–		
दर्शनमोहनीय	70 कोड़ाकोड़ी सागर	अन्तर्मुहूर्त
चारित्र मोहनीय	40 कोड़ाकोड़ी सागर	
5. आयुष्क	33 सागर (देव, नारकी)	10000 वर्ष
	3 पल्य (मनुष्य, तिर्यंच)	अन्तर्मुहूर्त
6. नाम	20 कोड़ाकोड़ी सागर	8 मुहूर्त
7. गोत्र	20 ''	''
8. अन्तराय	30 ''	अन्तर्मुहूर्त

विशेष:– ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्मों का जघन्य स्थिति बंध क्षपक श्रेणी के 10 वें गुणस्थान में और मोहनीय का 9 वें गुणस्थान में ही होता है। आयुकर्म का जघन्य स्थिति बंध संख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमि के मनुष्य, तिर्यंचों को ही होता है।

55. आठों कर्मों के उत्तर भेद –

5 ज्ञानावरण, 9 दर्शनावरण, 28 मोहनीय, 5 अन्तराय = 47
4 आयुष्क, 93 नाम, 2 गोत्र, 2 वेदनीय = 101
कुल = 148

56. आठों कर्मों की प्रकृतियाँ (पुण्य व पाप के भेद से) –

68 पुण्य प्रकृतियाँ, 100 पाप प्रकृतियाँ कुल = 168

148 में से 20 प्रकृतियाँ (8 स्पर्श, 5 रस, 2 गंध एवं 5 वर्ण) पुण्य रूप भी हैं और पाप रूप भी; अत: 168 हुईं।

57. अष्ट कर्मों में किस कर्म के क्षय से कौन सा गुण प्रकट होता है –

1. ज्ञानावरण कर्म के क्षय से	–	अनन्त ज्ञान
2. दर्शनावरण '' ''	–	अनन्त दर्शन
3. मोहनीय '' ''	–	अनन्त सुख (सम्यक्त्वगुण)
4. अन्तराय '' ''	–	अनन्त वीर्य
5. आयु '' ''	–	अवगाहनत्व
6. नाम '' ''	–	सूक्ष्मत्व
7. गोत्र '' ''	–	अगुरुलघुत्व
8. वेदनीय '' ''	–	अव्याबाधत्व

58. देवों के 8 गुण (ऋद्धियाँ) –

1. अणिमा,	2. महिमा,	3. लघिमा,	4. गरिमा,
5. प्राप्ति,	6. प्राकाम्य,	7. ईशित्व,	8. वशित्व।

जिस जीव के, जिस देश में, जिस काल में, जिस प्रकार से जन्म-मरण, लाभ-अलाभ, सुख-दुःख होना जिनेन्द्र भगवान ने दिव्यज्ञान से जाना है उस जीव के, उस देश में, उस काल में, उसी प्रकार से जन्म-मरण, लाभ-अलाभ, सुख-दुःख नियम से होते हैं, उसे दूर करने को कोई इन्द्र, अहमिन्द्र, जिनेन्द्र समर्थ नहीं है।

-श्री रत्नकरण्ड श्रावकाचार

नौ (9)

1. नौवें तीर्थंकर का नाम – **श्री पुष्पदन्त जी**।
   (इन्हें **सुविधिनाथ** के नाम से भी जाना जाता है)
2. नौवें तीर्थंकर का चिह्न मगरमच्छ है।
3. पदार्थ नौ –
   1. जीव, 2. अजीव, 3. आस्रव, 4. बन्ध,
   5. संवर, 6. निर्जरा, 7. मोक्ष, 8. पुण्य, 9. पाप।
4. ग्रैवेयिक नौ –
   1. सुदर्शन, 2. अमोघ, 3. सुप्रबुद्ध, 4. यशोधर, 5.सुभद्र,
   6.सुविशाल, 7. सुमन, 8. सौमन, 9. प्रीतिकर।
5. अनुदिश नौ –
   1. अर्चि, 2.अर्चिमालिनी, 3. वज्र (बैर), 4. वैरोचन,
   5. सौम, 6. अंक, 7. सौम्यरूप, 8.स्फटिक, 9.आदित्य।
6. जीव के नौ विशेष लक्षण –
   1. प्रत्येक प्राणी जीव है, 2. उपयोगमय है,
   3. अमूर्तिक है, 4. कर्ता है,
   5. स्वदेह परिमाण रहने वाला है, 6. भोक्ता है,
   7. संसारी है, 8. सिद्ध है,
   9. स्वभाव से ऊर्ध्वगमन करने वाला है।
7. दर्शनावरण नौ –
   1. चक्षुदर्शनावरण, 2. अचक्षुदर्शनावरण, 3. अवधिदर्शनावरण,
   4. केवलदर्शनावरण, 5. निद्रा, 6. निद्रा-निद्रा,
   7. प्रचला, 8. प्रचला-प्रचला, 9. स्त्यानगृद्धि।
8. नो (किंचित) कषाय नौ –
   1. हास्य, 2. रति, 3. अरति,
   4. शोक, 5. भय, 6. जुगुप्सा,
   7. स्त्रीवेद, 8. पुरुषवेद, 9. नपुंसकवेद।
9. निधि नौ –
   1. कालनिधि, 2. महाकाल, 3. नैसर्प,
   4. पांडुक, 5. पद्म, 6. माणवक,
   7. पिंगल, 8. शंख, 9. सर्वरत्न।

10. नारद नौ –

1. भीम,	2. महाभीम,	3. रुद्र,
4. महारुद्र,	5. काल,	6. महाकाल,
7. दुर्मुख,	8. नरकमुख,	9. अधोमुख।

11. नौ नारायण –

1. त्रिपिष्ट,	2. द्विपिष्ट,	3. स्वयंभू,
4. पुरुषोत्तम,	5. पुरुष सिंह,	6. पुंडरीक,
7. पुरुषदत्त(नरसिंह),	8. लक्ष्मण,	9. कृष्ण।

12. नौ बलभद्र –

1. विजय,	2. अचल,	3. धर्म,
4. सुप्रभ,	5. सुदर्शन,	6. नन्दी,
7. नंदीमित्र,	8. रामचन्द्र,	9. पद्म।

13. नौ प्रतिनारायण –

1. अश्वग्रीव,	2. तारक,	3. मेक,
4. मधुकेटभ,	5. निशुम्भ,	6. बलि,
7. प्रहरण,	8. रावण,	9. जरासंध।

14. तीर्थंकर नमिनाथ का छद्मस्थ काल नौ मास।
15. तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ का छद्मस्थ काल नौ वर्ष।
16. नौवीं प्रतिमा – परिग्रह त्याग प्रतिमा।
17. नौवाँ गुणस्थान – अनिवृत्तिकरण गुणस्थान।
18. नौवें बलभद्र – पद्म
19. नौवें नारायण – कृष्ण
20. नौवें प्रतिनारायण – जरासंध
21. नौवें नारद – अधोमुख
22. नौवें कुलकर – यशस्वी
23. नौवें कामदेव – वत्सराज
24. नौवें चक्रवर्ती – पद्म
25. नौवें रूद्र – जितनाभि
26. प्रायश्चित्त के नौ भेद –

1. आलोचना	2. प्रतिक्रमण,	3. तदुभय,
4. विवेक,	5. व्युत्सर्ग,	6. तप,
7. छेद	8. परिहार,	9. उपस्थापन।

27. नव देवता –

1. अरहन्त,	2. सिद्ध,	3. आचार्य,
4. उपाध्याय,	5. साधु,	6. जिन मन्दिर,
7. जिन प्रतिमा,	8. जिनागम,	9. जिनधर्म।

28. नवधा भक्ति –

1. पड़गाहन,	2. उच्चासन,	3. प्रक्षालन,
4. पूजा,	5. प्रणाम,	6. मन शुद्धि,
7. वचन शुद्धि	8. कायशुद्धि,	9. आहार-जल शुद्धि।

29. एक बार की मैथुन क्रिया में नौ लाख सम्मूर्छन जीवों की मृत्यु होती है।
30. सर्प के नौ लाख करोड़ कुल।
31. चार इन्द्रिय के नौ लाख कोटि कुल।
32. नव ग्रैवैयिक के नव पटल हैं।
33. नौ अनुदिश का एक पटल है।
34. बालुकाप्रभा के नौ इन्द्रक बिल हैं।
35. नवें ग्रैवेयिक तक द्रव्यलिंगी मुनि जा सकता है, इसके आगे नहीं।
36. नौ अनुदिश में भावलिंगी मुनि ही जाता है।
37. आठवें गुणस्थान की नौ विशेषताएँ –
    1. प्रतिसमय अनन्तगुणी विशुद्धि,
    2. पूर्वबद्ध कर्मों का असंख्यात गुणा स्थिति कांडक घात,
    3. नवीन स्थिति बंध कम हो जाता है,
    4. पूर्वबद्ध कर्मों का असंख्यात गुणा अनुभाग कांडक घात,
    5. गुण श्रेणी निर्जरा,
    6. गुण संक्रमण अर्थात् अनेक अशुभ प्रकृतियाँ शुभ में बदल जाती हैं,
    7. भिन्न समयवर्ती जीवों के परिणाम असमान ही होते हैं,
    8. एक अर्थात् समान समयवर्ती जीवों के परिणाम समान तथा असमान दोनों प्रकार के होते हैं,
    9. यहाँ उपशम श्रेणी वाले का चढ़ते समय पहले भाग में मरण नहीं होता, अन्य भागों में हो सकता है। उपशम श्रेणी से गिरते समय सभी भागों में मरण सम्भव है। (क्षपक श्रेणी वालों का मरण नहीं, परन्तु चौदहवें गुणस्थान के अन्त में निर्वाण होता है)।

38. अजगर की उत्कृष्ट आयु नौ पूर्वांग है।

39. नौ योनि –

1. सचित्त,	2. शीत,	3. संवृत,
4. अचित्त,	5. उष्ण,	6. विवृत,
7. सचित्ताचित,	8. शीतोष्ण,	9. संवृत विवृत।

40. विकलत्रय के नौ भेद हैं –

द्वीन्द्रिय, तीन इन्द्रिय और चार इन्द्रिय में से प्रत्येक के पर्याप्तक, निर्वृत्य पर्याप्तक और लब्ध्य पर्याप्तक की अपेक्षा कुल नौ भेद हुए।

41. मनुष्य के नौ भेद –

1. आर्यखण्ड, 2. म्लेच्छखण्ड, 3. भोगभूमि, 4. कुभोगभूमि –
इन चारों गर्भजों के पर्याप्तक और निवृत्यपर्याप्तक की अपेक्षा आठ भेद हुए। इनमें सम्मूर्छन मनुष्य का लब्ध्यपर्याप्तक भेद मिलाने से मनुष्यों के नौ भेद होते हैं।

42. नौ मल द्वार –

दो कान, दो आँख, दो नाक के नथने (स्वर), मुँह, गुदा और लिंग।

43. क्षायिक भाव (नव लब्धि) के नौ भेद –

1. क्षायिक सम्यक्त्व,	2. क्षायिक चारित्र,	3. क्षायिक दर्शन,
4. क्षायिक ज्ञान,	5. क्षायिक दान,	6. क्षायिक लाभ,
7. क्षायिक भोग,	8. क्षायिक उपभोग,	9. क्षायिक वीर्य।

44. चारण ऋद्धि के नौ भेद –

1. जलचारण,	2. जंघा चारण,	3. पुष्प चारण,
4. तंतु चारण,	5. पत्र चारण,	6. बीज चारण,
7. श्रेणी चारण,	8. अग्नि चारण,	9. नभ चारण।

45. नवग्रह –

1. रवि,	2. शुक्र,	3. मंगल,	4. सौम,
5. गुरु,	6. भृगु,	7. शनि,	8. राहु,

9. सुकेतु।

(इनकी पूजा से तीव्र गृहीत मिथ्यात्व का बंध होता है)

46. साधु परिवार –

1. पिता	–	धैर्य	2. माता	–	क्षमा
3. पत्नि	–	शान्ति	4. मित्र	–	सत्य
5. बहिन	–	दया	6. भ्राता	–	असंशय
7. शैया	–	भूमि	8. वस्त्र	–	दिशा
9. भोजन	–	ज्ञान।			

47. शील की नौ बाढ़ –

1. स्त्रियों के संसर्ग में नहीं रहना,
2. स्त्रियों के श्रंगार व रूप को नहीं देखना,
3. स्त्रियों के साथ बातचीत नहीं करना,
4. पूर्व के काम सेवन को स्मरण नहीं करना,
5. कामोद्दीपन (काम सेवन की इच्छा को बढ़ाने वाले) पदार्थों का सेवन नहीं करना,
6. स्त्रियों के श्रंगार को निरूपण करने वाले शास्त्रों/कथाओं को न पढ़ना, न सुनना,
7. स्त्रियों की चारपाई पर न सोना, न उनके आसन पर बैठना,
8. काम सेवन की कथा न करना, न सुनना,
9. पेट भर कर भोजन-पान न करना।

मेरा मेरा मत करे, तेरा नहिं है कोय।
चिदानन्द परिवार का, मेला है दिन दोय॥

ऐसा भाव निहार नित, कीजे ज्ञान विचार।
मिटे न ज्ञान बिचार बिन, अंतर-भाव विकार॥

ज्ञान-रवि वैराग्य जस, हिरदे चंद समान।
तास निकट कहो क्यों रहे, मिथ्यातम दु:ख जान॥

-श्रीमद् राजचन्द्र

दस (10)

1. दसवें तीर्थंकर – **श्री शीतलनाथ जी।**
2. दसवें तीर्थंकर का चिह्न कल्पवृक्ष है।
3. तीर्थंकर पार्श्वनाथ के गणधर दस।
4. दसवीं प्रतिमा – अनुमति त्याग प्रतिमा।
5. दसवाँ गुणस्थान – सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थान।
6. दसवें कुलकर – अभिचंद्र
7. दसवें कामदेव – कनकप्रभ
8. दसवें चक्रवर्ती – हरिषेण
9. दसवें रूद्र – पीठ
10. देव व नारकी की जघन्य आयु दस हजार वर्ष।
11. दस धर्म –

    1. उत्तम क्षमा, 2. उत्तम मार्दव, 3. उत्तम आर्जव,
    4. उत्तम सत्य, 5. उत्तम शौच, 6. उत्तम संयम,
    7. उत्तम तप, 8. उत्तम त्याग, 9. उत्तम आकिंचन्य,
    10. उत्तम ब्रम्हचर्य।

12. भवनवासी दस –

    1. असुरकुमार, 2. नागकुमार, 3. विद्युतकुमार,
    4. सुपर्णकुमार, 5. अग्निकुमार, 6. वातकुमार,
    7. स्तनित कुमार, 8. उदधिकुमार, 9. द्वीपकुमार,
    10. दिक्कुमार।

13. तीर्थंकर केवली के जन्म के अतिशय दस –

    1. पसेव नहीं, 2. मल नहीं,
    3. समचतुरस्रसंस्थान, 4. बज्रवृषभनाराच संहनन,
    5. सुगन्धमयी शरीर, 6. मधुर वचन,
    7. श्वेत रुधिर, 8. एक हजार आठ शुभलक्षण,
    9. सुन्दर रूप, 10. अतुल्य बल।

14. प्राण दस –

    1. स्पर्शन, 2. रसना, 3. घ्राण, 4. चक्षु,
    5. कर्ण, 6. श्वासोच्छ्वास, 7. मनोबल, 8. वचन बल,
    9. कायबल, 10. आयु।

15. असन दोष दस –

1. शंकित दोष, 2. मृक्षित दोष, 3. निक्षिप्त दोष,
4. पिहित दोष, 5. संव्यवहरण दोष, 6. दायक दोष,
7. उन्मिश्र दोष, 8. अपरिणत दोष, 9. लिप्त दोष,
10. परित्यजन दोष।

16. वैयावृत्ति दस प्रकार –

1. आचार्य, 2. उपाध्याय, 3. तपस्वी, 4. शैक्ष्य, 5. ग्लान,
6. गण, 7. कुल, 8. संघ, 9. साधु, 10. मनोज्ञ।

17. कल्पवृक्ष दस प्रकार –

1. पानांग, 2. तूर्यांग, 3. भूषणांग, 4. वस्त्रांग,
5. भोजनांग, 6. आलयांग, 7. दीपांग, 8. भाजनांग,
9. मालांग, 10. ज्योतिरंग।

18. सम्यग्दर्शन के दस भेद –

1.आज्ञा, 2.मार्ग, 3.उपदेश, 4. सूत्र, 5. बीज,
6.संक्षेप, 7.विस्तार, 8.अर्थसम्यक्त्व, 9.अवगाढ़, 10.परमावगाढ़।

19. केवलज्ञान के दस अतिशय –

1. सौ-सौ योजन तक चारों दिशाओं में सुभिक्ष।
2. आकाशगमन।
3. कवलाहार नहीं।
4. चारों दिशाओं में मुख का दिखाई देना।
5. सब विद्याओं का ईश्वरपना।
6. शरीर की छाया न पड़ना।
7. नाखून व केशों का न बढ़ना।
8. नेत्रों की पलकों का न गिरना।
9. दया का भाव।
10. उपसर्ग नहीं।

20. अप्रत्याख्यानावरण कषायोदयजनित अविरति से दस प्रकृतियों का बन्ध–

1. अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, 2. अप्रत्याख्यानावरण मान,
3. अप्रत्याख्यानावरण माया, 4. अप्रत्याख्यानावरण लोभ,
5.मनुष्य गति, 6. मनुष्यगत्यानुपूर्वी,
7. मनुष्यायु, 8. औदारिक शरीर,
9.औदारिकांगोपांग, 10. बज्रवृषभनाराचसंहनन।

21. कर्म की दस दशाऐं –

1. बंध, 2. उत्कर्षण, 3 संक्रमण, 4. अपकर्षण, 5. उदीरणा,
6.सत्त्व, 7.उदय, 8.उपशम, 9.निधत्ति, 10.नि:काचित।

22. जीव के पृथ्वी आदि दस भेद –

1. पृथ्वी, 2. जल, 3. अग्नि,
4. वायु, 5. साधारण वनस्पति, 6. प्रत्येक वनस्पति,
7. दो इन्द्रिय, 8. तीन इन्द्रिय, 9. चार इन्द्रिय,
10. पंचेन्द्रिय।

23. बाह्य परिग्रह दस प्रकार –

1. क्षेत्र, 2. वास्तु, 3. हिरण्य, 4. सुवर्ण, 5. धन,
6. धान्य, 7. दासी, 8. दास, 9. बर्तन, 10. कपड़े।
अथवा
1. क्षेत्र, 2. वास्तु, 3. धन, 4. धान्य, 5. द्विपद,
6. चतुष्पद, 7. आसन, 8. वाहन, 9. वस्त्र, 10. बर्तन।

24. पंचेन्द्रिय स्थलचर – दस लाख कोटि कुल।

25. प्रत्येक वनस्पति की उत्कृष्ट आयु – दस हजार वर्ष।

26. वनस्पति की दस लाख योनि हैं।

27. व्यन्तर देव की ऊँचाई – दस धनुष।

28. भवनवासियों में असुर कुमार देवों को छोड़कर नौ देवों की उत्कृष्ट ऊँचाई – दस धनुष।

29. किन्नर के दस भेद –

1. किंपुरुष, 2. किन्नर, 3. हृदयंगम, 4. रूपपाली,
5. किन्नर-किन्नर, 6. अनिंदित, 7. मनोरम, 8. किन्नरोत्तम,
9. रतिप्रिय, 10. ज्येष्ठ।

30. किंपुरुष के दस भेद –

1. पुरुष, 2. पुरुषोत्तम, 3. सत्पुरुष, 4. महापुरुष,
5. पुरुषप्रभ, 6. अतिपुरुष, 7. मरु, 8. मरुदेव,
9. मरुत्प्रभ, 10. यशस्वान।

31. महोरग जाति के दस भेद –

1. भुजंग, 2. भुजंगशाली, 3. महातनु, 4. अतिकाय,
5. स्कन्धशाली, 6. मनोहर, 7. अशनिजव, 8. महेश्वर,
9. गम्भीर , 10. प्रियदर्शन।

32. गन्धर्व जाति के देवों के दस भेद –

1. हा–हा, 2. हू–हू, 3. नारद, 4. तुंबरू,
5. वासव, 6. कदम्ब, 7. महास्वर, 8. गीतयश,
9. गीतरति, 10. वज्रमान।

33. काम के दस वेग –

1. काम के उद्दीपत होने पर प्रथम ही चिन्ता होती है कि स्त्री सम्पर्क कैसे हो?
2. दूसरे वेग में उसे देखने की इच्छा होती है।
3. तीसरे वेग में दीर्घ नि:श्वास लेता है, और कहता है कि देखना नहीं हुआ।
4. चौथे में ज्वर होता है।
5. पाँचवें में शरीर दग्ध होने लगता है।
6. छठे वेग में दिया हुआ भोजन भी खाने का भाव नहीं रहता।
7. सातवें वेग में मूर्छा आ जाती है।
8. आठवें वेग में पागल हो जाता है।
9. नौवे वेग में प्राणों का सन्देह रहता है।
10. दसवें वेग में मरण हो जाता है।

34. अब्रम्ह –

1. स्त्रियों सम्बन्धी विषयों की अभिलाषा, 2. वस्तिमोक्ष,
3. वृषरस सेवा, 4. संसक्तद्रव्य सेवा,
5. तदिद्रिया लोचन, 6. सत्कार,
7. सम्मान, 8. अतीत स्मरण,
9. अनागताभिलाष, 10. इष्ट विषय सेवा।

35. ब्रम्हचर्य –

उपर्युक्त 10 प्रकार के अब्रम्ह के त्याग से ब्रम्हचर्य के भी दस भेद हो जाते हैं।

36. मनु के अनुसार दस धर्म –

1. धैर्य, 2. क्षमा, 3. दम, 4. इन्द्रिय–निग्रह,
5. धी/बुद्धि, 6. विद्या, 7. सत्य, 8. शौच,
9. क्रोध शमन, 10. अचौर्य।

37. गुमानपंथी आचार संहिता के दस नियम –

1. सूर्योदय या काफी प्रकाश होने से पहले मन्दिर जी का कोई भी कार्य न करें।
2. जो सप्त व्यसन का त्यागी हो, वही श्री महाराज का स्पर्श करें।
3. गन्धोदक लगाकर हाथ धोवें।
4. भगवान का पूजन खड़े होकर करें।
5. रात को जिन प्रतिमा के आगे दीपक न जलावें।
6. चमड़े की और ऊनी चीजें मन्दिर में न ले जावें।
7. जिन प्रतिमा पर चन्दन, केशर न चढ़ावें।
8. पूजन में फलों में नारियल और बादाम आदि सूखे फल ही चढ़ावें, उन्हें भी साबुत / पूर्ण न चढ़ावें।
9. मन्दिर में बुहारी देना, पूजा के बर्तन माँजना, बिछायत बिछाना आदि मन्दिर का सम्पूर्ण कार्य श्रावक सब अपने हाथों से करें; माली या नौकर आदि से न करायें।
10. मन्दिर जी की वस्तु लौकिक काम में न लायें।

38. दस धर्म नहीं अधर्म –

1. कायर की क्षमा,	2. स्वार्थी की विनय,
3. मूर्ख की सरलता,	4. एकान्तियों का सत्य,
5. बगुला भक्तों की शुचिता,	6. रोगियों का संयम,
7. ढोंगियों का तप,	8. नामधारियों का त्याग,
9. गरीबों का आकिंचन,	10. नपुंसकों का ब्रम्हचर्य।

39. तत्त्वार्थ सूत्र का वर्ण्य विषय –

पहला अध्याय– सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र की एकता दिखलाकर, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान के भेद।

दूसरा अध्याय– पाँच भावों का वर्णन कर जीव का लक्षण, जन्म, योनि, शरीर, लिंगादि का वर्णन।

तीसरा अध्याय– अधोलोक मध्यलोक का वर्णन।

चौथा अध्याय– ऊर्ध्व लोक वर्णन, चार प्रकार के देव।

पाँचवा अध्याय–अजीव तत्त्व तथा द्रव्य आदि का स्वरूप।

छठवाँ अध्याय– आस्रव तत्त्व पुण्य–पाप।

सातवाँ अध्याय- पुण्य आस्रव, व्रत, भावना, अतिचार आदि।
आठवाँ अध्याय- बन्ध का स्वरूप, भेद - प्रभेद।
नौवाँ अध्याय- संवर तत्त्व का निरूपण, तप से निर्जरा।
दसवाँ अध्याय- मोक्ष तत्त्व निरूपण।

40. सामान्य विभाव के दस भेद -

1.चेतन, 2.अचेतन, 3.मूर्त, 4.अमूर्त, 5.एक प्रदेशी, 6.बहु प्रदेशी, 7.शुद्ध, 8.अशुद्ध, 9.विभाव, 10.उपचरित।
(ये सभी द्रव्यों में नहीं पाये जाते, किसी किसी में ही पाये जाते हैं)।

41. द्रव्यार्थिक नय के दस भेद -

1. उत्पाद व्यय निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय।
2. उत्पाद व्यय सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय।
3. कर्म निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय।
4. कर्म सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय।
5. स्वद्रव्यादि चतुष्टय ग्राही शुद्ध द्रव्यार्थिक नय।
6. परद्रव्यादि चतुष्टय विच्छेदक अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय।
7. भेद कल्पना निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय।
8. भेद कल्पना सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय।
9. गुण व त्रिकाली पर्यायों में अनुगत पिण्ड अन्वय नाम वाला अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय।
10. परम पारिणामिक भाव ग्राही शुद्ध द्रव्यार्थिक नय।

42. दिशा दस होती हैं -

1. ईशान, 2. पूर्व, 3. आग्नेय, 4. दक्षिण, 5. नैऋत्य, 6. पश्चिम, 7. वायव्य, 8. उत्तर, 9. ऊर्ध्व, 10. अधो।

43. प्रायश्चित के दस भेद -

1. आलोचना, 2. प्रतिक्रमण, 3. तदुभय, 4. विवेक, 5. व्युत्सर्ग, 6. तप, 7. छेद, 8. मूल, 9. परिहार, 10. श्रद्धान।

44. आलोचना के दस अतिचार -

1. आकम्पित, 2. अनुमानित, 3. दृष्ट, 4. बादर, 5. सूक्ष्म, 6. छन्न, 7.शब्दाकुलित, 8. बहुजन, 9.अव्यक्तदोष, 10.तत्सेवी।

45. उत्तम स्वप्न –

1. दही, 2. अक्षत, 3. फल, 4. धनिया, 5. सुपारी,
6. हल्दी, 7. महल, 8. जिनवाणी 9. हरीदूब (घास),
10. हवाई जहाज की यात्रा।

विशेष – वात, पित्त, कफ के बढ़ने पर स्वप्न झूठे भी होते हैं और स्वप्न भविष्य का फल देने वाले भी होते हैं।

46. सत्य –1. जनपद, 2. सम्मति, 3. स्थापना, 4. नाम, 5. रूप,
6. प्रतीति, 7. सम्भावना, 8. व्यवहार, 9. भाव, 10. उपमा।

47. मुनियों के लिये भक्ति –

1. सिद्ध भक्ति, 2. श्रुतभक्ति, 3. चारित्र भक्ति,
4. योग भक्ति, 5. आचार्य भक्ति, 6. पंच महागुरु भक्ति,
7. चैत्य भक्ति, 8. वीर भक्ति,
9. चतुर्विंशति तीर्थंकर भक्ति, 10. समाधि भक्ति।

48. देवों के सामान्य भेद –

1. इन्द्र, 2. सामानिक, 3. त्रायस्त्रिंस, 4. पारिषद,
5. आत्मरक्ष, 6. लोकपाल, 7.अनीक, 8. प्रकीर्णक,
9. अभियोग्य, 10. किल्विषक।

49. औधिक समाचार –

1. इच्छाकार, 2. मिथ्याकार, 3. तथाकार, 4. आसिका,
5. निषेधिका, 6. आपृच्छा, 7. प्रतिपृच्छा, 8. छेदन,
9. सनिमन्त्रण, 10. उपसंयत।

50. ध्यान करने के अंग –

1. हाथ, 2. नेत्र, 3. कान, 4. नासिका का अग्रभाग,
5. ललाट, 6. मुख, 7. नाभि, 8. मस्तक,
9. हृदय, 10. तालू।

51. काल की पर्याय –

1. दिन, 2. रात्रि, 3. पक्ष, 4. मास,
5. अयन, 6. वर्ष, 7. पल्योपम, 8. सागरोपम,
9. उत्सर्पिणी, 10. अवसर्पिणी।

52. साता वेदनीय कर्म के आस्रव के कारण –

1. भूत अनुकम्पा, 2. व्रती अनुकम्पा, 3. दान,

4. सराग संयम, 5. योग, 6. संयमासंयम,
7. अकाम निर्जरा, 8. बालतप, 9. क्षान्ति,
10. शौच।

53. असुरकुमार आदि 10 प्रकार के भवनवासी देवों के भवनों में क्रम से होने वाले चैत्यवृक्ष –
1. अश्वस्थ (पीपल) 2. सप्तपर्ण, 3. शाल्मली, 4. जामुन,
5. वेतस, 6. कदम्ब, 7. प्रियंगु, 8. शिरीष,
9.पलाश, 10. राजद्रुम।

54. पुद्गल द्रव्य की विभाव व्यंजन पर्याय –
1. शब्द, 2. बन्ध, 3. सूक्ष्म, 4. स्थूल, 5. संस्थान,
6. भेद, 7. तम, 8. छाया, 9. आतप, 10. उद्योत।

55. निर्जरा के स्थान –
1. अविरत सम्यग्दृष्टि
2. पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावक
3. छठे – सातवें गुणस्थानवर्ती मुनिराज
4. अनन्तानुबन्धी की विसंयोजना करने वाले
5. दर्शन मोह का क्षय करने वाले
6. चारित्र मोह का उपशम करने वाले
7. 11 वें गुणस्थान वाले
8. क्षपक श्रेणी चढ़ने वाले
9. क्षीण मोह गुणस्थान वाले
10. जिन भगवान (13वें व 14वें गुणस्थान में)।

जो चाहते हैं, वह होता नहीं।
जो होता है, वह भाता नहीं।
जो भाता है, वह टिकता नहीं।

तो क्या करें?

वस्तु का स्वरूप समझकर,
द्रव्यों की स्वतंत्रता का विचार कर,
आत्मस्वभाव के सम्मुख होने का पुरूषार्थ करें।

ग्यारह (11)

1. ग्यारहवें तीर्थंकर - **श्री श्रेयांसनाथ जी।**
2. ग्यारहवें तीर्थंकर का चिह्न गैंडा है।
3. ग्यारहवीं प्रतिमा - उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा।
4. ग्यारहवें कुलकर - चन्द्राभ
5. ग्यारहवें कामदेव - मेघप्रभ
6. ग्यारहवें रूद्र - सात्यकि
7. ग्यारहवें चक्रवर्ती - जयसेन
8. ग्यारह प्रतिमाएँ -
   1. दर्शन प्रतिमा, 2. व्रत प्रतिमा,
   3. सामायिक प्रतिमा, 4. प्रोषधोपवास प्रतिमा,
   5. सचित्त त्याग प्रतिमा,
   6. रात्रि भुक्ति त्याग प्रतिमा / दिवा-मैथुन-त्याग,
   7. ब्रम्हचर्य प्रतिमा, 8. आरम्भ त्याग प्रतिमा,
   9. परिग्रह त्याग प्रतिमा, 10. अनुमति त्याग प्रतिमा,
   11. उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा।
9. ग्यारहवाँ गुणस्थान - उपशान्त मोह गुणस्थान।
10. रुद्र ग्यारह -
    1. भीमावलि, 2. जितशत्रु, 3. रुद्र, 4. वैश्वानर,
    5. सुप्रतिष्ठ, 6. अचल, 7. पुण्डरीक, 8.अजितंधर,
    9. जितनाभि, 10. पीठ, 11. सात्यकि।
11. तीर्थंकर महावीर के ग्यारह गणधर निम्न हैं -
    1. इन्द्रभूति, 2. अग्निभूति, 3. वायुभूति, 4. शुचिदत्त,
    5. सुधर्म, 6. माण्डव्य, 7. मौर्यपुत्र, 8. अकम्पन,
    9. अचल, 10. मेदार्य, 11. प्रभास।
12. तीर्थंकर नेमिनाथ के गणधर ग्यारह हैं।
13. तीर्थंकर मुनिसुव्रतनाथ का छद्मस्थ काल ग्यारह माह है।
14. अंग ग्यारह -
    1. आचारांग, 2. सूत्रकृतांग, 3. स्थानांग,
    4. समवायांग, 5. व्याख्याप्रज्ञप्ति, 6. ज्ञातृकथांग,

7. उपासकाध्येयांग, 8. अत:कृतदशांग, 9. अनुत्तरोपपादिकदशांग, 10. विपाक सूत्रांग, 11. प्रश्नव्याकरणांग।

15. शर्करा प्रभा के ग्यारह इन्द्रक बिल हैं।

16. वेदनीय कर्म सम्बन्धी ग्यारह परिषह –
1. क्षुधा, 2. तृषा, 3. शीत, 4. उष्ण, 5. दंशमशक, 6. चर्या, 7. शैया, 8. वध, 9. रोग, 10. तृणस्पर्श, 11. मल परिषह।

17. तीर्थंकर महावीर के बाद में ग्यारह महान मुनि –
1. विशाखाचार्य, 2. प्रोष्ठिल, 3. क्षत्रिय, 4. जयसेन, 5. नागसेन, 6. सिद्धार्थ, 7. धृतिषेण, 8. विजय, 9. बुद्धिल, 10. गंगदेव, 11. धर्मसेन।

18. विक्रिया ऋद्धि के ग्यारह भेद –
1. अणिमा, 2. महिमा, 3. लघिमा, 4. गरिमा, 5. प्राप्ति, 6. प्राकाम्य, 7. ईशत्व, 8. वशित्व, 9. अप्रतिघाती, 10. अंतर्धान, 11. कामरूपित्व।

19. अजीवाधिकरण के ग्यारह भेद –
निर्वर्तना अधिकरण के दो भेद–
1. मूलगुण निर्वर्तना, 2. उत्तर गुण निर्वर्तना।
निक्षेप अधिकरण के चार भेद–
1. अप्रत्यवेक्षित निक्षेपाधिकरण, 2. दुष्प्रभृष्ट निक्षेपाधिकरण,
3. सहसा निक्षेपाधिकरण, 4. अनाभोग निक्षेपाधिकरण।
संयोग अधिकरण के दो भेद–
1. भक्तपान संयोगाधिकरण, 2. उपकरण संयोगाधिकरण।
निसर्ग अधिकरण के तीन भेद–
1. शरीर निसर्गाधिकरण, 2. वचन निसर्गाधिकरण,
3. मनोनिसर्गाधिकरण।

20. सामान्य स्वभाव के ग्यारह भेद –
1. अस्ति, 2. नास्ति, 3. नित्य, 4. अनित्य, 5. एक, 6. अनेक, 7. भेद, 8. अभेद, 9. भव्य, 10. अभव्य, 11. परमभाव। (ये सभी द्रव्यों में पाये जाते हैं)।

बारह (12)

1. बारहवें तीर्थंकर - **श्री वासुपूज्य जी**।
2. बारहवें तीर्थंकर का चिह्न भैंसा है।
3. बारहवें गुणस्थान का नाम - क्षीण मोह गुणस्थान।
4. बारहवें कुलकर - मरूदेव।
5. बारहवें कामदेव - शान्तिनाथ।
6. बारहवें चक्रवर्ती - ब्रम्हदत्त।
7. पंचेन्द्रिय जलचर के 12.5 लाख कोटि कुल।
8. बारह भावनायें -
   1. अनित्यभावना, 2. अशरण भावना, 3. संसार भावना,
   4. एकत्व भावना, 5. अन्यत्व भावना, 6. अशुचि भावना,
   7. आस्रव भावना, 8. संवर भावना, 9. निर्जरा भावना,
   10. लोक भावना, 11. बोधिदुर्लभ भावना, 12. धर्म भावना।
9. तप बारह (6 बाह्य, 6 अन्तरंग) -
   1. अनशन, 2. अवमौदर्य, 3. वृत्तिपरिसंख्यान,
   4. रस परित्याग, 5. विविक्त शैयासन, 6. कायक्लेश,
   7. प्रायश्चित, 8. विनय, 9. वैयावृत्त,
   10. स्वाध्याय, 11. व्युत्सर्ग, 12. ध्यान।
10. श्रावक के बारह व्रत (5 अणुव्रत, 3 गुणव्रत, 4 शिक्षाव्रत) -
    1. अहिंसा, 2. सत्य, 3. अचौर्य,
    4. ब्रम्हचर्य, 5. परिग्रह परिमाण, 6. दिग्व्रत,
    7. देशव्रत, 8. अनर्थदंडत्यागव्रत, 9. सामायिक,
    10. प्रोषधोपवास 11. भोगोपभोगपरिमाण, 12. अतिथि संविभाग।
11. अव्रत बारह -
    पाँच इन्द्रिय (1. स्पर्शन, 2. रसना, 3. घ्राण, 4. चक्षु, 5. कर्ण) और मन के विषयों में प्रवृत्ति,
    पाँच स्थावर (1. पृथ्वी, 2. जल, 3. अग्नि, 4. वायु, 5. वनस्पति) और त्रस की हिंसा आदि में प्रवृत्ति।
12. तीर्थंकर आदिनाथ का समवसरण - बारह योजन।
13. मान-स्तम्भ की ऊँचाई तीर्थंकर से बारह गुणी होती है।
14. विदेह क्षेत्र मे समवसरण बारह योजन का होता है।
15. तीर्थंकर अजितनाथ का छद्मस्थ काल बारह वर्ष है।

16. तीर्थंकर महावीर का छद्मस्थ काल बारह वर्ष है।
17. भद्रबाहु के समय में बारह वर्ष का अकाल पड़ा था।
18. चक्रवर्ती बारह –

1. भरत,	2. सगर,	3. मघवा,	4. सनत्कुमार,
5. शान्ति,	6. कुन्थु,	7. अर,	8. सुभौम,
9. पदम्,	10. हरिषेण,	11. जयसेन,	12. ब्रम्हदत्त।

19. बारह अंग –

1. आचारांग,	2. सूत्रकृतांग,	3. स्थानांग,
4. समवायांग,	5. व्याख्याप्रज्ञप्ति,	6. ज्ञातृधर्मकथांग,
7. उपासकाध्ययनांग,	8.अंतकृतदशांग,	9.अनुत्तरोपपादिकदशांग,
10. विपाकसूत्रांग,	11. प्रश्नव्याकरणांग,	12. दृष्टिवादांग।

20. पदार्थ बारह हैं (अवग्रह आदि के बारह भेद) –

1. बहु,	2. बहुविध,	3. क्षिप्र,	4. अनि:सृत,
5. अनुक्त,	6. ध्रुव,	7. एक,	8. एकविध,
9. अक्षिप्र,	10. नि:सृत,	11. उक्त,	12. अध्रुव।

21. कल्प बारह –

1. सौधर्म,	2. ऐशान,	3. सानत्कुमार,
4. माहेन्द्र,	5. ब्रम्ह-ब्रम्होत्तर,	6. लान्तव-कापिष्ठ,
7. शुक्र-महाशुक्र,	8. शतार-सहस्रार,	9. आनत,
10. प्राणत,	11. आरण,	12. अच्युत।

22. राशि बारह –

1. मेष,	2. वृषभ,	3. मिथुन,	4. कर्क,
5. सिंह,	6. कन्या,	7. तुला,	8. वृश्चिक,
9. धनु,	10. मकर,	11. कुम्भ,	12. मीन।

23. उपयोग बारह –

दर्शन उपयोग चार –	1. चक्षुदर्शन,	2. अचक्षुदर्शन,	
	3. अवधि दर्शन,	4. केवलदर्शन।	
ज्ञान उपयोग आठ –	1. मति,	2. श्रुत,	3. अवधि, 4. मन:पर्यय,
	5. केवल,	6. कुमति,	7. कुश्रुत, 8. कुअवधि।

24. माह बारह –

1. आषाढ़,	2. श्रावण,	3. भादों,	4. आसौज,
5. कार्तिक/आश्विन,	6. मार्गशीर्ष/मंगसिर,	7. पौष,	8. माघ,
9. फाल्गुन,	10. चैत्र,	11.बैशाख,	12. ज्येष्ठ।

25. कर्मभूमि के जीवों के बारह भेद –
(जलचर, थलचल, नभचर) इन तीनों के सैनी असैनी के भेद से छह भेद हुए और इनके पर्याप्तक निर्वृत्यपर्याप्तक की अपेक्षा बारह भेद हुए।
26. दो इन्द्रिय शंख की उत्कृष्ट अवगाहना बारह योजन होती है।
27. बारहवें स्वर्ग तक से निकला जीव तिर्यंच हो सकता है।
28. कर्मभूमि तिर्यंच अणुव्रती, अव्रती सम्यक्ती 12वें स्वर्ग से ऊपर नहीं जा सकते।
29. परमहंस बारहवें स्वर्ग से ऊपर नहीं जा सकते।
30. यक्षों के बारह भेद –
1. मणिभद्र, 2. पूर्णभद्र, 3. शैलभद्र, 4. मनोभद्र,
5. भद्रक, 6. सुभद्र, 7. मानुष, 8. धनपाल,
9. स्वरूपयक्ष, 10.यक्षोत्तम, 11. मनोहरण, 12. सर्वभद्र।
31. बारह प्रसिद्ध पुरुषों के नाम –
1. तीर्थंकरों में पार्श्वनाथ भगवान, 2. बलभद्रों में रामचन्द्र जी,
3. कामदेवों में हनुमान जी, 4. प्रतिनारायणों में रावण,
5. दानी पुरुषों में राजा श्रेयांस, 6. शीलवती स्त्रियों में सीताजी,
7. तपस्वियों में बाहुबली स्वामी, 8.भाग्यवान पुरुषों में भरत चक्रवर्ती,
9. रुद्रों में महादेव रुद्र, 10. नारायणों में श्री कृष्ण,
11. कुलकरों में श्री नाभिराय, 12. पराक्रमियों में पांडव भीम।
32. समवशरण के बारह कोठे –
1. मुनि, 2. कल्पवासी देवियाँ, 3. आर्यिकायें व अन्य स्त्रियाँ,
4. ज्योतिषी देवियाँ, 5. व्यन्तर देवियाँ, 6. भवनवासी देवियाँ,
7. भवनवासी देव, 8. व्यन्तर देव, 9. ज्योतिषी देव,
10. कल्पवासी देव, 11. मनुष्य, 12. तिर्यंच।
33. वचन –1. अभ्याख्यान, 2. कलह, 3. पैशून्य, 4. असंबद्ध प्रलाप,
5. रति, 6. अरति, 7. उपधि, 8. निकृति,
9. अप्रणति, 10. मोष, 11.सम्यग्दर्शन, 12. मिथ्यादर्शन।
34. मुक्त जीव के भेद (भूत प्रज्ञापननय की अपेक्षा) –
1. क्षेत्र, 2. काल, 3. गति, 4. लिंग,
5. तीर्थ, 6. चारित्र, 7.प्रत्येक बुध बोधित, 8. ज्ञान,
9. अवगाहना, 10. अन्तर, 11. संख्या, 12. अल्पबहुत्व।

तेरह (13)

1. तेरहवें तीर्थंकर – **श्री विमलनाथ जी।**
2. तेरहवें तीर्थंकर का चिह्न सुअर है।
3. तेरहवाँ गुणस्थान – सयोग केवली गुणस्थान।
4. तेरहवें कुलकर – प्रसेनजित।
5. तेरहवें कामदेव – कुन्थुनाथ।
6. चारित्र तेरह प्रकार –
   1. अहिंसा, 2. सत्य, 3. अचौर्य,
   4. ब्रम्हचर्य, 5. अपरिग्रह, 6. ईर्या समिति,
   7. भाषा समिति, 8. एषणा समिति,
   9. आदान निक्षेपण समिति, 10. प्रतिष्ठापन समिति,
   11. मन गुप्ति, 12. वचन गुप्ति, 13. काय गुप्ति।
7. तेरह पन्थी – तेरह प्रकार का चारित्र पालने वाले तेरह पंथी।
8. तेरा पंथी – वीतराग पंथ के अनुयायी तेरा पंथी।
9. तेरा पंथी – तेरह प्रकार का चारित्र पालने वालों के अनुयायी।
10. नंदीश्वर द्वीप के एक तरफ तेरह चैत्यालय –
    एक अंजनगिरि, चार दधिमुख, आठ रतिकर।
11. तेरहवें गुणस्थान में आठ लाख, अठ्ठानवें हजार, पाँच सौ दो (898502) मुनि हैं।
12. रत्नप्रभा भूमि के तेरह इन्द्रक बिल।
13. तेरह पंथ के तेरह नियम –
    1. दिशा, विदिशा दिग्पालों को नहीं मानना।
    2. भट्टारकों को गुरु नहीं मानना।
    3. भगवान के चरणों में केसर लेप नहीं करना।
    4. सचित्त फूल भगवान को नहीं चढ़ाना।
    5. दीपक से पूजा नहीं करना।
    6. आशिका नहीं लेना।
    7. फूल माला नहीं चढ़ाना।
    8. पंचामृत अभिषेक नहीं करना।
    9. रात में पूजन नहीं करना।

10. शासन देवी को नहीं पूजना
11. रांधा अन्न भगवान को नहीं चढ़ाना।
12. हरे फलों को नहीं चढ़ाना।
13. बैठकर पूजा नहीं करना।

14. तेरहवें गुणस्थान का **समय - काल**

जघन्य काल	-	अन्तर्मुहूर्त,
उत्कृष्ट काल	-	गर्भकाल सहित आठ वर्ष तथा आठ अन्तर्मुहूर्त कम एक कोटि पूर्व मध्यम,
मध्यम काल	-	इन दोनों के मध्य के सभी विकल्प सम्भव हैं।

15. तेरह निकृष्ट स्वप्न -

1. बारात,	2. पूजा करता दिखना,
3. शौच जाते दिखना,	4. मकान गिरते दिखना,
5. मृत आदमी जिन्दा दिखना,	6. मूर्ति हँसती दिखना,
7. हँसते मुनि दिखना,	8. जिनवाणी फटी दिखना,
9. वमन करते दिखना,	10. विधवा महिला हँसती दिखना,
11. तेल, घी, मिठाई दिखना,	12. कुएँ में उतरता दिखना,
13. फलों के टुकड़े दिखना।	

विशेष:- वात, पित्त, कफ के बढ़ने पर स्वप्न झूठे भी होते हैं और स्वप्न भविष्य का फल बताने वाले भी होते हैं।

धर्म का स्वरूप तो बाह्य जीव दया तथा अन्तरंग में राग, द्वेष, मोह का विजय रूप है। जहाँ जीव हिंसा है, वहाँ धर्म नहीं है। जहाँ अभिमान के वश होकर एकान्त के पक्ष को पकड़कर अपना पक्ष पोषण करने के लिये हिंसा का भय नहीं करते हैं, वहाँ धर्म नहीं है।

चौदह (14)

1. चौदहवें तीर्थंकर – **श्री अनन्तनाथ जी।**
2. चौदहवें तीर्थंकर का चिह्न सेही है।
3. चौदहवाँ गुणस्थान – अयोग केवली गुणस्थान है।
4. चौदहवें कुलकर – नाभिराय
5. चौदहवें कामदेव – अरनाथ
6. गुणस्थान चौदह हैं –
   1. मिथ्यात्व गुणस्थान, 2. सासादन गुणस्थान,
   3. मिश्र गुणस्थान, 4. अविरत सम्यग्दृष्टि,
   5. देशविरत गुणस्थान, 6. प्रमत्त विरत गुणस्थान,
   7. अप्रमत्त विरत गुणस्थान, 8. अपूर्वकरण गुणस्थान,
   9. अनिवृत्तिकरण गुणस्थान, 10. सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थान,
   11. उपशान्त मोह गुणस्थान, 12. क्षीण मोह गुणस्थान,
   13. सयोग केवली गुणस्थान, 14. अयोग केवली गुणस्थान।
7. पिशाचों के चौदह भेद –
   1. कुष्भांड, 2. यक्ष, 3. राक्षस, 4. संमोह, 5. तारक,
   6. अशुचि, 7. काल, 8. महाकाल, 9. शुचि, 10. सतालक,
   11. देह, 12. महादेह, 13. तूष्णीक, 14. प्रवचन।
8. मार्गणा चौदह –
   1. गति, 2. इन्द्रिय, 3. काय, 4. योग, 5. वेद,
   6. कषाय, 7. ज्ञान, 8. संयम, 9. दर्शन, 10. लेश्या,
   11. भव्यत्व, 12. सम्यक्त्व, 13. संज्ञी, 14. आहार।
9. जीव समास चौदह –
   1. एकेन्द्रिय सूक्ष्म पर्याप्तक, 2. एकेन्द्रिय सूक्ष्म अपर्याप्तक,
   3. एकेन्द्रिय बादर पर्याप्तक, 4. एकेन्द्रिय बादर अपर्याप्तक,
   5. दो इन्द्रिय पर्याप्तक, 6. दो इन्द्रिय अपर्याप्तक,
   7. तीन इन्द्रिय पर्याप्तक, 8. तीन इन्द्रिय अपर्याप्तक,
   9. चार इन्द्रिय पर्याप्तक, 10. चार इन्द्रिय अपर्याप्तक,
   11. पाँच इन्द्रिय असैनी पर्याप्तक, 12. पाँच इन्द्रिय असैनी अपर्याप्तक,
   13. पाँच इन्द्रिय सैनी पर्याप्तक, 14. पाँच इन्द्रिय सैनी अपर्याप्तक।

10. रत्न चौदह -

1. चक्र,	2. छत्र,	3. खड्ग,
4. दण्ड,	5. कांकिणी,	6. चूड़ामणि,
7. चर्म,	8. सेनापति,	9. गृहपति (शिल्पकार)
10. गज,	11. अश्व,	12. पुरोहित,
13. स्थपति,	14. स्त्रीरत्न।	

11. कुलकर चौदह -

1. प्रतिश्रुति,	2. सन्मति,	3. क्षेमंकर,
4. क्षेमंधर,	5. सीमंकर,	6. सीमंधार,
7. विमलवाहन,	8. चक्षुष्मान,	9. यशस्वी,
10. अभिचन्द्र,	11. चन्द्राभ,	12. मरुदेव,
13. प्रसेनजित,	14. नाभिराय।	

12. तीर्थंकर सम्भवनाथ का छद्मस्थ काल चौदह वर्ष है।

13. चौदह पूर्व -

1. उत्पाद पूर्व,	2. अग्रायणी पूर्व,
3. वीर्यानुवाद पूर्व,	4. अस्तिनास्तिप्रवाद पूर्व,
5. ज्ञानप्रवाद पूर्व,	6. कर्मप्रवाद पूर्व,
7. सत्यप्रवाद पूर्व,	8. आत्मप्रवाद पूर्व,
9. प्रत्याख्यान पूर्व,	10. विद्यानुवाद पूर्व,
11. कल्याण पूर्व,	12. प्राणानुवाद पूर्व,
13. क्रियाविशाल पूर्व,	14. लोकविन्दु पूर्व।

14. मलदोष चौदह -

1. नख,	2. रोम,
3. प्राणरहित शरीर,	4. हाड़,
5. गेहूँ आदि का कण,	6. कुंड (चावल का कण)
7. पूय (राध)	8. गीला चर्म,
9. लोहू (रक्त)	10. माँस,
11.अंकुरित होने योग्य गेहँ आदि बीज,	12.सचित्त फल आदि,
13. कन्द,	14. मूल।

15. चौदह देवकृत अतिशय (तीर्थंकरों के) -

1. अर्धमागधी भाषा,

2. सब जीवों में मित्रता,
3. दिशाओं का निर्मल होना,
4. आकाश का निर्मल होना,
5. सभी ऋतुओं के फल-फूल का एक साथ होना,
6. दर्पणवत् पृथ्वी का निर्मल होना,
7. चलते समय पैरों के नीचे स्वर्ण कमल होना,
8. आकाश में जय-जय ध्वनि होना,
9. मंद सुगन्धित पवन का चलना,
10. सुगन्धित जल वृष्टि का होना,
11. पवन कुमार देवों द्वारा भूमि को कंटक रहित रखना,
12. समस्त जीवों का आनन्दमय होना,
13. धर्मचक्र का आगे-आगे चलना,
14. अष्ट मंगल द्रव्यों का होना।

16. मनुष्य की चौदह लाख योनि हैं।
17. महानदी चौदह -
    1. गंगा, 2. सिन्धु, 3. रोहित, 4. रोहितास्या,
    5. हरित, 6. हरिकान्ता, 7. सीता, 8. सीतोदा,
    9. नारी, 10. नरकान्ता, 11. सुवर्णकूला, 12. रूप्यकूला,
    13. रक्ता, 14. रक्तोदा।
18. अन्तरंग परिग्रह चौदह -
    1. मिथ्यात्व, 2. क्रोध, 3. मान, 4. माया, 5. लोभ,
    6. हास्य, 7. रति, 8. अरति, 9. शोक, 10. भय,
    11. जुगुप्सा, 12. स्त्रीवेद, 13. पुरुषवेद, 14. नपुंसकवेद।
19. आहार सम्बन्धी दोष चौदह -
    1. शंकित दोष, 2. मृक्षित दोष, 3. निक्षिप्त दोष,
    4. पिहित दोष, 5. संव्यवहरण दोष, 6. दायक दोष,
    7. उन्मिश्र दोष, 8. अपरिणत दोष, 9. लिप्त दोष,
    10. त्यक्त दोष, 11. संयोजन दोष, 12. प्रमाणदोष,
    13. अंगार दोष, 14. धूमदोष।
20. मनुष्य के 14 लाख कोटि कुल।

21. श्रोताओं के कुल चौदह भेद –

उत्तम श्रोता – 1. गाय जैसे, 2. हंस जैसे।

मध्यम श्रोता – 1. मिट्टी जैसे, 2. तोता जैसे।

जघन्य श्रोता –

1. पत्थर जैसे, 2. फूटे घड़े जैसे, 3. छलनी (चालनी) जैसे,
4. सर्प जैसे, 5. भैंस जैसे, 6. मेंढ़ा जैसे,
7. जौंक जैसे, 8. डाँस जैसे, 9. बगुले जैसे,
10. बिल्ली जैसे।

जैसे अनेक देशों से आये भिन्न-भिन्न अनेक पथिक रात्रि में एक स्थान में ठहर जाते हैं अथवा एक वृक्ष पर अनेक दिशाओं से आये अनेक पक्षी रात्रि में आकर बस जाते हैं; प्रातःकाल होने पर वे सब अनेक मार्गों से अनेक देशों को चले जाते हैं; उसी प्रकार स्त्री, पुत्र, मित्र, बंधु आदि अनेक गतियों से पाप-पुण्य बाँधकर, कुल रूप स्थान में आकर शामिल हो जाते हैं और अपनी-अपनी आयु पूर्ण हो जाने पर पाप-पुण्य के अनुसार नरक, तिर्यंच, मनुष्य आदि अनेक भेदरूप गतियों को चले जायेंगे।

पन्द्रह (15)

1. पन्द्रहवें तीर्थंकर – **श्री धर्मनाथ जी**।
2. पन्द्रहवें तीर्थंकर का चिह्न बज्रदण्ड है।
3. पन्द्रहवें कामदेव – विजयराज
4. पन्द्रह योग –

1. सत्य मनोयोग,	2. असत्य मनोयोग,
3. उभय मनोयोग,	4. अनुभय मनोयोग,
5. सत्य वचनयोग,	6. असत्य वचनयोग,
7. उभय वचनयोग,	8. अनुभय वचनयोग,
9. औदारिक काययोग,	10. औदारिक मिश्रकाययोग,
11. वैक्रियिक काययोग,	12. वैक्रियिक मिश्रकाय योग,
13. आहारक काययोग,	14. आहारक मिश्र काययोग,
15. कार्माण काययोग।	

5. पन्द्रह प्रमाद –
   पाँच इन्द्रियाँ –1. स्पर्शन, 2. रसना, 3. घ्राण, 4. चक्षु, 5. कर्ण।
   चार कषाय – 1. क्रोध, 2. मान, 3. माया, 4. लोभ।
   चार विकथा–1.स्त्रीकथा, 2.भोजनकथा, 3.राज्यकथा, 4.अवनिपाल कथा।
   14. निद्रा, 15. स्नेह।
6. पन्द्रह कर्म भूमियाँ –
   पाँच भरत, पाँच ऐरावत, पाँच विदेह –
   जम्बूद्वीप में भरत एक, ऐरावत एक, विदेह एक– कुल 3 भूमियाँ।
   घातकीखंड में भरत दो, ऐरावत दो, विदेह दो– कुल छः भूमियाँ।
   पुष्करार्ध द्वीप में दो भरत, दो ऐरावत, दो विदेह– कुल छः भूमियाँ।
   इस प्रकार 5 भरत, 5 ऐरावत, 5 विदेह हैं, ये कर्म भूमि कहलाते हैं।
7. कर्म की 15 अवस्थायें –

1. सत्ता,	2. उदय,	3. उदीरणा,
4. अन्तःकरण रूप उपशम,		5. सद् अवस्थारूप उपशम,
6. क्षय,	7. उदयावली क्षय,	8. क्षयोपशम,
9. बंध,	10. उत्कर्षण,	11. अपकर्षण,
12. संक्रमण,	13. विसंयोजन,	14. निधत्ति, 15. निकांचित।

सोलह (16)

1. सोलहवें तीर्थंकर - **श्री शान्तिनाथ जी**।
2. सोलहवें तीर्थंकर का चिह्न मृग है।
3. सोलहवें कामदेव - चंद्र।
4. तीर्थंकर शान्तिनाथ का छद्मस्थ काल सोलह वर्ष है।
5. तीर्थंकर अरनाथ का छद्मस्थ काल सोलह वर्ष है।
6. सोलह कारण भावनाएँ-
   1. दर्शनविशुद्धि, 2. विनय सम्पन्नता,
   3. शील और व्रतों में निर्दोष वृत्ति, 4. सतत ज्ञानोपयोग,
   5. सतत संवेग, 6. शक्ति के अनुसार त्याग,
   7. शक्ति के अनुसार तप, 8. साधु समाधि,
   9. वैयावृत्त्यकरण, 10. अरहन्त भक्ति,
   11. आचार्य भक्ति, 12. बहुश्रुत भक्ति,
   13. प्रवचन भक्ति, 14. आवश्यक क्रिया नहीं छोड़ना,
   15. मार्ग प्रभावना, 16. प्रवचन वात्सल्य।
7. आहार सम्बन्धी उद्गम दोष सोलह हैं (दाता के आश्रित) -
   1. अधःकर्म दोष, 2. अध्यधि दोष, 3. पूति दोष,
   4. मिश्र दोष, 5. स्थापित दोष, 6. बलिदोष,
   7. प्राभृत दोष, 8. प्रादुष्कार दोष, 9. क्रीत दोष,
   10. प्रामृष्य दोष, 11. परिवर्त दोष, 12. अभिघट दोष,
   13. उद्भिन्न दोष, 14. मालारोहण दोष, 15. आछेद्य दोष,
   16. अनिस्रस्ट दोष।
8. आहार सम्बन्धी उत्पाद दोष सोलह (पात्र के आश्रित) -
   1. धात्री दोष, 2. दूतदोष, 3. निमित्त दोष,
   4. आजीव दोष, 5. वनीपक दोष, 6. चिकित्सा दोष,
   7. क्रोध कषाय दोष, 8. मान कषाय दोष, 9. माया कषाय दोष,
   10. लोभ कषाय दोष, 11. पूर्व स्तुति दोष, 12. पश्चात् स्तुति दोष,
   13. विद्या दोष, 14. मन्त्र दोष, 15. चूर्ण दोष,
   16. मूल कर्म दोष।

9. सोलह कषाय –

1. अनन्तानुबन्धी क्रोध,	2. अप्रत्याख्यानावरण क्रोध,
3. प्रत्याख्यानावरण क्रोध,	4. संज्वलन क्रोध,
5. अनन्तानुबन्धी मान,	6. अप्रत्याख्यानावरण मान,
7. प्रत्याख्यानावरण मान,	8. संज्वलन मान,
9. अनन्तानुबन्धी माया,	10. अप्रत्याख्यानावरण माया,
11. प्रत्याख्यानावरण के माया,	12. संज्वलन माया
13. अनन्तानुबन्धी लोभ,	14. अप्रत्याख्यानावरण लोभ,
15. प्रत्याख्यानावरण लोभ,	16. संज्वलन लोभ।

10. सोलह कषायों के लक्षण –

1. अनन्तानुबन्धी क्रोध	– पत्थर की रेखा के समान,
2. अप्रत्याख्यानावरण क्रोध	– भूमि की रेखा के समान,
3. प्रत्याख्यानावरण क्रोध	– धुलि की रेखा के समान,
4. संज्वलन क्रोध	– पानी की रेखा के समान,
5. अनन्तानुबन्धी मान	– पत्थर के थम्भ के समान,
6. अप्रत्याख्यानावरण मान	– हड्डी के समान,
7. प्रत्याख्यानावरण मान	– लकड़ी के समान,
8. संज्वलन मान	– बेंत के समान,
9. अनन्तानुबन्धी माया	– बाँस की जड़ के समान,
10. अप्रत्याख्यानावरण माया	– मेंढ़े के सींग के समान,
11. प्रत्याख्यानावरण माया	– गोमूत्र के समान,
12. संज्वलन माया	– गोखुर के समान,
13. अनन्तानुबन्धी लोभ	– किरमजी के समान,
14. अप्रत्याख्यानावरण लोभ	– गाड़ी के ओंगन के समान,
15. प्रत्याख्यानावरण लोभ	– शरीर के मैल के समान,
16. संज्वलन लोभ	– हल्दी के रंग के समान।

11. स्वर्ग सोलह –

1. सौधर्म,	2. ऐशान,	3. सानत्कुमार,	4. माहेन्द्र,
5. ब्रम्ह,	6. ब्रम्होत्तर,	7. लान्तव,	8. कापिष्ठ,
9. शुक्र,	10. महाशुक्र,	11. शतार,	12. सहस्रार,
13. आनत,	14. प्राणत,	15. आरण,	16. अच्युत।

12. ध्यान सोलह –

1. इष्टवियोगज आर्त्तध्यान, 2. अनिष्ट संयोगज आर्त्तध्यान,
3. वेदनाजनित आर्त्तध्यान, 4. निदानज आर्त्तध्यान,
5. हिंसानन्दी रौद्रध्यान, 6. मृषानन्दी रौद्रध्यान,
7. चौर्यानन्दी रौद्रध्यान, 8. परिग्रहानन्दी रौद्रध्यान,
9. आज्ञा विचय धर्म्यध्यान, 10. अपाय विचय धर्म्यध्यान,
11. विपाक विचय धर्म्यध्यान, 12. संस्थान विचय धर्म्यध्यान,
13. पृथक्त्व वितर्क वीचार शुक्लध्यान,
14. एकत्व वितर्क अविचार शुक्लध्यान,
15. सूक्ष्म क्रियाप्रतिपाति शुक्लध्यान,
16. व्युपरत क्रिया निर्वर्ती शुक्लध्यान।

13. खर भाग के सोलह भेद –

1. चित्रा, 2. वज्रा (पाषाण), 3. वैडूर्या, 4. लोहिताक्ष,
5. मसार कल्पा, 6. गोमेदक, 7. प्रवाला, 8. ज्योतिरसा,
9. अंजना, 10. अंजनमूलिका, 11. अंका, 12. स्फटिका,
13. चंदना, 14. सर्वार्थका, 15. वकुला, 16. शैला।

14. 'अरिहंत, सिद्ध, आइरिय, उवज्झाय, साहू' यह सोलह अक्षर का मंत्र है।

15. मिथ्यादर्शन से निम्न सोलह प्रकृतियों का बन्ध होता है –

1. मिथ्यात्व, 2. हुंडकसंस्थान, 3. नपुंसकवेद,
4. नरकगति, 5. नरकगत्यानुपूर्वी, 6. नरकायु,
7. असंप्राप्ता सृंपाटिका संहनन, 8. एकेन्द्रिय,
9. द्वीन्द्रिय, 10. तेइन्द्रिय, 11. चतुरिन्द्रिय,
12. स्थावर, 13. आताप, 14. सूक्ष्म,
15. अपर्याप्त, 16. साधारण।

16. मोह पद पलटकर के सोलह घटित करना –

1. राग, 2. द्वेष, 3. क्रोध, 4. मान,
5. माया, 6. लोभ, 7. नोकर्म, 8. कर्म,
9. मन, 10. वचन, 11. काय, 12. स्पर्शन,
13. रसना, 14. घ्राण, 15. चक्षु, 16. कर्ण।

(यें सोलह जड़ भाव हैं, ऐसा जानकर छोड़ने योग्य हैं)

17. माता के सोलह स्वप्न –

1. हाथी,	2. सिंह,	3. बैल,
4. लक्ष्मी,	5. सूर्य,	6. चन्द्र,
7. किलोल करती मछली,	8. दो कलश,	9. तालाब,
10. समुद्र,	11. दो मालायें,	12. सिंहासन,
13. निर्धूम अग्नि,	14. विमान,	15. नागेन्द्र भवन,
16. रत्न राशि।		

18. सम्राट चन्द्रगुप्त के सोलह स्वप्न –
    1. कल्प वृक्ष की टूटती डाली,
    2. सूर्यास्त,
    3. सछिद्र चन्द्र,
    4. बारह फण वाला सर्प,
    5. देव विमान लौटते हुए,
    6. धूली पर कमलोत्पत्ति,
    7. भूत नृत्य,
    8. जुगनू,
    9. दक्षिण भाग के अलावा सूखा हुआ तालाब,
    10. स्वर्ण पात्र में खीर खाता कुत्ता,
    11. हाथी पर बैठा बन्दर,
    12. मर्यादा को छोड़ता समुद्र,
    13. रथ में जुते बछड़े,
    14. ऊँट पर बैठा राजपुत्र,
    15. धूल में मिली रत्न राशि,
    16. दो हाथी लड़ते हुए।
19. गर्भज पंचेन्द्रिय के सोलह भेद –
    कर्मभूमि के बारह, भोगभूमि के चार।
20. सोलह तीर्थंकरों का शरीर सोने के समान वर्ण का है।
21. व्रती श्रावक व श्राविका सोलहवें स्वर्ग तक जा सकते हैं।
22. सोलह ताव सोने के होते हैं।
23. सोलह स्वर्गों के बावन पटल होते हैं।

24. सोलह द्वीपों के नाम –

1.जम्बूद्वीप,	2.धातकीखंड,	3.पुष्करवर,	4.वारुणीवर,
5.क्षीरवर,	6.घृतवर,	7.क्षौद्रवर,	8.नन्दीश्वर,
9.अरुणवर,	10.अरुणाभास,	11.कुण्डलवर	12.शंखवर,
13.रुचकवर,	14.भुजगवर,	15.कुशवर,	16.क्रौंचवर।

25. सोलह समुद्र के नाम –

1.लवण समुद्र,	2.कालोदधि समुद्र,	3.पुष्करवर,	4.वारूणीवर,
5.क्षीरवर,	6.घृतवर,	7.क्षौद्रवर,	8.नन्दीश्वर,
9.अरुणवर,	10.अरुणाभास,	11.कुण्डलवर,	12.शंखवर,
13.रुचकवर,	14.भुजगवर,	15.कुशवर,	16.क्रौंचवर।

26. भरत चक्रवर्ती के सोलह स्वप्न –

1. तेईस सिंह देखे, जिसका फल यह है कि तेईस तीर्थंकर के समय में तो खोटी चेष्टा के धारी, परिग्रह सहित जिन धर्म विषयी मुनि नहीं होंगे।
2. एक सिंह के पीछे मृग के समूह को गमन करते देखा, जिसका फल यह है कि अन्तिम तीर्थंकर महावीर के निर्वाण के बाद यती मृग की भाँति दीन, नग्न परिषह सहने में असमर्थ होने के कारण परिग्रह धारण कर यति बनेंगे और जिन लिंग को छोड़कर कुलिंग को धारण करेंगे।
3. हाथी के भार सहित तुरंग (घोड़ा) देखा, जिसका फल यह है कि पंचमकाल में साधु तप के भार से दुखी होंगे, तप धारण करने में असमर्थ होंगे।
4. बकरे को सूखे पत्ते खाते देखा, जिसका फल है कि ऊँचे कुल के मनुष्य शुभाचार से भ्रष्ट होकर खोटा आचरण करेंगे।
5. बन्दर को हाथी के कंधो पर चढ़ा देखा, जिसका फल है कि आदिनाथ से चले आये क्षत्रियों के वंश की व्युच्छत्ति (नाश) होगी और हीन कुल के धारी, अकुलीन पृथ्वी पर राज्य करेंगे।
6. कौओं के समूह से हँस पीड़ित देखा, जिसका फल यह है कि पंचम काल में अज्ञानी, भोले जीव धर्म के अर्थ मुनि धर्म तजकर अनाचारी, हिंसक जीवों की सेवा करेंगे और असंयमी कसाई

जीवों द्वारा धर्मात्मा जीव सताये जायेंगे। पापी जीवों द्वारा धर्मी जीवों का अपमान होगा।

7. भूत नाचते देखे; उनका फल है कि पंचमकाल में अज्ञानी जीव, भगवान मानकर धर्म के अर्थ भूतादि व्यन्तर देवों की पूजा करेंगे।
8. मध्य में सूखा और तीर में अगाध जल वाला सरोवर देखा, जिसका फल है कि उत्तम तीर्थ में धर्म का अभाव रहेगा, हीन स्थान में धर्म रहेगा।
9. रत्नराशि धूलि से लिप्त देखी; जिसका फल है कि पंचम काल में शुक्ल ध्यानी नहीं होयेंगे, धर्म्य ध्यानी तक ही रहेंगे।
10. श्वान को जिन पूजा द्रव्य खाते देखा, जिसका फल है कि पंचम काल में पात्र नहीं; वरन् अव्रती, कुपात्र व अपात्र ही आदर अथवा सम्मान पायेंगे।
11. तरुण वृषभ शब्द करते देखा, जिसका फल है कि पंचम काल के जीव, तरुण समय में तो धर्म ध्यान के प्रति आदर पूर्वक उद्यम करेंगे; परन्तु वृद्ध होने पर धर्म में शिथिल होकर अरुचि करेंगे।
12. चन्द्रमा के शाखा देखी, जिसका फल है कि पंचम काल में अवधि, मन:पर्यय ज्ञान के धारी मुनि नहीं होंगे।
13. दो वृषभ साथ ही गमन करते देखे, जिसका फल है कि पंचमकाल में मुनि संघ में रहेंगे, एकल विहारी नहीं होंगे।
14. सूर्य मेघ पटल से आच्छादित देखा, जिसका फल है कि पंचमकाल में मुनि को केवलज्ञान नहीं होगा।
15. सूखा वृक्ष छाया रहित देखा, जिसका फल है कि पंचम काल के स्त्री-पुरुष शील व्रत को धारण करके बाद में कुशील का सेवन करेंगे।
16. सूखे पत्तों का समूह देखा, जिसका फल है कि अन्न आदि औषधि का रस नीरस होगा।

(ऐसा भगवान ऋषभदेव ने कहा कि हे चक्रवर्ती इनके फल इस काल में नहीं आगे पंचम काल में दिखेंगे।)

27. सोलह प्रसिद्ध सतियों के नाम –

1. ब्राम्ही, 2. चन्दनबाला, 3. राजुल, 4. कौशल्या,
5. मृगावती, 6. सीता, 7. सुभद्रा, 8. द्रौपदी,
9. सोमा, 10. कुन्ती, 11. मनोरमा, 12. मैना सुन्दरी,
13. अंजना, 14. प्रभावती, 15. शिवा, 16. पद्मावती।

28. सोलह विशेष गुणों के नाम –

1. ज्ञान, 2. दर्शन, 3. सुख,
4. वीर्य, 5. रूप, 6. रस,
7. गन्ध, 8. स्पर्श, 9. गमन हेतुत्व,
10. स्थिति हेतुत्व, 11. वर्तना हेतुत्व, 12. अवगाहन हेतुत्व,
13. मूर्तत्व, 14. अमूर्तत्व, 15. चेतनत्व,
16. अचेतनत्व।

29. तीर्थंकर कुन्थुनाथ का छद्मस्थ काल सोलह वर्ष है।

30. व्यन्तरों के इन्द्र –

1. किन्नर, 2. किम्पुरुष, 3. सत्पुरुष, 4. महापुरुष, 5. अतिकाय,
6. महाकाय, 7. गीतरति, 8. गीतरक्ष, 9.पूर्णभद्र, 10.मणिभद्र,
11. भीम, 12. महाभीम, 13. प्रतिरूप, 14. स्वरूप, 15. काल,
16. महाकाल।

31. अन्त के 16 द्वीपों के नाम (अन्त से प्रारम्भ करने पर) –

1. स्वयंभूरमण, 2. अहीन्द्रवर, 3. देववर, 4. यक्षवर,
5. भूतवर, 6. नागवर, 7. वैडूर्य, 8. वज्रवर,
9. कांचन, 10. रूप्यवर, 11. हिंगुल, 12. अंजनवर,
13. श्याम, 14. सिंदूर, 15. हरिताल, 16. मनःशिला।

32. अन्त के 16 समुद्रों के नाम (अन्त से प्रारम्भ करने पर) –

1. स्वयंभूरमण, 2. अहीन्द्रवर, 3. देववर, 4. यक्षवर,
5. भूतवर, 6. नागवर, 7. वैडूर्य, 8. वज्रवर,
9. कांचन, 10. रूप्यवर, 11. हिंगुल, 12. अंजनवर,
13. श्याम, 14. सिंदूर, 15. हरिताल, 16. मनःशिला।

सत्रह (17)

1. सत्रहवें तीर्थंकर - **श्री कुन्थुनाथ जी**।
2. सत्रहवें तीर्थंकर का चिह्न बकरा है।
3. तीर्थंकर नमिनाथ के सत्रह गणधर हैं।
4. श्रावकों के सत्रह नियम -

   1. भोजन, 2. सचित्त वस्तु, 3. गृह, 4. जलपान,
   5. विलेपन, 6. तांबूल, 7. पुष्प सुगन्ध, 8. नाच,
   9. गीत श्रवण, 10. स्नान, 11. ब्रम्हचर्य, 12. आभूषण,
   13. वस्त्र, 14. शैया, 15. औषध, 16. सवारी,
   17. दिशा गमन।

5. असंयम के स्थान सत्रह -

   1. हिंसा, 2. झूठ, 3. चोरी, 4. कुशील, 5. परिग्रह,
   6. स्पर्शन, 7. रसना, 8. घ्राण, 9. चक्षु, 10. कर्ण,
   11. क्रोध, 12. मान, 13. माया, 14. लोभ, 15. मन,
   16. वचन, 17. काया से नित्य कुचेष्टा।

6. अयोग्य व्यापार के सत्रह भेद -

   1. पशु आदि का चमड़ा, 2. रेशमी, ऊनी वस्त्र,
   3. गांजा, अफीम, विष, कोकिन आदि,
   4. मद्य, माँस, मधु आदि, 5. जूता,
   6. ईटों का भट्टा, 7. जंगल में आग लगाना,
   8. पशु, 9. हलवाई
   10. जंगल काटना, 11. नट, नाटक, सिनेमा,
   12. पिस्तौल, छुरी, तलवार आदि, 13. यांत्रिक मील,
   14. इत्र, सेन्ट, फूल, 15. हींग, लाख, गोंद, मोम,
   16. बाबड़ी, कुआँ, तालाब, खदान खोदना आदि,
   17. सड़े हुए अन्न।

   इनका व्यापार नहीं करना चाहिए।

7. अग्रवाल के 17.5 (साढ़े सत्रह) गोत्र –
   1. गर्ग, 2. गोयल, 3. कुच्छल, 4. मंगल,
   5. बिन्दल, 6. ढालन, 7. सिंहल, 8. जिन्दल,
   9. मित्तल, 10. तुंगल, 11. कंसल, 12. तायल,
   13. बंसल, 14. नागल, 15. मुद्गल, 16. इन्दल,
   17. एरन 17.5 गोयत (आधा)।
8. तीर्थंकर देव ने परमागम में सत्रह प्रकार के मरण का उपदेश किया है–
   1. अवीचीमरण, 2. तद्भवमरण, 3. अवधिमरण,
   4. आद्यंतमरण, 5. बाल-मरण, 6. पंडित-मरण,
   7. अवसन्न मरण, 8. बाल पंडित मरण, 9. सशल्य मरण,
   10. पलाय मरण, 11. वशार्त मरण, 12. विप्राण मरण,
   13. गृध्रपृष्ठ मरण, 14. भक्त प्रत्याख्यान मरण,
   15. प्रायोपगमन मरण, 16. इंगिनि मरण, 17. केवली मरण।
9. प्राणी संयम के 17 भेद –
   1. पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति – इन पाँच स्थावर कायिक जीवों की रक्षा करना **5 प्रकार का स्थावरकाय संयम**
   2. दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय और पाँच इन्द्रिय-इन चार त्रसकायिक जीवों की रक्षा करना **4 प्रकार का त्रसकाय संयम**
   3. सूखे तृण आदि अजीव कायों का छेद न करना **अजीवकाय संयम**
   4. उपर्युक्त दस एवं नेत्रों से किसी वस्तु व उसके स्थान को देखकर पीछी से प्रमार्जित करना **अप्रतिलेख संयम**
   5. किसी वस्तु व स्थान को यत्न से अच्छी तरह प्रमार्जन करने रूप **दु:प्रतिलेखन संयम**
   6. शास्त्र, कमंडल आदि उपकरणों को प्रतिदिन देख लेना कि उसमें जीव तो नहीं हैं – **उवेक्षा संयम**
   7. दो इन्द्रिय आदि जीवों को अपने स्थान से हटाकर दूसरे स्थान पर न रखने रूप – **अपहरण संयम**
   8. उपर्युक्त 14 संयम और मन, वचन, काय के **तीन योग संयम**। इस प्रकार 17 प्रकार का **प्राणी-संयम** होता है।

अठारह (18)

1. अठारहवें तीर्थंकर – **श्री अरनाथ जी**।
2. अठारहवें तीर्थंकर का चिह्न मछली है।
3. तीर्थंकर मुनिसुव्रतनाथ के गणधर अठारह है।
4. अठारहवें कामदेव हनुमान हैं।
5. तीर्थंकर अभिनन्दननाथ का छद्मस्थ काल अठारह वर्ष है।
6. पौराणिक राजवंश अठारह –

1. सामान्यवंश,	2. इक्ष्वाकुवंश,	3. उग्रवंश,
4. ऋषिवंश,	5. कुरुवंश,	6. चन्द्रवंश,
7. नाथवंश,	8. भोजवंश,	9. माल्ड्.गवंश,
10. यादववंश,	11. रघुवंश,	12. राक्षसवंश,
13. वानरवंश,	14. विद्याधरवंश,	15. श्रीवंश,
16. सूर्यवंश,	17. सोमवंश,	18. हरिवंश।

7. क्षायोपशमिक भाव के अठारह भेद –

1. मतिज्ञान,	2. श्रुतज्ञान,
3. अवधिज्ञान,	4. मन:पर्ययज्ञान,
5. कुमति,	6. कुश्रुत,
7. कुअवधि,	8. चक्षुदर्शन,
9. अचक्षुदर्शन,	10. अवधि दर्शन,
11. क्षायोपशमिक दान,	12. क्षायोपशमिक लाभ,
13. क्षायोपशमिक भोग,	14. क्षायोपशमिक उपभोग,
15. क्षायोपशमिक वीर्य,	16. क्षायोपशमिक सम्यक्त्व,
17. क्षायोपशमिक चारित्र,	18. संयमासंयम।

8. बुद्धि ऋद्धि के अठारह भेद –

1. अवधिज्ञान,	2. मन:पर्ययज्ञान,	3. केवलज्ञान,
4. बीज बुद्धि,	5. कोष्ठ बुद्धि,	6. पदानुसारिणी बुद्धि,
7. संभिन्न श्रोतृत्व,	8. दूरास्वादन समर्थता,	9. दूरस्पर्शन समर्थता,
10.दूरघ्राण समर्थता,	11. दूरश्रवण समर्थता,	12. दूरदर्शन समर्थता,
13. दशपूर्वित्व,	14. चौदह पूर्वित्व,	15. निमित्त ऋद्धि,
16. प्रज्ञाश्रमणत्व,	17. प्रत्येक बुद्धित्व,	18. वादित्व।

9. अरहंत के अठारह दोष नहीं होते –

1.क्षुधा, 2.तृषा, 3.बुढ़ापा, 4.रोग, 5.जन्म, 6.मरण,
7.भय, 8.शोक, 9.राग, 10.द्वेष, 11.मोह, 12.चिन्ता,
13.मद, 14.अरति, 15.खेद, 16.स्वेद, 17.निद्रा, 18.आश्चर्य।

10. शील के अठारह हजार दोष –

720 अचेतनात्मक तथा 17280 चेतनात्मक।

11. सम्मूर्छन पंचेन्द्रिय के अठारह भेद –

जलचर, थलचर, नभचर इन तीनों के सैनी-असैनी की अपेक्षा से छह भेद हुए और इन छहों के पर्याप्तक, निर्वृत्य पर्याप्तक, लब्धय पर्याप्तक की अपेक्षा से अठारह जीव समास होते हैं।

12. अठारह प्रकार के असंपराय –

1. उत्तम क्षमा, 2. मार्दव, 3. आर्जव, 4. शौच,
5. सत्य, 6. संयम, 7. तप, 8. त्याग,
9. आकिंचन्य, 10. ब्रम्हचर्य, 11. ईर्या, 12. भाषा,
13. एषणा, 14. आदाननिक्षेपण, 15.प्रतिष्ठापन,
16. मनोगुप्ति, 17. वचनगुप्ति, 18. कायगुप्ति।
(इनका पालन नहीं करना ही असम्पराय है)।

13. पापकर्म 18 –

1. प्राणातिपात, 2. मृषावाद, 3. अदत्तादान,
4. मैथुन, 5. परिग्रह, 6. क्रोध,
7. मान, 8. माया, 9. लोभ,
10. राग, 11. द्वेष, 12. कलहाभ्याख्यान,
13. पैशून्य, 14. परपरिवादरति, 15. अरति,
16. माया शल्य, 17. मिथ्याशल्य, 18. निदान शल्य।

14. अपशकुन को व्यक्त करने वाली चीजें –

1. खरवाहन, 2. उष्ट्रवाहन, 3. अजावाहन,
4. गवयवाहन, 5. महिषवाहन, 6. दक्षिणगमन,
7. रुण्ड, 8. करमुण्ड, 9. वक्षोगदा,
10. कूपपतन, 11. अग्नि विपत्ति, 12. लोहपाक,
13. तैलपाक, 14. तिलभोजन, 15. अंधापन,
16. कुष्ट, 17. दीपशमन, 18. मदिरापान।

उन्नीस (19)

1. उन्नीसवें तीर्थंकर – **श्री मल्लिनाथ जी**।
2. उन्नीसवें तीर्थंकर का चिह्न कलश है।
3. उन्नीसवें कामदेव बलिराजा हैं।
4. एक जीव के एक साथ उन्नीस परिषह हो सकते हैं –

   1. क्षुधा, 2. तृषा, 3. शीत, 4. उष्ण,
   5. दंशमशक, 6. नग्नता, 7. अरति, 8. स्त्री,
   9. चर्या, 10. निषद्या, 11. शैया, 12. आक्रोश,
   13. वध, 14. याचना, 15. अलाभ, 16. रोग,
   17. तृण स्पर्श, 18. मल, 19. सत्कार पुरस्कार,
   20. प्रज्ञा, 21. अज्ञान, 22. अदर्शन।

   उपर्युक्त 22 परीषहों में से शीत और उष्ण इन दो में से एक समय में एक ही सम्भव है। इसी प्रकार चर्या शैया और निषद्या में से एक समय में एक ही परिषह होगा। इस प्रकार तीन परिषह कम होने पर एक समय में एक जीव के उन्नीस परिषह सम्भव हैं।
5. जीव समास उन्नीस –

   1. पृथ्वीकायिक सूक्ष्म, 2. पृथ्वीकायिक बादर,
   3. जलकायिक सूक्ष्म, 4. जलकायिक बादर,
   5. अग्निकायिक सूक्ष्म, 6. अग्निकायिक बादर,
   7. वायुकायिक सूक्ष्म, 8. वायुकायिक बादर,
   9. इतर निगोद सूक्ष्म, 10. इतर निगोद बादर,
   11. नित्य निगोद सूक्ष्म, 12. नित्य निगोद बादर,
   13. सप्रतिष्ठित प्रत्येक, 14. अप्रतिष्ठित प्रत्येक,
   15. द्वीन्द्रिय जीव बादर, 16. त्रिइन्द्रिय जीव बादर,
   17. चतुरिन्द्रिय जीव बादर, 18. पंचेन्द्रिय सैनी बादर,
   19. पंचेन्द्रिय असैनी बादर।
6. जीव के स्वरूप को बताने वाली 19 बातें –

   1. जीव कर्त्ता, 2. भोक्ता, 3. वक्ता, 4. प्राणी,
   5. पुद्गल नामक ज्ञायक भाव, 6. वेद (वेदी), 7. विष्णु,
   8. स्वयंभू, 9. शरीरी, 10. मानव, 11. सक्ता,
   12. जन्तु, 13. मायावी, 14. मानी, 15. योगी,
   16. संकट(संकुट) 17. असंकट(असंकुटी), 18. क्षेत्रज्ञ,
   19. अंतरात्मा।

बीस (20)

1. बीसवें तीर्थंकर – **श्री मुनिसुव्रत नाथ जी।**
2. बीसवें तीर्थंकर का चिह्न कछुवा है।
3. बीसवें कामदेव वसुदेव हैं।
4. बीस प्ररूपणा –

   1. गुणस्थान, 2. जीवसमास, 3. पर्याप्ति, 4. प्राण, 5. संज्ञा,
   6. उपयोग, 7. गति, 8. इन्द्रिय, 9. काय, 10. योग,
   11. वेद, 12. कषाय, 13. ज्ञान, 14. दर्शन, 11. संयम,
   16. लेश्या, 17. भव्यत्व, 18. सम्यक्त्व, 19. संज्ञी, 20. आहार।

4. पुद्गल के बीस गुण –

   स्पर्श आठ– 1. रूखा, 2. चिकना, 3. हल्का, 4. भारी,
   5. कठोर, 6. नरम, 7. ठंडा, 8. गरम।
   पाँच वर्ण – 1. काला, 2. पीला, 3. नीला, 4. लाल, 5. सफेद।
   पाँच रस – 1. खट्टा, 2. मीठा, 3. कड़वा, 4. कसैला, 5. चरपरा।
   दो गन्ध – 1. सुगन्ध, 2. दुर्गन्ध।

5. विदेह क्षेत्र में विद्यमान बीस तीर्थंकर –

   1. सीमंधर, 2. युगमंधर,
   3. बाहु, 4. सुबाहु,
   5. संजातक, 6. स्वयंप्रभु,
   7. वृषभान, 8. अनन्तवीर्य,
   9. सूरप्रभ, 10. विशालकीर्ति,
   11. वज्रधर, 12. चन्द्रानन,
   13. चन्द्रबाहु, 14. भुजंगम,
   15. ईश्वर, 16. नेमीश्वर (नेमि),
   17. वीरसेन, 18. महाभद्र,
   19. देवयश, 20. अजितवीर्य।

6. तीर्थंकर सुमतिनाथ जी का छद्मस्थ काल बीस वर्ष है।
7. बीस तीर्थंकर सम्मेद शिखर से मोक्ष गये।
8. बीस पंथ – बारह अणुव्रत आठ मूलगुण के पालने वाले।
9. बीस पंथ – कुछ लोग कहते हैं कि बीस भट्टारकों की गद्दी मानने वाले बीस पंथी कहलाये।

10. श्रुतज्ञान के बीस भेद –

1. पर्याय, 2. पर्याय समास, 3. अक्षर,
4. अक्षर समास, 5. पद, 6. पद समास,
7. संघात, 8. संघात समास, 9. प्रतिपत्ति,
10. प्रतिपत्ति समास, 11. अनुयोग द्वार, 12. अनुयोगद्वार समास,
13. प्राभृत प्राभृत, 14. प्राभृत प्राभृत समास,
15. प्राभृत, 16. प्राभृत समास, 17. वस्तु,
18. वस्तु समास, 19. पूर्व, 20. पूर्व समास।

11. भवनवासियों के इन्द्र –

1. चमर, 2. विरोचन, 3. धारण, 4. भूतानन्द,
5. हरिसिंह, 6. हरिकान्त, 7. वेणुदेव, 8. वेणुधारी,
9. अग्निशिख, 10. अग्निमानव, 11. वैलम्ब, 12. प्रभंजन,
13. सुघोष, 14. महाघोष, 15. जलकान्त, 16. जलप्रभ,
17. पूर्ण, 18. विशिष्ट, 19. अमितगति, 20. अमितवाहन।

विशेष – 10 प्रकार के भवनवासियों के 2-2 इन्द्र होते हैं, जैसे – असुर कुमार के चमर व विरोचन।

आत्म स्वरूप का अनुभव किये बिना, शरीर को ही आत्मा रूप अनुभव करने वाला अनेक शास्त्र पढ़ता हुआ भी संसार से नहीं छूटेगा; किन्तु अपने स्वरूप में अपना अनुभव करने वाला शास्त्र अभ्यास रहित भी संसार से छूट जायेगा।

इक्कीस (21)

1. इक्कीसवें तीर्थंकर - **श्री नमिनाथ जी**।
2. इक्कीसवें तीर्थंकर का चिह्न नीलकमल है।
3. इक्कीस कलकी और इक्कीस ही उपकलकी होते हैं।
4. इक्कीसवें कामदेव प्रद्युमन हैं।
5. पंचम काल इक्कीस हजार वर्ष का।
6. छठा काल इक्कीस हजार वर्ष का।
7. इक्कीस तीर्थंकर खड्गासन से मोक्ष गये।
8. औदयिक भाव इक्कीस -
   गति चार - 1. तिर्यंच, 2. नरक, 3. मनुष्य, 4. देव।
   कषाय चार- 1. क्रोध, 2. मान, 3. माया, 4. लोभ।
   लिंग तीन - 1. स्त्रीलिंग, 2. पुल्लिंग, 3. नपुंसक लिंग।
   मिथ्यादर्शन एक, अज्ञान एक, असंयम एक, असिद्धत्व एक।
   लेश्या छह - 1.कृष्ण, 2.नील, 3.कापोत, 4.पीत, 5.पद्म, 6.शुक्ल।
9. घाती कर्मों की सर्वघाती प्रकृति इक्कीस -
   ज्ञानावरण की एक - केवलज्ञानावरण।
   दर्शनावरण की एक - केवलदर्शनावरण।
   निद्रा पाँच - 1. निद्रा, 2. निद्रा-निद्रा, 3. प्रचला,
   4. प्रचला-प्रचला, 5. स्त्यानगृद्धि।
   मोहनीय की चौदह - अनन्तानुबन्धी चार,
   अप्रत्याख्यानावरण चार,
   प्रत्याख्यानावरण चार,
   मिथ्यात्व एक, सम्यग्मिथ्यात्व एक।
10. दातार के इक्कीस गुण -

1. पड़गाहन,	2. उच्च स्थान,	3. पाद प्रक्षालन,
4. अर्चना,	5. नमस्कार,	6. मन शुद्धि,
7. वचन शुद्धि,	8. काय शुद्धि,	9. आहार-जल शुद्धि,
10. श्रद्धावान,	11. भक्तिवान,	12. नयवान,
13. विवेकवान,	14. निर्लोभी,	15. क्षमा,
16. दयावान,	17. आनन्दपूर्वक देना,	

18. आदर पूर्वक देना, 19. प्रियवचनपूर्वक देना,
20. निर्मल भाव रखना, 21. जन्म सफल मानना।

11. श्रावक के उत्तर गुण इक्कीस –

1. लज्जावंत,	2. दयावंत,	3. प्रसन्नता,
4. प्रतीतिवन्त,	5. परदोषाच्छादन,	6. परोपकारी,
7. सौम्य दृष्टि,	8. गुणग्राही,	9. दीर्घ विचारी,
10. दानवंत,	11. शीलवंत,	12. कृतज्ञता,
13. तत्त्वज्ञ,	14. धर्मज्ञ,	15. मिथ्यात्वरहित,
16. सन्तोषवन्त,	17. स्याद्वाद भाषी,	18. मिष्टभाषी,
19. अभक्ष्यत्यागी,	20. षटकर्म प्रवीण,	21. दूरदर्शी।

बाईस (22)

1. बाईसवें तीर्थंकर – **श्री नेमिनाथ जी**।
2. बाईसवें तीर्थंकर का चिह्न शंख है।
3. बाईसवें कामदेव नागकुमार।
4. पृथ्वीकायिक के बाईस लाख कोटि कुल।
5. पृथ्वीकायिक की उत्कृष्ट आयु बाईस हजार वर्ष।
6. बाईस अभक्ष्य –

1. गूलर,	2. कठूमर(अंजीर),	3. बड़फल,	4.पीपल फल,
5. पाकर(पिलखन),	6. तुषार(बर्फ),	7. मद्य,	8. माँस,
9. मधु,	10. ओला,	11. द्विदल,	12.रात्रि भोजन,
13. बहुबीजा,	14. बैंगन,	15. अचार,	16.अजान फल,
17. कन्दमूल,	18. माटी,	19. विष,	20. तुच्छ फल,
21. चलितरस,	22. मक्खन।		

7. बाईस परिषह –

1. क्षुधा,	2. तृषा,	3. शीत,	4. उष्ण,	5. दंशमशक,
6. नग्नता,	7. अरति,	8. स्त्री,	9. चर्या,	10. निषद्या,
11. शैया,	12. आक्रोश,	13. वध,	14. याचना,	15. अलाभ,
16. रोग,	17. तृण स्पर्श,	18. मल,	19. सत्कार पुरस्कार,	
20. प्रज्ञा,	21. अज्ञान,	22. अदर्शन।		

तेईस (23)

1. तेईसवें तीर्थंकर – **श्री पार्श्वनाथ जी।**
2. तेईसवें तीर्थंकर का चिह्न सर्प है।
3. तेईसवें कामदेव जीवंधर हैं।
4. नव ग्रेवेयिक में से अधोग्रेवेयिक के पहले अहमिन्द्र की उत्कृष्ट आयु 23 सागर।
5. दसवें महाशुक्र स्वर्ग में देवियों की उत्कृष्ट आयु 23 पल्य।
6. चक्रवर्ती के चौदह रत्न और नौ निधि मिलकर कुल तेईस।
7. नोकर्म वर्गणाओं के तेईस भेद –

1. अणुवर्गणा,	2. संख्याताणुवर्गणा,
3. असंख्याताणुवर्गणा,	4. अनंताणुवर्गणा,
5. आहार वर्गणा,	6. प्रथम अग्राह्य वर्गणा,
7. तैजस शरीर वर्गणा,	8. द्वितीय अग्राह्य वर्गणा,
9. भाषा वर्गणा,	10. तृतीय अग्राह्य वर्गणा,
11. मनोवर्गणा,	12. चौथी अग्राह्य वर्गणा,
13. कार्माण वर्गणा,	14. ध्रुव वर्गणा,
15. सांतर निरंतर वर्गणा,	16. शून्य वर्गणा,
17. प्रत्येक शरीर वर्गणा,	18. द्वितीय ध्रुव शून्य वर्गणा,
19. बादर निगोद वर्गणा,	20. तृतीय शून्य वर्गणा,
21. सूक्ष्म निगोद वर्गणा,	22. नभो वर्गणा,
23. महा स्कन्ध वर्गणा।	

8. कल्पातीत के तेईस भेद – नवग्रैवेयिक, नव अनुदिश, पाँच अनुत्तर (विजय,वैजयन्त,जयन्त,अपराजित व सर्वार्थसिद्धि) कुल 23 भेद हैं।

उत्थान हमारा कैसे हो?

निज को नहीं देखा हमने कभी तो ज्ञान स्वयं का कैसे हो।
निज को नहीं परखा हमने कभी तो भान स्वयं का कैसे हो॥
सम्यग्दर्शन पाया न कभी मिथ्या भ्रम क्षय न किया हमने।
रत्नत्रय धन से वंचित हैं निर्वाण हमारा कैसे हो॥
पर परिणति के झांसे में आ चारों गतियों में हम भटके।
निज परिणति को न कभी जाना कल्याण हमारा कैसे हो॥
संयम के भाव नहीं जागे हम रहे असंयम के भीतर।
निज का परिचय न सुहाया प्रभु उत्थान हमारा कैसे हो॥

रचियता- कविवर पं० श्री राजमलजी पवैया

चौबीस (24)

1. चौबीसवें तीर्थंकर - **श्री महावीर स्वामी जी**।
   (इन्हें वर्द्धमान, सन्मति, वीर, अतिवीर नामों से भी पुकारा जाता है)।
2. चौबीसवें तीर्थंकर का चिह्न सिंह है।
3. चौबीसवें कामदेव जम्बूस्वामी हैं।
4. तीर्थंकर चौबीस -

   1. आदिनाथ जी, 2. अजितनाथ जी, 3. सम्भवनाथ जी,
   4. अभिनन्दननाथ जी, 5. सुमतिनाथ जी, 6. पद्मप्रभ जी,
   7. सुपार्श्वनाथ जी, 8. चन्द्रप्रभ जी, 9. पुष्पदंत जी,
   10. शीतल नाथ जी, 11. श्रेयांसनाथ जी, 12. वासुपूज्य जी,
   13. विमलनाथ जी, 14. अनन्तनाथ जी, 15. धर्मनाथ जी,
   16. शान्तिनाथ जी, 17. कुन्थुनाथ जी, 18. अरनाथ जी,
   19. मल्लिनाथ जी, 20.मुनिसुव्रतनाथ जी, 21. नमिनाथ जी,
   22. नेमिनाथ जी, 23. पार्श्वनाथ जी, 24. वर्द्धमान जी।

5. चौबीस तीर्थंकरों के चिह्न -

   1. बैल, 2. हाथी, 3. घोड़ा, 4. बन्दर, 5. चकवा,
   6. कमल, 7.साथिया 8. चन्द्रमा, 9. मगरमच्छ, 10. कल्पवृक्ष,
   11. गैंडा, 12. भैंसा, 13. सुअर, 14. सेही, 15. वज्रदण्ड,
   16. मृग, 17. बकरा, 18. मछली, 19. कलश, 20. कछुवा,
   21. नीलकमल, 22. शंख, 23. सर्प, 24. सिंह।

6. परिग्रह चौबीस -

   दस प्रकार का बाह्य परिग्रह -

   1. क्षेत्र, 2. वास्तु, 3. हिरण्य, 4. स्वर्ण, 5. धन,
   6. धान्य, 7. दासी, 8. दास, 9. बर्तन, 10. कपड़े।

   अथवा-क्षेत्र, वास्तु, धन, धान्य, द्विपद, चतुष्पद, आसन, वाहन, वस्त्र एवं बर्तन।

   चौदह प्रकार का अन्तरंग परिग्रह -

   1. मिथ्यात्व, 2. क्रोध, 3. मान, 4. माया, 5. लोभ,
   6. हास्य, 7. रति, 8. अरति, 9. शोक, 10. भय,
   11. जुगुप्सा, 12. स्त्रीवेद, 13. पुरुषवेद, 14. नपुंसकवेद।

7. कुन्दकुन्द आचार्य के चौबीस पाहुड –

1. समयसार,	2. नियमसार,	3. प्रवचनसार,
4. पंचास्तिकाय,	5. रयणसार,	6. मूलाचार,
7. दर्शन पाहुड,	8. सूत्र पाहुड,	9. चारित्र पाहुड,
10. बोध पाहुड,	11. भाव पाहुड,	12. मोक्ष पाहुड,
13. लिंग पाहुड,	14. शील पाहुड,	15. सिद्ध भक्ति,
16. श्रुत भक्ति,	17. चारित्र भक्ति,	18. योग भक्ति,
19. आचार्य भक्ति,	20. पंचगुरु भक्ति,	21. शान्ति भक्ति,
22. समाधि भक्ति,	23. निर्वाण भक्ति,	24. चैत्य भक्ति।

8. चौबीस कामदेव –

1. बाहुबली,	2. प्रजापति,	3. श्रीधर,
4. दर्शनभद्र,	5. प्रसेनचन्द्र,	6. चन्द्रवर्ण,
7. अग्निमुख,	8. सनत कुमार (चक्रवर्ती),	9. वत्सराज,
10. कनकप्रभ,	11. मेघवर्ण,	12. शान्तिनाथ,
13. कुन्थुनाथ,	14. अरनाथ,	15. विजयराज,
16. चन्द्र,	17. नलराज,	18. हनुमान,
19. बलिराजा,	20. वसुदेव,	21. प्रद्युम्न,
22. नागकुमार,	23. जीवंधर,	24. जम्बूस्वामी।

9. चौबीस ठाणा –

1. गति,	2. इन्द्रिय,	3. काय,	4. योग,
5. वेद,	6. कषाय,	7. ज्ञान,	8. संयम,
9. दर्शन,	10. लेश्या,	11. भव्यत्व,	12. सम्यक्त्व,
13. संज्ञी,	14. आहारक,	15. गुणस्थान,	16.जीवसमास,
17. पर्याप्ति,	18. प्राण,	19. संज्ञा,	20. उपयोग,
21. ध्यान,	22. आस्रव,	23. जाति,	24. कुल।

10. वर्तमानकालीन चौबीस तीर्थंकरों के पिता –

1.नाभिराय,	2.जितशत्रु,	3.जितारी,	4.संवर,	5. मेघप्रभ,
6.धरण,	7.सुप्रतिष्ठ,	8.महासेन,	9.सुग्रीव	10. दृढ़रथ,
11.विष्णु	12.वसुपूज्य,	13.कृतवर्मा,	14.सिंहसेन,	15. भानु,
16.विश्वसेन,	17.सूर्या,	18.सुदर्शन,	19.कुम्भ,	20. सुमित्रा,
21.विजय,	22.समुद्रविजय,	23.अश्वसेन,	24.सिद्धार्थ।	

11. वर्तमान चौबीस तीर्थंकरों की माता –

1. मरुदेवी, 2. विजया, 3. सुसेना, 4. सिद्धार्थ, 5. सुमंगला,
6. सुसीमा, 7. पृथिवी, 8. लक्ष्मणा, 9. रामा, 10. सुनन्दा,
11. विष्णुश्री, 12. विजया, 13. सुरम्या, 14. सर्वयशा, 15. सुव्रता,
16. ऐरा, 17. श्री देवी, 18. मित्रा, 19. रक्षता,
20. पद्मावती, 21. विप्रा, 22. शिवा देवी,
23. वामा, 24. प्रियंकारिणी (त्रिशला)।

12. चौबीस भूतकालीन तीर्थंकर –

1. श्रीनिर्वाण जी,	2. श्रीसागर जी,	3. महासाधु जी,
4. विमलप्रभ जी,	5. श्रीधर जी,	6. सुदत्त जी,
7. अमल प्रभ जी,	8. उद्धर जी,	9. अंगिर जी,
10. सन्मति जी,	11. सिन्धु जी,	12. कुसुमांजलि जी,
13. शिवगण जी,	14. उत्साह जी,	15. ज्ञानेश्वर जी,
16. परमेश्वर जी,	17. विमलेश्वर जी,	18. यशोधर जी,
19. कृष्णमति जी,	20. ज्ञानमति जी,	21. शुद्धमति जी,
22. श्रीभद्र जी,	23. अतिक्रांत जी,	24. शांताश्येति जी।

13. चौबीस भविष्यकालीन तीर्थंकर –

1. महापद्म जी,	2. सुरदेव जी,	3. सुपार्श्व जी,
4. स्वयंप्रभ जी,	5. सर्वात्मभूत जी,	6. देवपुत्र जी,
7. कुलपुत्र देव जी,	8. उदंकदेव जी,	9. प्रोष्ठिलदेव जी,
10. जयकीर्ति जी,	11. मुनिसुव्रत जी,	12. अनन्तवीर्य जी,
13. निष्पाप जी,	14. निष्कषाय जी,	15. विपुल जी,
16. निर्मल जी,	17. चित्रगुप्त जी,	18. समाधि गुप्त जी,
19. स्वयंभू जी,	20. अनिवर्तक जी,	21. जयनाथ जी,
22. श्रीविमल जी,	23. देवपाल जी,	24. अनन्तवीर्य जी।

14. दंडक चौबीस –

सात दंडक नरक के, दस भवनवासी, एक व्यंतर,
एक ज्योतिष, एक कल्पवासी, एक स्थावर,
एक विकलत्रय, एक पंचेन्द्रिय तिर्यंच, एक मनुष्य।

15. चौबीस मिनट की एक घंड़ी होती है।

पचीस (25)

1. नरक गति के पच्चीस लाख कोटि कुल।
2. असुर कुमार जाति के देवों के शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना-पच्चीस धनुष।
3. अनन्तानुबन्धी कषायोदय जनित अविरति से निम्न पच्चीस प्रकृतियों का बन्ध होता है।

अनन्तानुबन्धी-	1.क्रोध, 2.मान, 3.माया,	4.लोभ,
5. स्त्यानगृद्धि,	6. निद्रा-निद्रा,	7. प्रचला-प्रचला,
8. दुर्भग,	9. दु:स्वर,	10. अनादेय,
11. प्रशस्त विहायोगति,	12. स्त्रीवेद,	13. नीच गोत्र,
14. तिर्यग्गति,	15. तिर्यग्गत्यानुपूर्वी,	16. तिर्यंगायु,
17. न्यग्रोध परिमण्डल,	18. स्वाति,	19. कुब्जक,
20. वामन,	21. वज्रनाराच,	22. नाराच,
23. अर्धनाराच,	24. कीलित,	25. उद्योत।

4. कषाय के पच्चीस प्रकार -

1. अनन्तानुबन्धी क्रोध,	2. अनन्तानुबन्धी मान,
3. अनन्तानुबन्धी माया,	4. अनन्तानुबन्धी लोभ,
5. अप्रत्याख्यानावरण क्रोध,	6. अप्रत्याख्यानावरण मान,
7. अप्रत्याख्यानावरण माया,	8. अप्रत्याख्यानावरण लोभ,
9. प्रत्याख्यानावरण क्रोध,	10. प्रत्याख्यानावरण मान,
11. प्रत्याख्यानावरण माया,	12. प्रत्यख्यानावरण लोभ,
13. संज्वलन क्रोध,	14. संज्वलन मान,
15. संज्वलन माया,	16. संज्वलन लोभ,

17. हास्य,	18. रति,	19. अरति,
20. शोक,	21. भय,	22. जुगुप्सा,
23. स्त्रीवेद,	24. पुरुषवेद,	25. नपुंसक वेद।

5. उपाध्याय के पच्चीस गुण - (11 अंग और 14 पूर्व)

ग्यारह अंग-

1.आचारांग,	2.सूत्रकृतांग,	3.स्थानांग,
4.समवायांग,	5.व्याख्याप्रज्ञप्ति,	6.ज्ञातृकथांग,
7.उपासकाध्ययनांग,	8.अंत:कृतदशांग,	9.अनुत्तरोपपादिकदशांग,
10. विपाकसूत्रांग,	11. प्रश्नव्याकरणांग।	

चौदह पूर्व –

1. उत्पादपूर्व, 2. अग्रायणीपूर्व, 3. वीर्यानुवादपूर्व,
4.अस्तिनास्तिप्रवादपूर्व, 5. ज्ञानप्रवादपूर्व, 6. कर्म प्रवादपूर्व,
7. सत्यप्रवादपूर्व, 8. आत्मप्रवादपूर्व, 9. प्रत्याख्यानपूर्व,
10. विद्यानुवादपूर्व, 11. कल्याणवादपूर्व, 12. प्राणानुवादपूर्व,
13. क्रियाविशालपूर्व, 14. लोकबिन्दुपूर्व।

6. सम्यग्दर्शन के दोष पच्चीस –

आठ अंग के विपरीत –

1. शंका, 2. कांक्षा, 3. विचिकित्सा, 4.मूढ़दृष्टि,
5. अनुपगूहन, 6. अस्थितिकरण, 7. अवात्सल्य, 8.अप्रभावना।

आठ मद –

1. कुल का मद, 2. जाति का मद, 3. रूप का मद,
4. धन का मद, 5. बल का मद, 6. तप का मद,
7. प्रभुता का मद, 8. ज्ञान का मद।

छह अनायतन –

1.कुगरु, 2.कुदेव, 3.कुधर्म तथा इन तीनों के सेवकों की प्रशंसा।

तीन मूढ़ता –

1. देव मूढ़ता, 2. गुरु मूढ़ता, 3. लोक मूढ़ता।

7. अहिंसा व्रतादि की पच्चीस भावनाएँ –

1. वचन गुप्ति, 2. मनो गुप्ति, 3. ईर्या समिति,
4.आदान निक्षेपण समिति, 5. आलोकितपान भोजन।

सत्य व्रत की पाँच भावनायें –

1. क्रोध का त्याग, 2. लोभ का त्याग, 3. भय का त्याग,
4. हास्य का त्याग, 5. अनुवीचि भाषण।

अचौर्य व्रत की पाँच भावनाएँ –

1. शून्यागारवास, 2. विमोचितावास, 3.परोपरोधाकरण,
4. भैक्ष्य शुद्धि, 5. सधर्माविसंवाद।

ब्रम्हचर्य व्रत की पाँच भावनाएँ –

1. स्त्री राग कथा श्रवण त्याग, 2. स्त्री मनोहरांग निरीक्षण त्याग,
3. पूर्वरतानुस्मरण त्याग, 4. वृष्येष्ट रस त्याग,
5. स्व शरीर संस्कार त्याग।

अपरिग्रह व्रत की पाँच भावनाएँ –

पाँच इन्द्रियों के मनोज्ञ विषयों से राग नहीं करना और अमनोज्ञ विषयों में द्वेष नहीं करना।

8. अहिंसा आदि व्रतों के पच्चीस अतिचार –

अहिंसाणुव्रत के पाँच अतिचार –

1. बन्ध, 2. वध, 3. छेदन,
4. अतिभार का आरोपण, 5. अन्नपान का निरोध।

सत्याणुव्रत के पाँच अतिचार –

1. मिथ्योपदेश, 2. रहोभ्याख्यान, 3. कूटलेख क्रिया,
4. न्यासापहार, 5. साकारमन्त्रभेद।

अचौर्याणुव्रत के पाँच अतिचार –

1. स्तेन प्रयोग, 2. तदाहृतादान, 3.विरुद्धराज्यातिक्रम,
4. हीनाधिक मानोन्मान, 5. प्रतिरूपक व्यवहार।

ब्रम्हचर्याणुव्रत के पाँच अतिचार –

1. परविवाहकरण, 2. परिगृहीतेत्वरिकागमन,
3. अपरिगृहीतेत्वरिका गमन, 4. अनंगक्रीड़ा,
5. कामतीव्राभिनिवेश।

परिग्रह परिमाणव्रत के पाँच अतिचार –

1. क्षेत्र और वास्तु के प्रमाण का अतिक्रम,
2. हिरण्य और सुवर्ण के प्रमाण का अतिक्रम,
3. धान और धान्य के प्रमाण का अतिक्रम,
4. दासी और दास के प्रमाण का अतिक्रम,
5. कुप्य के प्रमाण का अतिक्रम।

9. क्रियाएँ पच्चीस –

1. सम्यक्त्व क्रिया, 2. मिथ्यात्व क्रिया,
3. प्रयोग क्रिया, 4. समादान क्रिया,
5. ईर्यापथ क्रिया, 6. प्रादोषिकी क्रिया,
7. कायिकी क्रिया, 8. अधिकरणिकी क्रिया,
9. परिताप क्रिया, 10. प्राणातिपात क्रिया,
11. दर्शन क्रिया, 12. प्रात्ययिकी क्रिया,
13. समन्तानुपात क्रिया, 14. अनाभोग क्रिया,
15. स्वहस्त क्रिया, 16. निसर्ग क्रिया,

17. विदारण क्रिया, 18. आज्ञाव्यापादिनी क्रिया,
19. अनाकांक्षा क्रिया, 20. आरम्भ क्रिया,
21. परिग्रह क्रिया, 22. माया क्रिया,
23. मिथ्यादर्शन क्रिया, 24. अप्रत्याख्यान क्रिया,
25. स्पर्शन क्रिया।

10. कल्याण भावनाएँ पच्चीस –
1. सम्यक्त्व, 2. विनय, 3. ज्ञान, 4. शील,
5. सत्य, 6. श्रुत, 7. समिति, 8. एकान्त,
9. गुप्ति, 10. ध्यान, 11. शुक्लध्यान, 12.संक्लेशनिरोध,
13. इच्छा निरोध, 14. संवर, 15. प्रशस्तयोग, 16. संवेग,
17. करुणा, 18. उद्वेग, 19. भोगनिर्वेद, 20. संसारनिर्वेद,
21. भुक्तिवैराग्य, 22. मोक्ष, 23. मैत्री, 24. उपेक्षा,
25. प्रमोद भावना।

11. ज्ञानावरण कर्म के आस्रव के पच्चीस कारण –
1. ज्ञान प्रदोष, 2. ज्ञान निहन्व, 3. ज्ञान मात्सर्य,
4. ज्ञानान्तराय, 5. ज्ञानासादन, 6. ज्ञानोपघात,
7. अनादरार्थ श्रवण, 8. अर्थश्रवण आलस्य, 9. शास्त्र विक्रय,
10. बहुश्रुत गर्व, 11. मिथ्योपदेशना, 12. अकालाध्ययन,
13. आचार्य प्रत्यनीकता, 14. उपाध्याय प्रत्यनीकता,
15. श्रद्धा अभाव, 16. अनभ्यास, 17. तीर्थोपरोध,
18. बहुश्रुतावमान, 19. ज्ञानाधीतिशास्त्रता, 20. प्राणातिपात,
21.स्वपक्ष परिग्रह पंडित्व, 22.स्वपक्ष अपरित्याग, 23. अबद्धप्रलाप,
24. उत्सूत्रवाद, 25. साध्यपूर्वक ज्ञानाधिगम।

12. नीच गोत्र के आस्रव के पच्चीस कारण –
1. कुलमद, 2. जाति मद, 3. रूप मद, 4. धनमद, 5. बलमद,
6.तपमद, 7. प्रभुतामद, 8. ज्ञानमद, 9. परअवज्ञा, 10. उत्प्रहसन,
11. पर परिवादशीलता, 12. धार्मिकजन निन्दा,
13. अन्ययथविलोप, 14. असत कीर्ति उदभावन,
15. आत्म उत्कर्ष प्रकाशन, 16. गुरु परिभव, 17. तदुद्वन,
18. दोषख्यापन, 19. विहेड्रन , 20. स्थानावभाव,
21. भर्त्सना, 22. गुणावसादना, 23. अनभिवादन,
24. अनभ्युत्थान, 25. तीर्थंकरदिक्षेप।

छब्बीस (26)

1. पृथ्वी छब्बीस हैं –

1. रुचिरा,	2. शुद्धा,	3. खरा,	4. चित्रा,
5. वज्रा,	6. वैडूर्य,	7. लोहितांक	8. मसारगंध,
9. गोमेध,	10. प्रवाल,	11. ज्योति,	12. रसांजन,
13. अंजनमूल,	14. अंक,	15. स्फटिक,	16. चन्दन,
17. वचर्क,	18. बकुल,	19. शिलामय,	20. रत्नप्रभा,
21. शर्करा प्रभा,	22. बालुकाप्रभा,	23. पंकप्रभा,	24. धूमप्रभा,
25. तमप्रभा,	26. महातमप्रभा।		

2. देशघाती प्रकृतियाँ छब्बीस हैं –

ज्ञानावरण की चार –

1. मतिज्ञानावरण, 2. श्रुतज्ञानावरण, 3. अवधिज्ञानावरण, 4. मन:पर्यय ज्ञानावरण।

दर्शनावरण की तीन –

1. चक्षुदर्शनावरण, 2. अचक्षुदर्शनावरण, 3.अवधिदर्शनावरण।

मोहनीय की चौदह –

संज्वलन चार, कषाय नौ, सम्यक्त्व प्रकृति एक, अन्तराय की पाँच।

3. देवगति के छब्बीस लाख करोड़ कुल हैं।

सत्ताईस (27)

1. अनागार के गुण सत्ताईस –

एक से बारह तक भिक्षु प्रतिमा –

(ये उत्तम संहनन वालों के ही होती हैं)।

तेरह से बीस तक आठ प्रवचन मातृका –

पाँच समिति और तीन गुप्ति के पालन रूप और

21. क्रोध, 22. मान, 23. माया, 24. लोभ, 25. राग, 26. द्वेष, 27. मोह के अभाव रूप प्रवृत्ति।

2. नौ बार णमोकार मंत्र में सत्ताईस उच्छ्वास होते हैं।
3. मन, वचन, काय, कृत कारित अनुमोदना, समरंभ, समारंभ, आरम्भ को गुणा करने से सत्ताईस हो जाते हैं।

अट्ठाईस (28)

1. मुनिराज के अट्ठाईस मूलगुण –

पाँच महाव्रत–

1. अहिंसा, 2. सत्य, 3. अचौर्य, 4. ब्रम्हचर्य, 5. अपरिग्रह।

पाँच समिति –

1.ईर्या, 2.भाषा, 3.एषणा, 4.आदाननिक्षेपण, 5.प्रतिष्ठापन।

पंचेन्द्रिय विजय –

1. स्पर्शन, 2. रसना, 3. घ्राण, 4. चक्षु, 5. कर्ण।

षट् आवश्यक कार्य –

1. सामायिक, 2. स्तुति, 3. वन्दना, 4. प्रतिक्रमण,
5. स्वाध्याय, 6. कायोत्सर्ग।

सात शेष गुण –

1. नग्नता, 2. खड़े होकर आहर लेना,
3. केशलोंच करना, 4. एक समय आहार करना,
5. दन्त धोवन नहीं करना, 6. एक करवट भूमि शयन,
7. स्नान नहीं करना।

2. तीर्थंकर **मल्लिनाथ जी** के गणधर अट्ठाईस थे।
3. मोहनीय कर्म के अट्ठाईस भेद –

तीन दर्शन मोह –

1. मिथ्यात्व, 2. सम्यग्मिथ्यात्व, 3. सम्यग्प्रकृति,

25 चारित्र मोह –

4. अनन्तानुबन्धी क्रोध, 5. अनन्तानुबन्धी मान,
6. अनन्तानुबन्धी माया, 7. अनन्तानुबन्धी लोभ,
8. अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, 9. अप्रत्याख्यानावरण मान,
10. अप्रत्याख्यानावरण माया, 11. अप्रत्याख्यानावरण लोभ,
12. प्रत्याख्यानावरण क्रोध, 13. प्रत्याख्यानावरण मान,
14. प्रत्याख्यानावरण माया, 15. प्रत्याख्यानावरण लोभ,
16. संज्वलन क्रोध, 17. संज्वलन मान,
18. संज्वलन माया, 19. संज्वलन लोभ,
20. हास्य, 21. रति, 22. अरति,
23. शोक, 24. भय, 25. जुगुप्सा,
26. स्त्रीवेद, 27. पुरुषवेद, 28. नपुंसकवेद।

4. वनस्पतिकायिक के अट्ठाईस लाख कोटि कुल।
5. नक्षत्र अट्ठाईस।
6. इन्द्रिय संयम में बाधक अट्ठाईस विषय –
   पाँच रस, पाँच वर्ण, दो गन्ध, आठ स्पर्श, सात स्वर और एक मन।
7. नक्षत्र अट्ठाईस –

1. कृत्तिका,	2. रोहिणी,	3. मृगशीर्षा,
4. आर्द्रा,	5. पुनर्वसु,	6. पुष्य,
7. अश्लेषा,	8. मघा,	9. पूर्वा फाल्गुनी,
10. उत्तरा फाल्गुनी,	11. हस्त,	12. चित्रा,
13. स्वाति,	14. विशाखा,	15. अनुराधा,
16. ज्येष्ठा,	17. मूला,	18. पूर्वाषाढ़ा,
19. उत्तराषाढ़ा,	20. अभिजित,	21. श्रवण,
22. घनिष्ठा,	23. शतभिषक,	24. पूर्वा भाद्रपदा,
25. उत्तर भाद्रपदा,	26. रेवती,	27. अश्विनी,
28. अरणि।		

इनके ताराओं के समान विमान होते हैं। ये भी निरन्तर भ्रमण करते हैं। ये सभी उत्तम, मध्यम तथा जघन्य के भेद से तीन प्रकार के होते हैं।

संसार में सर्वत्र, उत्पन्न हुए जीवों को, उनके द्वारा पूर्व में किया गया पुण्य – पाप ही सुख अथवा दुःख देता है, उसे रोकना शक्य नहीं है। प्राणियों को उनका भाग्य द्वीप में, समुद्र में, पर्वत के शिखर पर, दिशाओं के अन्त में और कूप में गिरे रत्न को मिला देता है। इस संसार में पुण्यशाली जीवों की विपदा भी संपदा बन जाती है और पाप कर्म के उदय से संपदा भी विपदा बन जाती है।

–श्री सुभाषितरत्न संदोह

उनतीस (29)

1. सम्यग्दर्शन के उनतीस लक्षण –
   पच्चीस दोष रहित तथा चार लक्षण सहित उनतीस हो गये।
2. सम्मूर्छन के उनतीस भेद –
   एकेन्द्रिय के दो तथा विकलत्रय के सत्ताईस।
3. रत्नत्रय के उनतीस गुण –
   सम्यग्दर्शन के आठ गुण –
   1.निशंकित, 2.निकांक्षित, 3.निर्विचिकित्सा, 4.अमूढ़दृष्टि,
   5. उपगूहन, 6. स्थितिकरण, 7. प्रभावना, 8.वात्सल्य।
   ज्ञान के आठ अंग –
   1. व्यंजनाचार, 2. अर्थाचार, 3. उभयाचार, 4.कालाचार,
   5. विनयाचार, 6. उपधानाचार, 7. बहुमानाचार, 8.अनिन्हाचार
   चारित्र तेरह प्रकार के –
   1.अहिंसा, 2.सत्य, 3.अचौर्य,
   4.ब्रम्हचर्य, 5.अपरिग्रह, 6.ईर्या समिति,
   7.भाषासमिति, 8.एषणासमिति, 9.आदाननिक्षेपण समिति,
   10.प्रतिष्ठापन समिति, 11.मनो गुप्ति, 12.वचन गुप्ति,
   13.काय गुप्ति।
4. तीर्थंकरों के जन्म के समय देवों द्वारा बजाये जाने वाले 29 वाद्ययंत्र –
   1. ढोल, 2. नगारा, 3. ढोलक, 4. ढफ,
   5. डमरू, 6. डुगडुगी, 7. मृदंग, 8. तबला,
   9. तासे, 10. मुरज, 11. तोमड़ी, 12. घड़ा,
   13. खंजरी, 14. चौकी, 15. चंग, 16. नौबत,
   17. ढांक, 18. पौमवई, 19. दौरा, 20. खेल,
   21. दायरा, 22. उदकई, 23. सिंग, 24. गिडकट्टी,
   25. संतूर, 26. गोलभम, 27. ढपला, 28. नारी,
   29. तुमक।

तीस (30)

1. तीर्थंकर अरनाथ के गणधर तीस थे।
2. तीस चौबीसी –

   पाँच भरत, पाँच ऐरावत सम्बन्धी दस चौबीसी भूत, भविष्य और वर्तमान की
3. तीस भोग भूमियाँ –

   छह जम्बूद्वीप में, बारह धातकीखण्ड में और बारह पुष्करार्ध द्वीप में।

देखो! शास्त्राभ्यास की महिमा

जिसके होने पर परंपरा आत्मानुभव दशा को प्राप्त होता है, मोक्षमार्ग रूप फल को प्राप्त होता है; यह तो दूर ही रहो, तत्काल ही इतने गुण प्रकट होते हैं –

1. क्रोधादि कषायों की तो मंदता होती है, 2. पंचेन्द्रियों के विषयों में प्रवृत्ति रुकती है, 3. अति चंचल मन भी एकाग्र होता है, 4. हिंसादि पाँच पाप नहीं होते, 5. स्तोक (अल्प) ज्ञान होने पर भी त्रिलोक के तीन काल सम्बन्धी चराचर पदार्थों का जानना होता है, 6. हेय-उपादेय की पहिचान होती है, 7. आत्मज्ञान सम्मुख होता है, 8. अधिक-अधिक ज्ञान होने पर आनन्द उत्पन्न होता है, 9. लोक में महिमा - यश विशेष होता है, 10. अतिशय पुण्य का बंध होता है इत्यादि गुण शास्त्राभ्यास करने से तत्काल ही उत्पन्न होते हैं, इसलिये शास्त्राभ्यास अवश्य करना।

सम्यग्ज्ञान चन्द्रिका पीठिका, पृष्ठ 6

तुमने भाग्य से अवसर पाया है, इसलिये तुमको हठ से भी तुम्हारे हित के लिये प्रेरणा करते हैं। जैसे हो सके वैसे इस शास्त्र का अभ्यास करो। अन्य जीवों को जैसे बने वैसे शास्त्राभ्यास कराओ। जो जीव शास्त्राभ्यास करते हैं उनकी अनुमोदना करो। पुस्तक लिखवाना व पढ़ने-पढ़ाने वालों की स्थिरता करनी इत्यादि शास्त्राभ्यास के बाह्य कारण उनका साधन करना; क्योंकि उनके द्वारा भी परम्परा कार्य सिद्धि होती है व महत् पुण्य उत्पन्न होता है।

सम्यग्ज्ञान चन्द्रिका पीठिका, पृष्ठ 16

इकतीस (31)

1. मुनि के इकतीस लक्षण –
   अट्ठाईस मूलगुण तथा तीन गुप्ति।
2. कर्म विपाक सूत्र इकतीस –
   ज्ञानावरण कर्म के पाँच भेद –
   1. मतिज्ञानावरण, 2. श्रुतज्ञानावरण, 3. अवधिज्ञानावरण,
   4. मन:पर्ययज्ञानावरण, 5. केवलज्ञानावरण।
   दर्शनावरण कर्म के नौ भेद –
   1. चक्षुदर्शनावरण, 2. अचक्षुदर्शनावरण, 3. अवधिदर्शनावरण,
   4. केवलदर्शनावरण, 5. निद्रा, 6. निद्रा-निद्रा,
   7. प्रचला, 8. प्रचला-प्रचला, 9. स्त्यानगृद्धि।
   वेदनीय कर्म के दो भेद – 1. सातावेदनीय, 2. असातावेदनीय।
   मोहनीय कर्म के दो भेद –1. दर्शन मोहनीय, 2. चारित्र मोहनीय।
   आयुष्क कर्म के चार भेद–1. नरकायु, 2. तिर्यंचायु, 3. मनुष्यायु,
   4. देवायु।
   नाम कर्म के दो – 1. शुभ, 2. अशुभ।
   गोत्र कर्म के दो – 1. उच्च, 2. नीच।
   अन्तराय कर्म के पाँच –
   1. दान अन्तराय, 2. भोग अन्तराय, 3. उपभोग अन्तराय,
   4. लाभ अन्तराय, 5. वीर्य अन्तराय।
3. इकतीस वस्तुयें स्वप्न में देखना शुभ –

1. साधु,	2. मित्र,	3. देवता,	4. पूजनक्रिया,
5. तीर्थ,	6. उदीघ,	7. गौ,	8. वृषभ,
9. चन्द्र,	10. शत्रुजय,	11. देशजय,	12. सदन,
13. वन,	14. पर्वत,	15. जल,	16. घट,
17. भ्रमर,	18. मृगेन्द्र,	19. श्वेतपुष्प,	20. घोटक,
21. कन्या,	22. रत्नराशि,	23. मत्स्य,	24. मृगेन्द्र लाभ,
25. आरोग्य,	26. विट,	27. मृतक,	28. जलौका,
29. सूर्य,	30. रुदन,	31. नरेन्द्र।	

अनुयोग

जिनवाणी को निम्न चार अनुयोगों में बाँटा गया है :-

1. प्रथमानुयोग 2. करणानुयोग
3. चरणानुयोग 4. द्रव्यानुयोग।

इन्हें सरल भाषा में कहें तो जिन्होंने **द्रव्यानुयोग** के अनुसार निज ज्ञायक आत्मा का आश्रय लिया है, उनके ही **करणानुयोग** के अनुसार कर्मों के उपशमादि होते हैं। उनका ही जीवन **चरणानुयोग** के अनुसार सदाचारमय हो जाता है और वे ही **प्रथमानुयोग** के अनुसार महापुरुष बनते हैं।

अनुयोगों की उपयोगिता

1. यदि स्वयं अपने को वीतरागी बनाना हो तो महापुरुषों को आदर्श बनाइये।
2. यदि चित्त में ज्ञान का सौरभ महकाना है तो कर्म सिद्धान्त को अवलोकिये।
3. यदि अपने जीवन को पवित्र बनाना है तो महापुरुषों का आचरण अपनाइये।
4. यदि श्रद्धा में नि:शंकता लाना है तो वस्तु व्यवस्था को जानिये।

जैन धर्म परीक्षा प्रधानी है

यह कथन मात्र द्रव्यानुयोग में वर्णित प्रयोजनभूत तत्त्वों की अपेक्षा से है। अन्य विषयों में और शेष तीनों अनुयोगों में केवली भगवान की आज्ञा की ही मुख्यता है।

प्रथमानुयोग

प्रथमानुयोग के ग्रन्थों में वर्णित शलाका पुरुष त्रेसठ हैं। भरत-ऐरावत क्षेत्र के अवसर्पिणी के चतुर्थ तथा उत्सर्पिणी के तीसरे काल में तीर्थंकर चौबीस ही होते हैं। विदेह क्षेत्र में हमेशा भरत क्षेत्र के चौथे काल की आदि जैसा काल ही वर्तता है, वहाँ सदा कर्म भूमि रहती है। वहाँ कम से कम बीस तीर्थंकर सदाकाल विद्यमान रहते हैं चक्रवर्ती बारह होते हैं इत्यादि कथनों की परीक्षा नहीं हो सकती। भगवान की आज्ञा के अनुसार जैसा शास्त्र में लिपिबद्ध है, वैसा ही मानना अनिवार्य है।

करणानुयोग

करणानुयोग के ग्रन्थों के अनुसार चौदह मार्गणायें, चौदह जीवसमास, मेरु पर्वत, असंख्यात द्वीप एवं समुद्र, नरक-स्वर्ग सम्बन्धी वर्णित दु:ख तथा सुख का स्वरूप-इन सभी का आज्ञानुसार ही श्रद्धान करना अनिवार्य है।

चरणानुयोग

चरणानुयोग के शास्त्रों के अनुसार आलू, प्याज, शकरकन्द, मूली, लहसुन आदि जमींकन्द के राई जितने टुकड़े में अनन्त बादर निगोदिया जीव हैं; अत: वे अभक्ष्य हैं। जीवों की अनन्त संख्या की परीक्षा कैसे सम्भव है? यहाँ भी आज्ञा ही शिरोधार्य है। आज्ञानुसार ही इन पदार्थों का त्याग करना हमारा कर्तव्य है।

द्रव्यानुयोग

द्रव्यानुयोग के शास्त्रों के अनुसार पंचास्तिकाय, छह द्रव्य, सात तत्त्व, नौ पदार्थ, हितकारी-अहितकारी भावों, बन्ध मार्ग, मोक्षमार्ग सम्बन्धी सत्यासत्य का निर्णय अपनी बुद्धि के अनुसार युक्ति परीक्षा द्वारा कर सकते हैं।

अनुयोगों का प्रयोजन

प्रथमानुयोग में संसार की विचित्रता, पुण्य-पाप का फल, महान पुरुषों के जीवन चरित्र के वर्णन द्वारा जीवों को धर्म में लगने का उपदेश दिया गया है।

करणानुयोग में जीवों के विशेष कर्मों की प्रकृति, तीन लोक की रचना, गुणस्थान, इत्यादि के वर्णन द्वारा जीवों को पाप से विमुख होकर धर्म में लगने का उपदेश दिया गया है।

चरणानुयोग में हिंसा आदि पाँचों पापों से बचकर, अणुव्रतों एवं महाव्रतों का धारण करके धर्म मार्ग पर आरूढ़ होने का उपदेश दिया गया है।

द्रव्यानुयोग में छह द्रव्यों व सात तत्त्वों के निरूपण द्वारा जीव को स्व एवं पर को जानकर अनादि की भूल को सुधार कर मोक्ष मार्ग पर चलने का उपदेश दिया गया है।

इस प्रकार चारों ही अनुयोग जीवों के कल्याण में सहायक हैं। आगे इन चारों अनुयोगों का संक्षिप्त वर्णन दिया गया है।

1. प्रथमानुयोग

1. राज्य के पद :

लोक में पाँच सौ राजाओं के अधिपति को **'अधिराज'** कहते हैं और एक हजार राजाओं के अधिपति को **'महाराज'** कहते हैं। पण्डित जन दो हजार राजाओं के स्वामी को **'अर्धमण्डलीक'** कहते हैं और चार हजार राजाओं के स्वामी को **'मण्डलीक'** कहते हैं। बुधजन आठ हजार राजाओं के स्वामी को **'महामण्डलीक'** कहते हैं और जिसे सोलह हजार राजा नमस्कार करते हैं, उसे तीन खण्ड पृथ्वी का अधिपति अर्थात् **'नारायण'** कहते हैं। इस लोक में बत्तीस हजार राजाओं से सेवित, नव निधि से प्राप्त होने वाले भागों के भण्डार, उत्तम चक्र रत्न को धारण करने वाले और छह खण्ड के अधिपति को **'दिव्य'** अर्थात अनेक गुणों से युक्त मनुष्य अर्थात **'चक्रवर्ती'** समझना चाहिए।

2. जैन धर्म की प्राचीनता (अन्य मतों से) :

हरिवंश पुराण-	सर्ग 8 श्लोक 55, 104, सर्ग 9 श्लोक 25
मार्कण्डेय पुराण-	अध्याय 50, पृष्ठ 150
कूर्म पुराण-	अध्याय 41, पृष्ठ 61
अग्नि पुराण-	अध्याय 10, पृष्ठ 92
वायु पुराण-	पूर्वार्ध अध्याय 33, पृष्ठ 51
ब्रम्हाण्ड पुराण-	अध्याय 14, पृष्ठ 21
वराह पुराण-	अध्याय 94, पृष्ठ 49
लिंग पुराण-	अध्याय 49, पृष्ठ 68
विष्णु पुराण-	अध्याय 1, पृष्ठ 77
भागवत स्कन्ध-	अध्याय 2, लोक 7, 10
यजुर्वेद-	अध्याय 9, मन्त्र 25
ऋग्वेद-	मंडल 1, सुक्त 94
ऋग्वेद-	मंडल 5, सुक्त 52, वर्ग 51
ऋग्वेद-	मंडल 2, सुक्त 33, वर्ग 17

इतिहासकार पं० सुन्दरलाल जी ने **'जरत ईसा'** नामक अपनी पुस्तक के 172 पूर्व में बताया है कि ईसा जैन साधु के संघ में रहे।

फरग्यूसर शिल्प शास्त्री ने विश्व दृष्टि नामक पुस्तक के पृष्ठ 27 पर लिखा है कि मक्का में मुहम्मद से पहले जैन धर्म था। जैन विद्वान प्रोफेसर चन्द्रा हिन्दू यूनिवर्सिटी काशी में वाईस चांसलर राधा कृष्णन से चेयर दिला सके।

1. वादरायण व्यास के वेदान्त सूत्र के वाण्य दूसरे अध्याय के द्वितीय पाद का सूत्र 33-36।
2. योग वशिष्ट रामायण वैराग्य प्रकरण अध्याय 15, श्लोक 8 में श्री रामचन्द्रजी सहज जिनेन्द्र होने की इच्छा प्रकट करते हैं।

3. दिगम्बर वेश पाँच (अन्य मतों में भी):

1. दिगम्बर वैदिक मत में परमहंस साधु सबसे उत्कृष्ट माने जाते हैं। वे परमहंस साधु सर्वथा नग्न दिगम्बर ही होते हैं। शुकदेव जी वैदिक मत में प्रसिद्ध महात्मा हुए हैं। वे शुकदेव जी नग्न दिगम्बर रूप में विचरण करते हैं।
2. बौद्धमत की नींव डालने वाले महात्मा बुद्ध ने सबसे प्रथम आत्म शुद्धि के लिए नग्न दिगम्बर साधु चर्या का पालन ही किया था। जब उनको उस वेश में बहुत कठिनाई अनुभव हुई, तो उन्होंने वस्त्र पहन लिये।
3. ईसाइयों में नग्न निर्विकार रूप को महत्व दिया जाता है। बाइबिल में लिखा है कि ईसा ने अपने कपड़े उतार दिये थे और हजरत सैमुअल को भी नंगा रहने की शिक्षा दी थी। उनके बिल्कुल नग्न होने और लंगोटी तक भी त्याग देने पर लोगों ने पूछा-क्या ये पैगम्बर भी परमात्मा का संदेश देने वाले हैं।
4. यहूदियों में भी नग्नता को महत्त्व दिया गया है। 'ऐनसियंट हिस्ट्री आफ इण्डिया' पेज 32 पर लिखा है-जिसका भाव यह है कि यहूदियों में भैराज का विश्वास करने वाले जो पहाड़ों पर आबाद हो गये थे, लंगोटी तक त्यागकर बिल्कुल नग्न रहते थे।
5. मुसलमानों में भी अनेक सबसे ऊँची श्रेणी के फकीर बिल्कुल नग्न ही रहते थे।

4. तीर्थंकरों के बल का प्रमाण:

200 सिंहों का बल एक अष्टापद में, दस लाख अष्टापद का बल एक बलदेव में, दो बलदेव का बल एक वासुदेव में, दो वासुदेव का

बल एक चक्रवर्ती में, दस लाख चक्रवर्ती का बल एक देव में, दस लाख देवों का बल एक इन्द्र में, अनन्त इन्द्र एक साथ मिलकर तीर्थंकर की चितली (कनिष्ठिका) अँगुली को भी हिला नहीं सकते। ऐसा उदाहरण **'हरिवंश पुराण'** में मिलता है। जब कृष्णजी की सभी रानियों ने अपने पति के बल के घमंड में कुमार नेमिनाथ (तीर्थंकर) के बल का तिरस्कार करने के भाव किये तब नेमिजी ने सभी यादव योद्धाओं की लोहे की श्रृंखला को अपनी चितली अँगुली से ही पकड़े रखा, तब सभी का पूर्ण बल लगने पर भी प्रभु ने अपना हाथ ऊँचा कर सभी को झुला दिया, जिससे सभी रानियों और कृष्णजी को लज्जित होना पड़ा, और उनका मान चूर-चूर हो गया।

5. महावीर स्वामी के बाद तीन केवली:

भगवान महावीर जब मोक्ष पधारे थे उस समय चतुर्थकाल का 3 वर्ष साढ़े आठ माह का समय शेष था। उनके बाद उसी दिन संध्या को गौतम गणधर को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई थी। भगवान महावीर के पश्चात 62 वर्ष में तीन अनुबद्ध केवली हुये:-

नाम	समय
1. गौतम स्वामी	12 वर्ष
2. सुधर्माचार्य	12 वर्ष
3. जम्बू स्वामी	38 वर्ष
	62 वर्ष

फिर अगले सौ वर्ष में पाँच श्रुतकेवली हुए :-

1. विश्वनन्दी	14 वर्ष
2. नन्दीमित्र	16 वर्ष
3. अपराजित	22 वर्ष
4. गोवर्धन	19 वर्ष
5. भद्रबाहु	29 वर्ष
	100 वर्ष

इनके पश्चात् अगले 183 वर्षों में ग्यारह अंग और दस पूर्व के धारी 11 मुनि हुये :-

1. विशाखाचार्य	10 वर्ष
2. प्रोष्ठिलाचार्य	19 वर्ष
3. क्षत्रिय	17 वर्ष
4. जयसेन	21 वर्ष
5. नागसेन	18 वर्ष
6. सिद्धार्थ	17 वर्ष
7. धृतिषेण	18 वर्ष
8. विजय	13 वर्ष
9. बुद्धिल	20 वर्ष
10. गंगदेव	14 वर्ष
11. धर्मसेन	16 वर्ष
	183 वर्ष

अगले 220 वर्षों के अन्दर ग्यारह अंग के पारगामी पाँच मुनि हुये :

1. नक्षत्र
2. जयपाल
3. पांडुनाम
4. ध्रुवसेन
5. कंसाचार्य

इनके बाद अगले 118 वर्षों में एक अंग के धारी 4 मुनि हुये :

1. सुभद्राचार्य
2. यशोभद्र
3. यशोबाहु
4. लोहाचार्य

62 वर्ष में तीन केवली।

100 वर्ष में पाँच श्रुत केवली।

183 वर्ष में ग्यारह अंग दस पूर्व के धारी ग्यारह मुनि।

220 वर्ष में एकादशांग के पारगामी पाँच मुनि।

118 वर्ष में चार मुनि प्रथम अंग धारी।

इस प्रकार तीर्थंकर महावीर के पश्चात् 683 वर्ष तक अंगों का ज्ञान रहा। इसे पश्चात क्षीण अंग के धारी आचार्य माघनन्दी हुये। इनके

बाद गुणचन्द्राचार्य, धरसेनाचार्य, पुष्पदन्त, भूतबली, जिनचन्द्र, कुन्दकुन्द आचार्य, उमास्वामी आदि महान मुनि हुये।

6. स्थानक बाईस टोला श्वेताम्बर पंथ किसने चलाया?

स्थानक बाईस टोला श्वेताम्बर पंथ 15वीं सदी में लोकाशाह ने आरम्भ किया। जिसने बत्तीस सूत्रों को बनाया।

7. स्थानक तेरह पंथ श्वेताम्बर की स्थापना किसने की?

स्थानक तेरह पंथ श्वेताम्बर की स्थापना रघुनाथ के शिष्य भीखन जी ने विक्रम संवत् 18-17 चैत्र शुक्ला नवमी के दिन की। तुलसी दास नवें आचार्य हैं।

8. किन तीर्थंकर के कौन से वर्ण हैं?

पुष्पदन्त व चन्द्रप्रभ के	-	श्वेत वर्ण।
पद्मप्रभ व वासुपूज्य के	-	लाल वर्ण।
मुनिसुव्रतनाथ व नेमिनाथ के	-	कृष्ण वर्ण।
पार्श्वनाथ व सुपार्श्वनाथ के	-	हरित वर्ण।

बाकी के (16) तीर्थंकर तपाये गए सोने के समान वर्ण के होते हैं।

9. कौन से तीर्थंकर किस आसन से सिद्धत्व को प्राप्त हुए?

वृषभदेव, वासुपूज्य व नेमिनाथ पद्मासन से और बाकी के (21) तीर्थंकर खड़गासन से सिद्धत्व को प्राप्त हुए।

10. कौन से तीर्थंकर किस वंश से पैदा हुए?

शान्तिनाथ एवं कुन्थुनाथ	-	कुरु वंश।
नेमिनाथ एवं मुनिसुव्रतनाथ	-	यादव वंश।
पार्श्वनाथ एवं महावीर	-	उग्र वंश।

बाकी के 18 तीर्थंकर इक्ष्वाकु वंश में पैदा हुए।

11. कौन से तीर्थंकर कहाँ से मोक्ष गये?

तीर्थंकर वासुपूज्य	-	चम्पापुर से।
तीर्थंकर आदिनाथ	-	कैलाश पर्वत से।
तीर्थंकर नेमिनाथ	-	गिरनार से।
तीर्थंकर महावीर	-	पावापुर से।

बाकी के बीस तीर्थंकर श्री सम्मेद शिखर जी से मोक्ष गये या मोक्ष को प्राप्त किया।

12. ऐतिहासिक राज्य वंश :

1. भोज वंश
2. कुरु वंश
3. मगध देश के राज्य वंश
    - अ. सामान्य
    - ब. कल्क
    - स. हुन
4. काल निर्णय
5. राष्ट्र कूट वंश

13. दिगम्बर मूल संघ :

1. मूल संघ
2. मूल संघ की पट्टावली
3. पट्टावली का समन्वय
4. मूल संघ का विघटन
5. श्रुत तीर्थ की उत्पत्ति
6. श्रुत ज्ञान का क्रमिक ह्रास

14. दिगम्बर जैन संघ :

1. सामान्य परिचय
2. नन्दि संघ
3. अन्य संघ

15. दिगम्बर जैनाभासी संघ :

1. सामान्य परिचय
2. यापनीय संघ
3. द्राविड़ संघ
4. काष्ठा संघ
5. माथुर संघ
6. मिल्लक संघ
7. अन्य संघ तथा शाखाएँ

दिगम्बर जैनाभासी संघ :

मूल संघ में पहले भद्रबाहु प्रथम के काल में श्वेताम्बर संघ उत्पन्न हुआ। तत्पश्चात किसी काल मे काष्ठा संघ हुआ जो पीछे अनेक गच्छों में विभक्त हुआ, उसके कुछ ही काल पश्चात् यापनीय संघ हुआ।

काष्ठा संघ, श्वेताम्बर, द्रविण, यापनीय और निशिपच्छ (माथुर संघ) से पाँच जैनाभासी कहे गए हैं।

ये दिगम्बर नग्न रहते हैं और हाथ मे भोजन करते हैं। इनके चार भेद हैं :

1. काष्ठा संघ
2. मूल संघ
3. माथुर संघ
4. गोम्य संघ (यापनीय)

पहले तीन संघ वन्दना करने वाले को धर्मवृद्धि कहते हैं और स्त्रीमुक्ति, केवलीभुक्ति तथा सदव्रतों के सद्भाव में भी शूद्रों को मुक्ति नहीं मानते है। चारों ही संघों के साधु भिक्षाटन में तथा भोजन मे 32 अन्तराय और 14 मलों को टालते हैं इसके सिवाय शेष आचार (अनुद्दिष्टाहार, शून्यवास आदि तथा गुरु देव के विषय में मन्दिर तथा मूर्तिपूजा आदि के विषय में) सब श्वेताम्बरों के तुल्य हैं इन दोनों के शास्त्रों में तथा तर्कों में (सचेलता / स्त्रीमुक्ति और केवलीभुक्ति को छोड़कर) अन्य कोई भेद नहीं है। ये संघ वर्तमान में लुप्त प्राय: हैं। गोपुच्छ की पिच्छिका धारण करने वाले कतिपय भट्टारकों के रूप में काष्ठा संघ का ही कोई अन्तिम अवशेष कहीं-कहीं देखने में आता है।

16. पट्टावलियें तथा गुर्वावलियें :

1. मूल संघ विभाजन
2. नन्दि संघ बलात्कार गण
3. नन्दि संघ बलात्कार गण की भट्टारक आम्नाय
4. नन्दि संघ बलात्कार गण की शुभचन्द्र आम्नाय
5. नन्दि संघ देशीय गण
6. सेन या ऋषभ संघ
7. पंच स्तूप संघ

8. पुन्नार संघ
9. काष्ठा संघ
10. लाड़ बागड़ गच्छ
11. माथुर गच्छ

17. पौराणिक राज्य वंश :

1. सामान्य वंश
2. इक्ष्वाकु वंश
3. उग्र वंश
4. ऋषि वंश
5. कुरू वंश
6. चन्द्र वंश
7. नाथ वंश
8. भोज वंश
9. मातंग वंश
10. यादव वंश
11. रघु वंश
12. राक्षस वंश
13. वानर वंश
14. विद्याधर वंश
15. श्री वंश
16. सूर्य वंश
17. सोम वंश
18. हरि वंश

20. संवत्सर निर्देश :

1. संवत्सर सामान्य व उसके भेद
2. वीर निर्वाण संवत्
3. विक्रम संवत्
4. शक संवत्
5. शालिवाहन संवत्
6. ईसवी संवत्

7. गुप्त संवत्
8. हिजरी संवत्
9. मघा संवत्
10. सब संवतों का परस्पर सम्बन्ध

21. वीर निर्वाण संवत् निर्देश :

वर्धमान जिनेन्द्र के मोक्ष जाने के बाद चतुर्थ काल 3 वर्ष, 8 माह और पन्द्रह दिन शेष प्रमाण था। इसके बाद पंचम काल प्रारम्भ हुआ। साधारणत: वीर निर्वाण संवत् व विक्रम संवत् में 470 वर्ष का अन्तर रहता है; परन्तु विक्रम संवत् के प्रारम्भ के सम्बन्ध में प्राचीन काल से बहुत मतभेद चल रहा है जिसके कारण भगवान महावीर के निर्वाण काल के सम्बन्ध में भी कुछ मतभेद उत्पन्न हो गया है। उदाहरणार्थ – नन्दि संघ की पट्टावली में आचार्य इन्द्रनन्दि ने वीर के निर्वाण से 470 वर्ष पश्चात् जन्म और 488 वर्ष पश्चात् उसका राज्याभिषेक बताया है इसे प्रमाण मानकर बैरिस्टर काशीलाल जायसवाल ने वीर निर्वाण काल 18 वर्ष ऊपर उठाने का सुझाव दिया हैं, क्योंकि उनके अनुसार विक्रम संवत् का प्रारम्भ उनके राज्याभिषेक से हुआ था; परन्तु दिगम्बर तथा श्वेताम्बर दोनों ही आम्नायों में विक्रम संवत् का प्रचार निर्वाण के 470 वर्ष पश्चात् माना गया है। इसका कारण यह है कि सभी प्राचीन शास्त्रों में शक संवत् का प्रचार वीर निर्वाण के 605 वर्ष पश्चात् कहा गया है और उसमें तथा प्रचलित विक्रम संवत् में 135 वर्ष का अन्तर प्रसिद्ध है। दूसरी बात यह भी है कि ऐसा मानने पर भगवान वीर को प्रतिस्पर्धी शास्ता के रूप में महात्मा बुद्ध के साथ 12-13 वर्ष तक साथ-साथ रहने का अवसर भी प्राप्त हो जाता है क्योंकि बोधिलाभ से निर्वाण तक भगवान वीर का काल उक्त मान्यता के अनुसार है। इस मान्यता के अनुसार भगवान महावीर का काल ईसवी पूर्व 556-527 आता है जबकि बुद्ध का ई० पूर्व 558-544 माना गया है।

22. विक्रम संवत् निर्देश :

यद्यपि दिगम्बर तथा श्वेताम्बर दोनों आम्नायों में विक्रम संवत् का प्रचार वीरनिर्वाण के 470 वर्ष पश्चात् माना गया है तथापि यह संवत् विक्रम के जन्म से प्रारम्भ है अथवा उनके राज्य अभिषेक से

या मृत्युकाल से, इस विषय पर मतभेद है। दिगम्बर मान्यता के अनुसार वीर निर्वाण के पश्चात् 60 वर्ष तक पालक का राज्य रहा। तत्पश्चात् 155 वर्ष तक नंदवंश का और तत्पश्चात् 225 वर्ष तक मौर्य वंश का। इस समय में ही अर्थात् वीर निर्वाण 470 तक ही विक्रम का राज्य रहा; परन्तु श्वेताम्बर मान्यता के अनुसार वीर निर्वाण के पश्चात् 155 वर्ष तक पालक तथा नंद का तत्पश्चात् 225 वर्ष तक मौर्य वंश का और तत्पश्चात् 60 वर्ष तक विक्रम का राज्य रहा। यद्यपि दोनों का जोड़ 470 वर्ष ही आता है; तथापि पहली मान्यताओं में विक्रम का राज्य मौर्य काल के भीतर आ गया और दूसरी मान्यता में वह उससे बाहर रह गया क्योंकि जन्म के 18 वर्ष पश्चात् विक्रम का राज्याभिषेक और 60 वर्ष तक उसका राज्य रहना लोक प्रसिद्ध है। इसलिए उक्त दोनों ही मान्यताओं में उसका राज्य अभिषेक वीर निर्वाण 410 में और जन्म 392 में प्राप्त होता है; परन्तु नंदी संघ की पट्टावली में उसका जन्म वीर निर्वाण 470 में और राज्याभिषेक 488 में कहा गया है। इसलिए विद्वान लोग उसे भ्रान्तिपूर्ण मानते हैं। इसी प्रकार विक्रम संवत् को जो कहीं-कहीं शक संवत् अथवा शालीवाहन संवत् मानने की प्रवृत्ति है। यह भी युक्त नहीं है; क्योंकि ये तीनों संवत् स्वतन्त्र हैं। विक्रम संवत् का वीर निर्वाण 470 में, शक संवत् का वीर निर्वाण 605 में और शालीवाहन संवत् का वीर निर्वाण 471 में प्रारम्भ हुआ है।

23. ईसवी संवत् :

यह संवत् ईसा मसीह के स्वर्गवास के पश्चात् यूरोप में प्रचलित हुआ और अंग्रेजी साम्राज्य के साथ सारी दुनिया में फैल गया। यह आज विश्व का सर्वाधिक मान्य संवत् है। इसकी प्रवृत्ति वीर निर्वाण के 527 वर्ष पश्चात् और विक्रम संवत् से 57 वर्ष पश्चात् होनी प्रसिद्ध है।

24. गुप्त संवत् निर्देश :

इसकी स्थापना गुप्त साम्राज्य के प्रथम सम्राट चन्द्रगुप्त ने अपने राज्य अभिषेक के समय ईसवी 320 अर्थात् वीर निर्वाण के 846 वर्ष पश्चात् की थी। इसका प्रचार गुप्त साम्राज्य पर्यन्त ही रहा।

कुछ प्रसिद्ध ऐतिहासिक जैन पुरुष

1. भरत :

पूर्व भव न० 8 में वत्सकावती देश का अतिगृध नामक राजा, फिर चौथे नरक का नारकी, छठे भव में व्याघ्र हुआ, पाँचवें में दिवाकर प्रभ नामक देव, चौथे भव में मतिसागर मन्त्री हुआ। तीसरे भव में अधोग्रैवियक में अहमिन्द्र हुआ। दूसरे भव में सुबाहु नामक राजपुत्र हुआ। पूर्वभव में सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र हुआ। अन्तिम भव में राजा ऋषभदेव के पुत्र थे। ऋषभदेव की दीक्षा के समय राज्य और केवलज्ञान के समय चक्र तथा पुत्र रत्न की प्राप्ति की। छह खण्ड को जीतकर बाहुबली से युद्ध में हारे। क्रोध के वश भाई पर चक्र चला दिया, परन्तु चक्र उनके पास जाकर ठहर गया। फिर एक वर्ष पश्चात् इन्होंने योगी बाहुबली की पूजा की। एक समय श्रावकों की स्थापना कर उनको गर्भान्वयन आदि क्रियाएँ, दीक्षान्वय क्रियाएँ, षोडश संस्कार व मन्त्रों आदि का उपदेश दिया। आयु को क्षीण जानकर पुत्र अर्क कीर्ति को राज्य देकर दीक्षा धारण की तथा अन्तर्मुहुर्त में ध्यानस्थ होकर केवलज्ञान प्राप्त किया। फिर कुछ काल तक धर्मोपदेश दे मोक्ष को प्राप्त किया। ये भगवान के मुख्य श्रोता तथा प्रथम चक्रवर्ती थे।

2. अन्य भरत के परिचय :

- राजा दशरथ के पुत्र, माता केकयी द्वारा वर माँगने पर राज्य को प्राप्त किया था। अन्त में रामचन्द्र जी के वनवास से लौटने पर दीक्षा धारण की और कर्मों का नाश कर मुक्ति प्राप्त की।
- यादववंशी कृष्ण जी के 22 वें पुत्र।
- मान्यखेट के राजा कृष्ण तृतीय के मन्त्री।

3. नित्य निगोद से निकले 923 जीव :

यह वृतान्त अनुपम और अद्वितीय है कि नित्य निगोदवासी अनादि मिथ्यादृष्टि 923 जीव कर्मों की निर्जरा होने से इन्द्रगोप हुए। सो उन सबके ढेर पर भरत के हाथी ने पैर रख दिया। वे मरकर भरत के वर्धन कुमार आदि पुत्र हुए। वे तप ग्रहण करके थोड़े ही काल में उसी भव से मोक्ष चले गये।

4. कंस :

पूर्व भव में वशिष्ठ नामक तापस था। इस भव में राजा उग्रसेन का पुत्र हुआ। मंदोदरी के घर पला। जरासंध के शत्रु को जीतकर जरासंध की कन्या जीवद्यशा को ब्याहा तथा पिता के क्रूर व्यवहार से क्रुद्ध हो उसे जेल में डाल दिया। अपनी बहन देवकी वसुदेव के साथ गुरु दक्षिणा के रूप में परिणायी। भावी मरण की आशंका से देवकी के छह पुत्रों को मारना चाहा। अन्त में देवकी के सातवें पुत्र कृष्ण द्वारा मारा गया। श्रुतावतार के अनुसार 11 अंगधारी 5वें कंस नाम के आचार्य थे।

5. कनकध्वज :

दुर्याधन द्वारा घोषित आधे राज्य के लालच से इसने कृत्या नामक विद्या को सिद्ध करके उसके द्वारा पाण्डवों को मारने का प्रयत्न किया, परन्तु उसी विद्या से स्वयं मारा गया।

6. कमठ :

भरत क्षेत्र में पोदनपुर निवासी विश्वभूति ब्राह्मण का पुत्र था। उसने छोटे भाई मरुभूति की स्त्री के साथ व्याभिचार करने का प्रयास किया। मरकर प्रथम भव मे कुक्कुट सर्प हुआ। द्वितीय भव में प्रथम नरक में गया। तीसरे भव में अजगर हुआ। चौथे भव में छठे नरक में, पाँचवे भव में कुरंग नाम भील, छठे भव में सप्तम नरक का नारकी, सातवें भव में सिंह, आठवें भव में महीपाल राजा, नवें भव में शम्बर नामक ज्योतिषी देव हुआ, जिसने मुनिदशा सम्पन्न भगवान पार्श्वनाथ पर घोर उपसर्ग किया।

7. कर्ण (राजा) :

पाण्डु का पुत्र था। कुँवारी कुन्ती से उत्पन्न हुआ था। चम्पा नगरी के राजा भानू के यहाँ पला। महाभारत युद्ध में कौरवों के पक्ष से लड़ा। अन्त में अर्जुन द्वारा मारा गया।

8. कुन्ती :

राजा अंधकवृष्टि की पुत्री तथा वसुदेव की बहिन थी। कन्यावस्था में पाण्डु से कर्ण नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। पाण्डु से विवाह के पश्चात युधिष्ठिर, भीम व अर्जुन को जन्म दिया। अन्त में दीक्षा धारण कर सोलहवें स्वर्ग में देव पद प्राप्त किया।

9. गजकुमार :

वसुदेव का पुत्र तथा कृष्ण का छोटा भाई था। एक ब्राह्मण की कन्या से सम्बन्ध जुड़ा ही था कि वैराग्यरत् होकर विवाह पूर्व ही दीक्षा धारण कर ली तब इनके ससुर ने क्रोध से प्रेरित होकर इनके सिर पर आग जला दी। उस उपसर्ग को जीत मोक्ष को प्राप्त किया।

10. जरासंध :

राजगृह नगर के स्वामी जयद्रथ का पुत्र था। राजगृह नगर का हरिवंशीय राजा था। अपनी पुत्री जीवद्यशा का विवाह कंस के साथ करके उसे सेनापति बना दिया। कृष्ण द्वारा कंस मारा गया। युद्ध में स्वयं भी कृष्ण द्वारा मारा गया। यह तीन खण्ड का स्वामी 9वाँ प्रतिनारायण था।

11. जीवद्यशा :

राजगृह नगर के राजा जरासन्ध (प्रतिनारायण) की पुत्री थी। कंस के साथ विवाही गयी। अपनी ननद देवकी के रजो वस्त्र अतिमुक्तक मुनि को दिखाने पर मुनि ने इसका फल बताया कि देवकी के पुत्र द्वारा ही उसका पति व पिता दोनों मारे जायेंगे और ऐसा ही हुआ।

12. नकुल :

माद्री रानी से राजा पाण्डु का पुत्र था। ताऊ भीष्म से तथा गुरु द्रोणाचार्य से धनुष विद्या प्राप्त की। अन्त में अपना पूर्व भव सुन दीक्षा धारण कर ली। घोर तप किया। दुर्योधन के भांजे कुर्युधर द्वारा शत्रुंजय गिरी पर किया गया घोर उपसर्ग सहा और सर्वार्थसिद्धि गये। पूर्व भव नं० 2 में यह धनश्री नामक ब्राह्मणी थी और पूर्व भव नं० 1 मे अच्युत स्वर्ग में देव थे। वर्तमान भव में नकुल हुए।

13. समुद्र विजय :

अन्धकवृष्टि के पुत्र तथा कृष्ण के ताऊ थे। नेमिनाथ भगवान के पिता थे। गिरनार पर्वत से मोक्ष प्राप्त किया।

14. राम :

राजा दशरथ के पुत्र, स्वयंवर में सीता से विवाह किया। माता कैकयी के निमित्त से वनवास, वनवास काल में सीता हरण पर रावण से युद्ध कर तथा लक्ष्मण के साथ रावण को परास्त कर सीता को प्राप्त किया; परन्तु लौटने पर लोकापवाद से सीता का परित्याग

किया। अन्त में भाई लक्ष्मण की मृत्यु से पीड़ित हो दीक्षा ग्रहण कर मोक्ष प्राप्त किया। इनका अपरनाम **'पद्म'** था। ये 8वें बलदेव थे।

15. रावण :

रत्नश्रवा का पुत्र था। अपरनाम दशानन था। लंका का राजा था। सीता का हरण करने पर राम से युद्ध किया। लक्ष्मण द्वारा मारा गया। यह 8वाँ प्रतिनारायण था।

16. लक्ष्मण :

राजा दशरथ के पुत्र, राम के भाई। भ्रात प्रेम से भाई के साथ वन में गये। सीता हरण पर रावण के साथ युद्ध कर उसको मारा। अन्त में देव कथित राम की मृत्यु के झूठे समाचार सुनकर नरक को प्राप्त हुआ। यह 8वाँ नारायण था।

17. सीता :

राजा जनक की पुत्री, स्वयंवर में राम के द्वारा वरी गयी, वनवास में राम के संग गयी। वहाँ पर राम-लक्ष्मण की अनुपस्थिति में रावण इन्हें हरकर ले गया, रावण के द्वारा अनेकों भय देने पर भी अपने शील से तनिक भी विचलित न हुई। रावण के मारे जाने पर सीता राम से मिली। अयोध्या लौटने पर लोकापवाद से राम द्वारा सीता का परित्याग किया गया। सीता की अग्निपरीक्षा हुई। वे विरक्त हो दीक्षित हो गयी। 62 वर्ष पर्यन्त तपकर समाधिमरण किया तथा सोलहवें स्वर्ग में प्रतीन्द्र हुईं।

18. हनुमान :

सातवें भव में मानुषोत्तर पर्वतस्थ वज्रकूट का स्वामी भवनवासी सुपर्णकुमार देव, छठे भव में दमयन्त, पाँचवें भव में स्वर्ग में देव, चौथे भव में सिंहचन्द्र नामक राज पुत्र, तीसरे भव में स्वर्ग में देव, दूसरे भव में सिंह वाहन राजपुत्र, पूर्वभव में लान्तव स्वर्ग में देव था। वर्तमान भव में पवनंजय का पुत्र था। विमान में से पाषाण शिला पर गिरने के कारण पत्थर की शिला चूर्ण-चूर्ण हो गई थी, इसलिए इनका नाम श्रीशैल भी था। रावण के साथ युद्ध में राम की बहुत सहायता की। अन्त में मेरु की वन्दना को जाते समय उल्कापात से विरक्त होकर दीक्षा ले ली तथा क्रम से मोक्ष प्राप्त किया।

19. पुरूरवा :

एक भील था। एक समय मुनिराज के दर्शन कर मद्य, माँस व मधु का त्याग किया। इस व्रत के प्रभाव से सौधर्म स्वर्ग में देव हुआ। यह महावीर भगवान का दूरवर्ती पूर्वभव है। उनके मरीचि के भव की अपेक्षा यह दूसरा पूर्व भव है।

20. मन्दोदरी :

दक्षिणी श्रेणी के राजा मय की पुत्री तथा रावण की पटरानी। रावण की मृत्यु तथा पुत्रों आदि के वियोग में दु:खी होकर दीक्षा ले ली।

21. मैना सुन्दरी :

मालवदेश में उज्जैनी नगरी के राजा पहुपाल की पुत्री, पिता के सन्मुख भाग्य की बलवत्ता का बखान करने के कारण क्रोधवश पिता ने इन्हें कुष्टी के साथ विवाह दी। पति की खूब सेवा की तथा सिद्धचक्र विधान किया। पुण्योदय से पति का कुष्ट रोग दूर हुआ। अन्त में दीक्षा धारण करके स्त्रीलिंग का छेद कर सोलहवें स्वर्ग में देव हुआ।

22. वज्रजंघ :

पुष्कलावती देश के उत्पलखेट नगर के राजा वज्रबाहु का पुत्र था। पूर्व के देव भव की देवी स्वयंप्रभा में अत्यन्त अनुरक्त था। श्रीमती का चित्र देखकर पूर्वभव स्मरण हो आया और उसका पाणिग्रहण किया। ससुर के दीक्षा लेने पर ससुराल जाते समय मार्ग में मुनियों को आहारदान दिया। एक दिन शयनागार में धूपघटों के सुगंधि से दम घुट जाने के कारण अकस्मात् मृत्यु हो गयी। पात्र दान के प्रभाव से भोगभूमि प्राप्त हुई। यह भगवान ऋषभदेव का पूर्व का सातवाँ भव है।

दूसरा पुण्डरीकपुर का राजा था। राम द्वारा परित्यक सीता को वन में देख उसे अपने घर ले गया। उसी के घर पर लव और कुश उत्पन्न हुए।

23. वसुदेव :

अंधकवृष्टि का पुत्र, समुद्र विजय का भाई। बहुत अधिक सुन्दर था। स्त्रियाँ सहसा ही उस पर मोहित हो जाती थी इसलिये देश से बाहर

भेज दिये गये, जहाँ अनेक कन्याओं से विवाह हुआ। कृष्ण की उत्पत्ति हुई तथा अन्य भी अनेक पुत्र हुए। अनेक वर्षों बाद भाई से मिलन हुआ। द्वारका जलने पर सन्यास धारण कर स्वर्ग सिधारे।

24. बारह चक्रवर्ती :

भरत, सगर, मघवा, सनत्कुमार, शान्ति, कुन्थु, अर, सुभौम, पद्म, हरिषेण, जयसेन और ब्रह्मदत्त क्रम से ये बारह चक्रवर्ती सब तीर्थंकरों की प्रत्यक्ष एवं परोक्ष वन्दना में आसक्त और अत्यन्त गाढ़ भक्ति से परिपूर्ण थे। भरत चक्रवर्ती ऋषभेश्वर के समक्ष, सगर चक्री अजितेश्वर के समक्ष तथा मघवा और सनत्कुमार ये दो चक्री धर्मनाथ और शान्तिनाथ के अन्तराल में हुए हैं। शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ और अरनाथ ये तीन चक्री होते हुए तीर्थंकर भी थे। सुभौम चक्री अरनाथ और मल्लिनाथ भगवान के अन्तराल में, पद्मचक्री मल्लिनाथ और मुनिसुव्रतनाथ के अन्तराल में, हरिषेणचक्री मुनिसुव्रतनाथ और नमिनाथ के अन्तराल में, जयसेन चक्री नमिनाथ और नेमिनाथ के अन्तराल में तथा ब्रह्मदत्त चक्री नेमिनाथ और पार्श्वनाथ के अन्तराल में हुए हैं।

पूर्व जन्म में किये गये तप के बल से भरत आदि की आयुध शालाओं में भुवन को विस्मित करने वाला **'चक्ररत्न'** उत्पन्न होता है तब अतिशय हर्ष को प्राप्त चक्रवर्ती जिनेन्द्र भगवान की पूजा करके विजय के निमित्त पूर्व दिशा में प्रयाण करते हैं। क्रम से दक्षिण भरत क्षेत्र के दो खण्डों को जीत करके पुनः उत्तर भारत में सम्पूर्ण भूमिगोचरी और विद्याधरों को वश में कर लेते हैं। ये चक्रवर्ती वृषभगिरी पर्वत पर अपना नाम लिखने के लिए विजय प्रशस्तियों से सर्वत्र व्याप्त उस वृषभांचल को देखकर और अपने नाम को लिखने के लिए तिलमात्र भी स्थान न पाकर विजय के अभिमान से रहित होकर चिन्तायुक्त खड़े रह जाते हैं। तब मन्त्रियों और देवों के अनुरोध से एक स्थान के किसी चक्रवर्ती का नाम अपने-अपने दण्डरत्न से नष्ट करके अपना नाम अंकित करते हैं। इस प्रकार से सभी चक्रवर्ती सम्पूर्ण षट्खण्ड को जीतकर अपने नगर में प्रवेश करते हैं।

25. कुन्द कुन्द :

मालवादेश के वारापुर नगर में राजा कुमुदचन्द्र राज्य करता था। उसकी रानी का नाम कुमुदचन्द्रिका था। उसके राज्य में कुन्दश्रेष्ठी नामक एक वणिक रहता था। उसकी पत्नी का नाम कुन्दलता था। उनके एक कुन्दकुन्द नाम का पुत्र भी था। बालकों के साथ खेलते हुए उस बालक ने एक दिन उद्यान में बैठे हुए **जिनचन्द्र** नामक मुनिराज के दर्शन किए और उनके उपदेश को अनेक नर-नारियों के साथ बड़े ही ध्यान से सुना। ग्यारह वर्ष के बालक कुन्दकुन्द उनके उपदेश से इतने प्रभावित हुऐ कि वह उनसे दीक्षित हो गये। प्रतिभाशाली शिष्य कुन्दकुन्द को जिनचन्द्राचार्य ने 33 वर्ष की अवस्था में ही आचार्य पद प्रदान कर दिया। इनकी परम्परा इस प्रकार है - भद्रबाहु, गुप्तिगुप्त, माघनन्दी, जिनचन्द्र और जिनचन्द्र के शिष्य कुन्दकुन्दाचार्य हुये। इनके पाँच नाम थे- पद्मनन्दी, कुन्दकुन्दाचार्य, वक्रग्रीवाचार्य, एलाचार्य एवं गृद्धपिच्छाचार्य। इनको जमीन से चार अँगुल ऊपर आकाश में चलने की ऋद्धि प्राप्त थी। **उमास्वामी** इनके शिष्य थे। प्रथम श्रुतस्कन्धरूप आगम की रचना **धरसेनाचार्य** के शिष्य **पुष्पदन्त** और **भूतबली** द्वारा हो रही थी। द्वितीय श्रुतस्कन्धरूप परमागम का क्षेत्र खाली था। मुक्तिमार्ग का मूल तो परमागम ही है; अत: उसका व्यवस्थित होना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी था; जिसे कुन्दकुन्द जैसे प्रखर आचार्य ही कर सकते थे। दिगम्बर आम्नाय के इन महान आचार्य के विषय में विद्वानों ने सर्वाधिक खोज की है। कौण्डकुण्डपुर गाँव के नाम पर से पद्मनन्दि **'कुन्दकुन्द'** नाम से विख्यात हुए। पी०बी० देसाई कृत **'जैनिज्म'** के अनुसार यह स्थान गण्टाकल रेलवे स्टेशन से चार मील दक्षिण की ओर कोनकोण्डल नामक गाँव प्रतीत होता है। यहाँ से अनेकों शिलालेख प्राप्त हुए हैं। इन्द्रनन्दि श्रुतावतार के अनुसार मुनि पद्मनन्दि ने कौण्डकुण्डपुर से सिद्धान्त परक **'परिकर्म'** नामक टीका लिखी थी।

जिनागम में दो प्रकार के मूल नय बताये गये हैं -

निश्चय, व्यवहार और द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक।

समयसार व नियमसार में निश्चय - व्यवहार की मुख्यता से एवं

प्रवचनसार व पंचास्तिकाय में द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक की मुख्यता से कथन करके उन्होंने अध्यात्म और वस्तु स्वरूप दोनों को बहुत ही अच्छी तरह से स्पष्ट कर दिया है। उनके ये महान ग्रन्थ आगामी ग्रन्थकारों को आज तक आदर्श रहे हैं; मार्ग दर्शक रहे हैं। अष्टपाहुड़ ने उनके प्रशासक परमसत्य का उद्घाटन किया जिसके जाने बिना साधकों के भटक जाने के अवसर अधिक थे। आचार्य कुन्दकुन्द द्वारा रचित उपलब्ध साहित्य इस प्रकार है –

1. समयसार (समयपाहुड़)
2. प्रवचनसार (पवयणसार)
3. नियमसार (णियमसार)
4. पंचास्तिकाय संग्रह (पंचत्थिकाय संगहो)
5. अष्टपाहुड़ (अट्ठपाहुड़)

इन पाँचों ग्रन्थों को **पंचपरमागम** भी कहते हैं। इनके अतिरिक्त द्वादशानुप्रेक्षा (बारस अणुवेक्खा) एवं दशभक्ति भी आपकी कृतियाँ मानी जाती है। इसी प्रकार रयणसार और मूलाचार को भी आपकी रचनायें कहा जाता है। कुछ लोग तो कुरल काव्य को भी आपकी कृति मानते हैं।

26. बनारसीदास :

आगरा निवासी श्रीमाल वैश्य थे। इनका जन्म जौनपुर में खरगसेन के घर माघ शु० 11, वि०1643 में हुआ था। पहिले आप श्वेताम्बर आम्नाय में थे, बाद में दिगम्बर हो गये। कुछ समय तक जवाहरात का व्यापार भी किया। महाकवि गोस्वामी तुलसीदास के समकालीन थे। आपकी निम्न कृतियाँ प्रसिद्ध हैं-

1. नवरस पद्यावली (यह एक शृंगार रस पूर्ण रचना थी जो पीछे विवेक जागृत होने पर इन्होंने यमुना में फेंक दी।)
2. नाममाला,
3. नाटक समयसार (वि० 1693)
4. बनारसी विलास (वि० 1701)
5. कर्म प्रकृति विधान (वि० 1700)
6. अर्धकथानक(वि० 1698)।

समय-वि०1643-1700 (ई०1587-1644)

27. पं० टोडरमल :

नगर जयपुर, पिता जोगीदास, माता रम्भादेवी, गोत्र गोदीका, जाति खंडेलवाल, पंथ तेरापंथ, गुरु वंशीधर थे। व्यवसाय साहूकारी था। जैन आम्नाय में आप अपने समय के एक क्रान्तिकारी पण्डित हुए हैं। आप के दो पुत्र थे - हरिश्चन्द व गुमानीराम। आपने निम्न रचनायें की हैं-गोम्मटसार, लब्धिसार, क्षपणासार, त्रिलोकसार, आत्मानुशासन, पुरुषार्थ सिद्धयुपाय- इन छह ग्रन्थों की टीकाएँ। गोम्मटसार व लब्धिसार की अर्थ संदृष्टियाँ, गोम्मटसार पूजा, मोक्षमार्ग प्रकाशक, रहस्यपूर्ण चिट्ठी।

आप शास्त्र रचना में इतने संलग्न रहते थे कि 6 माह तक जब तक कि गोम्मटसार की टीका पूर्ण न हो गयी आपको यह भी भान नहीं हुआ कि उनकी माताजी भोजन में नमक नहीं डाल रही हैं। आप अत्यंत विरक्त थे। उनकी विद्वता व अजेय तर्कों से चिढ़ कर किसी विद्वेषी ने राजा से चुगली खायी। फलस्वरूप केवल 47 वर्ष की अल्पायु में उन्हें हाथी के पाँव तले रौंदकर मार डालने का दण्ड दिया गया, जिसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार ही न किया बल्कि इस पापकार्य में प्रवृत्ति न करते हुए हाथी को स्वयं सम्बोध कर प्रवृत्ति भी कराई। आपके द्वारा रचित रचनाओं में **'मोक्षमार्ग प्रकाशक'** एक अद्वितीय कृति है; परन्तु दुर्भाग्यवश यह ग्रन्थ पूरा न हो सका।

28. धर्म भूषण :

इनके आदेश से ही ब्र० केशव वर्णी ने गोम्मटसार पर कर्णाटक भाषा में वृत्ति लिखी थी। न्यायदीपिका के रचयिता संघीय भट्टारक। गुरु परम्परा देवेन्द्र कीर्ति, विशाल कीर्ति, शुभ कीर्ति, धर्मभूषण प्रथम, अमरकीर्ति, धर्मभूषण द्वितीय, धर्मभूषण तृतीय।

समय-

प्रथम का शक 1220-1245

द्वितीय का शक 1260-1295

तृतीय का सायण के समकालीन (ई० 1358-1418)

आध्यात्मिक शास्त्र तथा उनके रचयिताओं के नाम -

1. तत्त्वार्थ सूत्र	-	उमास्वामी	(अध्याय 10)
2. परीक्षामुख सूत्र	-	माणिक्यनन्दि	(अध्याय 6)
3. रत्नकरण्ड श्रावकाचार	-	समन्त भद्र	(अध्याय 7, श्लोक 150)
4. पुरुषार्थ सिद्धयुपाय	-	अमृतचन्द्र सूरि	(श्लोक 216)
5. आत्मानुशासन	-	गुणभद्राचार्य	(श्लोक 270)
6. समाधिशतक	-	पूज्यपाद स्वामी	(श्लोक 106)
7. आप्त-परीक्षा	-	विद्यानन्दि स्वामी	(श्लोक 123)
8. आप्त-मीमांसा	-	समन्तभद्र स्वामी	(श्लोक 115)
9. युक्त्यनुशासन	-	समन्तभद्र स्वामी	(श्लोक 65)
10. नय विवरण।			(श्लोक 119)
11. समयसार कलश	-	आचार्य अमृतचन्द्र	(कलश 278)
12. समयसार	-	कुन्दकुन्द आचार्य	(गाथा 415)
13. प्रवचनसार	-	कुन्दकुन्द आचार्य	(गाथा 275)
14. नियमसार	-	कुन्दकुन्द आचार्य	(गाथा 187)
15. पंचास्तिकाय	-	कुन्दकुन्द आचार्य	(गाथा 173)
16. अष्टपाहुड	-	कुन्दकुन्द आचार्य	(8 पाहुड़)
17. रयणसार	-	कुन्दकुन्द आचार्य	(गाथा 167)
18. मूलाचार	-	वट्टकेर आचार्य	(गाथा 1139)
19. आलाप पद्धति	-	देवसेन आचार्य	(सूत्र 228)
20. द्रव्य संग्रह	-	नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव	(गाथा 58)
21. जीवकाण्ड	-	नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती	(गाथा 735)
22. कर्मकाण्ड	-	नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती	(गाथा 972)
23. क्रियासार	-	भद्रबाहु स्वामी	(गाथा 80)
24. इष्टोपदेश	-	पूज्यपाद स्वामी	(श्लोक 51)

25. तत्त्वार्थसार - राजवार्तिकालंकार के आधार पर लिखा गया यह ग्रन्थ तत्त्वार्थ सूत्र का प्ररूपक है। आ० अमृतचन्द्र (ई० 905-955) द्वारा संस्कृत श्लोकों में रचा गया है। इसमें 9 अधिकार और कुल 720 श्लोक हैं।

तत्त्वार्थ सूत्र :

आचार्य उमास्वामी कृत मोक्षमार्ग, तत्त्वार्थ दर्शन विषयक 10 अध्यायों में सूत्रबद्ध ग्रन्थ है। कुल सूत्र 357 है। इसी को मोक्ष शास्त्र भी कहते हैं। दिगम्बर व श्वेताम्बर दोनों को समान रूप से मान्य है। जैन आम्नाय में यह सर्व प्रधान सिद्धान्त ग्रन्थ माना जाता है। जैन दर्शन प्ररूपक होने के कारण यह जैन बाइबिल के रूप में जाना जाता है। इसके मंगलाचरण रूप प्रथम श्लोक पर ही आ० समन्तभद्र ने **आप्तमीमांसा** (देवागम स्त्रोत्र) की रचना की थी, जिस पर अकलंक देव (ई० 620-660) ने 800 श्लोक प्रमाण **अष्टशती** नाम की टीका की; आगे आचार्य विद्यानन्दि नं० 1 ने इस पर 8000 श्लोक प्रमाण अष्टसहस्री नाम की व्याख्या की। इसके अतिरिक्त इस ग्रन्थ पर अनेकों भाष्य व टीकाएँ उपलब्ध हैं -

1. श्वेताम्बराचार्य वाचक उमास्वाति कृत तत्त्वार्थाधिगम भाष्य (संस्कृत);
2. आ० समन्तभद्र (ई० 2) विरचित 84000 श्लोक प्रमाण गन्ध हस्ति महाभाष्य (अनुपलब्ध);
3. श्री पूज्यपाद (ई०श० 5) विरचित सर्वार्थसिद्धि;
4. योगीन्द्र देव विरचित तत्त्व प्रकाशिका (ई०श० 6);
5. श्री अकलंकदेव भट्ट (ई० 620-660) विरचित राजवार्तिक;
6. श्री विद्यानन्दि विरचित श्लोकवार्तिक;
7. आ० शिवकोटि द्वारा रचित रत्नमाला नाम की टीका;
8. आ०भास्करनन्दि कृत सुखबोध नामक टीका;
9. आ० बालचन्द्र कृत कन्नड टीका;
10. विबुधसेनाचार्य विरचित तत्त्वार्थ टीका;
11. योगदेव विरचित तत्त्वार्थ वृत्ति;
12. प्रभाचन्द्र नं० 8 कृत तत्त्वार्थ रत्न प्रभाकर;
13. भट्टारक श्रुतसागर कृत तत्त्वार्थ वृत्ति;
14. द्वितीय श्रुतसागर विरचित तत्त्वार्थ सुख बोधिनी;
15. पं० सदासुख दास कृत अर्थ प्रकाशिका टीका।
16. द्वितीय रचना उपर्युक्त मूल तत्त्वार्थ सूत्र के अनुसार प्रभाचन्द्र द्वारा रचित द्वितीय रचना।

अष्टपाहुड़ - आचार्य कुन्दकुन्द

अधिकार संख्या	नाम अधिकार	गाथा कहाँ से कहाँ तक	कुल गाथा	वर्ण्य विषय
प्रथम	दर्शन पाहुड़	1-36 तक	36	सम्यग्दर्शन का वर्णन
द्वितीय	सूत्र पाहुड़	1-27 तक	27	द्रव्यश्रुत का वर्णन
तृतीय	चारित्र पाहुड़	1-45 तक	45	सम्यक्त्व - संयमाचरण
चतुर्थ	बोध पाहुड़	1-62 तक	62	आयतनादि 11 स्थलों का वर्णन
पंचम	भाव पाहुड़	1-165 तक	165	द्रव्यलिंग में दोषों का वर्णन
षष्टम	मोक्ष पाहुड़	1-106 तक	106	मोक्ष प्राप्ति का वर्णन
सप्तम	लिंग पाहुड़	1-22 तक	22	द्रव्यलिंग व भावलिंग का वर्णन
अष्टम	शील पाहुड़	1-40 तक	40	स्वरूप लीनता का वर्णन

भूतकाल में एक ही नाम के अनेक **दौलतराम** नामक विद्वान हुये जिनमें से एक ने प्रसिद्ध **छहढ़ाला** नामक ग्रन्थ लिखा। इन सभी का परिचय निम्न प्रकार है-

1. पं० दौलतराम पल्लीवाल - छहढ़ाला के लेखक
2. पं० दौलतराम - दिलाराम अन्यनाम, बूँदी नरेश के कवि
3. पं० दौलतराम कासलीवाल- पद्मपुराण, आदिपुराण, हरिवंशपुराण की टीका, पुरुषार्थसिद्धि उपाय (टीका) (वि०सं० 1829)
4. पं० दौलतराम अंसेरी - श्रेणिक चारित्र (वि०सं० 1834)
5. पं० दौलतराम वर्णी - पूजायें लिखीं
6. पं० दौलतराम ओसवाल - मल्लिनाथ चारित्र (वि०सं० 1818)
7. पं० दौलतराम उजियारे - रसचन्द्रिका, जुगलप्रकाश कृति के लेखक (वि०सं० 1837)
8. पं० दौलतराम - जलान्धरनाथ जीरोगुण परिचय प्रकाश रचना (वि०सं० 1863)
9. पं० दौलतराम - कविप्रिया, अलंकार संग्रह के लेखक (वि०सं० 1857)
10. पं० दौलतराम - जयौलार, मैनपुरी के निवासी

पंचास्तिकाय - आचार्य कुन्दकुन्द

टीकाकार - आचार्य अमृतचन्द्र, टीका नाम - समयव्याख्या

अधिकार क्रम	अधिकार का नाम	गाथा कहाँ से कहाँ तक	कुल गाथा
1.	षट्द्रव्य पंचास्तिकाय के सामान्य व्याख्यान रूप पीठिका	1 से 26 तक	26
2.	जीवास्तिकाय का व्याख्यान	27 से 73 तक	47
3.	पुद्गलास्तिकाय का व्याख्यान	74 से 82 तक	9
4.	धर्मास्तिकाय का व्याख्यान	83 से 89 तक	7
5.	आकाशास्तिकाय का व्याख्यान	90 से 96 तक	7
6.	चूलिका	97 से 99 तक	3
7.	कालद्रव्य का व्याख्यान	100 से 102 तक	3
8.	उपसंहार	103 से 104 तक	2
9.	नवपदार्थ सहित मोक्षमार्ग प्रपंच वर्णन	105 से 108 तक	4
10.	जीव पदार्थ का वर्णन	109 से 123 तक	15
11.	अजीव पदार्थ का वर्णन	124 से 130 तक	7
12.	पुण्य पाप पदार्थ का वर्णन	131 से 134 तक	4
13.	आस्रव पदार्थ का वर्णन	135 से 140 तक	6
14.	संवर पदार्थ का वर्णन	141 से 143 तक	3
15.	निर्जरा पदार्थ का वर्णन	144 से 146 तक	3
16.	बन्ध पदार्थ का वर्णन	147 से 149 तक	3
17.	मोक्ष पदार्थ का व्याख्या	150 से 153 तक	4
18.	मोक्षमार्ग प्रपंच चूलिका	154 से 173 तक	20

कुल योग = गाथा 174

समयपाहुड़ (समयसार)

रचयिता : आचार्य कुन्दकुन्द

क्र०	अधिकार	गाथाऐं	कहाँ से कहाँ तक	कथन
	पूर्वरंग	38	1 से 38	जीव पदार्थ का कथन
1.	जीव अजीव	30	39 से 68	जीव अजीव का कथन
2.	कर्ता कर्म	76	69 से 144	कर्ता कर्म का कथन
3.	पुण्य पाप	19	145 से 163	पुण्य पाप का कथन
4.	आस्रव	17	164 से 180	आस्रव का कथन
5.	संवर	12	181 से 192	संवर का कथन
6.	निर्जरा	44	193 से 236	निर्जरा का कथन
7.	बन्ध	51	237 से 287	बन्ध का कथन
8.	मोक्ष	20	288 से 307	मोक्ष का कथन
9.	सर्व विशुद्धि	108	308 से 415	ज्ञान की प्रधानता

विभिन्न टीकाएँ-

1. आचार्य अमृतचन्द्र द्वारा आत्मख्याति टीका की गई। कुल 415 गाथाऐं और कलश 278 हैं।
2. आचार्य जयसेन द्वारा तात्पर्य वृत्ति टीका की गई, इसमें कुल गाथायें 437 हैं।
3. पं० जयचंद छावड़ा द्वारा भाषा टीका की गई।
4. क्षुल्लक गणेश प्रसाद वर्णी ने भी प्रवचन रूप टीका की।
5. क्षु० मनोहर लाल वर्णी ने भी टीका की।

विशेष -

उल्लेखों के आधार पर कहा जाता है कि आचार्य कुन्दकुन्द ने षट्खण्डागम ग्रन्थ के प्रथम खण्डों पर 'परिकर्म' नाम की टीका लिखी थी, किन्तु आज वह उपलब्ध नहीं है। इसी प्रकार यह भी कहा जाता है कि आपने 84 पाहुड लिखे थे, किन्तु आज उक्त साहित्य के अतिरिक्त और कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। अष्ट पाहुड़ में निम्नलिखित आठ पाहुड़ संग्रहित हैं-

1. दंसण पाहुड़, 2. सुत्त पाहुड़, 3. चरित्त पाहुड़, 4. बोध पाहुड़, 5. भाव पाहुड़, 6. मोक्ख पाहुड़, 7. लिंग पाहुड़, 8. शील पाहुड़।

नियमसार - आचार्य कुन्दकुन्द

टीकाकार - मुनिराज पद्मप्रभमलधारी देव

भाषा टीकाकार - पं० हिम्मत लाल शाह

अधिकार क्रम	नाम अधिकार	गाथा कहाँ से कहाँ तक	कुल गाथा
1.	जीवाधिकार	1 से 19 तक	19
2.	अजीवाधिकार	20 से 37 तक	18
3.	शुद्धभावाधिकार	38 से 55 तक	18
4.	व्यवहारचारित्राधिकार	56 से 76 तक	21
5.	परमार्थ प्रतिक्रमणाधिकार	77 से 94 तक	18
6.	निश्चय प्रत्याख्यानाधिकार	95 से 106 तक	12
7.	परमालोचनाधिकार	107 से 108 तक	2
8.	शुद्ध निश्चयनयाधिकार	109 से 121 तक	13
9.	परमसमाध्याधिकार	122 से 133 तक	12
10.	परमभक्तयाधिकार	134 से 140 तक	7
11.	निश्चय परमावश्यक	141 से 158 तक	18
12.	शुद्धोपयोगाधिकार	159 से 187 तक	29

कुल योग = गाथा 187

ग्रन्थ - प्रवचनसार

रचयिता - आचार्य कुन्दकुन्द

प्रथम टीकाकार - आचार्य अमृतचन्द्र

टीका का नाम - तत्त्वप्रदीपिका

अधिकार क्रम	अधिकार नाम	गाथा कहाँ से कहाँ तक	कुल गाथा	वर्ण्य विषय
प्रथम	ज्ञानतत्त्व	1 से 92	92	ज्ञान का विस्तृत वर्णन
द्वितीय	ज्ञेयतत्त्व	93 से 200	108	ज्ञेय पदार्थ का वर्णन
तृतीय	चरणानुयोग सूचक चूलिका	201 से 275	75	सम्यक् चारित्र का वर्णन

कुल गाथा = 275

द्वितीय टीकाकार - आचार्य जयसेन

टीका का नाम - तात्पर्यवृत्ति

अधिकार क्रम	अधिकार नाम	गाथा कहाँ से कहाँ तक	कुल गाथा	वर्ण्य विषय
प्रथम	सम्यग्ज्ञान	1 से 101	101	सम्यग्ज्ञान का विस्तृत वर्णन
द्वितीय	सम्यग्दर्शन	102 से 214	113	वस्तु स्वरूप का वर्णन
तृतीय	सम्यक्चारित्र	215 से 311	97	सम्यक्चारित्र का वर्णन

कुल गाथा = 311

ग्रन्थ - तत्त्वार्थ सूत्र

सूत्रकार - आचार्य उमास्वामीजी

परमपूज्य आचार्य कुन्दकुन्द के पट्टशिष्य

अधिकार संख्या	सूत्र संख्या	वर्ण्य विषय
प्रथम	33	सम्यग्दर्शन ज्ञान का वर्णन
द्वितीय	53	जीव के पंचभाव व नवीन भवग्रहण की प्रक्रिया
तृतीय	39	नरक व मध्यलोक का वर्णन
चतुर्थ	42	देवों का विस्तृत वर्णन
पंचम	42	अजीव तत्त्व का वर्णन
षष्टम	27	आस्रव तत्त्व का वर्णन (अशुभास्रव)
सप्तम	39	शुभास्रव का वर्णन
अष्टम	26	बन्ध तत्त्व का वर्णन
नवम	47	संवर तत्त्व व निर्जरा तत्त्व का वर्णन
दशम	9	मोक्ष तत्त्व का वर्णन

कुल सूत्र : 357

ग्रन्थ - छहढ़ाला

सूत्रकार - पं० दौलतरामजी (पल्लीवाल)

अधिकार संख्या	पद संख्या	वर्ण्य विषय	छन्द नाम
प्रथम	17	चार गतियों के दु:ख का वर्णन	सोरठा
द्वितीय	15	मिथ्यात्रय का वर्णन	पद्धरि
तृतीय	17	सम्यग्दर्शन का विशेष वर्णन	नरेन्द्र/जोगीरासा
चतुर्थ	15	सम्यग्ज्ञान व देशचारित्र का वर्णन	रोला
पंचम	15	द्वादशानुप्रेक्षा का वर्णन	चाल
षष्टम	15	सकल चारित्र व मुनिदशा का वर्णन	हरिगीतिका

कुल पद 94

ग्रन्थ - रत्नकरण्ड श्रावकाचार

रचयिता - आचार्य समन्तभद्र

समय - 138 - 168 ई० सम्वत्

अधिकार संख्या	श्लोक संख्या	वर्ण्य विषय
प्रथम	41	सम्यग्दर्शन का वर्णन
द्वितीय	5	सम्यग्ज्ञान का वर्णन
तृतीय	20	सम्यक्चारित्र, अणुव्रत का वर्णन
चतुर्थ	24	गुणव्रत का वर्णन
पंचम	31	शिक्षाव्रत का वर्णन
षष्टम	14	सल्लेखना समाधि का वर्णन
सप्तम	15	एकादश प्रतिमा का वर्णन

कुल श्लोक 150

ग्रन्थ - द्रव्य संग्रह

रचयिता - आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव

अधिकार संख्या	गाथा संख्या	वर्ण्य विषय
प्रथम	27	षट् द्रव्य का विस्तृत वर्णन
द्वितीय	11	नवपदार्थ, सप्त तत्त्व का विशेष वर्णन
तृतीय	20	निश्चय व व्यवहार मोक्षमार्ग का वर्णन

कुल गाथा 58

चौबीस तीर्थंकरों का चार्ट

क्रम सं.	तीर्थंकर सर्वश्री1008 (1)	माता का नाम (2)	पिता का नाम (3)	अवतीर्ण हुए (4)
1.	ऋषभनाथ(वृषभनाथ)	मरुदेवी	नाभिराय	सर्वार्थसिद्धि
2.	अजितनाथ	विजया	जितशत्रु	विजय
3.	संभवनाथ	सुसेना	जितारी	अधोग्रैवेयक
4.	अभिनन्दननाथ	सिद्धार्था	संवर	विजय
5.	सुमतिनाथ	सुमंगला	मेघप्रभ	जयन्त
6.	पद्मप्रभ	सुसीमा	धरण राज	ऊर्ध्वग्रैवयक
7.	सुपार्श्वनाथ	पृथ्वी	सुप्रतिष्ठ	मध्यग्रैवेयक
8.	चन्द्रप्रभ	लक्ष्मणा	महासेन	वैजयन्त
9.	पुष्पदंत(सुविधिनाथ)	रामा	सुग्रीव	आरणयुगल
10.	शीतलनाथ	सुनन्दा	दृढ़रथ	आरणयुगल
11.	श्रेयांसनाथ	विष्णुश्री(वेणुश्री)	विष्णुराज	पुष्पोत्तर
12.	वासुपूज्य	जया(विजया)	वसुपूज्य	महाशुक्र
13.	विमलनाथ	शर्मा(जयश्यामा)	कृतवर्मा	शतार
14.	अनन्तनाथ	सर्वयशा	सिंहसेन	पुष्पोत्तर
15.	धर्मनाथ	सुव्रता	भानुराजा	सर्वार्थसिद्धि
16.	शान्तिनाथ	ऐरा(ऐराणी)	विश्वसेन	सर्वार्थसिद्धि
17.	कुन्थुनाथ	श्रीदेवी(श्रीमति)	सूर्यराजा	सर्वार्थसिद्धि
18.	अरनाथ	मित्र	सुदर्शन	अपराजित
19.	मल्लिनाथ	रक्षिता(प्रभावती)	कुम्भ	अपराजित
20.	मुनिसुव्रतनाथ	पद्मावती	सुमित्र	आनत
21.	नमिनाथ	वप्रा(वप्रिला)	विजय	अपराजित
22.	नेमिनाथ	शिवा	समुद्र विजय	अपराजित
23.	पार्श्वनाथ	वामा(वर्मिला)	अश्वसेन	प्राणत
24.	महावीर(वर्धमान, वीर, सन्मति, अतिवीर)	त्रिशला (प्रियकारिणी)	सिद्धार्थ	पुष्पोत्तर

क्रम सं. (5)	चिह्न	रंग (6)	ऊँचाई (7)	कुमारकाल (8)	राज्यकाल (9)
1.	बैल(वृषभ)	लाल पीत वर्ण	500धनुष	20 लाख पूर्व	63 लाख पूर्व
2.	हाथी	''	450धनुष	18 लाख पूर्व	36 लाख पूर्व
3.	घोड़ा	''	400धनुष	15 लाख पूर्व	30 लाख पूर्व
4.	बन्दर	''	350धनुष	12.5 लाख पूर्व	25 लाख पूर्व
5.	चकवा	''	300धनुष	10 लाख पूर्व	20 लाख पूर्व
6.	कमल	लाल वर्ण	250धनुष	7.5 लाख पूर्व	15 लाख पूर्व
7.	साथिया (स्वास्तिक)	प्रियंगु पुष्प (नंद्यावर्त) के हरे रंग सा	200धनुष	5 लाख पूर्व	10 लाख पूर्व
8.	अर्धचन्द्र	श्वेत वर्ण	150धनुष	2.5 लाख पूर्व	5 लाख पूर्व
9.	मगर	''	100धनुष	50 हजार पूर्व	1 लाख पूर्व
10.	कल्पवृक्ष	लाल पीत वर्ण	90धनुष	25 हजार पूर्व	50 हजारपूर्व
11.	गैंडा	''	80धनुष	21 लाख वर्ष	42 लाख वर्ष
12.	भैंसा	पलाश पुष्प सा लाल	70 ''	18 ''	राज्य नहीं किया
13.	शूकर	लाल पीत वर्ण	60 ''	15 ''	30 लाख पूर्व
14.	सेही	''	50 ''	7.5 ''	15 लाख पूर्व
15.	वज्रदण्ड	''	45 ''	2.5 ''	5 लाख पूर्व
16.	हरिण	''	40 ''	25,000 वर्ष	50,000 वर्ष
17.	बकरा	''	35 ''	23,750 ''	47,500 वर्ष
18.	मछली	''	30 ''	21,000 ''	42,000 वर्ष
19.	कलश	''	25 ''	100 ''	राज्य नहीं किया
20.	कछुवा	नील वर्ण	20 ''	7,500 ''	15,000 वर्ष
21.	नीलकमल	लाल पीत वर्ण (उत्पल)	15 ''	2,500 ''	5,000 वर्ष
22.	शंख	नील वर्ण	10 ''	300 ''	राज्य नहीं किया
23.	सर्प	कच्चे चावल के हरे रंग सा	9 हाथ	30 ''	राज्य नहीं किया
24.	सिंह	लालपीत वर्ण	7 हाथ	30 ''	राज्य नहीं किया

क्र. सं.	संयमकाल (छद्मस्थ काल सहित) (10)	कुल आयु (11)	छद्मस्थ काल + (12)	आर्यिकाओं की संख्या (13)
1.	1 लाख पूर्व	84 लाख पूर्व	1000 वर्ष	3,50,000
2.	18 ''	72 ''	12 ''	3,20,000
3.	15 ''	60 ''	14 ''	3,30,000
4.	12.5 ''	50 ''	18 ''	3,30,600
5.	10 ''	40 ''	20 ''	3,30,000
6.	7.5 ''	30 ''	6 माह	4,20,000
7.	5 ''	20 ''	9 वर्ष	3,30,000
8.	2.5 ''	10 ''	3 माह	3,80,000
9.	50 हजार पूर्व	2 ''	4 वर्ष	3,80,000
10.	25 ''	1 ''	3 ''	3,80,000
11.	21 लाख वर्ष	84 लाख वर्ष	2 ''	1,30,000
12.	54 ''	72 ''	1 ''	1,06,000
13.	15 ''	60 ''	3 ''	1,03,000
14.	7.5 ''	30 ''	2 ''	1,08,000
15.	2.5 ''	10 ''	1 ''	62,400
16.	25,000 वर्ष	1 ''	16 ''	60,300
17.	23,750 ''	95,000 वर्ष	16 ''	60,350
18.	21,000 ''	84,000 ''	16 ''	60,000
19.	54,900 ''	55,000 ''	6 दिन	55,000
20.	7,500 ''	30,000 ''	11 माह	50,000
21.	2,500 ''	10,000 ''	9 ''	45,000
22.	700 ''	1,000 ''	56 दिन	40,000
23.	70 ''	100 ''	4 माह	38,000
24.	42 ''	72 ''	12 वर्ष	36,000

+(दीक्षा के कितने काल बाद केवलज्ञान)

क्र. सं.	प्रमुख गणधर का नाम (14)	गणधरों की संख्या (15)	पूर्वधारी शिष्यों की संख्या (16)	अवधिज्ञानी मुनियों की संख्या (17)
1.	वृषभसेन	84	4,750	9,000
2.	केहरी सेन (सिंहसेन)	90	3,750	9,400
3.	चारुदत्त	105	2,150	9,600
4.	वज्र, चमर (वज्रनाभि)	103	2,500	9,800
5.	वज्र (अमर)	116	2,400	11,000
6.	चमर	111	2,300	10,000
7.	बलदत्त (बलि, दत्त)	95	2,030	9,000
8.	वैदर्भ	93	4,000	2,000
9.	नाग (अनगार)	88	1,500	8,400
10.	कुन्थु	87	1,400	7,200
11.	धर्म	77	1,300	6,000
12.	मंदिर	66	1,200	5,400
13.	जय	55	1,100	4,800
14.	अरिष्ट	50	1,000	4,300
15.	सेन (अरिष्टसेन)	43	900	3,600
16.	चक्रायुध	36	800	3,000
17.	स्वयंभू	35	700	2,500
18.	कुंभ (कुन्थु)	30	610	2,800
19.	विशाख	28	550	2,200
20.	मल्लि	18	500	1,800
21.	सुप्रभ (सोमक)	17	450	1,600
22.	वरदन्त	11	400	1,500
23.	स्वयंभू	10	350	1,400
24.	इन्द्रभूति (गौतम)	11	300	1,300

क्र. सं.	शिक्षकों की संख्या (18)	केवल ज्ञानी मुनियों की संख्या (19)	वादियों की संख्या (20)	विक्रिया ऋद्धिधारी मुनियों की संख्या (21)	विपुलमति मनःपर्यय ज्ञानियों की संख्या (22)	सात प्रकार के संघ का योग (23)
1.	4,150	20,000	12,750	20,600	12,750	84,000
2.	21,600	20,000	12,400	20,400	12,450	1,00,000
3.	1,29,300	15,000	12,000	19,800	12,150	2,00,000
4.	2,30,050	16,000	1,000	19,000	21,650	3,00,000
5.	2,54,350	13,000	10,450	18,400	10,400	3,20,000
6.	2,69,000	12,000	9,600	16,800	10,300	3,30,000
7.	2,44,920	11,000	8,600	15,300	9,150	3,00,000
8.	2,10,400	18,000	7,000	600	8,000	2,50,000
9.	1,55,500	7,500	6,600	13,000	7,500	2,00,000
10.	59,200	7,000	5,700	12,000	7,500	1,00,000
11.	48,200	6,500	5,000	11,000	6,000	84,000
12.	39,200	6,000	4,200	10,000	6,000	72,000
13.	38,500	5,500	3,600	9,000	5,500	68,000
14.	39,500	5,000	3,200	8,000	5,000	66,000
15.	40,700	4,500	2,800	7,000	4,500	64,000
16.	41,800	4,000	2,400	6,000	4,000	62,000
17.	43,150	3,200	2,000	5,100	3,350	60,000
18.	35,835	2,800	1,600	4,300	2,055	50,000
19.	29,000	2,200	1,400	2,900	1,750	40,000
20.	21,000	1,800	1,200	2,200	1,500	30,000
21.	12,600	1,600	1,000	1,500	1,250	20,000
22.	11,800	1,500	800	1,100	900	18,000
23.	10,900	1,000	600	1,000	750	16,000
24.	9,900	700	400	900	500	14,000

क्र. सं.	श्रावकों की संख्या (24)	श्राविकाओं की संख्या (25)	तीर्थंकर के साथ दीक्षा लेने वालों की संख्या (26)	मोक्षगामी शिष्यों की संख्या (27)	अनुबद्ध केवली (28)
1.	3 लाख	5 लाख	4,000	60,900	84/100
2.	3 लाख	5 लाख	1,000	77,100	84/100
3.	3 लाख	5 लाख	1,000	1,70,100	84/100
4.	3 लाख	5 लाख	1,000	2,80,100	84/100
5.	3 लाख	5 लाख	1,000	3,01,600	84/100
6.	3 लाख	5 लाख	1,000	3,14,000	84/100
7.	3 लाख	5 लाख	1,000	2,85,600	84/100
8.	3 लाख	5 लाख	1,000	2,34,000	84/90
9.	2 लाख	4 लाख	1,000	1,79,600	84/90
10.	2 लाख	4 लाख	1,000	80,600	84/90
11.	2 लाख	4 लाख	1,000	65,600	72/90
12.	2 लाख	4 लाख	676	54,600	44/84
13.	2 लाख	4 लाख	1,000	51,300	40
14.	2 लाख	4 लाख	1,000	51,000	36
15.	2 लाख	4 लाख	1,000	49,700	32
16.	2 लाख	4 लाख	1,000	48,400	28
17.	1 लाख	3 लाख	1,000	46,800	24
18.	1 लाख	3 लाख	1,000	37,200	20
19.	1 लाख	3 लाख	300	28,800	16
20.	1 लाख	3 लाख	1,000	19,200	12
21.	1 लाख	3 लाख	1,000	9,600	8
22.	1 लाख	3 लाख	1,000	8,000	4
23.	1 लाख	3 लाख	300	6,200	3
24.	1 लाख	3 लाख	अकेले(स्वयं)	4,400	3

तीर्थंकरों के पंचकल्याणकों की तिथियाँ

क्र. सं. (29)	गर्भ (30)	जन्म (31)	तप (32)	ज्ञान (33)	निर्वाण
1.	आषाढ़ कृ० २	चैत्र कृ० ६	चैत्र कृ० ६	फागुन कृ० ११	माघ कृ० १४
2.	ज्येष्ठ कृ०अमा०	माघ शु० १०	माघ शु० ६	पौष शु० १४	चैत्र शु० ५
3.	फागुन शु० ८	कार्तिक शु०पू०	मार्गशीर्ष शु०पू०	कार्तिक कृ० ५	चैत्र शु० ६
4.	बैशाख शु० ६	माघ शु० १२	माघ शु० १२	कार्तिक शु० ५	बैशाख शु० ७
5.	श्रावण शु० २	चैत्र शु० ११	बैशाख शु० ६	पौष शु० १५	चैत्र शु० १०
6.	माघ कृ० ६	कार्तिक कृ० १३	कार्तिक कृ० १३	बैशाख शु० १०	फागुन कृ० ४
7.	भाद्रपद शु० ६	ज्येष्ठ शु० १२	ज्येष्ठ शु० १२	फागुन कृ० ७	फागुन कृ० ६
8.	चैत्र कृ० ५	पौष कृ० ११	पौष कृ० ११	फागुन कृ० ७	फागुन शु० ७
9.	फागुन कृ० ६	मार्गशीर्ष शु० १	माघ कृ० १	कार्तिक शु० ३	आश्विन शु० ८
10.	चैत्र कृ० ८	माघ कृ० १२	माघ कृ० १२	पौष कृ० १४	कार्तिक शु० ५
11.	ज्येष्ठ कृ० ६	फागुन कृ० ११	फागुन कृ० ११	माघ कृ०अमा०	श्रावण शु० पू०
12.	आषाढ़ कृ० ६	फागुन कृ० १४	फागुन कृ० १४	माघ शु० २	फागुन कृ० ५
13.	ज्येष्ठ कृ० १०	माघ शु० ४	माघ शु० ४	पौष शु० १०	आषाढ़ शु० ८
14.	कार्तिक कृ० १	ज्येष्ठ कृ० १२	ज्येष्ठ कृ० १२	चैत्र कृ०अमा०	चैत्र कृ० अमा०
15.	वैशाख शु० १३	माघ शु० १३	माघ शु० १३	पौष शु० पू.	ज्येष्ठ कृ० १४
16.	भाद्रपद कृ० ७	ज्येष्ठ कृ० १४	ज्येष्ठ कृ० १४	पौष शु० ११	ज्येष्ठ कृ० १४
17.	श्रावण कृ० १०	बैशाख शु० १	बैशाख शु० १	चैत्र शु० ३	बैसाख शु० १
18.	फागुन कृ० ३	मार्गशीर्ष शु. १४	मार्गशीर्ष शु० १०	कार्तिक शु० १२	चैत्र कृ०अमा०
19.	चैत्र शु० १	मार्गशीर्ष शु. ११	मार्गशीर्ष शु० ११	फागुन कृ० १२	फागुन कृ० ५
20.	श्रावण कृ० २	अश्विन शु. १०	बैशाख कृ० १०	फागुन कृ० ६	फागुन कृ० १२
21.	अश्विन कृ० २	आषाढ़ शु० १०	आषाढ़ कृ० १०	चैत्र शु० ३	बैशाख कृ० १४
22.	कार्तिक शु० ६	श्रावण शु० ६	श्रावण शु० ६	अश्विन शु० १	आषाढ़ कृ० ८
23.	बैशाख कृ० २	पौष कृ० ११	पौष कृ० ११	चैत्र कृ० ४	श्रावण शु० ७
24.	आषाढ़ शु० ६	चैत्र शु० १३	मार्गशीर्ष कृ० १०	बैशाख शु० १०	कार्तिक कृ० १४

क्र. सं.	गर्भ/जन्म का स्थान (34)	जन्म नक्षत्र (35)	तप कल्याणक का समय (36)
1.	साकेता (विनीता, अयोध्या)	उत्तराषाढा	तीसरा प्रहर
2.	साकेता (विनीता, अयोध्या)	रोहिणी	अपराह्न
3.	श्रावस्ती	ज्येष्ठा	तीसरा प्रहर
4.	साकेतपुरी	पुनर्वसु	पूर्वाह्न
5.	साकेतपुरी	मघा	पूर्वाह्न
6.	वत्स कौशाम्बी	चित्रा	अपराह्न
7.	काशी	विशाखा	पूर्वाह्न
8.	चन्द्रपुरी	अनुराधा	अपराह्न
9.	काकन्दी	मूल	अपराह्न
10.	भद्रपुर	पूर्वाषाढ़ा	अपराह्न
11.	सिंहपुरी	श्रवण	पूर्वाह्न
12.	चम्पापुरी	सतभिषा(विशाखा)	अपराह्न
13.	कार्मापेलय (कम्पिलाजी)	पूर्वभाद्रपद	अपराह्न
14.	अयोध्या	रेवती	अपराह्न
15.	रत्नपुरी	पुष्य	अपराह्न
16.	हस्तिनागपुर (हस्तिनापुर)	भरणी	अपराह्न
17.	हस्तिनागपुर (हस्तिनापुर)	कृतिका	अपराह्न
18.	हस्तिनागपुर (हस्तिनापुर)	रोहिणी	अपराह्न
19.	मिथिला	अश्विनी	पूर्वाह्न
20.	राजगृह	श्रवण	अपराह्न
21.	मिथिला	अश्विनी	अपराह्न
22.	सौर्य (सूर्यपुर, शौरीपुर)	चित्र	अपराह्न
23.	वाराणसी	विशाखा	पूर्वाह्न
24.	कुण्डलपुर-बिहार	उत्तरा फागुनी	अपराह्न

क्र. सं.	तप कल्याण का नक्षत्र (37)	शिविका पालकी का नाम जिस पर आरूढ़ होकर दीक्षा के लिए गए (38)	तप कल्याणक के वन/उद्यान का नाम (39)
1.	उत्तराषाढ़ा	सुदर्शना	सिद्धार्थ वन
2.	रोहिणी	सुप्रभा	सुन्दर सहेतुक वन
3.	ज्येष्ठा	सिद्धार्थ	सुन्दर सहेतुक वन
4.	पुनर्वसु	हस्तचित्रा	(उग्रवन) मनोहर उद्यान
5.	मघा	अभयंकरी	सहेतुक वन
6.	चित्रा	निवृत्रकारी	मनोहर उद्यान
7.	विशाखा	मनोरमा	सहेतुक वन
8.	अनुराधा	विमला	सर्वार्थ वन
9.	अनुराधा	सूर्यप्रभा	पुष्प वन
10.	मूल	शुक्रप्रभा	सहेतुक वन
11.	श्रवण	विमलप्रभा	मनोहर उद्यान
12.	विशाखा	पुष्पाभा	मनोहर उद्यान
13.	भाद्रपद (उत्तरा)	देवदत्ता	सहेतुक वन
14.	रेवती	सागर-पत्रिका	सहेतुक वन
15.	पुण्य	नागदत्ता	शालि वन
16.	भरणी	सिद्धार्थ-सिद्धि का	आम्र वन
17.	कृतिका	विजया	सहेतुक वन
18.	रेवती	वैजयन्ती	सहेतुक वन
19.	अश्विनी	जयन्ता	शालि वन
20.	श्रवण	अपराजिता	नील वन
21.	अश्विनी	उत्तरकुरु	चैत्र वन
22.	चित्रा	देवकुरु	सहकार वन
23.	विशाखा	विमला	अश्वत्थ वन
24.	उत्तराफाल्गुनी	चन्द्राभा	नाथ वन

क्र. सं.	वैराग्य का निमित्त कारण (40)	दीक्षा के बाद प्रथम पारणा का काल (41)	प्रथम पारणा की आहार वस्तु (42)
1.	नीलांजना का नृत्य करते सभा में मरण व रूप परिवर्तन देखना	13 माह आठ दिन	इक्षु रस गोदूध की खीर
2.	सरोवर में प्रात:काल कमल खिलते व सायं संकुचित होते देखना	चौथे दिन	''
3.	मेघ के विनाश को देखकर	तीसरे दिन	''
4.	गंधर्व नगर के नाश से	तीसरे दिन	''
5.	पिछले जन्म के स्मरण से	चौथे दिन	''
6.	पिछले जन्म के स्मरण से	तीसरे दिन	''
7.	वसंत वनलक्ष्मी के विनाश को देखकर	तीसरे दिन	''
8.	बिजली (अध्रुव) को देखकर	तीसरे दिन	''
9.	उल्कापात देखकर	तीसरे दिन	''
10.	हिम के नाश को देखकर	तीसरे दिन	''
11.	वसन्तकालीन वनलक्ष्मी के विनाश को देखकर	तीसरे दिन	''
12.	पूर्वजन्म के स्मरण से	दूसरे दिन	''
13.	मेघ के विनाश को देखकर	तीसरे दिन	''
14.	उल्कापात आकाश से बिजली गिरती देख	तीसरे दिन	''
15.	उल्कापात आकाश से बिजली गिरती देख	तीसरे दिन	''
16.	पूर्व जन्म के स्मरण से	तीसरे दिन	''
17.	पूर्व जन्म के स्मरण से	चौथे दिन	''
18.	मेघ के विनाश को देखकर	चौथे दिन	''
19.	बिजली को देखकर	तीसरे दिन	''
20.	पूर्व जन्म के स्मरण से	तीसरे दिन	''
21.	शरद ऋतु के मेघ को हवा के वेग से छिन्न-भिन्न होते देखना	तीसरे दिन	''
22.	पशुओं को बाड़े में बंधा देखकर	चौथे दिन	''
23.	स्वयं वैराग्य भाव से दीक्षा ली	चौथे दिन	''
24.	स्वयं वैराग्य भाव से दीक्षा ली	तीसरे दिन	''

क्र. सं.	प्रथम पारणा का स्थान (43)	आहारदाता का नाम (44)	आहारदाता का रंग (45)	चैत्यवृक्ष की नाम (46)	चैत्यवृक्ष की ऊँचाई (47)
1.	हस्तिनापुर	श्रेयांस	काला	वटवृक्ष	तीर्थंकर+
2.	अयोध्या	ब्रह्मदत्त	काला	सप्तपर्ण	''
3.	श्रावस्ती	सुरेन्द्रदत्त	तपाए स्वर्ण जैसा लाल पीत वर्ण	शाल	''
4.	साकेत	इन्द्रदत्त	''	देवदारू(साल)	''
5.	सौमनस	पद्म	''	प्रियंगु	''
6.	वर्धमान	सोमदत्त	''	प्रियंगु	''
7.	सोमखेट	महेन्द्रदत्त	''	शिरीष	''
8.	नलिनी	सोमदेव	''	नागवृक्ष	''
9.	शैलपुर	पुष्पमित्र	''	साल	''
10.	अरिष्टपुर	पुनर्वसु	''	प्लक्ष	''
11.	सिद्धार्थपुर	सुनन्द	''	तेंदू	''
12.	महापुर	सुन्दर	''	पाटला	''
13.	नंदनपुर	कनकप्रभु	''	जंबू	''
14.	साकेतपुर	विशाख	''	पीपल	''
15.	पाटलीपुत्र	धन्यसेन	''	दधिपर्ण	''
16.	मंदरपुर	सुमित्र	''	नन्दी	''
17.	हस्तिनापुर	धर्ममित्र	''	तिलक	''
18.	चक्रपुर	अपराजित	''	आम्र	''
19.	मिथिला	नन्दिषेण	''	अशोक(कंकेली)	''
20.	राजगृह	वृषभसेन	''	चम्पक	''
21.	वीरपुर	वरदत्त	''	वकुल	''
22.	द्वारावती	प्रवरदत्त	''	मेष श्रंग	''
23.	गुल्मखेट	धन्य	काला	धव(धौ)	''
24.	कुण्डपुर	वकुल	काला	साल	32 धनुष

+ **तीर्थंकर की ऊँचाई का 12 गुना**

क्र. सं.	केवलज्ञान होने के स्थान का नाम (48)	केवलज्ञान का काल (49)	समवसरण का विस्तार (50)	केवलज्ञान नक्षत्र (51)
1.	पूर्वताल नगर के शकटामुख वन में	पूर्वाह्न	12 योजन	उत्तराषाढ़ा
2.	नगर के बाहर वन में	अपराह्न	11.5 ''	रोहिणी
3.	''	अपराह्न	11 ''	ज्येष्ठा
4.	''	अपराह्न	10.5 ''	पुनर्वसु
5.	''	अपराह्न	9.5 ''	हस्त
6.	''	अपराह्न	9 ''	चित्रा
7.	''	अपराह्न	8.5 ''	विशाखा
8.	''	अपराह्न	8 ''	अनुराधा
9.	''	अपराह्न	7.5 ''	मूल
10.	''	अपराह्न	7 ''	पूर्वाषाढ़ा
11.	''	अपराह्न	6.5 ''	श्रवण
12.	''	अपराह्न	6 ''	विशाखा
13.	''	अपराह्न	5.5 ''	उत्तराषाढ़ा
14.	''	अपराह्न	5 ''	रेवती
15.	''	अपराह्न	5 ''	पुष्य
16.	''	अपराह्न	4.5 ''	भरणी
17.	''	अपराह्न	4 ''	कृतिका
18.	''	अपराह्न	3.5 ''	रेवती
19.	''	अपराह्न	3 ''	अश्विनी
20.	''	पूर्वाह्न	2.5 ''	श्रवण
21.	''	अपराह्न	2 ''	अश्विनी
22.	गिरिनार पर्वत	पूर्वाह्न	1.5 ''	चित्रा
23.	आश्रम के समीप	पूर्वाह्न	1.25 ''	विशाखा
24.	ऋजूकला नदी के तट जम्भीक गाँव	अपराह्न	1 ''	मघा

क्र. सं.	निर्वाण नक्षत्र (52)	निर्वाण काल (53)	निर्वाण आसन (54)	निर्वाण स्थल (55)	साथ में मुक्त होने वाले मुनि (56)
1.	जन्म नक्षत्र	पूर्वाह्न	पर्यंक(पद्मासन)	कैलाश पर्वत	10,000
2.	भरणी	पूर्वाह्न	कायोत्सर्ग	सम्मेद शिखर	1,000
3.	जन्म नक्षत्र	अपराह्न	कायोत्सर्ग	सम्मेद शिखर	1,000
4.	जन्म नक्षत्र	पूर्वाह्न	कायोत्सर्ग	सम्मेद शिखर	1,000
5.	जन्म नक्षत्र	पूर्वाह्न	कायोत्सर्ग	सम्मेद शिखर	1,000
6.	जन्म नक्षत्र	अपराह्न	कायोत्सर्ग	सम्मेद शिखर	324
7.	अनुराधा	पूर्वाह्न	कायोत्सर्ग	सम्मेद शिखर	500
8.	ज्येष्ठा	पूर्वाह्न	कायोत्सर्ग	सम्मेद शिखर	1,000
9.	जन्म नक्षत्र	अपराह्न	कायोत्सर्ग	सम्मेद शिखर	1,000
10.	जन्म नक्षत्र	पूर्वाह्न	कायोत्सर्ग	सम्मेद शिखर	1,000
11.	धनिष्ठा	पूर्वाह्न	कायोत्सर्ग	सम्मेद शिखर	1,000
12.	अश्विनी	अपराह्न	पर्यंक(पद्मासन)	चम्पापुर	601
13.	जन्म नक्षत्र	सायं	कायोत्सर्ग	सम्मेद शिखर	600
14.	जन्म नक्षत्र	सायं	कायोत्सर्ग	सम्मेद शिखर	7,000
15.	जन्म नक्षत्र	प्रात:	कायोत्सर्ग	सम्मेद शिखर	801
16.	जन्म नक्षत्र	सायं	कायोत्सर्ग	सम्मेद शिखर	900
17.	जन्म नक्षत्र	सायं	कायोत्सर्ग	सम्मेद शिखर	1,000
18.	जन्म नक्षत्र	प्रात:	कायोत्सर्ग	सम्मेद शिखर	1,000
19.	भरणी	सायं	कायोत्सर्ग	सम्मेद शिखर	500
20.	जन्म नक्षत्र	सायं	कायोत्सर्ग	सम्मेद शिखर	1,000
21.	जन्म नक्षत्र	प्रात:	कायोत्सर्ग	सम्मेद शिखर	1,000
22.	जन्म नक्षत्र	सायं	पर्यंक(पद्मासन)	गिरिनार पर्वत	536
23.	जन्म नक्षत्र	सायं	कायोत्सर्ग	सम्मेद शिखर	36
24.	स्वाति	प्रात:	कायोत्सर्ग	पावापुर	अकेले

क्र. सं.	जन्मकाल	वंश	यक्ष	यक्षि	प्रमुख आर्यिका का नाम
	(57)	(58)	(59)	(60)	(61)
1.	तीसरे काल के	इक्ष्वाकु	गोवदन	चक्रेश्वरी	ब्राह्मी
2.	चौथे काल में	''	महायक्ष	रोहिणी	प्रकुब्जा
3.	चौथे काल में	''	त्रिमुख	प्रज्ञप्ति	धर्मश्री
4.	चौथे काल में	''	यक्षेश्वर	वज्र श्रंखला	मेरुषेणा
5.	चौथे काल में	''	तुम्बूरव	वज्राकुंशा	अनन्ता
6.	चौथे काल में	''	मातंग	अप्रतिचक्रेश्वरी	रतिषेणा
7.	चौथे काल में	''	विजय	पुरुषदत्ता	मीना
8.	चौथे काल में	''	अजित	मनोवेगा	वरुणा
9.	चौथे काल में	''	ब्रम्ह	काली	घोषा
10.	चौथे काल में	''	ब्रम्हेश्वर	ज्वालामालिनी	धरणां
11.	चौथे काल में	''	कुमार	महाकाली	चारणां(धारणां)
12.	चौथे काल में	''	षड्मुख	गौरी	वरसेना
13.	चौथे काल में	''	पाताल	गाँधारी	पद्मा
14.	चौथे काल में	''	किंकर	वैरोटी	सर्वश्री
15.	चौथे काल में	कुरुवंश	किंपुरुष	सौलसा	अनंतमति(सुव्रता)
16.	चौथे काल में	''	गरुड़	मानसी	हरिषेणा
17.	चौथे काल में	''	गन्धर्व	महामानसी	भाविता
18.	चौथे काल में	''	कुबेर	जया	कुन्थुसेना
19.	चौथे काल में	इक्ष्वाकु	वरुण	विजया	मधुसेना(बंधुसेना)
20.	चौथे काल में	हरिवंश	भृकुति	अपराजिता	पूर्वदत्ता(पुष्पदत्ता)
21.	चौथे काल में	इक्ष्वाकु	गोमेध	बहुरूपिणी	मार्गिणी
22.	चौथे काल में	*हरिवंश	पार्श्व	कुष्माण्डी	यक्षणी
23.	चौथे काल में	उग्रवंश	मातंग	पद्मा	सुलोका(सुलोचना)
24.	चौथे काल के	नाथवंश	गुह्यक	सिद्धायनी	चन्दना

75 वर्ष 8.5 माह शेष रहने पर(*यदुवंश)

+समाप्त होने में जब 84 लाख पूर्व 3 वर्ष 8.5 माह थे तब।

तीर्थंकरों के पंचकल्याणकों के स्थान

क्र. सं.	गर्भ	जन्म	तप	केवलज्ञान	मोक्ष
1.	अयोध्या	अयोध्या	प्रयाग	प्रयाग	कैलाश पर्वत
2.	अयोध्या	अयोध्या	अयोध्या	अयोध्या	सम्मेद शिखर
3.	श्रावस्ती	श्रावस्ती	श्रावस्ती	श्रावस्ती	सम्मेद शिखर
4.	अयोध्या	अयोध्या	अयोध्या	अयोध्या	सम्मेद शिखर
5.	अयोध्या	अयोध्या	अयोध्या	अयोध्या	सम्मेद शिखर
6.	कौशाम्बी	कौशाम्बी	कौशाम्बी	कौशाम्बी	सम्मेद शिखर
7.	बनारस	बनारस	बनारस	बनारस	सम्मेद शिखर
8.	चन्द्रपुरी	चन्द्रपुरी	चन्द्रपुरी	चन्द्रपुरी	सम्मेद शिखर
9.	काकन्दी	काकन्दी	काकन्दी	काकन्दी	सम्मेद शिखर
10.	भद्रपुर	भद्रपुर	भद्रपुर	भद्रपुर	सम्मेद शिखर
11.	सारनाथ	सारनाथ	सारनाथ	सारनाथ	सम्मेद शिखर
12.	चम्पापुर	चम्पापुर	चम्पापुर	चम्पापुर	चम्पापुर(मंदार)
13.	कम्पिला	कम्पिला	कम्पिला	कम्पिला	सम्मेद शिखर
14.	अयोध्या	अयोध्या	अयोध्या	अयोध्या	सम्मेद शिखर
15.	रत्नापुरी	रत्नापुरी	रत्नापुरी	रत्नापुरी	सम्मेद शिखर
16.	हस्तिनापुर	हस्तिनापुर	हस्तिनापुर	हस्तिनापुर	सम्मेद शिखर
17.	हस्तिनापुर	हस्तिनापुर	हस्तिनापुर	हस्तिनापुर	सम्मेद शिखर
18.	हस्तिनापुर	हस्तिनापुर	हस्तिनापुर	हस्तिनापुर	सम्मेद शिखर
19.	मिथिला	मिथिला	मिथिला	मिथिला	सम्मेद शिखर
20.	राजगृही	राजगृही	राजगृही	राजगृही	सम्मेद शिखर
21.	मिथिलापुरी	मिथिलापुरी	मिथिलापुरी	मिथिलापुरी	सम्मेद शिखर
22.	शोरीपुर	शोरीपुर	गिरनारपर्वत	गिरनारपर्वत	गिरनार पर्वत
23.	बनारस	बनारस	बनारस	अहिच्क्षेत्र	सम्मेद शिखर
24.	कुण्डलपुर	कुण्डलपुर	कुण्डलपुर	पावापुरी	पावापुरी

किस तीर्थंकर के काल में कौन हुए

क्र. सं.	चक्रवर्ती	बलदेव	नारायण	प्रति नारायण	रुद्र	नारद	कामदेव
1.	भरत				भीमावलि		बाहुबली
2.	सगर				जितशत्रु		प्रजापति
3.							श्रीधर
4.							दर्शनभद्र
5.							प्रसेनचन्द्र
6.							चन्द्रवर्ण
7.							अगनमुख
8.							वत्स
9.					रुद्र		कनकप्रभ
10.					वैश्वानर		मेघवर्ण
11.		विजय	त्रिपृष्ठ	अश्वग्रीव	सुप्रतिष्ठ	भीम	मेघप्रभ
12.		अचल	द्विपृष्ठ	तारक	अचल पुण्डरीक	महाभीम रुद्र	चन्द्रप्रभ
13.		धर्म	स्वयंभू	मेरक			
14.		सुप्रभ	पुरुषोत्तम	मधुकैटभ	अजितंधर	महारुद्र	बलिराज
15.	मघवा	सुदर्शन	पुरुषसिंह	निशुम्भ	अजितनाभि	काल	विजय
	सनत्कुमार						सनत्कुमार
16.	शांतिनाथ				पीठ(पीठाल)		शांतिनाथ
17.	कुन्थुनाथ						कुन्थुनाथ
18.	अरनाथ						अरनाथ
	सुभौम	नन्दि	पुण्डरीक	बलि		महाकाल	
19.	पद्म	नन्दिमित्र	पुष्पदत्त	प्रहरण		दुर्मुख	नागकुमार
20.	हरिषेण	राम	लक्ष्मण	रावण		नरकमुख	हनुमान
21.	जयसेन						श्रीपाल
22.	ब्रह्मदत्त	बलराम	कृष्ण	जरासंध		अधोमुख	वसुदेव
23.							जीवंधर
24.					सात्यकि		जम्बूस्वामी

पंचमकाल में जम्बूद्वीप से विदेह क्षेत्र में जन्म लेकर मोक्ष जाने वाले 123 जीवों का वर्णन

पंचमकाल में 123 मिथ्यादृष्टि जीव जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र से आयु पूर्ण कर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर नव-वर्ष के अन्दर केवलज्ञान प्राप्त करेंगे। पंचमकाल 21000 वर्ष का है। इसके आचार्यों ने सात भेद किये हैं, जो निम्न प्रकार से हैं -

1. पहला भाग (3000 वर्ष) - पहले भाग में 61 भद्र परिणामी जीव विदेह क्षेत्र में जन्म लेकर नववर्ष में केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष जायेंगे।
2. दूसरा भाग (3000 वर्ष) - दूसरे भाग में 31 भद्र परिणामी जीव विदेह क्षेत्र में जन्म लेकर मोक्ष जायेंगे।
3 तीसरा भाग (3000 वर्ष) - तीसरे भाग में 16 भद्र परिणामी जीव विदेह क्षेत्र में जन्म लेकर मोक्ष जायेंगे।
4. चतुर्थ भाग (3000 वर्ष) - चतुर्थ भाग में 8 भद्र परिणामी जीव विदेह क्षेत्र में जन्म लेकर मोक्ष जायेंगे।
5. पंचम भाग (3000 वर्ष) - पंचम भाग में 4 जीव विदेह क्षेत्र में जन्म लेकर मोक्ष जायेंगे।
6. छठवाँ भाग (3000 वर्ष) - छठवें भाग में 2 जीव विदेह क्षेत्र में जन्म लेकर मोक्ष जायेंगे।
7. सातवाँ भाग (3000 वर्ष) - सातवें भाग में 1 जीव विदेह क्षेत्र में जन्म लेकर मोक्ष जायेगा।

कुछ प्रमुख जीवों की वर्तमान पर्याय एवं भविष्य की स्थिति

क्र.सं.	जीव	–	वर्तमान स्थिति एवं विशेष
1.	24 तीर्थंकर	–	तद्भव मोक्षगामी
2.	तीर्थंकरों के पिता	–	स्वर्ग या मोक्ष
3.	तीर्थंकरों की माता	–	स्वर्ग
4.	9 नारायण	–	नरक
5.	9 प्रतिनारायण	–	नरक
6.	9 बलभद्र	–	स्वर्ग या मोक्ष
7.	12 चक्रवर्ती	–	स्वर्ग, नरक या मोक्ष
8.	24 कामदेव	–	स्वर्ग या मोक्ष
9.	14 कुलकर	–	स्वर्ग
10.	11 रुद्र	–	नरक
11.	9 नारद	–	नरक
12.	दशरथ	–	13 वें स्वर्ग में
13.	कौशल्या	–	13 वें स्वर्ग में
14.	कैकई	–	13 वें स्वर्ग में
15.	सुमित्रा	–	13 वें स्वर्ग में
16.	सुप्रभा	–	13 वें स्वर्ग में
17.	जनक	–	13 वें स्वर्ग में
18.	भामण्डल	–	देवकुरू भोग भूमि में
19.	राम	–	तद्भव मोक्षगामी
20.	भरत	–	तद्भव मोक्षगामी
21.	लक्ष्मण	–	वर्तमान मे नरक, पुष्कर द्वीप के महाविदेह में पंचकल्याणकधारी तीर्थंकर होंगे
22.	सीता	–	16वें स्वर्ग में प्रतीन्द्रदेव, रावण के जीव का गणधर बनके उसी भव से मोक्ष
23.	लव-कुश	–	तद्भवमोक्षगामी
24.	रावण	–	तीसरे नरक में, भरत क्षेत्र में कई भव बाद पंच कल्याणकधारी तीर्थंकर होंगे

25. कुम्भकरण – तद्भव मोक्षगामी
26. विभीषण – तद्भव मोक्षगामी
27. मेघनाथ – तद्भव मोक्षगामी
28. इन्द्रजीत – तद्भव मोक्षगामी
29. मन्दोदरी – स्वर्ग में
30. हनुमान – तद्भव मोक्षगामी
31. बालि – कैलाश पर्वत से मोक्ष
32. सुभद्रा – सोलहवें स्वर्ग में
33. युधिष्ठिर – तद्भव मोक्षगामी
34. भीम – तद्भव मोक्षगामी
35. अर्जुन – तद्भव मोक्षगामी
36. नकुल – सर्वार्थसिद्धि, वहाँ से चय करके अगले भव में मोक्ष जायेंगे
37. सहदेव – सर्वार्थसिद्धि, वहाँ से चय करके अगले भव में मोक्ष जायेंगे
38. कृष्ण – तीसरे नरक में
अगली चौबीसी में 16 वें तीर्थंकर श्री निर्मल जी होंगे।
39. बलदेव – स्वर्ग, वहाँ से 7 सागर की आयु पूर्ण करके भरत क्षेत्र में तीर्थंकर होंगे
40. जरत्कुमार – नरक
41. नृपदन्त – तद्भव मोक्षगामी
42. देवपाल – तद्भव मोक्षगामी
43. अनीकदन्त – तद्भव मोक्षगामी
44. अनीकपाल – तद्भव मोक्षगामी
45. शत्रुघ्न – तद्भव मोक्षगामी
46. जितशत्रु – तद्भव मोक्षगामी
47. गजकुमार – तद्भव मोक्षगामी, सोमशर्मा ब्राह्मण ने सिर पर अंगीठी जलायी, अन्तःकृत केवली हुये।
48. द्वीपायनमुनि – कुगतिगामी, इनके क्रोध के निमित्त से द्वारिका नगरी भस्म हुयी।
49. कंस – कुगतिगामी, रौद्र परिणामी होने से बहुत

अत्याचार किये, अन्त में कृष्ण के हाथों मारा गया।

50. देवकी – स्वर्ग
51. जरासिन्ध – नरक
52. रुक्मणी – स्वर्ग, वहाँ से च्युत होकर मोक्ष जायेगी।
53. सत्यभामा आदि कृष्ण की 8 पत्नियाँ – स्वर्ग, तदन्तर सभी तप करके मोक्ष जायेंगी।
54. द्रोपदी – स्वर्ग
55. प्रद्युम्न कुमार – तद्भव मोक्षगामी
56. भानु कुमार – तद्भव मोक्षगामी
57. शम्बु कुमार – तद्भव मोक्षगामी
58. अनिरुद्ध कुमार – तद्भव मोक्षगामी
59. कीचक – तद्भव मोक्षगामी
60. सुकमाल – सर्वार्थसिद्धि, वहाँ से चयकर मनुष्यभव धारण कर मोक्ष जायेंगे।
61. सुदर्शन – तद्भव मोक्षगामी
62. सुकौशल – तद्भव मोक्षगामी, उसी भव की माता सहदेवी ने शेरनी की पर्याय में तपोरत सुकौशल के शरीर को खाया, उपसर्ग विजयी बनकर मोक्ष प्राप्त किया।
63. श्रेणिक – नरक में क्षायिक सम्यग्दर्शन, सोलहकारण भावनायें भाई, अगली चौबीसी में श्री महापद्म नामक प्रथम तीर्थंकर होंगे, जिनकी आयु 116 वर्ष की होगी।
64. चेलना – स्वर्ग में, अगले भवों में मोक्ष जायेंगी।
65. मैनासुन्दरी – सोलहवें स्वर्ग में, आर्यिका व्रत धारण कर स्त्री लिंग का छेदन कर सोलहवें स्वर्ग में बाईस सागर की आयु का देव हुईं।
स्वर्ग की आयु पूर्ण कर मोक्ष जायेंगी।
66. चारुदत्त – सर्वार्थसिद्धि, वहाँ से चयकर मनुष्यभव धारण कर मोक्ष जायेंगे।
67. श्रीपाल – तद्भव मोक्षगामी

सर्वदर्शन तालिका

क्र.	नाम दर्शन	मुख्य प्रवर्तक का नाम	आत्मा नित्य या अनित्य	पुनर्जन्म है या नहीं	कर्म फल देते हैं या नहीं	परलोक है या नहीं	ईश्वर सृष्टि का कर्त्ता है या नहीं	ईश्वर, सर्वज्ञ त्रिकालज्ञ है या नहीं
1	2	3	4	5	6	7	8	9
1.	जैन दर्शन	ऋषभ देव	नित्य(पर्याय अनित्य	है	देते हैं	है	नहीं	सर्वज्ञ है
2.	बौद्ध दर्शन	गौतम बुद्ध	अनित्य (क्षणिक)	है	देते हैं	है	नहीं	सर्वज्ञ है
3.	न्याय दर्शन	गौतम	नित्य	है	देते हैं	है	है	सर्वज्ञ त्रिकालज्ञ
4.	वैशेषिक दर्शन	महर्षि कणाद	नित्य	है	देते हैं	है	है	सर्वज्ञ त्रिकालज्ञ
5.	सांख्य दर्शन	कपिल	कूटस्थ नित्य	है	देते हैं	है	नहीं	है
6.	योग दर्शन	पतञ्जलि	कूटस्थ नित्य	है	देते हैं	है	नहीं	है
7.	पूर्व मीमांसा=मीमांसा	जैमिनी	नित्य	है	देते हैं	है	नहीं	कोई सर्वज्ञ नहीं
8.	उत्तर मींमासा=वेदान्त दर्शन	बादरायण आदि	नित्य	है	देते हैं	है	है (एक मृत)	है(एक दृष्टि से)
9.	चार्वाक दर्शन-लोकायत दर्शन भौतिकवादी दर्शन	वृहस्पति (वाचस्पति)	अनित्य	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं	ईश्वर ही नही हैं। सर्वज्ञ कोई नहीं होता।

सर्वदर्शन तालिका

क्र.	वेदप्रमाण है या नहीं	सुख का उपाय	निर्वाण का स्वरूप	निर्वाण का उपाय	प्रमाण संख्या व नाम
	10	11	12	13	14
1.	वेद अप्रमाण है	निराकुलता	सहज स्वरूप अनन्त सुखमय आत्मा की उपलब्धि	सम्यक दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र का समुदाय	दो = प्रत्यक्ष परोक्ष
2.	वेद अप्रमाण है	तृष्णा का त्याग	1. अभावात्मक अथवा 2. तृष्णा का क्षय ही मोक्ष है। 3. सुखात्मक	आष्टांगिक मार्ग सम्यग्दृष्टि आदि	दो = प्रत्यक्ष परोक्ष
3.	वेद प्रमाण	पुण्य	आत्यन्त्रिक दुःख निवृति	इतर पदार्थ से भिन्न आत्म तत्व का साक्षात्कर	चार=प्रत्यक्ष अनुमान उपनाम शब्द
4.	है	वेद विहित कर्म करना	यह अवस्था जब आत्मा के सभी विशेष गुण नष्ट हो जावें।	छः पदार्थों का यथार्थ ज्ञान	दो = प्रत्यक्ष परोक्ष
5.	वेद प्रमाण है (पर वैदिक यज्ञादि अमान्य)	विषय के साथ अनुकूल संयोग	आत्मा का कैव्य (केवली भाव)	विवेक ज्ञान	तीन=प्रत्यक्ष अनुमान आगम (शब्द)
6.	वेद प्रमाण है	विवेक ख्याति	कैवल्य	ज्ञान की पराकाष्ठा रूप वैराग्य, ऋतंभरा प्रज्ञा तदर्थ साधना अभ्यास	तीन=प्रत्यक्ष अनुमान आगम (शब्द)
7.	है	धर्म	धर्म-अधर्म का नाश होने पर शरीर का नाश ही मोक्ष है।	मोक्ष का मुख्य कारण कर्म सहकारी कारण आत्म ज्ञान	1. प्रत्यक्ष प्रमाण
8.	द्वैत-अद्वैत वेदान्त के अनुसार वेद भी अपरा विद्या है साक्षात् अनुभव ही प्रमाण है।	आत्मज्ञान या मोक्ष	1. आत्मभावश्च मोक्ष, 2. भगवान के सानिध्य में रहना। 3.सत् चित आनन्दावस्था	1. श्रवण मनन निदिध्यासन। 2. योग मार्गणानुसरण	छः प्रत्यक्ष, अनुमान, उपनाम शब्द,अर्थापत्ति अनुपलब्धि
9.	वेद अप्रमाण है।	विषय सेवन	निर्वाण ही नहीं है।	-	1. प्रत्यक्ष प्रमाण

सर्वदर्शन तालिका

क्र.	तत्त्व संख्या	सुख का उपाय	अनुयायी मनुष्य	निर्वाण का उपाय
	15	16	17	18
1.	सात-जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर निर्जरा, मोक्ष	अनेक अनन्त	2 करोड़	सम्यक दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र का समुदाय
2.	75:रूप 11, चित 46, चितविप्रयुक्त 14, अविज्ञप्ति आकाश 1, प्रति संख्या निरोध 1, अप्रति संख्या निरोध	अनन्त	साधिक एक अरब	आष्टांगिक मार्ग सम्यग्दृष्टि आदि
3.	16: प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, हेत्वाभास, छल, जाति, निग्रह, स्थान	अनन्त	-	इतर पदार्थ से भिन्न आत्म तत्व का साक्षात्कर
4.	छः द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष तथा समवास	अनन्त जीवात्म	बताना संभव नहीं	छः पदार्थों का यथार्थ ज्ञान
5.	25 : पुरुष 1, प्रकृति के विकार 24, एक ईश्वर = 25	अनन्त	-	हिन्दुओं में कुछ लोग
6.	26 : पुरुष 1, प्रकृति-प्रकृति के विकार 24, एक ईश्वर = 26	अनन्त	जानना संभव नहीं	-
7.	छः पदार्थ : द्रव्य गुण कर्म सामान्य शक्ति अभाव (भाट्ट मन)	अनेक	-	-
8.	एकमेव अद्वितीय ब्रह्म = 1 ब्रह्म	अद्वैत वेदान्त में एक। अन्य के अनुसार अनेक	करोड़ो (अद्वैत वेदान्ती अधिक है)	सभी हिन्दू जातियों में
9.	चार ही तत्व हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि तथा वायु	असंख्य(परन्तु शरीर ही आत्मा है)	-	सभी जातियों में सम्भव है।

सर्वदर्शन तालिका

क्र.	अनुयायी पुरुषों की बहुलता का क्षेत्र	मुख्य सिद्धान्त	विशेष
	19	20	21
1.	भारतवर्ष	अहिंसा, अपरिग्रह, स्याद्वाद	अकेले महाराष्ट्र में अभी 40 लाख तथा गुजरात में 50 लाख जैन हैं।(प्रा.का. 15.12.97. VI) कनाडा में 20 हजार तथा अमेरिका में 40 हजार जैन हैं। (अकबर बादशाह 1556 ईसवी के काल में चार करोड जैन भारत में थे)
2.	चीन,जापान,तिब्बत,लंका, भूटान, सिक्किम आदि।	क्षणिक बाद व अनीश्वर वाद	-
3.	कोई नहीं, दूसरा मत: बंगाल में अनुयायी है।	आत्मनानात्व,पुण्य पापानुसार पुरूषार्थ लाभ, आत्यन्त्रिक दु:ख निवृत्ति नि:श्रेयस् तथा पदार्थ तत्वज्ञान रूप नि:श्रेय सोपाय	न्याय दर्शन के अनुयायी पहले शैव होते थे। अधुना न्याय शास्त्रानुमोदित उपासना विधि प्रचलित नहीं है। यूरोप,अमेरिका,जापान तथा आस्ट्रेलिया में मूल न्याय का कुछ प्रचार देखा जाता है।
4.	भारत का हर प्रान्त	1.परमाणुवाद, 2.विशेषनामक पदार्थ,3.द्वित्व प्रक्रिया, 4.पाकज रूपोत्पत्ति प्रक्रिया, 5.विभाजन विभाग	वैशेषिक दर्शन कोई सम्प्रदाय या उपासना पद्धति या पंथ नहीं है। यह एक दर्शन है। ये शिव के उपासक होते हैं।
5.	-	अभ्यास वैराग्य	-
6.	हिमालय	1. ये यज्ञादि क्रियाकाण्ड में मुख्य रूप से प्रवृत्ति करते हैं। 2. ईश्वर सृष्टि कर्ता नहीं। 3.कर्म अपना फल स्वयं अपनी शक्ति से देते हैं।	-
7.	-	सभी अन्तत: एक है। एकत्व दृष्टि में ही शान्ति है।	-
8.	दक्षिण भारत	करोड़ो (अद्वैत वेदान्ती अधिक है)	वेदान्त दर्शन के प्रति पादक ये हैं-भर्तृप्रपंच शंकराचार्य, रामानुज बल्लभ, विज्ञान भिक्षु, भट्ट भास्कर, श्री कण्ठ, निम्बार्क तथा मध्व। इनके कारवा से इतनी ही शाखाऐं हैं।
9.	-	जीवन का चरम लक्ष्य ऐहिक सुखों की प्राप्ति मात्र है। पर लोक ईश्वर आदि मिथ्या बकवास है। जो दिखता है (प्रत्यक्ष प्रमाण) वही सत्य है।	-

तीस चौबीसी के सात सौ बीस तीर्थंकर (भूतकालीन दस चौबीसी)					
क्र. सं.	जम्बूद्वीप भरत क्षेत्र के तीर्थंकर 1.	जम्बूद्वीप ऐरावत क्षेत्र के तीर्थंकर 2.	पूर्वधातकी खण्ड द्वीप भरत क्षेत्र के तीर्थंकर 3.	पूर्वधातकी खण्ड द्वीप ऐरावत क्षेत्र के तीर्थंकर 4.	पश्चिम धातकी खण्ड द्वीप भरत क्षेत्र के तीर्थंकर 5.
1.	निर्वाण	पंचरूप	रत्नप्रभ	वज्रस्वामिन	वृषभनाथ
2.	सागर	जिनधर	अमितनाथ	उदत्त	प्रियमित्र
3.	महासाधु	सांप्रतीक	संभवनाथ	सूर्यस्वामी	शान्तिनाथ
4.	विमलप्रभ	ऊर्जयंत	अकलंक	पुरुषोत्तम	सुमतिनाथ
5.	श्रीधर	आधिक्षायिक	चन्द्रस्वामी	शरणस्वामिन	आदिजिन
6.	सुदत्त	अभिनन्दन	शुभंकर	अविरोधन	अव्यक्त
7.	अमलप्रभ	रत्नसेन	तत्त्वनाथ	विक्रम	कलासेन
8.	उद्धर	रामेश्वर	सुंदरस्वामी	निर्घंटिक	कर्मजित
9.	अग्निनाथ	अंगुष्ठिक	पुरंधर	हरिन्द्र	प्रबुद्ध
10.	सन्मति	विन्यास	स्वामिदेव	परित्रेरित	निवृत्त
11.	संयमसिन्धु	आरोष	देवदत्त	निर्वाणसूरि	सुधर्म
12.	कुसुमांजलि	सुविधान	वासवदत्त	धर्महेतु	तमोदीप
13.	शिवगण	प्रदत्त	श्रेयनाथ	चतुर्मुख	वज्रनाथ
14.	उत्साह	कुमार	विश्वरूप	कृतेन्द्र	बुद्धनाथ
15.	ज्ञानेश्वर	सर्वशैल	तपस्तेज	श्रुताम्बु	प्रबंधदेव
16.	परमेश्वर	प्रभंजन	प्रतिबोधदेव	विमलार्क	अतीतनाथ
17.	विमलेश्वर	सौभाग्यनाथ	सिद्धार्थदेव	देवप्रभ	प्रमुख
18.	यशोधर	दिनकर	अमलप्रभ	धरणेन्द्र	पन्योषपम
19.	कृष्णमति	व्रतबिंदु	संयमजिन	सुतीर्थ	श्रीअकोय
20.	ज्ञानमति	सिद्धकर	देवेन्द्र	उदयानन्द	निष्ठित
21.	शुद्धमति	ज्ञानशरीर	प्रवरनाथ	सर्वार्थदेव	मृगनाभि
22.	श्रीभद्र	कल्पद्रुम	विश्वसेन	धार्मिक	देवेन्द्र
23.	अतिकान्त	तीर्थफलेश	मेघनंदि	क्षेत्रस्वामी	पदस्थ
24.	शान्ति	वीरप्रभ	त्रिजेतृक	हरिचन्द्र	शिवनाथ

तीस चौबीसी के सात सौ बीस तीर्थंकर (भूतकालीन दस चौबीसी)					
क्र. सं.	पश्चिम धातकीखंड द्वीप ऐरावत क्षेत्र के तीर्थंकर 6.	पूर्व पुष्करार्ध द्वीप भरत क्षेत्र के तीर्थंकर 7.	पूर्व पुष्करार्ध द्वीप ऐरावत क्षेत्र के तीर्थंकर 8.	पश्चिम पुष्करार्ध द्वीप भरत क्षेत्र के तीर्थंकर 9.	पश्चिम पुष्करार्ध द्वीप ऐरावत क्षेत्र के तीर्थंकर 10.
1.	सुमेरू	मदनेन्द्र	कृतिनाथ	पदमचन्द्र	उपशांत
2.	जिनकृत	मूर्तस्वामी	उपविष्ट	रत्नांग	फाल्गुन
3.	कैटभनाथ	विराग	देवादित्य	अयोगीकेश	पूर्वास
4.	प्रशस्त	प्रलंव	आस्थनिक	सर्वार्थ	सौधर्म
5.	निर्दमन	पृथ्वीपति	प्रचन्द्र	ऋषिनाथ	गौरिक
6.	कुलकर	चारित्रनिधि	वेषिक	हरिभद्र	त्रिविक्रम
7.	वर्धमान	अपराजित	त्रिभानु	गुणाधिप	नरसिंह
8.	अमृतेंदू	सुबोधक	ब्रह्म	पारत्रिक	मृगवसु
9.	सख्यानंद	बुद्धीश	वज्रांग	ब्रह्मनाथ	सोमेश्वर
10.	कल्पकृत	वैतालिक	अविरोधि	मनिन्द्र	सुधासुर
11.	हरिनाथ	त्रिमुष्टि	अपाप	दीपक	अपापमल्ल
12.	बहुस्वामी	मुनिबोध	लोकोत्तर	राजरिष	विवाध
13.	भार्गव	तीर्थस्वामी	जलधिशेष	विशाखदेव	सधिंक
14.	सुभद्रस्वामी	धर्मधीश	विद्योत	अनिंदित	मानधात्र
15.	पविपाणि	धरनेश	सुमेरु	रविस्वामी	अश्वतेज
16.	विपोषित	प्रभवदेव	विभावित	सोमदत्त	विद्याधर
17.	ब्रह्मचारी	अनादिदेव	वत्सल	जयस्वामी	सुलोचन
18.	असोंक्षिक	अनादिप्रभु	जिनाल्य	मोक्षनाथ	मौननिधि
19.	चारित्रेश	सर्वतीर्थ	तुषार	अग्रभानु	पुण्डरीक
20.	पारिणामिक	निरुपमदेव	भुवनस्वामी	धनुसंग	चित्रगण
21.	शाश्वतनाथ	कौमारिक	सुकाम	रोमांचक	मणिरिन्द्र
22.	निधिनाथ	विहारग्रह	देवाधि	मुक्तिनाथ	सर्वकाल
23.	कौशिक	धरणीश्वर	अकारिम	प्रसिद्धनाथ	भूरिश्रवण
24.	धर्मेश	विकाशदेव	विनीत	जितेश	पुयाग

तीस चौबीसी के सात सौ बीस तीर्थंकर (वर्तमान दस चौबीसी)					
क्र. सं.	जम्बूद्वीप भरत क्षेत्र के तीर्थंकर 11.	जम्बूद्वीप ऐरावत क्षेत्र के तीर्थंकर 12.	पूर्व धातकी खण्ड द्वीप भरत क्षेत्र के तीर्थंकर 13.	पूर्व धातकी खण्ड द्वीप ऐरावत क्षेत्र के तीर्थंकर 14.	पश्चिम धातकी खण्ड द्वीप भरत क्षेत्र के तीर्थंकर 15.
1.	वृषभदेव	बालचन्द्र	युगादिदेव	अपश्चिम	विश्वचंद्र
2.	अजितनाथ	सुव्रत	सिद्धान्त	पुष्पदंत	कपिल
3.	संभवनाथ	अग्निसेन	महाईश	अर्हदेव	वृषभदेव
4.	अभिनंदननाथ	नंदिसेन	परमार्थ	श्रीचरित्र	प्रियतेज
5.	सुमतिनाथ	श्रीदत्त	समुद्धर	सिद्धानंद	प्रशमजिन
6.	पद्मप्रभ	व्रतधर	भूधरनाथ	नंदगदेव	विषमांग
7.	सुपार्श्वनाथ	सोमचन्द्र	उद्योत	पदमकूप	चारितनाथ
8.	चन्द्रप्रभ	धृतिदीर्घ	आर्जव	उदयनाभि	प्रभादित्य
9.	पुष्पदन्त	शतायुष्य	अभ्यनाथ	रुक्मेन्दु	पुंजकेश
10.	शीतलनाथ	शिवशत	अप्रकंप	कृपालु	पीतवास
11.	श्रेयांसनाथ	श्रेयांस	पद्मनाथ	प्रौष्ठिल	सुराधिप
12.	वासुपूज्य	श्रुतजल	पद्मनंदि	सिद्धेश्वर	दयानाथ
13.	विमलनाथ	सिंहसेन	प्रियंकर	अमृतेन्दु	सहस्त्रभुज
14.	अनन्तनाथ	उपशांत	सुकृतनाथ	स्वामिनाथ	जिनसिंह
15.	धर्मनाथ	गुप्तशासन	भद्रनाथ	भुवनलिंग	रैवतनाथ
16.	शान्तिनाथ	अनंतवीर	मुनिचंद्र	सर्वरथ	बाहुस्वामी
17.	कुंथुनाथ	पार्श्व	पंचमुष्टि	मेघनंद	श्रीमाली
18.	अरनाथ	अधिधान	त्रिमुष्टि	नंदिकेश	अयोग
19.	मल्लिनाथ	मरुदेव	गागिंकनाथ	हरिनाथ	अयोगीनाथ
20.	मुनिसुव्रतनाथ	श्रीधर	गणनाथ	अधिष्ठ	कामरिपु
21.	नमिनाथ	शामकंठ	सर्वांगदेव	शांतिकदेव	अरण्य
22.	नेमिनाथ	अग्निप्रभ	ब्रम्हेन्द्रनाथ	नंदिस्वामिन	नेमिनाथ
23.	पार्श्वनाथ	अग्निदत्त	इंद्रदत्त	कुन्दपार्श्व	गर्भज्ञाति
24.	वर्धमान	वीरसेन	दयानाथ	विरोचन	एकार्जित

तीस चौबीसी के सात सौ बीस तीर्थंकर (वर्तमान दस चौबीसी)					
क्र. सं.	पश्चिम धातकीखंड द्वीप ऐरावत क्षेत्र के तीर्थंकर 16.	पूर्व पुष्करार्ध द्वीप भरत क्षेत्र के तीर्थंकर 17.	पूर्व पुष्करार्ध द्वीप ऐरावत क्षेत्र के तीर्थंकर 18.	पश्चिम पुष्करार्ध द्वीप भरत क्षेत्र के तीर्थंकर 19.	पश्चिम पुष्करार्ध ऐरावत क्षेत्र के तीर्थंकर 20.
1.	साधित	जगन्नाथ	शंकर	सर्वांगस्वामी	गांगेयक
2.	जिनस्वामी	प्रभास	अक्षवास	पद्माकर	मल्लवासव
3.	स्तमितेन्द्र	स्वरस्वामी	नग्नाधिप	प्रभाकर	भीम
4.	अत्यानंदधाम	भरतेश	नग्नाधिपतीश	बलनाथ	दयाधिक
5.	पुष्पकोत्फुल	दीर्घानन	नष्टपाखंड	योगीश्वर	सुभद्र
6.	श्रीमंडित	विख्यातकीर्ती	स्वप्नवेद	सूक्ष्मांग	स्वामी
7.	प्रहितदेव	अवसानि	तपोधन	मृगांक	हनिक
8.	मदनसिद्ध	प्रबोध	पुष्पकेतु	कलंवक	नंदिघोष
9.	हसदिंद्र	तपोनाथ	धार्मिक	परित्याग	रूपवीर्य
10.	चंद्रपार्श्व	पावक	चन्द्रकेतु	निषेधिक	वज्रनाभ
11.	अब्जबोध	त्रिपुरेश्वर	अनुरक्त	पापापहरी	संतोष
12.	जिनबल्लभ	सौगत	वीतराग	मुक्तिचन्द्र	सुधर्म
13.	विभूति	वासव	उद्योग	अप्राशिक	फणीश्वर
14.	कुकुदभास	मनोहर	तमोपेक्ष	जयचंद्र	वीरचन्द्र
15.	सुवर्णनाथ	शुभकर्मईश	मधुनाद	मलधारि	मेघानिक
16.	हरिवासक	इष्टसेवित	मरुदेव	सुसंयत	स्वच्छनाथ
17.	प्रियमित्र	विमलेन्द्र	दमनाथ	मलयसिंधु	कोपक्षय
18.	धर्मदेव	धर्मवास	वृषभस्वामी	अक्षधर	अकाम
19.	प्रियरत	प्रसाद	शिलातन	देवधराजय	धर्मधाम
20.	नंदिनाथ	प्रभामृगांक	विश्वनाथ	देवगणधिप	सुक्तिसेन
21.	अश्वानीक	अकलंक	महेन्द्र	आगमिक	क्षेमंकर
22.	पूर्वनाथ	स्फटिकप्रभाख्य	नंद	विनीत	दयानाथ
23.	पार्श्वनाथ	गजेन्द्र	तमोहर	रतानन्द	कीर्तिय
24.	चित्रहृदय	ध्यानजय	ब्रह्मज	वीतराग	शुभंकर

तीस चौबीसी के सात सौ बीस तीर्थंकर (भविष्यत दस चौबीसी)					
क्र. सं.	जम्बूद्वीप भरत क्षेत्र के तीर्थंकर 21.	जम्बूद्वीप ऐरावत क्षेत्र के तीर्थंकर 22.	पूर्वधातकी खण्ड द्वीप भरत क्षेत्र के तीर्थंकर 23.	पूर्वधातकी खण्ड द्वीप ऐरावत क्षेत्र के तीर्थंकर 24.	पश्चिम धातकी खण्ड द्वीप भरत क्षेत्र के तीर्थंकर 25.
1.	महापद्म	सिद्धार्थदेव	सिद्धार्थ	प्रवरवीर	रक्तकेश
2.	सुरदेव	विमल	सम्यग्गुण	विजयप्रभ	चक्रहस्त
3.	सुप्रभ	जयघोष	जिनेन्द्रदेव	सत्यप्रभ	कृतनाथ
4.	स्वयंप्रभ	नंदिसेन	संपन्न	महामृगेन्द्र	परमेश्वर
5.	सर्वात्मभूत	स्वर्गमंगल	सर्वस्वामि	चिन्तामणी	सुमूर्ति
6.	देवपुत्र	वज्रधारी	मुनिनाथ	अशोक	मुक्तिकान्त
7.	कुलपुत्र	निर्वाण	विशिष्टजिनदेव	द्विमृगेन्द्र	निकेशि
8.	उदंक	धर्मध्वज	अग्रनाथ	उपवसिक	प्रशस्त
9.	प्रौष्ठिल	सिद्धसेन	ब्रह्मशान्ति	पद्मचंद्र	निराहार
10.	जयकीर्ति	महासेन	पूर्वनाथ	बोधकेन्द्र	अमूर्त
11.	मुनिसुव्रत	रविमित्र	अकामुकदेव	चिंताहिम	द्विजनाथ
12.	अर	सत्यसेन	ध्याननाथ	उत्साहिक	श्रीयोगत
13.	निष्पाप	चन्द्रनाथ	कल्प	उपाशिक	अरुजनाथ
14.	निष्कषाय	महीचन्द्र	संवरनाथ	देवजलाख्य	देवनाथ
15.	विपुल	श्रुतांजन	स्वच्छनाथ	नारिक	दयधिक
16.	निर्मल	देवसेन	आनंद	अनध	पुष्पनाथ
17.	चित्रगुप्त	सुव्रतनाथ	रविप्रभ	नागेन्द्र	नरनाथ
18.	समाधिगुप्त	जिनेन्द्रनाथ	चन्द्रप्रभ	नीलोत्पल	प्रतिभूत
19.	स्वयंभू	सुपार्श्व	सुनंद	अप्रकंप	नागेन्द्र
20.	कंदर्प	सुकौशल	सुकर्ण	पुराहित	तपोधिक
21.	जय	अनन्तनाथ	सुकर्म	भिदंकनाथ	दशानन
22.	विमल	विमल	आमभदेव	पार्श्वनाथ	आरण्यक
23.	देवपाल	अमृतसेन	पार्श्वनाथ	निर्वाच	दशानीक
24.	अनन्तवीर्य	अग्निदत्त	शाश्वतनाथ	विशेषिकनाथ	सात्त्विक

तीस चौबीसी के सात सौ बीस तीर्थंकर (भविष्यत दस चौबीसी)					
क्र. सं.	पश्चिम धातकीखंड द्वीप ऐरावत क्षेत्र के तीर्थंकर 26.	पूर्व पुष्करार्ध द्वीप भरत क्षेत्र के तीर्थंकर 27.	पूर्व पुष्करार्ध द्वीप ऐरावत क्षेत्र के तीर्थंकर 28.	पश्चिम पुष्करार्ध द्वीप भरत क्षेत्र के तीर्थंकर 29.	पश्चिम पुष्करार्ध द्वीप ऐरावत क्षेत्र के तीर्थंकर 30.
1.	रवीन्द्र	वसंतध्वज	यशोधर	प्रभावक	अदोषिक
2.	सोमकुमार	त्रिजयंत	सुकृतनाथ	विनतेन्द्र	वृषभदेव
3.	पृथ्वीवान	त्रिस्तंभ	अभ्यघोष	सुभावक	विनयानन्द
4.	कुलरत्न	परब्रह्म	निर्वाण	दिनकर	मुनिभारत
5.	धर्मनाथ	अबालिश	व्रतवास	अगस्त्येज	इंद्रक
6.	सोमजिन	प्रवादि	अतिराज	श्रीधनदत्त	चंद्रकेतु
7.	वरूणेन्द्र	भूमानंद	अश्वदेव	पौरव	ध्वजादित्य
8.	अभिनन्दन	त्रिनयन	अर्जुन	जिनदत्त	वस्तुबोध
9.	सर्वनाथ	विद्वान	तपश्चंद्र	पार्श्वनाथ	मुक्तिगत
10.	सुदृष्टि	प्रमात्मप्रसंग	शारीरिक	मुनिसिंधु	धर्मबोध
11.	शिष्ट	भूमीन्द्र	महेश	आस्तिक	देवांग
12.	सुधन्य	गोस्वामी	सुग्रीव	भवनीक	मारोचिक
13.	सोमचन्द्र	कल्याणप्रकाशित	दृढ़प्रहार	नृपनाथ	जीवनाथ
14.	क्षेत्रधीश	मंडल	अवंरीक	नारायण	यशोधर
15.	सदंतिकनाथ	महावसु	दयातीत	प्रशमौक	गौतम
16.	जयंत	उदयवान	तुंवर	भूपति	मुनिशुद्धि
17.	तमोरिपु	दिव्यज्योति	सर्वशील	सुदृष्टि	प्रबोधिक
18.	निर्मिलदेव	प्रबोधेश	प्रतिजात	भवभीरू	सदानीक
19.	कृतपार्श्व	अभ्यांक	जितेन्द्रिय	नन्दन	चारित्रनाथ
20.	बोधिलाभ	प्रमित	तपादित्य	भार्गव	शतानंद
21.	बहुनंद	दिव्यस्फारक	रत्नाकर	वासव	वेदार्थ
22.	सुदृष्टि	व्रतस्वामी	देवेश	परावश	सुधानीक
23.	कुमकुमनाभि	निधान	लांछन	वनवासिक	ज्योर्तिमुख
24.	वक्षेश	निकर्मा	सुप्रदेश	भरतेश	सुरार्ध

एक सौ सत्तर तीर्थंकर एक समय में

	जम्बूद्वीप के सुदर्शन मेरू सम्बन्धी विदेह क्षेत्र तीर्थंकर			पूर्व धातकी खण्ड द्वीप के विजय मेरू सम्बन्धी विदेहक्षेत्र तीर्थंकर
	देश	नगरी	तीर्थंकर	देश, नगरी, तीर्थंकर
1. उत्तरी	कच्छा	सुक्षेमा	1	इस क्षेत्र में 32 तीर्थंकर होते हैं, उनके क्षेत्र तथा नगरी के नाम भी नहीं बदलते और तीर्थंकर का नाम भी वही रहता है।
2. पूर्व	सुकच्छा	क्षेमपुरी	1	
3. विदेह में	महाकच्छा	अरिष्टा	1	
4.	कच्छकावती	अरिष्टापुरी	1	
5. पश्चिम	आवर्ता	खड्गा	1	
6. से	लांगलावर्ता	मंजूषा	1	
7. पूर्व की	पुष्पकला	औषध	1	
8. ओर	पुष्पकलावती	पुण्डरीकिणी	1	
9. दक्षिणी	वत्सा	सुसीमा	1	
10. पूर्व	सुवत्सा	कुण्डला	1	
11. विदेह में	महावत्सा	अपराजिता	1	
12.	वत्सकावती	प्रभंकरा	1	
13. पूर्व से	रम्या	अंकावती	1	
14. पश्चिम	सुरम्या	पद्मावती	1	
15. की ओर	रमणीया	शुभा	1	
16.	मंगलावती	रत्नसंचया	1	
17. दक्षिणी	पद्मा	अश्वपुरी	1	
18. पूर्व	सुपद्मा	सिंहपुरी	1	
19. विदेह में	महापद्मा	महापुरी	1	
20.	पद्मकावती	विजयपुरी	1	
21. पूर्व से	शंखा	अरजा	1	
22. पश्चिम	नलिनी	विरजा	1	
23. की ओर	कुमुदा	शोका	1	
24.	सरित	वीतशोका	1	
25. उत्तरी	वप्रा	विजया	1	
26. पश्चिम	सुवप्रा	वैजयन्ता	1	

एक सौ सत्तर तीर्थंकर एक समय में

पश्चिम धातकी खण्ड द्वीप के अचल मेरू सम्बन्धी विदेह क्षेत्र तीर्थंकर	पूर्व पुष्कार्ध द्वीप के मन्दर मेरू सम्बन्धी विदेह क्षेत्र तीर्थंकर	पश्चिम पुष्कार्ध द्वीप के विद्युन्माली मेरू सम्बन्धी विदेह क्षेत्र तीर्थंकर
देश, नगरी, तीर्थंकर	देश, नगरी, तीर्थंकर	देश, नगरी, तीर्थंकर
इस क्षेत्र में 32 तीर्थंकर होते हैं, उनके क्षेत्र तथा नगरी के नाम भी नहीं बदलते और तीर्थंकर का नाम भी वही रहता है।	इस क्षेत्र में 32 तीर्थंकर होते हैं, उनके क्षेत्र तथा नगरी के नाम भी नहीं बदलते और तीर्थंकर का नाम भी वही रहता है।	इस क्षेत्र में 32 तीर्थंकर होते हैं, उनके क्षेत्र तथा नगरी के नाम भी नहीं बदलते और तीर्थंकर का नाम भी वही रहता है।

एक सौ सत्तर तीर्थंकर एक समय में

	जम्बूद्वीप के सुदर्शन मेरू सम्बन्धी विदेह क्षेत्र तीर्थंकर			पूर्व धातकी खण्ड द्वीप के विजय मेरू सम्बन्धी विदेहक्षेत्र तीर्थंकर
	देश	नगरी	तीर्थंकर	देश, नगरी, तीर्थंकर
27. विदेह	महावप्रा	जयन्ता	1	इस क्षेत्र में 32 तीर्थंकर होते हैं, उनके क्षेत्र तथा नगरी के नाम भी नहीं बदलते और तीर्थंकर का नाम भी वही रहता है।
28. में	वप्रावर्त	अपराजिता	1	
29. पश्चिम	गंधा	चक्रपुरी	1	
30.	सुगंधा	खड्गपुरी	1	
31. पूर्व में	गंधिला	अयोध्या	1	
32. ओर	गंधमालिनी	अयोध्या	1	
	जम्बूद्वीप के सुदर्शन मेरू सम्बन्धी भरत क्षेत्र के तीर्थंकर			**धातकीखण्ड द्वीप के विजयमेरू सम्बन्धी भरत क्षेत्र के तीर्थंकर**
33. दक्षिण भरत क्षेत्र	भरत देश	अयोध्या नगरी	1	इनमें एक तीर्थंकर होते हैं, क्षेत्र नगरी का नाम वही रहता है, तीर्थंकर का नाम बदल जाता है।
	जम्बूद्वीप के सुदर्शन मेरू सम्बन्धी ऐरावत क्षेत्र के तीर्थंकर			**धातकीखण्ड द्वीप के विजयमेरू सम्बन्धी ऐरावत क्षेत्र के तीर्थंकर**
33. उत्तर ऐरावत क्षेत्र	ऐरावत देश	अयोध्या नगरी	1	इनमें एक तीर्थंकर होते हैं।

एक सौ सत्तर तीर्थंकर एक समय में

पश्चिम धातकी खण्ड द्वीप के अचल मेरू सम्बन्धी विदेह क्षेत्र तीर्थंकर	पूर्व पुष्करार्ध द्वीप के मन्दर मेरू सम्बन्धी विदेह क्षेत्र तीर्थंकर	पश्चिम पुष्करार्ध द्वीप के विद्युन्माली मेरू सम्बन्धी विदेह क्षेत्र तीर्थंकर
देश, नगरी, तीर्थंकर	**देश, नगरी, तीर्थंकर**	**देश, नगरी, तीर्थंकर**
इस क्षेत्र में 32 तीर्थंकर होते हैं, उनके क्षेत्र तथा नगरी के नाम भी नहीं बदलते और तीर्थंकर का नाम भी वही रहता है।	इस क्षेत्र में 32 तीर्थंकर होते हैं, उनके क्षेत्र तथा नगरी के नाम भी नहीं बदलते और तीर्थंकर का नाम भी वही रहता है।	इस क्षेत्र में 32 तीर्थंकर होते हैं, उनके क्षेत्र तथा नगरी के नाम भी नहीं बदलते और तीर्थंकर का नाम भी वही रहता है।
पश्चिम धातकी खण्ड द्वीप के अचल मेरू सम्बन्धी भरत क्षेत्र तीर्थंकर	**पूर्व पुष्करार्ध द्वीप के मन्दर मेरू सम्बन्धी भरत क्षेत्र तीर्थंकर**	**पश्चिम पुष्करार्ध द्वीप के विद्युन्माली मेरू सम्बन्धी भरत क्षेत्र तीर्थंकर**
इसमें एक तीर्थंकर होते हैं, क्षेत्र तथा नगरी का नाम नहीं बदलता है, तीर्थंकर का नाम बदल जाता है।	इसमें एक तीर्थंकर होते हैं, क्षेत्र तथा नगरी का नाम नहीं बदलता है, तीर्थंकर का नाम बदल जाता है।	इसमें एक तीर्थंकर होते हैं, क्षेत्र तथा नगरी का नाम नहीं बदलता है, तीर्थंकर का नाम बदल जाता है।
पश्चिम धातकी खण्ड द्वीप के अचल मेरू सम्बन्धी ऐरावत क्षेत्र तीर्थंकर	**पूर्व पुष्करार्ध द्वीप के मन्दर मेरू सम्बन्धी ऐरावत क्षेत्र तीर्थंकर**	**पश्चिम पुष्करार्ध द्वीप के विद्युन्माली मेरू सम्बन्धी ऐरावत क्षेत्र तीर्थंकर**
इसमें एक तीर्थंकर होते हैं।	इसमें एक तीर्थंकर होते हैं।	इसमें एक तीर्थंकर होते हैं।

एक समय में होने वाले (अधिकतम) तीर्थंकरों की संख्या :-

पाँच महा विदेह, प्रत्येक के बत्तीस-बत्तीस क्षेत्र तथा उतनी-उतनी नगरी, जिसमें एक-एक तीर्थंकर होते हैं (5 x 32)। पाँच भरत क्षेत्र तथा पाँच ही उनकी नगरी; जिनमें प्रत्येक में एक-एक तीर्थंकर होते हैं (5 x 1)। पाँच ऐरावत क्षेत्र तथा पाँच ही उनकी नगरी; जिनमें प्रत्येक में एक-एक तीर्थंकर होते हैं। इस प्रकार - 160 + 5 + 5 = 170 तीर्थंकर एक साथ एक समय में हो सकते हैं। दूसरे तीर्थंकर श्री अजितनाथ भगवान के तीर्थकाल में एक साथ 170 तीर्थंकर हुये थे।

पात्र के भेद

1. सुपात्र-

उत्तम-	उत्तम	-	तीर्थंकर
	मध्यम	-	गणधर
	जघन्य	-	मुनि
मध्यम-	उत्तम	-	उत्तम श्रावक
	मध्यम	-	मध्यम श्रावक
	जघन्य	-	जघन्य श्रावक
जघन्य-	उत्तम	-	क्षायिक सम्यग्दृष्टि
	मध्यम	-	औपशमिक सम्यग्दृष्टि
	जघन्य	-	क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि

2. कुपात्र-

उत्तम- जिनलिंग धारी द्रव्यलिंगी मुनि

मध्यम- जिनलिंग धारी द्रव्यलिंगी श्रावक

जघन्य- सम्यग्दर्शन रहित व्रत, बाह्य आचरण वाले गृहस्थी

3. अपात्र-

उत्तम- परिग्रहधारी मुनि

मध्यम- भाव और चारित्र से हीन

जघन्य- अगृहीत व अगृहीत मिथ्यात्वी को मानने वाला

श्वेताम्बर जैन आम्नाय व दिगम्बर जैन आम्नाय में मतभेद-

श्वेताम्बर आम्नाय	दिगम्बर आम्नाय
1. केवली भगवान को निहार (मल-मूत्र) होता है।	1. केवली भगवान को निहार (मल-मूत्र) नहीं होता।
2. केवली को रोग होता है।	2. केवली को रोग नहीं होता है।
3. केवली कवलाहार (भोजन) करते हैं।	3. केवली कवलाहार (भोजन) नहीं करते हैं। नौकर्म वर्गणाओं का हर समय आस्रव ही आहार है।
4. केवली, केवली को नमस्कार करते है।	4. केवली, केवली को नमस्कार नहीं करते।
5. केवली के उपसर्ग होता है।	5. केवली के उपसर्ग नहीं होता।
6. प्रतिमा को आभूषण पहनाते हैं।	6. नग्न प्रतिमाएँ(आभूषण रहित) होती हैं।
7. तीर्थंकर पाठशाला में पढ़ते हैं।	7. तीर्थंकर स्वयं बुद्ध होते हैं। पाठशाला में नहीं पढ़ते।
8. तीर्थंकर की पहली देशना दिव्यध्वनि खाली जाती है।	8. तीर्थंकर की प्रत्येक दिव्यध्वनि से प्राणी लाभ लेते हैं।
9. महावीर भगवान देवनन्दा ब्राह्मणी के गर्भ में आये। इन्द्र ने उनको देवनन्दा के गर्भ से निकाल कर माता त्रिशला देवी के गर्भ में पहुँचा दिया। वहाँ जन्म हुआ।	9. महावीर भगवान का गर्भ और जन्म दोनों ही कल्याणक माता त्रिशला देवी के घर हुये।
10. श्री आदिनाथ भगवान तथा उनकी स्त्री सुनन्दा, युगलिया थे।	10. श्री आदिनाथ भगवान युगलिया नहीं थे, वे माता मरुदेवी की कोख से अकेले ही उत्पन्न हुए थे।
11. श्री आदिनाथ भगवान और उनकी बहन सुनन्दा ने आपस में ब्याह कर लिया था।	11. उनकी रानी सुनन्दा विद्याधर राजा सुकच्छ की लड़की थी।
12. केवली को छींक आती है।	12. केवली अठारह दोष रहित होते है। छींक आदि कोई भी विकार उनको नहीं होता।

13. गौतम स्वामी खंदक ब्राह्मण मिथ्या सिद्धान्तवादी से मिलने गये।	13. श्री गौतम स्वामी चार ज्ञान के धारी सम्यग्दृष्टि गणधर थे; अतः वे मिथ्या -दृष्टि की विनय नहीं कर सकते।
14. स्त्री के पंच महाव्रत होते हैं।	14. महाव्रत छठे गुणस्थान में होते हैं। स्त्री पांचवे गुणस्थान से आगे नहीं चढ़ सकती।
15. स्त्री को मोक्ष होता है।	15. स्त्री के व्रजवृषभनाराच संहनन नहीं होता इसलिए क्षपक श्रेणी मांडकर मोक्ष नहीं जा सकती।
16. स्त्री भी तीर्थंकर होती है। दीक्षा के समय इन्द्र श्वेत साड़ी पहनने के लिए भेंट करता है।	16. स्त्री तीर्थंकर नहीं होती, वस्त्रधारी पंचम गुणस्थान से आगे नहीं बढ़ सकते।
17. प्रतिमायें आभूषण सहित होती हैं।	17. जितने कृत्रिम-अकृत्रिम चैत्यालय जिन मन्दिर हैं, सबमें प्रतिमाएँ आभूषण रहित (नग्न) होती हैं।
18. उन्नीसवें तीर्थंकर मल्लीबाई स्त्री थी।	18. मल्लिनाथ तीर्थंकर पुरुष थे। सम्यग्दृष्टि का जन्म स्त्री पर्याय में नहीं होता।
19. जुगलिया की ऊँची काया को दबाकर छोटा किया गया और भरत क्षेत्र में लाई गई।	19. जुगलिया की काया अपने समय की काया से कम नहीं हो सकती और भोगभूमि से कर्मभूमि के क्षेत्र में लाई नहीं जा सकती।
20. जुगलिया को भोग भूमि से भरत क्षेत्र में लाकर हरिवंश की स्थापना की गई।	20. भोगभूमियों के जीव कर्मभूमि क्षेत्र में नहीं आ सकते।
21. यती के चौदह उपकरण होते हैं।	21. यती के कमण्डल एवं पिच्छी दो ही उपकरण होते हैं।
22. मुनिसुव्रतनाथ भगवान के घोड़ा गणधर था।	22. तिर्यंच पाँचवें गुणस्थान से आगे नहीं चढ़ सकता। गणधर पुरुष (नग्न) दिगम्बर मुनि ही होते हैं।
23. मुनियों के लिए शिष्य आहार लाते हैं।	23. मुनि स्वयं ही चर्या के लिए श्रावक के द्वार पर जाते हैं। वे शिष्यों के द्वारा लाया हुआ भोजन नहीं लेते।

24. यति श्रावक के घर से आहार लाकर आश्रम में ही आहार करते हैं।	24. यति श्रावक के घर पर ही आहार करते हैं।
25. धर्म की निन्दा करने वालों को मारने में पाप नहीं होता।	25. यति का निंदक और वंदक दोनों पर ही दया भाव होता है।
26. जुगलिया मरकर नरक में भी जा सकते हैं।	26. जुगलिया मरकर देवगति में ही जाते हैं।
27. भरत जी ने अपनी ब्राह्मी बहन को अपने विवाह के लिए रखा।	27. ब्राह्मी बाल ब्रह्मचारिणी रही और आर्यिका बन गई।
28. दान, तप, शील, सामायिक परिणामों से ही मोक्ष हो जाता है।	28. बारहवें गुणस्थानवर्ती शुद्धोपयोगी मुनि ही मोक्ष जा सकता है। (शुभोपयोग संसार और पुण्य का कारण है)
29. भरत महाराज को घर में ही केवल ज्ञान हो गया।	29. भरत जी ने अन्त में जिन दीक्षा ली, तब एक मुहुर्त में केवलज्ञान हुआ।
30. महावीर भगवान ने जन्म कल्याणक के समय मेरु पर्वत को हिला दिया।	30. दिगम्बर आम्नाय में ऐसा कोई उल्लेख नहीं मिलता।
31. द्रौपदी पंच भर्तारी थी।	31. द्रौपदी अर्जुन की ही स्त्री थी।
32. गुरु चेले के कंधों पर चढ़े हुए थे। उसी समय चेले को केवलज्ञान हो गया।	32. पद्मासन या खड़गासन योगधारी नग्न दिगम्बर मुनि अवस्था बिना केवलज्ञान नहीं हो सकता।
33. जयमाली जाति का माली महावीर भगवान का जमाई था।	33. भगवान महावीर बाल ब्रह्मचारी थे और उच्च गोत्र का सम्बन्ध उच्च गोत्र में ही होता है; इसलिए यह प्रश्न ही नहीं होता कि भगवान के जमाई हो।
34. धातकीखण्ड में कपिल नाम के नारायण को केवलज्ञान हो गया।	34. नारायण पदवी धारियों को केवल ज्ञान नहीं हो सकता। नियम से मरकर नरक जाते हैं।
35. वसुदेव के 72 हजार स्त्री थी।	35. इसका दिगम्बर आम्नाय में उल्लेख नहीं मिलता।

36. मुनि शूद्र के घर भी आहार लेते हैं।	36. मुनि उच्च कुली होते हैं। अष्ट मूलगुणधारी आचारवान सद्गृहस्थ के ही आहार लेते हैं।
37. देव मनुष्यणी से भोग करते हैं।	37. देव का शरीर वैक्रियिक है। मनुष्यणी का शरीर औदारिक है। इन दोनों शरीरों का आपस में भोग नहीं हो सकता।
38. सुलसा श्रावकनी के बेटा पैदा हुआ।	38. दिगम्बर आम्नाय में इसका कोई उल्लेख नहीं हैं।
39. चक्रवर्ती के 60000 रानी होती हैं।	39. चक्रवर्ती के 96000 रानी होती हैं।
40. त्रिपृष्ठ नारायण छिपा से उपजे।	40. नारायण उच्च कुली के गर्भ से पैदा होते हैं।
41. बाहुबली का शरीर 525 धनुष नहीं था।	41. बाहुबली का शरीर 525 धानुष ऊँचा था।
42. अनार्य देशों में भी भगवान महावीर का विहार हुआ।	42. अनार्य देशों में तीर्थंकर का विहार नहीं होता।
43. चौथे काल में असंयमी की भी पूजा होती है।	43. असंयमी की पूजा नहीं हो सकती है।
44. देवों का एक कोस मध्य लोक के चार कोस के बराबर होता है।	44. चार कोस वाले परिमाण का नाम योजन है। उसको कोस नहीं कह सकते।
45. प्राण जाते हों तो प्रतिज्ञा भंग कर सकते हैं।	45. किसी बड़ी से बड़ी आपत्ति में भी प्रतिज्ञा भंग करना पाप है।
46. समवसरण में तीर्थंकर नग्न दिखलाई नहीं देते।	46. तीर्थंकर नग्न ही होते हैं और नग्न ही दिखलाई पड़ते हैं।
47. उपवास के दिन औषध ले सकते हैं।	47. उपवास के दिन चारों ही आहार का त्याग करना होता है। (लेह्य, पेय, स्वाद्य, खाद्य)।
48. यति के हाथ में डंडा होता है।	48. यति हाथ में डंडा नहीं ले सकते।
49. मरुदेवी का हाथी पर चढ़ी हुई अवस्था में केवलज्ञान हो गया।	49. स्त्री पर्याय से केवलज्ञान नहीं हो सकता।

50. भावलिंग और द्रव्यलिंग के बिना भी केवलज्ञान हो सकता है।	50. द्रव्यलिंग (नग्न दिगम्बर मुद्रा) और भावलिंग (क्षपक श्रेणी) दोनों के होने पर ही केवलज्ञान होता है।
51. चांडाल आदि भी मोक्ष जा सकते हैं।	51. ऊँचे गोत्र में और सजाति में जन्मा हुआ प्राणी ही मोक्ष जा सकता है।
52. सूर्य-चन्द्रमा, विमान सहित भगवान महावीर के समवसरण में आये।	52. सूर्य-चन्द्रमा, विमान सहित समवसरण में नहीं आते हैं। वैक्रियिक शरीर सहित देव ही समवसरण में आते हैं।
53. दूसरे स्वर्ग का इन्द्र पहले स्वर्ग आ जाता है।	53. मनुष्य लोक में जिस स्वर्ग का बन्ध कर लिया है, वहीं जीव जाता है। स्वर्ग में जाकर स्थिति और आयु का अपकर्षण (घट जाना) नहीं होता।
54. पहले स्वर्ग का जीव दूसरे स्वर्ग में चला जाता है।	54. स्वर्गों में स्थिति और आयु का इस तरह उत्कर्षण (बढ़ना) नहीं होता।
55. बच्चे को जन्म देते समय जो मल बहता है, उसके सिवाय शरीर के नौ द्वारों के मल सुमल हैं।	55. सर्व ही प्रकार के मल अशुद्ध हैं।
56. युगलिया के मरने पर मृतक शरीर का भी दाह संस्कार किया जाता है।	56. युगलिया का शरीर आयु के अन्त में कपूर की तरह हवा में उड़ जाता है।
57. केवली भगवान के शरीर का भी दाह संस्कार किया जाता है।	57. नाखून और केश को छोड़ केवली का परमौदारिक शरीर भी कपूर की तरह उड़ जाता है। परन्तु देव अपनी भक्तिवश मायामई शरीर की रचना करके कल्याणक की पूजा करते हैं, जिसको व्यवहार में दाह संस्कार कहते हैं।
58. यति के काम विकारी मन को श्रावक अपनी स्त्री द्वारा भी	58. काम विकारी मन वाला यति ही नहीं कहलाता और श्रावक ऐसा धर्म विरूद्ध कार्य नहीं कर सकता।

स्थिर कर सकता है।	59. तीर्थंकरों की अवस्था में कोई भी दोष नहीं होता है।
59. तीर्थंकरों के भी अठारह दोष होते हैं।	60. तीर्थंकरों का परमौदारिक शरीर अति सूक्ष्म होता है। उससे किसी भी जीव को बाधा नहीं होती।
60. तीर्थंकरों के शरीर से भी पाँच स्थावर जीवों को बाधा होती है।	61. स्वर्ग सोलह होते हैं।
61. स्वर्ग बारह होते हैं।	62. औदारिक शरीर वाले मनुष्यों का वैक्रियिक शरीर धारी देवियों से भोग नहीं हो सकता है।
62. व्यास जी ने पचपन हजार वर्ष तक गंगा देवी से भोग किया।	63. ढाई द्वीप में तीस भोग भूमि शाश्वती (सदा रहने वाली) होती हैं और भरत ऐरावत की दस भोग भूमि कभी होती है, और कभी नहीं होती।
63. भोग भूमियाँ 96 हजार होती हैं।	64. तीर्थंकर की माता को सोलह स्वप्न आते हैं।
64. तीर्थंकर की माता को चौदह स्वप्न आते हैं।	65. जिस जीव के चमड़े से मशक या कुप्पा बना हुआ हो, उसमें रखे हुए पानी में उस जाति के अनन्त सम्मूर्छन जीव पैदा हो जाते हैं।
65. चमड़े (मशक) में रखा पानी निर्दोष है।	66. सर्व पदार्थों में क्रियाकोष में बताई मर्यादा से बाहर असंख्य सम्मूर्छन जीव पैदा हो जाते हैं; इसलिए खाने के योग्य नहीं रहते।
66. बासी (पुराना) घी और पकवान निर्दोष है।	67. भगवान महावीर ने अपने माता पिता के सामने ही दीक्षा ली।
67. भगवान महावीर ने अपने माता पिता के स्वर्ग जाने के बाद दीक्षा ली।	68. बाहुबली दिगम्बर जैन मुनि बनकर मोक्ष गये।
68. बाहुबली ने मुराल रूप धारण किया।	69. त्यागी सचित्त अवस्था में कोई भी फल नहीं खा सकता।
69. अच्छा फल खाने में कोई दोष नहीं।	70. युगलिया के मलमूत्र नहीं होता।

70. युगलिया के मलमूत्र होता है।	71. त्रेसठ श्लाका पुरुषों के मल-मूत्र नहीं होता है।
71. त्रेसठ श्लाका पुरुषों के मल-मूत्र होता है।	72. इन्द्र सौ (100) होते हैं।
72. इन्द्र चौसठ होते हैं।	73. कम मर्यादा वाला भोजन स्थान पर ही करने योग्य है।
73. पराँठा आदि आहार अन्यत्र भी निर्दोष है।	74. दिगम्बर मान्यता ठीक है।
74. दिगम्बरी 100 इन्द्र मानते हैं, परन्तु इन्द्र 64 हैं।	75. यादववंशी अहिंसावादी थे। वें माँस नहीं खाते थे।
75. यादववंशियों ने माँस खाया।	76. मनुष्य मानुषोत्तर पर्वत से बाहर नहीं जा सकता।
76. मनुष्य मानुषोत्तर पर्वत से बाहर जाता है।	77. कामदेव चौबीस ही होते हैं।
77. कामदेव चौबीस नहीं होते।	78. विदेह क्षेत्र 160 होते हैं।
78. विदेह क्षेत्र 160 नहीं होते।	79. भगवान का छोड़ा हुआ शरीर कपूर की तरह उड़ जाता है। सिर्फ नख तथा केश ही रह जाते हैं।
79. देव भगवान के मृतक शरीर से दाढ़(दाँत) निकाल कर स्वर्ग में ले जाते हैं और उनकी पूजा करते हैं।	80. नग्न दिगम्बर मुद्रा धारी केवली मुनि ही मोक्ष जाते हैं।
80. भगवान मोक्ष जाते समय समवसरण में वस्त्र सहित होते हैं।	81. हाड़ का स्पर्श भी नहीं करना चाहिए।
81. हाड़ की स्थापना करके पूजा कर सकते हैं।	82. नाभिराजा और मरुदेवी जी युगलिया नहीं थे। वे परस्पर में विवाह संस्कार से पति-पत्नी हुए थे।
82. नाभिराजा और मरुदेवी जी युगलिया थे।	83. लोक में नीचे ही आना पड़ता है। नव ग्रैवेयिक वाले वहाँ से ऊपर नहीं जा सकते।
83. नव ग्रैवेयिक वाले अहमिन्द्र नव अनुदिश पंच अनुत्तरों में चले जाते हैं।	84. समुद्र के अंग को ही उप समुद्र कहते हैं।
84. समुद्र के पास खारा उप समुद्र है।	

नोट! श्वेताम्बर आम्नाय वाले भाई इन 84 को अछेरा (बातचीत न करने योग्य) कहते हैं।

तत्त्व बोध

1. गजकुमार मुनि के सिर पर सिगड़ी जलती हुई रखी गयी थी।
2. पाँचों पांडव मुनियों को लोहे के गर्म आभूषण पहनाये गये थे।
3. विष्णु कुमार मुनि ने सात सौ मुनियों का उपसर्ग दूर किया था।
4. समन्तभद्र आचार्य को भस्मक व्याधि का रोग हुआ था।
5. सुकुमाल मुनि को तीन दिन तक लोमड़ी खाती रही, महान उपसर्ग सहते रहे तथा आत्मध्यान पूर्वक देह त्याग कर सर्वार्थसिद्धि में देव हुए।
6. यशोधर मुनिराज के गले में राजा श्रेणिक ने मरा हुआ सर्प डाला था।
7. चन्द्रगुप्त मुनिराज को देवताओं ने मनुष्य का रूप बदलकर वन में आहार दिया था।
8. बाहुबलि स्वामी एक वर्ष तक कायोत्सर्ग खड़गासन में खड़े रहे, अन्त में केवलज्ञान को प्राप्त हुए।
9. तीर्थंकर आदिनाथ मुनि अवस्था में छह माह पश्चात् आहार के लिये उठे और फिर सात मास आठ दिन तक उन्हें आहार विधि नहीं मिली।
10. सुकौशल मुनिराज को व्याघ्री ने भक्षण किया, जो पूर्व जन्म में उनकी माता थी।
11. भरत चक्रवर्ती ने भावों की विशुद्धि से एक मुहूर्त में केवलज्ञान को प्राप्त किया।
12. अनन्तवीर्य और बाहुबली दोनों तीर्थंकर आदिनाथ से पहले मोक्ष गये।
13. अकलंक स्वामी ने बौद्धों को धर्म विवाद में पराजित किया था।
14. कुलभूषण और देशभूषण का उपसर्ग राम-लक्ष्मण ने दूर किया था।
15. जम्बूस्वामी विवाह के अगले दिन ही संसार-शरीर-भोगों की नश्वरता को जानकर दिगम्बर मुनि हो गये थे।
16. जम्बूस्वामी के विवाह की रात्रि में जम्बूस्वामी और उनकी चार नवविवाहिता स्त्रियों की चर्चा को सुनकर वहाँ चोरी करने आये विद्युतप्रभ चोर ने अपने पाँच सौ चोरों के समूह के साथ जिनदीक्षा धारण कर ली थी। साथ ही जम्बूस्वामी के माता-पिता और चारों कन्याओं ने भी दीक्षा ले ली थी।

17. बाली मुनिराज ने बल ऋद्धि से कैलाश पर्वत को दबाया था।
18. बारात के समय पशुओं को बाड़े में रुका हुआ देखकर नेमिनाथ को वैराग्य उत्पन्न हो गया था।
19. नाग-नागिन जलते हुए देखकर पार्श्वनाथ ने उन्हें सम्बोधा था।
20. बालक हनुमान के विमान से गिरने पर पत्थरशिला चूर-चूर हो गयी थी।
21. कुलभूषण, देशभूषण को अनजाने में अपनी ही बहिन को विवाह की इच्छा से देखने से, गलती का पता चलने पर संसार से वैराग्य उत्पन्न हो गया था और दोनों तभी मुनि दीक्षा धारण करके जंगल में चले गये थे।
22. राजा मधु को युद्ध में हाथी पर बैठे-बैठे वैराग्य उत्पन्न हो गया था, उन्होंने वही केशलोंच किया और मुनि दीक्षा धारण की।
23. हस्तिनापुर के राजा श्रेयांस ने इस युग के आदि में मुनि ऋषभनाथ को अक्षयतीज के दिन इक्षुरस का आहारदान दिया था।
24. शील के प्रभाव से सेठ सुदर्शन की शूली सिंहासन में बदल गयी थी।
25. धर्म के प्रभाव से श्रीपाल ने समुद्र तैर कर पार किया था।
26. दीवान अमर चन्द ने माँसाहारी सिंह को मिष्टान्न खिलाये थे।
27. निकलंक ने जिन धर्म के लिये अपने भाई अकलंक की जान बचाकर अपने प्राण दिये और अकलंक देव ने चारों ओर जिन धर्म का डंका बजा दिया था।
28. सर्वप्रथम मुनि पुष्पदंत और भूतबलि ने ग्रन्थों को लिपिबद्ध किया। उनके द्वारा सबसे पहले षट्खंडागम शास्त्र की रचना हुई।
29. वज्रजंघ राजा ने देव, शास्त्र और गुरु के अतिरिक्त अन्य किसी को नमस्कार नहीं किया।
30. विजय सेठ ने शुक्ल पक्ष और उनकी सेठानी विजया ने कृष्ण पक्ष के ब्रम्हचर्य व्रतों का पालन किया और बाद में सेठ ने महाव्रत और सेठानी ने अणुव्रत धारण किये।
31. अन्जना को 22 वर्ष का पति वियोग रहा, वन में हनुमान ने जन्म लिया।
32. णमोकार मंत्र पर अटूट श्रद्धा ने अंजन चोर को निरंजन बनने का अवसर प्रदान किया।

33. अग्नि परीक्षा के बाद सीता जी के जीव ने पृथ्वीमति माताजी से आर्यिका के व्रत ग्रहण किये तथा 66 वर्ष तक तप किया। अन्त समय में तैंतीस दिन तक चारों प्रकार के आहार त्याग कर मनुष्य गति से चयकर सोलहवें स्वर्ग में प्रतीन्द्र हुआ। भविष्य काल में मोक्ष जायेगा।
34. जीवंधर ने कुत्ते को णमोकार मंत्र सुनाया, जिसके सुनने से कुत्ता मरकर देव हुआ।
35. पद्यदन्त सेठ ने मरणासन्न बैल को णमोकार मंत्र सुनाया, जिससे वह अगले भव में राजकुमार हुआ। कुछ भव पश्चात् वे दोनों राम, सुग्रीव बनकर मोक्ष को चले गये।
36. णमोकार मंत्र की अविनय से सुभौम चक्रवर्ती सातवें नरक गये।
37. जिनभक्ति में लीनता से सेठ धनंजय के पुत्र का जहर उतर गया।
38. राजा वसु के हिंसात्मक वचन बोलने से सिंहासन धरती में धँस गया, वह मरकर नरक गया। उसका मित्र गुरुपुत्र पर्वत भी नरक गया।
39. सती मैनासुन्दरी ने सिद्धचक्र का पाठ किया। पुण्योदय से उसके पति तथा सात सौ अन्य साथी कुष्ठियों का कुष्ठ रोग दूर हुआ।
40. सोमा सती के धर्म के प्रभाव से सर्प भी मणि का हार बन गया।
41. पूजन के भाव से मेढक मरकर देवगति में उत्पन्न हुआ तथा महावीर भगवान के समवसरण में गया।
42. विदेह क्षेत्र में तीर्थंकरों के 2, 3, या 5 कल्याणक होते हैं।
43. भरत, ऐरावत क्षेत्र में तीर्थंकरों के पाँचों ही कल्याणक होते हैं।
44. ढाईद्वीप क्षेत्र में एक समय में अधिक से अधिक 170 तीर्थकर हो सकते हैं; जो अजितनाथ भगवान के समय में हुए थे।
45. जन्म कल्याणक के समय तीर्थंकर बालक के दाहिने पैर के अंगूठे में जो चिन्ह होता है, उसी को इन्द्र तीर्थंकर का चिन्ह निश्चित करता है।
46. शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ तीन – तीन पद (कामदेव, चक्रवर्ती, तीर्थंकर) के धारी हुये।
47. मल्लिनाथ जी ने केवल छह दिन की तपस्या से केवलज्ञान को प्राप्त किया।
48. आदिनाथ ने 1000 वर्ष तक तप करके केवलज्ञान प्राप्त किया।

49. महावीर ने 12 वर्ष तप करके केवलज्ञान प्राप्त किया और 72 वर्ष की आयु में पावापुर से मोक्ष गये।
50. इन्द्र ने अपनी सभा में चक्रवर्ती भरत की प्रशंसा की तो स्वर्ग से एक देव उनकी परीक्षा करने आया था। परीक्षा के बाद देव ने उनकी स्तुति की।
51. चक्रवर्ती सनत कुमार को मुनि अवस्था में भयंकर रोग हो गया था, देव ने वैद्य का रूप धर परीक्षा ली। देव को आश्चर्य हुआ।
52. पंडित टोडर मल को हाथी के पैर तले कुचलवाया गया। धर्म के द्वेषी लोगों ने राजा को बहकाकर उन पर झूठा आरोप लगाया।
53. चामुंडराय ने श्रवणबेलगोल में बाहुबलि की विशाल प्रतिमा का निर्माण कराया।
54. चारूदत्त, वेश्या में आसक्त होकर 12 वर्ष तक उसी के घर रहे, फिर भूल का अहसास होने पर वैराग्यपूर्वक मुनि होकर अपना कल्याण किया।
55. पंडित बनारसी दास ने घर में घुसे चोर को धन ले जाने में सहायता की।
56. रावण के अन्याय को देखकर भाई विभीषण राम के साथ मिल गये।
57. लोकापवाद के कारण राम ने सीता को वन भिजवाया तथा कठिन अग्नि परीक्षा ली, शील के प्रभाव से अग्नि का नीर हो गया। सीता ने वैराग्य धारण किया।
58. नारायण कृष्ण का जन्म कारागार में हुआ था, जंगल में प्राणान्त हुआ, द्वारिका जलने पर दोनों ही भाई बच गये थे।
59. रानी चेलना ने पति श्रेणिक को जैन धर्म अंगीकार कराया और राजा श्रेणिक ने विपुलाचल पर्वत पर महावीर भगवान के समवसरण में क्षायिक सम्यग्दर्शन प्राप्त किया और उनका जीव आगामी चौबीसी में महापद्म नामक प्रथम तीर्थंकर होगा।
60. ब्राम्ही और सुन्दरी ने अपने पिता ऋषभदेव के स्वाभिमान के लिये विवाह नहीं किया और वैराग्य पूर्वक आर्यिका दीक्षा लेकर तप किया।
61. रूक्मणी के पुत्र प्रद्युम्न को पूर्व जन्म का बैरी देव हरण कर ले गया और एक भारी शिला के नीचे दबा दिया। प्रद्युम्न की साँस लेने से शिला हिल रही थी, वे चरमशरीरी थे।

तथ्य की बातें

1. त्रेसठ शलाका पुरुष कर्म प्रकृति का बंध सम्यग्दर्शन होने के बाद होता है।
2. नारायण आदि के नरक जाते समय सम्यग्दर्शन छूट जाता है।
3. तीर्थंकरों के गर्भ में आने के समय पन्द्रह माह तक प्रतिदिन चौदह करोड़ रत्नों की वर्षा होती है। नगर में निर्धनता का अभाव हो जाता है।
4. तीर्थंकर की माता रजस्वला नहीं होती।
5. तीर्थंकर महान पुण्य के कारण ही क्षत्रिय कुल में राजा के घर जन्म लेते हैं।
6. कल्याणक में इन्द्र का वैक्रियिक शरीर आता है।
7. जम्बूद्वीप के सुदर्शन मेरू पर चारण ऋद्धिधारी मुनि तथा विद्याधर भी जाते हैं।
8. क्षीरसागर के जल में त्रस जीव नहीं होते। जल दूध के समान सफेद होता है।
9. तीर्थंकर अपने पैर के अँगूठे को चूसते हैं, इन्द्र के द्वारा अमृत का निक्षेप होता है, स्तनपान नहीं करते।
10. तीर्थंकर के दीक्षा लेने के पूर्व तक उनके लिये आहार, वस्त्रादि इन्द्र के द्वारा प्राप्त होते हैं।
11. चन्द्रप्रभ तथा पुष्पदन्त भगवान के शरीर का वर्ण सफेद, सुपार्श्वनाथ तथा पार्श्वनाथ का हरे पन्ने के समान; पद्मप्रभ और वासुपूज्य का लाल माणिक के रंग जैसा, मुनिसुव्रत और नेमिनाथ का साँवला रंग तथा शेष सोलह तीर्थंकरों का रंग तपाये हुये स्वर्ण के समान था।
12. केवलज्ञान होने ही सभी का परम् औदारिक शरीर हो जाता है।
13. तीर्थंकर के निकट (केवलज्ञान से पूर्व) अन्य मुनि नहीं आते हैं; अतः नमस्कार की बात ही नहीं।
14. तीर्थंकर आठ वर्ष की आयु से ही अणुव्रती के समान आचरण वाले होते हैं, फिर समय आने पर मुनि हो जाते हैं।
15. तीर्थंकर **'नमः सिद्धेभ्य'** कहकर दीक्षा लेते हैं।
16. तीर्थंकर दीक्षा लेते समय पंचमुष्ठि केंशलोच करते हैं।

17. त्रेसठ श्लाका पुरुषों के तथा देवों और नारकियों के दाढ़ी और मूँछ के बाल नहीं होते।
18. तीर्थंकर 24, चक्रवर्ती 12, नारायण 9, प्रतिनारायण 9 और बलभद्र 9 (त्रेसठ श्लाका पुरुष) और तीर्थंकरों के माता-पिता, देवों और भोग भूमियों में निहार अर्थात् मल-मूत्र नहीं होता।
19. तीर्थंकर मुनि को सर्वप्रथम आहार देने वाला भी उसी भव से अथवा तीसरे भव से नियम से मोक्ष जाता है।
20. तीर्थंकर के पास पीछी और कमंडल नहीं होते।
21. तीर्थंकर एक-दूसरे से नहीं मिलते, सामान्य केवली मिलते हैं। वे तीर्थंकर के पास भी रहते हैं और आपस में साथ भी रहते हैं।
22. तीर्थंकर को केवलज्ञान होने पर शरीर पाँच हजार धनुष ऊपर चला जाता है।
23. तीर्थंकर के समवसरण में 20,000 सीढ़ियाँ होती हैं। समवसरण के अतिशय के कारण समवसरण में पहुँचने वाले प्राणी अन्तर्मुहूर्त में उन सीढ़ियों को पार कर लेते हैं।
24. तीर्थंकर केवली का मुख पूर्व दिशा में होता है, परन्तु अतिशय के कारण चारों ओर दिखाई देता है।
25. दिव्यध्वनि स्वत: और स्वभावत: सर्वांग से खिरती है, केवल मुख से नहीं।
26. सभी गणधर उसी भव से मोक्ष जाते हैं।
27. विदेह क्षेत्र में कुन्दकुन्द स्वामी आठ दिन तक रहे, आहार नहीं किया; क्योंकि यहाँ जब दिन तो वहाँ रात होती थी।
28. 2 या 3 कल्याणक वाले तीर्थंकर मात्र विदेह क्षेत्र में और 5 कल्याणक वाले तीर्थंकर भरत-विदेह-ऐरावत क्षेत्र में होते हैं।
29. केवली की जगह दुर्भिक्ष नहीं होता।
30. पंचम काल के तीन वर्ष साढ़े आठ महिने शेष रहने तक जैन धर्म रहेगा, बाद में धर्म, राजा और अग्नि का अभाव हो जायेगा।
31. अवसर्पिणी के छठे काल के अन्त में 49 दिन तक भयंकर अग्नि, वर्षा आदि से प्रलय होगा तथा श्रावण वदी 1 से भादव सुदी 5 तक अमृत आदि की वर्षा से पुन: जीवों का संचार होगा।

32. उसी भव से या निकट भवों से मोक्ष जाने वाले 169 जीव - 24 तीर्थंकर, 9 बलभद्र, 9 नारायण, 9 प्रतिनारायण, 12 चक्रवर्ती, 11 रुद्र, 9 नारद, 14 कुलकर, 24 कामदेव, 48 तीर्थंकरों के माता-पिता।
33. सामान्य केवलियों के गणधर नहीं होते, देवों द्वारा गंधकुटी की रचना होती है।
34. लोक में मनुष्यों से अधिक नारकी, नारकियों से अधिक देव, देवों से अधिक व्यवहार राशि वाले तिर्यंच, तिर्यंचों से अधिक सिद्ध और सिद्धों से अधिक निगोदिया जीव हैं।
35. अढ़ाई द्वीपके आगे विकलत्रय जीव, अन्तिम स्वयंभूरमण द्वीप के अधोभाग तथा अन्तिम स्वयम्भूरमण समुद्र में ही रहते हैं।
36. मनुष्य केवल ढ़ाई द्वीप में ही रहते हैं।

संसार में अन्धे

1. **मोहान्ध** - कंचन, कामिनी, कीर्ति, कुटुम्ब और करिश्मा के मोहपाश में जकड़ा प्राणी **मोहान्ध** है।
2. **कामान्ध** - काम पीड़ा से तीव्र व्याकुल होकर जात, कुजात, नीति, अनीति नहीं गिनने वाला प्राणी **कामान्ध** है।
3. **पक्षान्ध** - हठपूर्वक खोटे मार्ग का पक्षपात करने वाला एवं मिथ्यात्व की पुष्टि करने वाला **पक्षान्ध** है।
4. **विषयान्ध** - पाँचों इन्द्रियों के विषयों में रचने-पचने वाला जीव **विषयान्ध** है।
5. **मदान्ध** - आठों प्रकार के मदों में चूर रहने वाला प्राणी **मदान्ध** है।
6. **कषायान्ध** - तीव्र कषायवश कलह, स्व-पर का घात करने वाला **कषायान्ध** है।
7. **अज्ञानान्ध** - अन्धविश्वासी होकर सबकी हाँ में हाँ करने वाला, स्व-पर के भेद-ज्ञान से रहित विवेक हीन **अज्ञानान्ध** है।

अमूल्य विचार

1. मूर्खों के बीच ज्ञानी ऐसा होता है जैसे अन्धों के बीच सुन्दरी।
2. जिनवाणी को सुनकर कुछ ग्रहण किया तो सुनना सुखकार है। इधर सुना और उधर निकाल दिया तो सुनना बेकार है।
3. मानव वह है जो दान देता हो। ज्ञान लेता हो-मान देता हो। व्रत लेता हो, दीन-दुखियों की रक्षा करता हो, पर निन्दा टालता हो, प्रेमभाव रखता हो, हाथ का सच्चा हो और लंगोटी का पक्का हो।
4. अपने कर्मों से ही कोई पापी, धर्मात्मा, स्वामी, सेवक, निर्धन, धनी, सुखी, दु:खी, रोगी, शोकी, भोगी, कोई स्वादु तथा कोई साधु सभी अपने-अपने कर्मों से हैं।
5. शोभा नहीं बिना पुत्र के घर की, बिना कमल के तालाब की, बिना चन्द्रमा के रात्रि की, बिना राजा के राज्य की, बिना दया के धर्म की और बिना संयम के मनुष्य की।
6. सदा नहीं रहेगी तुम्हारी सुन्दरता, जवानी, धाक, सम्पत्ति, बात और प्रशंसा।
7. त्याग दो - भोगों को, आसक्ति को, अहंकार/मान, ममकार भाव को और विश्वासघात को।
8. होने चाहिये - समय का, वचन का, कर्तव्य का और सदाचार का पालन।
9. होते हैं सैकड़ों में कोई एक शूरवीर, हजारों में कोई एक पंडित, दस हजारों में कोई एक वक्ता, लाखों में कोई एक निराभिमानी और करोड़ों में कोई एक सच्चा दानी।
10. साधु कुटुम्ब - धर्म: पिता, क्षमा: माता, संयम: भाई,
    दया: बहिन, सत्य: पुत्र और शान्ति स्त्री।
11. पुद्गल ही है जलने वाला, गलने वाला, छिदने वाला, सूखने वाला, दिखने वाला।
12. जप-तप के लिये मन, वचन, काय, स्थान, आसन, वस्त्रादि शुद्ध होने चाहिये।
13. यह आत्मा नदी के समान है, जिसमें संयम का जल भरा है, सत्य का प्रवाह बह रहा है, इसके ब्रम्हचर्य रूप तट बड़े मजबूत है, इसमें दया

की तरंगें उठ रही हैं, ऐसी आत्मारूपी नदी में स्नान करना चाहिये।

14. शरीर पर पानी डालने से शरीर की सफाई हो सकती है, परन्तु पापों से रंगी हुई आत्मा की नहीं।
15. दुनिया आपके पक्ष में है या नहीं, इसकी चिन्ता छोड़ो, लेकिन आप सत्य के पक्ष में हैं या नहीं यह देखो, विजय आपकी होगी।
16. जिनकी दृष्टि वश में नहीं उन्हें कुमार्गों पर जाना ही पड़ता है।
17. नियम का उल्लंघन करना आत्मघात करने का प्रथम चिन्ह है।
18. जो आत्मा परमात्मा का अनुसरण करता है वही परमात्मा बन जाता है अर्थात् रत्नत्रय की पूर्णतापूर्वक परमात्मा बन जाता है।
19. जो यह कहता है कि ज्ञान से ही कर्मों का नाश होता है, वह ठीक नहीं। मैं औषधी का जानकार हूँ, मात्र यह जानने से ही व्याधि नष्ट नहीं होती है। वीतराग भाव से ही कर्मों का नाश होता है।
20. भ्रम से, भूल से, अज्ञान से जैसे रस्सी में सर्प, पानी में चन्द्रमा, कुँए में सिंह, दर्पण में पक्षी, पित्त ज्वर वाला मीठे दूध को कड़वा जानले तथा मदिरा में उन्मत्त होकर पर की स्त्री को स्वयं की स्त्री मान ले; उसी प्रकार हे भव्य जीवों! मोहान्ध प्राणी ने विषय सुख को ही सच्चा सुख मान लिया है।
21. यदि कैलाश पर्वत के समान सोने-चाँदी के असंख्य पर्वत हो जायें तो भी मनुष्य को संतोष नहीं होता; क्योंकि इच्छा तो आकाश की तरह अनन्त हैं।
22. धर्म न करके धर्मात्मा कहलाना आत्मघातक है।
23. एक निर्मोही गृहस्थ एक मोही मुनि से श्रेष्ठ है।
24. मन को सांसारिक प्रलोभनों से बचाकर आध्यात्मिक सुख की राह दिखाओ।
25. एक बार कभी सुमेरु पर्वत भी चलायमान हो जावे, आग भी ठंडी हो जावे, पत्थर भी पानी में तैरने लगे, चन्द्रमा भी गर्म हो जावे, सूर्य भी पूर्व दिशा के बजाय पश्चिम दिशा में उदय हो जावे अर्थात् असम्भव बातें भी कदाचित एक बार सम्भव हो जावें, किन्तु कभी त्रिकाल में एक बार भी हिंसा में धर्म नहीं हो सकता।

गुरूओं की कथा

पूज्य दिगम्बर मुनिवरों की कथा है सबसे न्यारी।
आओ तुमको सुनाएँ.....।
कथनी और करनी दोनों में अन्तर क्या, बतलाएँ।
आओ तुमको सुनाएँ.....।
स्वयं को अहिंसक कहते, कर्मों की हिंसा क्यों करते हैं।
शेर से निडर है तो फिर पापों से इतना क्यों डरते हैं।
महावीर का माल बेचते ये भी हैं व्यापारी।
आओ तुमको सुनाएँ.....।
पँच महाव्रतधारी, तीन रतन का परिग्रह करें।
वेदना किसी की ना देखें, अपने ही तनपे कितना जुल्म करें।
काहे के योगी, काहे के जोगी, ये तो हैं चेतन भोगी।
आओ तुमको सुनाएँ.....।
सत्य महाव्रत इनका, भक्तों से पर्दा किया करते हैं।
ब्रह्मचर्य व्रत है इनका, मुक्ति रानी पे रीझा करते हैं।
मुक्ति दुल्हन अभी आ जाए, झट कर लेंगे शादी।
आओ तुमको सुनाएँ.....।
त्याग की शिक्षा देते, धर्मों के दस-दस मोती रखते हैं।
अचौर्य महाव्रत इनका, चित्त की चोरी किया करते हैं।
चोरी की चोरी सीना जोरी, गजब की साहूकारी।
आओ तुमको सुनाएँ.....।
ऐसे हमारे गुरूवर, अहिंसा के बल पे सब पर राज करें।
ताज बिना महाराजा, तन-मन सब इन पर अर्पण करें।
प्रेम से लूट लें ये जग सारा गजब के हैं ये लुटेरे।
आओ तुमको सुनाएँ.....।

प्रस्तुति : कु० सोनल जैन, मेरठ

करणानुयोग

1. अरहन्तों के छियालीस गुण :

जन्म के **दस** अतिशय-

1. मल-मूत्र रहित शरीर,
2. पसीना रहित शरीर,
3. सुगन्धमय शरीर,
4. मधुर वचन,
5. वज्रवृषभनाराच संहनन,
6. एक हजार आठ लक्षण,
7. अतिशय सुन्दर रूप,
8. श्वेत रुधिर,
9. समचतुरस्र संस्थान,
10. अतुल बल।

केवल ज्ञान के **दस** अतिशय-

1. चारों दिशाओं में सौ-सौ योजन तक सुभिक्ष, 2. आकाश गमन, 3. अदया का अभाव (हिंसा का अभाव), 4. उपसर्ग नहीं, 5. कवलाहार नहीं, 6. चारों दिशाओं में मुख दिखाई देना, 7. सब विद्याओं का ईश्वरपना, 8. शरीर की छाया न पड़ना, 9. नाखून और केशों का नहीं बढ़ना, 10. नेत्रों की पलकों का नहीं झपकना।

देवकृत **चौदह** अतिशय-

1. अर्धमागधी भाषा,
2. सकल जीवों में परस्पर मैत्री भाव का होना,
3. सब ऋतु के फल फूलों का फलना,
4. दिशाओं की निर्मलता,
5. मन्द-मन्द सुगन्धित वायु का चलना,
6. सब जीनों को आनन्द देने वाली कंटक रहित भूमि,
7. गन्धोदक की वृष्टि होना,
8. भगवान के दोनों चरणों के तले 225 स्वर्ण कमल रचना,
9. आकाश का निर्मल होना
10. देवों का जय-जयकार शब्द,
11. धर्मचक्र का आगे-आगे चलना,
12. अष्ट मंगल द्रव्यों का होना,
13. देवों द्वारा भूमि को दपर्णवत् निर्मल करना,
14. समस्त जीवों का आनन्दमय होना।

चार अनन्त चतुष्टय-

1. अनन्त दर्शन, 2. अनन्त ज्ञान, 3. अनन्त सुख, 4. अनन्त वीर्य।

अष्ट प्रातिहार्य–

1. सिंहासन, 2. पुष्प वृष्टि, 3. अशोक वृक्ष, 4. प्रभा मण्डल (भामण्डल), 5. दिव्य ध्वनि, 6. दुन्दुभि बाजों का बजना, 7. तीन छत्र, 8. चौंसठ चँवर।

2. आचार्यों के 36 गुण :

दस धर्म –

1. उत्तम क्षमा, 2. मार्दव, 3. आर्जव, 4. सत्य, 5. शौच, 6. संयम, 7. तप, 8. त्याग, 9. आकिंचन्य, 10. ब्रम्हचर्य।

बारह तप –

1. अनशन, 2. अवमौदर्य, 3. वृत्तिपरिसंख्यान, 4. रस परित्याग, 5. विविक्त शैयासन, 6. कायक्लेश, 7. प्रायश्चित्त, 8. विनय, 9. वैयावृत्य, 10. स्वाध्याय, 11. व्युत्सर्ग, 12. ध्यान।

पंचाचार –

1. दर्शनाचार, 2. ज्ञानाचार, 3. चारित्राचार, 4. वीर्याचार, 5.तपाचार।

षट् आवश्यक –

1. सामायिक, 2. स्तुति, 3. वन्दना, 4. स्वाध्याय, 5. प्रतिक्रमण, 6. कायोत्सर्ग।

तीन गुप्ति –

1. मनोगुप्ति, 2. वचनगुप्ति, 3. कायगुप्ति।

3. उपाध्यायों के 25 गुण :

ग्यारह अंग और 14 पूर्व

4. मुनियों के 108 गुण :

अट्ठाईस मूलगुण, बाईस परिषहजय, बारह तप, बारह भावना, दस धर्म, तेरह प्रकार का चारित्र, छः काय की रक्षा और पंचाचार।

5. मुनि के 28 मूलगुण :

पाँच महाव्रत, पाँच समिति, पाँच इन्द्रियों पर विजय, षट् आवश्यक कार्य और सात शेष गुण।

6. क्षुल्लक, ऐलक व आर्यिका के 105 गुण :

आठ मूलगुण, बारह व्रत, बारह तप, बारह भावना, ग्यारह प्रतिमा,

सप्त व्यसन का त्याग, छह काय जीवों की रक्षा, छह आवश्यक, पाँच समिति, तीन गुप्ति, 22 अभक्ष्य का त्याग, एक बार भोजन करना।

7. कर्मों की 148 प्रकृतियाँ :

घातिया कर्मों की 47 प्रकृतियाँ हैं और अघातिया कर्मों की 101 प्रकृतियाँ हैं।

घातिया कर्मों की 47 प्रकृतियाँ-

ज्ञानावरण की पाँच -

1. मतिज्ञानवरण, 2. श्रुतज्ञानावरण, 3. अवधि ज्ञानावरण,
4. मन:पर्यय ज्ञानावरण, 5. केवल ज्ञानावरण।

दर्शनावरण की नौ-

1. चक्षुदर्शनावरण, 2. अचक्षुदर्शनावरण, 3. अवधिदर्शनावरण,
4. केवलदर्शनावरण, 5. निद्रा, 6. निद्रा-निद्रा, 7. प्रचला,
8. प्रचला-प्रचला, 9. स्त्यानगृद्धि।

अन्तराय कर्म की पाँच-

1. दान अन्तराय, 2. लाभ अन्तराय, 3. भोग अन्तराय, 4. उपभोग अन्तराय, 5. वीर्य अन्तराय।

मोहनीय कर्म के अट्ठाईस भेद-

तीन दर्शन मोह- 1. मिथ्यात्व, 2. सम्यग्मिथ्यात्व, 3. सम्यक्प्रकृति।
पच्चीस चारित्र मोह- 4. अनन्तानुबन्धी क्रोध, 5. अनन्तानुबन्धी मान, 6. अनन्तानुबन्धी माया, 7. अनन्तानुबन्धी लोभ,
8. अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, 9. अप्रत्याख्यानावरण मान,
10. अप्रत्याख्यानावरण माया, 11. अप्रत्याख्यानावरण लोभ,
12. प्रत्याख्यानावरण क्रोध, 13. प्रत्याख्यानावरण मान,
14. प्रत्याख्यानावरण माया, 15. प्रत्याख्यानावरण लोभ,
16. संज्वलन क्रोध, 17. संज्वलन मान, 18. संज्वलन माया,
19. संज्वलन लोभ, 20. हास्य, 21. रति, 22. अरति, 23. शोक,
24. भय, 25. जुगुप्सा, 26. स्त्रीवेद, 27. पुरुषदेव, 28. नपुंसकवेद।

अघातिया कर्मों की 101 प्रकृतियाँ-

गोत्र कर्म की दो- 1. ऊँच, 2. नीच।

वेदनीय कर्म की दो- 1. साता वेदनीय, 2. असाता वेदनीय।

आयु कर्म की चार- 1.तिर्यंचायु, 2.नरकायु, 3.मनुष्यायु, 4.देवायु।

नाम कर्म की तेरानवे-

चार गति कर्म-	1. तिर्यंच, 2. नरक, 3. मनुष्य, 4. देव।
पाँच इन्द्रिय कर्म-	1. एकेन्द्रिय, 2. द्वीन्द्रिय, 3. त्रिइन्द्रिय, 4. चतुरिन्द्रिय, 5. पंचेन्द्रिय।
पाँच शरीर कर्म-	1. औदारिक, 2. वैक्रियिक, 3. आहारक, 4. तेजस, 5. कार्माण।
तीन अंगोपांग कर्म-	1. औदारिक, 2. वैक्रियिक, 3. आहारक।
एक निर्माण कर्म-	
पाँच बन्धन कर्म-	1. औदारिक बन्धन, 2. वैक्रियिक बन्धन, 3. आहारक बन्धन, 4. तैजस बन्धन, 5. कार्माण बन्धन।
पाँच संघात कर्म-	1. औदारिक, 2. वैक्रियिक, 3. आहारक, 4. तैजस, 5. कार्माण।
छह संस्थान कर्म-	1. समचतुरस्र संस्थान, 2. न्यग्रोध परिमंडल संस्थान, 3. स्वाति संस्थान, 4. कुब्जक संस्थान, 5. वामन संस्थान, 6. हुंडक संस्थान।
छह संहनन कर्म-	1. वज्रवृषभनाराच संहनन, 2. वज्रनाराच संहनन, 3. नाराच संहनन, 4. अर्धनाराच संहनन, 5. कीलक संहनन, 6. असम्प्राप्ता सृपाटिका संहनन।
पाँच वर्ण कर्म-	1.कृष्ण, 2.नील, 3.लाल, 4.पीत, 5.श्वेत।
दो गन्ध कर्म-	1. सुगन्ध, 2. दुर्गन्ध।
पाँच रस कर्म-	1. खट्टा, 2. मीठा, 3. कड़वा, 4. कसैला, 5. चरपरा।
आठ स्पर्श कर्म-	1. कठोर, 2. कोमल, 3. हल्का, 4. भारी, 5. ठंडा, 6. गर्म, 7. चिकना, 8. रूखा।
चार आनुपूर्व्य कर्म-	1. तिर्यंच, 2. नरक, 3. मनुष्य, 4. देव।

एक अगुरुलघुकर्म, एक उपघात कर्म, एक परघात कर्म,

एक आताप कर्म, एक उद्योत कर्म।
दो विहायोगति कर्म- 1. मनोज्ञ, 2. अमनोज्ञ।

एक उच्छ्वास कर्म,	एक त्रस कर्म,
एक स्थावर कर्म,	एक बादर कर्म,
एक सूक्ष्म कर्म,	एक पर्याप्त कर्म,
एक अपर्याप्त कर्म,	एक प्रत्येक नाम कर्म,
एक साधारण नाम कर्म,	एक स्थिर नाम कर्म,
एक अस्थिर नाम कर्म,	एक शुभ नाम कर्म,
एक अशुभ नाम कर्म,	एक सुभग नाम कर्म,
एक दुर्भग नाम कर्म,	एक सुस्वर नाम कर्म,
एक दु:स्वर नाम कर्म,	एक आदेय नाम कर्म,
एक अनादेय नाम कर्म,	एक यश: कीर्ति नाम कर्म,
एक अयश: कीर्ति नाम कर्म,	एक तीर्थंकर नाम कर्म।

8. णमोकार मन्त्र :

णमोकार मन्त्र में वंदित पंच परमेष्ठियों के गुण-

अरिहन्तों के 46, सिद्धों के 8, आचार्यों के 36,
उपाध्यायों के 25 और साधुओं के 28 ।
णमोकार महामन्त्र में 35 अक्षर हैं।
34 स्वर, 30 व्यंजन तथा 58 मात्रा होती हैं।
प्रथम पद में सात अक्षर।
दूसरे पद में पाँच अक्षर।
तीसरे पद में सात अक्षर।
चौथे पद में सात अक्षर।
पाँचवें पद में नौ अक्षर।
स्वर संख्या में से इकाई दहाई अलग-अलग किया जाये तो 310 हैं। व्यंजन और स्वर को जोड़ देने पर (34+30)=64 हैं। इस प्रकार 64 मूल वर्ण हैं।

9. माला में 108 दाने क्यों :

क्रोध, मान, माया, लोभ	मन, वचन, काय।
कृत, कारित, अनुमोदना।	समरम्भ, समारम्भ, आरम्भ।

इन चारों को (4, 3, 3, 3) गुणा करने पर 108 आता है। इस प्रकार

इन 108 प्रकार की कषायों से बचने का प्रतीक 108 दाने हैं।
ऊपर के 3 दाने- 1.सम्यग्दर्शन, 2.सम्यग्ज्ञान, 3.सम्यक्चारित्र के हैं।

10. सौ इन्द्रों के नाम :

चालीस भवनवासी, बत्तीस व्यंतर, चौबीस कल्पवासी,
दो ज्योतिष- एक सूर्य, एक चन्द्रमा, एक अष्टापद, एक चक्रवर्ती।

11. वातवलय का प्रमाण व रंग :

तीन वातवलयों में 'घनोदधि वातवलय' गौमूत्र के समान वर्ण वाला है।
'घनवातवलय' मूँग के समान रंग वाला है।
'तनुवातवलय' अनेक तरह के रंग वाला है।
ये तीनों वातवलय एक प्रकार की हवायें हैं।

वातवलयों का प्रमाण-

वातवलयों की मोटाई का वर्णन इस प्रकार जानना चाहिए-
लोक के बाहर के भाग में एक-एक वातवलय बीस-बीस हजार योजन मोटा है। तीनों वातवलयों की मोटाई साठ हजार योजन है। सातवें नरक के दोनों तरफ पार्श्व भाग से ऊपर मध्य लोक तक सात, पाँच और चार योजन क्रम से हैं अर्थात् पहला 'घनोदधि' सात योजन मोटा है। दूसरा 'घनवातवलय' पाँच योजन और तीसरा 'तनुवातवलय' चार योजन मोटा जानना चाहिए। आगे मध्य लोक में दोनों पार्श्व भाग में क्रम से तीन वालवलयों की मोटाई पाँच योजन, चार योजन और तीन योजन की है। पाँचवें ब्रम्ह स्वर्ग के दोनों पार्श्व में तीनों वातवलय क्रम से सात योजन, पाँच योजन और चार योजन क्रम से मोटे हैं।

ब्रम्ह स्वर्ग से ऊपर जाते हुए लोक के अन्तिम भाग में दोनों पार्श्व भाग में तीनों वातवलयों की मोटाई क्रम से पाँच योजन, चार योजन और तीन योजन, कुल बारह योजन है।

लोक के ऊपर शिखर पर चक्र के आकार **'घनोदधि'** वातवलय की मोटाई दो कोस, **'घनवातवलय'** की मोटाई एक कोस तथा **'तनुवातवलय'** की मोटाई पन्द्रह सौ पिच्हत्तर (1575) धनुष प्रमाण है। इस प्रकार तीनों वातवलयों की मोटाई जानना।

यह तीन लोक इन्हीं तीन वातवलयों के आधार पर खड़ा है। यह

अनादि है, किसी ने बनाया नहीं है। छह द्रव्यों से भरा हुआ महान है।

12. नरकों के रूढिगत नाम :

1.धम्मा, 2.वंशा, 3.मेघा, 4.अंजना, 5.अरिष्टा, 6.मघवी, 7.माघवी।

13. नरकों में भूमियों के नाम :

1.रत्नप्रभा, 2.शर्कराप्रभा, 3.बालुकाप्रभा, 4.पंकप्रभा, 5.धूमप्रभा, 6. तम:प्रभा, 7.महातम:प्रभा।

14. रत्नप्रभा भूमि का विस्तार :

विशेष-

'रत्नप्रभा' नाम की पृथ्वी एक लाख अस्सी हजार योजन की मोटी है। उसके तीन विभाग हैं।

उनमें से सोलह हजार योजन मोटा ऊपर का खर भाग है। उसमें चित्रा, वज्रा, वैडूर्य इत्यादि एक-एक हजार योजन की मोटी सोलह पृथ्वियाँ हैं। इनमें से ऊपर-नीचे की एक-एक हजार योजन की पृथ्वी छोड़कर बीच की चौदह हजार योजन मोटी एक राजू लम्बी चौड़ी पृथ्वी में किन्नर, किंपुरुष, महोरग, गन्धर्व, यक्ष, भूत और पिशाच इन सात प्रकार के व्यंतर देवों के तथा नागकुमार, विद्युत कुमार, सुपर्ण कुमार, अग्नि कुमार, वात कुमार, स्तनित कुमार, उदधि कुमार, द्वीप कुमार और दिक् कुमार इन नौ प्रकार के भवनवासी देवों के निवास स्थान हैं।

'खर' भाग के नीचे चौरासी हजार योजन मोटा पंक भाग है। उसमें असुर कुमार और राक्षसों के निवास स्थान हैं। और पंकभाग के नीचे अस्सी हजार योजन मोटा 'अब्बुहल' भाग है। उसमें प्रथम नरक है। उसके नीचे एक अन्तराल राजू छोड़कर शर्कराप्रभादि पृथ्वी हैं। उन सबमें ही नारकियों के रहने के बिल अर्थात् निवास स्थान हैं। ये बिल किस-किस पृथ्वी में कितने-कितने हैं यह बतलाने के लिए सूत्रकार कहते हैं।

15. नरकों के बिल :

इन रत्नप्रभादि सातों पृथ्वियों में तीस लाख, पच्चीस लाख, पन्द्रह लाख, दस लाख, तीन लाख, पाँच कम एक लाख और पाँच बिल

हैं अर्थात् प्रथम पृथ्वी में तीस लाख, दूसरी पृथ्वी में पच्चीस लाख, तीसरी पृथ्वी में पन्द्रह लाख, चौथी पृथ्वी में दस लाख, पाँचवी पृथ्वी में तीन लाख, छठी पृथ्वी में पाँच कम एक लाख और सातवीं पृथ्वी में पाँच बिल हैं। ये बिल गोल, त्रिकोण, चौकोर इत्यादि अनेक प्रकार के हैं।

16. नरकों के प्रमाण :

रत्नप्रभा	–	एक लाख अस्सी हजार योजन मोटी है।
शर्कराप्रभा	–	बत्तीस हजार योजन मोटी है।
बालुकाप्रभा	–	अट्ठाईस हजार योजन मोटी है।
पंकप्रभा	–	चौबीस हजार योजन मोटी है।
धूमप्रभा	–	बीस हजार योजन मोटी है।
तम:प्रभा	–	सोलह हजार योजन मोटी है।
महातम:प्रभा	–	आठ हजार योजन मोटी है।

17. नरकों का विस्तार :

प्रथम नरक का इन्द्रक पैंतालीस लाख योजन के विस्तार में है। प्रथम स्वर्ग का ऋजु विमान, सिद्धशिला, सिद्धक्षेत्र और मनुष्य लोक – ये सब समान हैं व एक-दूसरे के ऊपर हैं।

सातवें नरक का इन्द्रक बिल एक लाख योजन के विस्तार का है। सातवें नरक का इन्द्रक बिल, जम्बूद्वीप, सर्वार्थसिद्धि और सुमेरु – ये चारों समान विस्तार के हैं। सब इन्द्रक बिल संख्यात योजन के और श्रेणिबद्ध बिल असंख्यात योजन के हैं और प्रकीर्णक बिलों में से कुछ संख्यात योजन के हैं और कुछ असंख्यात योजन के हैं।

18. नरकों में सम्यक्त्व के कारण :

पहले से तीसरे नरक तक धर्मश्रवण, जातिस्मरण और वेदना-तीन निमित्त कारण सम्यक्त्व उत्पत्ति के हैं।

चौथे नरक से सातवें नरक तक जातिस्मरण और वेदना ये दो निमित्त कारण सम्यक्त्व उत्पत्ति के हैं। नरक के जीवों को उपशम और क्षयोपशम ये दो सम्यक्त्व होते हैं। क्षायिक उत्पन्न नहीं होता।

19. स्वर्ग के नाम :

1.सौधर्म, 2.ऐशान, 3.सानत्कुमार, 4.माहेन्द्र, 5.ब्रम्ह, 6. ब्रम्होत्तर,

7.लानत्व, 8.कापिष्ठ, 9.शुक्र, 10.महाशुक्र, 11. शतार, 12.सहस्रार, 13. आनत, 14.प्राणत, 15.आरण, 16.अच्युत।

20. स्वर्गों में इन्द्रों का वर्णन :

सोलह स्वर्गों में बारह इन्द्र होते हैं।

प्रथम स्वर्ग से चौथे स्वर्ग तक एक-एक इन्द्र होता है।

पाँचवें-छठे, सातवें-आठवें, नौवें-दसवें और ग्यारहवें-बारहवें स्वर्गों में से दो दो के मध्य एक-एक इन्द्र होता है।

तेरहवें स्वर्ग से लेकर सोलहवें स्वर्ग तक प्रत्येक में एक-एक इन्द्र होता है।

इस प्रकार सोलह स्वर्गों में बारह इन्द्र होते हैं। इन बारह इन्द्रों में छह तो दक्षिणेन्द्र होते हैं एवं छह उत्तरेन्द्र होते हैं।

सौधर्म इन्द्र, सानत्कुमार, ब्रम्ह, लान्तव, आनत, आरण ये छः दक्षिणेन्द्र हैं और शेष छः उत्तरेन्द्र हैं। बारह इन्द्र और बारह ही प्रतीन्द्र होते हैं - इस प्रकार स्वर्गों में कुल चौबीस इन्द्र हैं। इनसे ऊपर के देव कल्पातीत कहलाते हैं।

देवगति में एक-एक देव की कम से कम बत्तीस देवियाँ होती है।

21. नंदीश्वर द्वीप :

यह मध्यलोक का अष्टम द्वीप है। इस द्वीप में 16 वापियाँ, 4 अंजनगिरि, 16 दधिमुख और 32 रतिकर नाम के कुल 52 पर्वत है। प्रत्येक पर्वत पर एक-एक चैत्यालय हैं। प्रत्येक अष्टान्हिका पर्व में अर्थात् कार्तिक, फाल्गुन व आषाढ़ मास के अन्तिम आठ-आठ दिनों में देवगण उस द्वीप में जाकर तथा मनुष्यजन अपने मन्दिरों व चैत्यालयों में उस द्वीप की स्थापना करके, खूब भक्ति भाव से इन 52 चैत्यालयों की पूजा करते हैं।

नन्दीश्वर द्वीप में एक - एक चैत्यालय में एक सौ आठ प्रतिमायें और एक - एक प्रतिमा पाँच सौ धनुष की है।

22. जम्बूद्वीप की परिधि :

तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्ताईस योजन (316227), तीन कोस एक सौ अट्ठाईस धनुष तेरह अँगुल से कुछ अधिक है। जम्बूद्वीप का विस्तार एक लाख योजन है। जम्बूद्वीप के मध्य में एक लाख योजन ऊँचा सुमेरु पर्वत है, उसमें से 1000 योजन नीचे

जमीन में और 99,000 योजन जमीन के ऊपर है। इसकी 40 योजन की चूलिका है, जो मूल में 12 योजन, बीच में 8 योजन और ऊपर 4 योजन चौड़ी है।

23. जम्बूद्वीप नाम की सार्थकता :

उत्तरकुरु भोगभूमि में अनादिनिधन पृथिवीकाय रूप अकृत्रिम परिवार सहित जम्बू वृक्ष है, जिसके कारण यह जम्बूद्वीप कहलाता है।

24. जम्बूद्वीप में सात क्षेत्र हैं :

1.भरत, 2. ऐरावत, 3.विदेह – ये तीन तो कर्म भूमियाँ हैं।
1.हरि, 2.रम्यक, 3.हैरण्यवत, 4.हेमवत – ये चार भोग भूमियाँ हैं।

25. जम्बूद्वीप से आगे के द्वीपों एवं समुद्रों का वर्णन –

द्वीपों के नाम :

1.जम्बूद्वीप, 2.धातकीखण्ड, 3.पुष्करवर, 4.वारुणीवर, 5.क्षीरवर, 6.घृतवर, 7.क्षोद्रवर, 8.नन्दीश्वर, 9.अरुणवर, 10.अरुणाभास, 11.कुण्डलवर,12.शंखवर,13.रुचकवर,14.भुजंगवर, 15.कुशवर, 16. क्रौञ्चवर।

इस प्रकार ये प्रारम्भ के द्वीप से सोलह द्वीपों के नाम हैं। आगे असंख्यात द्वीप बड़े विशाल हैं।

उसी प्रकार प्रारम्भ के समुद्र से लेकर सोलह समुद्रों के नाम इस प्रकार हैं–

समुद्रों के नाम :

1.लवण समुद्र,2.कालोदधि समुद्र, 3.पुष्करवर समुद्र, 4. वारुणीवर, 5.क्षीरसागर, 6.घृतवर, 7.क्षोद्रवर, 8.नन्दीश्वर, 9.अरुणवर, 10.अरुणाभासवर, 11.कुण्डलवर, 12.शंखवर, 13.रुचकवर, 14.भुजंगवर, 15.कुशवर, 16.क्रौञ्चवर।

26. भरत क्षेत्र के छह खण्ड :

बीच में विजयार्ध पर्वत पच्चीस योजन ऊँचा, उत्तर में तीन खण्ड, दक्षिण में तीन खण्ड, उत्तर भरत क्षेत्र के तीसरे खण्ड में सौ योजन ऊँचा वृषभाचल पर्वत है जो चक्रवर्ती के मान को खण्डित करता है।

पंचम काल में पहले कल्की चतुरमुख ने पुत्र अजितंजय को राज्य दिया। अन्तिम कल्की के समय एक वीरांगज नामक मुनि, सर्वश्री नामक आर्यिका, अग्निल तथा पंगुश्री नामक श्रावक-श्राविका होंगे। पाँच मेरु में से सुदर्शन मेरु एक लाख योजन ऊँचा, चार मेरु चौरासी हजार योजन ऊँचे हैं।

लवण समुद्र, कालोदधि समुद्र एवं अन्त के स्वयंभूरमण में जलचर जीव हैं। शेष समुद्र में जलचर जीव नहीं हैं। अकृत्रिम चैत्यालय उत्कृष्ट सौ योजन, मध्यम पचास योजन, जघन्य पच्चीस योजन विस्तार वाले हैं।

27. म्लेच्छ खण्ड :

विजयार्ध पर्वत की दोनों श्रेणियों में और पाँचों म्लेच्छ खण्डों में हानि-वृद्धि तो होती रहती है, किन्तु समय चौथे काल के समान होता है।

28. विदेह क्षेत्र का समवसरण :

विदेह क्षेत्र में समस्त तीर्थंकरों का समवसरण समान विस्तार का अर्थात् बारह योजन प्रमाण होता है। सभी समवसरण इन्द्र नील मणि से शोभायमान होते हैं।

29. मानस्तम्भ :

मानस्तम्भ तीर्थंकरों की ऊँचाई से बारह गुने होते हैं। उन मानस्तम्भों के दर्शन करनेमात्र से ही मिथ्यादृष्टियों का मान भंग हो जाता है।

30. तीर्थंकरों के चिन्ह की पहिचान :

जन्मकल्याणक के समय इन्द्र भगवान के दाहिने पग के अँगूठे में चिन्ह को देखकर तीर्थंकर का चिन्ह निश्चित करता है। इसी चिन्ह से तीर्थंकरों की पहचान की जाती है।

31. पाण्डुक शिला का वर्णन :

चारों वनों मे सबसे सुन्दर तथा सबसे ऊँचा पाण्डुक वन है। उसकी चारों दिशाओं मे चार शिलायें हैं। उनके नाम हैं-पांडुक, पांडुकंबला, रक्ता, रक्तकंबला।

जब तीर्थंकरों के जन्म होते हैं, तब देवगण इन्हीं शिलाओं पर उनका

अभिषेक करते हैं। यें शिलाएँ सौ योजन लम्बी, पचास योजन चौड़ी और मध्य भाग में आठ योजन मोटी अर्धचन्द्र के आकार की होती हैं।

विशेष-

इन शिलाओं का वर्ण क्रमशः स्वर्ण, चाँदी, तपाये हुए स्वर्ण और रक्त (लाल वर्ण के समान) है।

पहली **'पाण्डुक'** नाम की शिला पर भरत क्षेत्र के तीर्थंकरों का अभिषेक होता है।

दूसरी **'पाण्डुकंबला'** नाम की शिला पर पश्चिम विदेह मे उत्पन्न होने वाले तीर्थंकरों का अभिषेक होता है।

तीसरे **'रक्त'** नाम की शिला पर ऐरावत क्षेत्र में उत्पन्न होने वाले तीर्थंकरों का अभिषेक होता है।

चौथी **'रक्तकंबला'** नाम की शिला पर पूर्व विदेह क्षेत्र के तीर्थंकरों का अभिषेक होता है।

32. तीर्थंकर माता का दूध नहीं पीते :

इन्द्र ने आदर सहित भगवान को स्नान कराने, वस्त्राभूषण पहिनाने, दूध पिलाने, शरीर के संस्कार करने और खिलाने के कार्य करने में अनेकों देवियों को धाय बनाकर नियुक्त किया था।

33. तीर्थंकर के शरीर की विशेषताएँ :

तीर्थंकरों के, उनके पिताओं के, बलदेवों के, चक्रवर्ती के, अर्ध चक्रवर्ती के, देवों के, तथा भोग भूमि के जीवों के आहार होता है परन्तु निहार नहीं होता है। तीर्थंकरों के मूँछ-दाढ़ी नहीं होती परन्तु सिर पर बाल होते हैं। केवलज्ञान होते ही उनका शरीर निगोदिया जीवों से रहित हो जाता है।

तीर्थंकर के रक्त का रंग श्वेत दूध समान, वज्रवृषभनाराच संहनन, सर्वांग सुन्दर आकृति, सुगन्धित श्वास, अद्भुत रूप, अतिशय बल एवं मधुर वाणी तथा शरीर मे 1008 उत्तम चिन्ह होते हैं।

34. समवसरण का माहात्म्य :

अर्हंत भगवान के उपदेश देने की सभा का नाम समवसरण है, जहाँ बैठकर तिर्यंच, मनुष्य व देव-पुरुष व स्त्रियाँ सब उनकी अमृतवाणी से तृप्त होते हैं। इसकी रचना विशेष प्रकार से देव लोग करते हैं।

इसकी प्रथम सात भूमियों में बड़ी आकर्षक रचनाएँ, नाट्यशालायें पुष्प वाटिकाएँ, वापियाँ, चैत्यवृक्ष आदि होते हैं। मिथ्यादृष्टि अभव्यजन अधिकतर इसी के देखने में उलझ जाते हैं। अत्यन्त भावुक व श्रद्धालु व्यक्ति ही अष्टमभूमि में प्रवेश कर भगवान के साक्षात दर्शनों से तथा उनकी वाणी से अपना जीवन सफल करते हैं।

एक-एक समवसरण में पल्य के असंख्यातवें भाग, विविध प्रमाण के जीव जिनदेव की वन्दना में प्रवृत्त होते हुए स्थिर रहते हैं। कोठों के क्षेत्र ये यद्यपि जीवों का क्षेत्रफल असंख्यात गुणा है, तथापि वे सब जिनदेव के माहात्म्य से एक दूसरे से अस्पृष्ट रहते हैं। जिन भगवान के माहात्म्य से बाल प्रभृति जीव प्रवेश अथवा निकलने में अन्तर्मुहूर्त काल के भीतर संख्यात योजन चले जाते हैं। इसके अतिरिक्त वहाँ पर जिन भगवान के माहात्म्य से आतंक, रोग, मरण, उत्पत्ति, बैर, कामबाधा, तृष्णा, पिपासा और क्षुधा की पीड़ायें नहीं होती हैं।

गृहीत मिथ्यादृष्टि, अभव्यजन श्री मण्डप के भीतर नहीं जाते। इन (बारह) कोठों में गृहीत मिथ्यादृष्टि अभव्य और असंज्ञी जीव कदापि नहीं होते तथा अनध्यवसाय से युक्त, संदेह से संयुक्त और विविध प्रकार की विपरीतताओं से सहित जीव भी नहीं होते हैं। सप्तभूमियों में अनेक स्तूप हैं। उनमें सर्वार्थसिद्धि नाम के अनेकों स्तूप हैं। उनके आगे देदीप्यमान शिखरों से युक्त भव्यकूट नाम के स्तूप रहते हैं। जिन्हें अभव्य जीव देख नहीं पातें; क्योंकि उनके प्रभाव से उनके नेत्र अंधे हो जाते हैं।

35. दिव्यध्वनि :

केवलज्ञान होने के पश्चात् अर्हंत भगवान के सर्वांग से एक विचित्र गर्जना ओंकार ध्वनि खिरती है, उसे दिव्यध्वनि कहते हैं। भगवान की इच्छा न होते हुए भी भव्य जीवों के पुण्य से सहज खिरती है, पर गणधर देव की अनुपस्थिति में नहीं खिरती। दिव्य ध्वनि 18 महाभाषा, 700 क्षुल्लक अर्थात् लघु भाषाओं में, दाँत, कंठ, होंठ, तालू आदि की चंचलता से रहित होती है।

36. मानुषोत्तर पर्वत :

भूमि पर रखे कटे हुए फल के समान एक तरफ भित्ति के समान एक हजार सात सौ इक्कीस हजार योजन ऊँचा है।

इस पर्वत की चौड़ाई ऊपर चोटी पर चार सौ चौबीस योजन है तथा पृथ्वी तल में एक हजार बाईस योजन प्रमाण चौड़ाई है।

37. मल-मूत्र किसके नहीं होता :

त्रेसठ शलाका पुरुष अर्थात् चौबीस तीर्थंकर, बारह चक्रवर्ती, नौ नारायण, नौ प्रतिनारायण, नौ बलभद्र, चौबीस तीर्थंकरों के पिता, चौबीस तीर्थंकरों की माता कुल मिला कर एक सौ ग्यारह कर्म भूमि के व पूर्ण भोग भूमि के पुरुषों को मल-मूत्र व दाढ़ी-मूँछ नहीं होती। वीर्य जरूर होता है। तीर्थंकर की माता रजस्वला नहीं होती है।

38. चन्द्रमा व सूर्य का प्रमाण :

जम्बूद्वीप में दो सूर्य तथा दो चन्द्रमा हैं। लवण समुद्र में चार सूर्य तथा चार चन्द्रमा हैं। धातकीखण्ड में 12 चन्द्रमा और 12 सूर्य हैं। कालोदधि समुद्र में बयालीस सूर्य तथा बयालीस चन्द्रमा हैं और पुष्करार्ध में बहत्तर सूर्य तथा बहत्तर चन्द्रमा हैं। इस प्रकार ढाई द्वीप में पाँच स्थानों पर 132 चन्द्रमा और 132 सूर्य हैं। ये सब ग्रह, नक्षत्र, तारा आदि मेरु के चक्कर लगाते हैं। ढाई द्वीप से बाहर के सूर्य चन्द्रमादि के सब ज्योतिष्क विमान स्थिर हैं।

39. एक चन्द्रमा परिग्रह :

अट्ठाईस नक्षत्र, अठासी ग्रह, छियासठ हजार नौ सौ पचहत्तर कोड़ा कोड़ी तारे हैं।

40. विमान तीन प्रकार के :

इन्द्रक, श्रेणिबद्ध, प्रकीर्णक, चौरासी लाख सत्तानवे हजार तेईस (84,97,023) विमान हैं।

41. सूर्य का गमन :

माघ महिने में कृष्ण पक्ष की सप्तमी के दिन रुद्र मुहूर्त में सूर्य दक्षिणायन से चलन उत्तरायन में गमन प्रारम्भ करता है। कार्तिक मास की कृष्ण पक्ष की तृतीय के दिन, रोहिणी नक्षत्र के दिन और रात्रि समान होते हैं।

42. जीवों में लेश्याओं का विधान :

1. **कृष्ण** लेश्या, **नील** लेश्या और **कापोत** लेश्या के जीव एकेन्द्रिय से लेकर असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक होते हैं।
2. **पीत** लेश्या और **पद्म** लेश्या वाले जीव संज्ञी मिथ्यादृष्टि से लेकर अप्रमत्त संयत गुणस्थान तक होते हैं।
3. **शुक्ल** लेश्या वाले जीव संज्ञी मिथ्यादृष्टि से लेकर सयोग केवली तक होते हैं।
4. तेरहवें गुणस्थान के आगे सभी जीव लेश्या रहित हैं।

43. मनुष्य के कितने भेद है :

मनुष्य के दो भेद है- 1. आर्य, 2. म्लेच्छ।

1. **आर्य** - जो असि/शस्त्र धारण; मसि/लिखने का काम, कृषि, शिल्प, वाणिज्य और विद्या/नाचना, गाना, सेवा आदि इन छह कर्मों से आजीविका करते हैं।
2. **म्लेच्छ** - म्लेच्छ खण्ड में रहने वाले मनुष्य म्लेच्छ कहलाते हैं अथवा जो त्रस जीवों की संकल्पी हिंसा करके अपना उदर निर्वाह करते हैं।

आर्य दो प्रकार के होते हैं -

1. ऋद्धि प्राप्त आर्य, 2. अनऋद्धि प्राप्त आर्य।

1. ऋद्धि प्राप्त आर्य-

जिनको बुद्धि, विक्रिया, तप, बल, औषध, रस और अक्षीण - ये सात ऋद्धियाँ प्राप्त होती हैं। वे सात प्रकार के ऋद्धि प्राप्त आर्य होते हैं।

2. अनऋद्धि प्राप्त आर्य-

जिनको ऋद्धि प्राप्त न हो, उन्हें अनऋद्धि प्राप्त आर्य कहते हैं। अनऋद्धि प्राप्त आर्यों के क्षेत्र आर्य, जाति आर्य, कर्म आर्य, चारित्र आर्य, दर्शन आर्य , इस प्रकार पाँच भेद है।

म्लेच्छ भी अन्तर्द्वीपज और कर्म भूमिज दो प्रकार के हैं।

44. चक्रवर्तियों का वर्णन :

प्रत्येक चक्री उत्तम संहनन, उत्तम संस्थान से युक्त सुवर्ण वर्ण वाले होते हैं। उनके छियानवे हजार रानियाँ होती हैं-इनमें 32000 आर्यखण्ड की कन्यायें, 32000 विद्याधर कन्यायें और 32000

म्लेच्छ कन्यायें होती हैं। प्रत्येक चक्री के संख्यात हजार पुत्र पुत्रियाँ, 32000 गणबद्ध राजा, 360 अंगरक्षक, 360 रसोइये, 35000000 (साढ़े तीन करोड़) बन्धुवर्ग, 30000000 गायें, 10000000 थालियाँ, 840000000 उत्तमवीर, 88000 म्लेच्छराजा अनेकों करोड़ विद्याधर, 32000 मुकुटबद्धराजा, 32000 नाटकशालायें, 32000 संगीतशालायें और 48000000 पदातिगण होते हैं।

सभी चक्रवर्तियों में से प्रत्येक के 960000000 ग्राम, 75000 नगर, 76000 खेट, 24000 कर्वट, 4000 मंटब, 48000 पत्तन, 99000 द्रोणमुख, 74000 संवाहन, 56 अन्तद्वीप, 600 प्रत्यंतर कुक्षी, 700 प्रत्यंतर कुक्षी निवास, 800 कक्षा, 28000 दुर्गादि होते हैं एवं चौदह रत्न नवनिधि और दशांग भोग होते हैं।

चार प्रकार की सेना-

हाथी चौरासी लाख, रथ चौरासी लाख, घोड़े अठारह करोड़, प्यादे चौरासी करोड़।

चौदह रत्न उपजने के स्थान-

नगर में पाँच- 1.सेनापति, 2.गृहपति, 3.शिल्पकार, 4.पुरोहित और 5.स्त्री होते हैं।

दो विजयार्ध पर्वत- हाथी, घोड़ा।

श्री देवी के स्थान में तीन- 1.कांकणी रत्न, 2.चूड़ामणि, 3.चर्म रत्न।

आयुधशाला चार- 1.खड्ग, 2.छत्र, 3.दण्ड, 4.चक्र।

ये सात अचेतन रत्न कहलाते हैं।

चौदह रत्न

इनमें से गज, अश्व, गृहपति, स्थपति, सेनापति, पुरोहित,

स्त्रीरत्न - ये सात चेतन तथा छत्र, असि, दण्ड, चक्र, कांकिणी, चूड़ामणी और चर्म ये सात रत्न निर्जीव होते हैं।

चक्रवर्तियों के चामरों को बत्तीस यक्ष ढोरते हैं।

नवनिधि

काल, महाकाल, पांडु, माणवक, शंख, पद्म, नैसर्ध, पिंग्ल और नाना रत्न-ये नवनिधियाँ नदीमुख श्रीपुर में उत्पन्न हुआ करती हैं। इन नव निधियों में से प्रत्येक क्रम से ऋतु के योग्य द्रव्य, भाजन,

धान्य, आयुध, वादित्र, वस्त्र, मंदिर और रत्न समूहों को दिया करती हैं।

चक्रवर्तियों के 24 दक्षिण मुखावर्त धावल व उत्तम शंख, एक कोड़ाकोड़ी हल होते हैं।

नौ निधियों तथा उनके द्वारा प्रदत्त पदार्थ के नाम-

1. काल निधि ऋतु के योग्य पदार्थ देती है।
2. महाकाल निधि से असि, मसि, कृषि वाणिज्य, शिल्प सम्बन्धी वस्तुएँ मिलती हैं।
3. नैसर्प से बर्तन मिलते हैं।
4. पांडुक से सर्व प्रकार के रस तथा धन मिलते हैं।
5. पद्म से सर्व प्रकार के वस्त्र मिलते हैं।
6. माणवक से सर्व प्रकार के आयुध मिलते हैं।
7. पिंगल से सर्व प्रकार के आभूषण मिलते हैं।
8. शंख से सर्व प्रकार के बाजे मिलते हैं।
9. सर्व रत्न से सर्व प्रकार के रत्न मिलते हैं।

यें सभी नदीमुख श्रीपुर में उत्पन्न होती हैं।

45. व्यक्ता-व्यक्तता :

1. व्यक्तता अथवा अव्यक्तता/प्रगटता अथवा अप्रगटता - पृथ्वी में स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण - ये चारों गुण व्यक्त (व्यक्त रूप से परिणत) हैं और शेष अव्यक्त हैं, वायु में स्पर्श व्यक्त होता है और शेष अव्यक्त होते हैं।

2. जिस प्रकार परमाणु में गंधादि गुण अव्यक्त रूप से होते हैं, उसी प्रकार शब्द भी अव्यक्त रूप से रहता होगा ऐसा नहीं है। शब्द तो परमाणु में व्यक्त रूप से या अव्यक्त रूप से बिल्कुल होता ही नहीं है।

46. पुद्गल द्रव्य के भेदों का कथन :

पुद्गल द्रव्य के दो भेद-

1. स्वभाव पुद्गल, 2. विभाव पुद्गल।

उनमें **परमाणु** स्वभाव पुद्गल है और **स्कन्ध** विभाव पुद्गल है। स्वभाव पुद्गल के कार्य परमाणु और कारण परमाणु ऐसे दो प्रकार हैं।

47. स्कन्धों के छह प्रकार है :

1. पृथ्वी,
2. जल,
3. छाया,
4. चक्षु के अतिरिक्त चार इन्द्रियों के विषयभूत स्कन्ध।
5. कर्म योग्य स्कन्ध,
6. कर्म अयोग्य स्कन्ध।

48. अंगुल तीन प्रकार का :

1. उत्सेधाँगुल, 2. प्रमाणाँगुल, 3. आत्माँगुल।

परिभाषा से सिद्ध किया - अँगुल **उत्सेधाँगुल** या सूच्यँगुल है।

प्रमाणाँगुल का लक्षण-

पाँच सौ उत्सेधाँगुल प्रमाण अवसर्पिणी काल के प्रथम चक्रवर्ती के एक अँगुल का नाम ही **'प्रमाणाँगुल'** है।

आत्माँगुल का लक्षण-

जिस-जिस काल में भरत और ऐरावत क्षेत्र में जो-जो मनुष्य हुआ करते हैं, उस उस काल में उन्हीं मनुष्यों के अँगुल का नाम **'आत्माँगुल'** है।

उत्सेधाँगुल द्वारा माप करने योग्य वस्तुएँ-

उत्सेधाँगुल से देव, मनुष्य, तिर्यंच एवं नारकियों के शरीर की ऊँचाई का प्रमाण और चारों प्रकार के देवों के निवास स्थान एवं नगरादि का प्रमाण मापा जाता है।

प्रमाणाँगुल से मापने योग्य पदार्थ-

द्वीप, समुद्र, कुलाचल, वेदी, नदी, कुण्ड, सरोवर, जगती और भरतादि क्षेत्र का प्रमाण प्रमाणाँगुल से ही होता है।

आत्माँगुल से मापने योग्य पदार्थ-

झारी, कलश, दर्पण, वेणुभेरी, युगशैया, शकट(गाड़ी), हल, मूसल, शक्ति तोमर, सिंहासन, बाण, नालि, अक्ष-चामर, दुन्दुभि, पीठ, छत्र, मनुष्यों के निवास स्थान, नगर और उद्यानादिकों की संख्या आत्माँगुल से ही समझना चाहिए।

49. पाद से कोश पर्यन्त की परिभाषाएँ :

6 अँगुलों का पाद, दो पादों की विलस्ति, दो विलस्तियों का हाथ, दो हाथों का रिक्कु, दो रिक्कुओं का दण्ड, दण्ड के बराबर अर्थात् चार हाथ प्रमाण ही धनुष, मूसल तथा नाली और दो हजार दण्ड या धनुष का एक कोस होता है।

50. योजन का माप :

चार कोस का एक योजन होता है। उतने ही अर्थात् एक योजन विस्तार वाले गोल गड्ढ़े का गणित शास्त्र में निपुण पुरुषों को घनफल से जानना चाहिए।

महायोजन दो हजार कोस का होता है।

51. सागर का माप :

एक योजन गहरे और इतने ही चौड़े एक गड्ढ़े को, उत्तम भोग भूमि के सात दिन तक के मेढ़े के बच्चे के बालों को, कैंची से इतना छोटा करके कि उस बाल के दो टुकड़े अब न हो सकें, ठसाठस भर दिया जाये। अब उस गड्ढ़े में से प्रत्येक सौ वर्ष में एक-एक बाल निकाला जाये। जितने समय में वह गड्ढ़ा खाली हो जाय, उतना समय एक व्यवहारपल्य है। ऐसे असंख्यात व्यवहारपल्य एक उद्धार पल्य के बराबर हैं। असंख्यात उद्धार पल्य एक अद्धापल्य के बराबर है। ऐसे दस करोड़ अद्धापल्यों को दस करोड़ अद्धापल्यों से गुणा करने पर एक सागर की माप होती है।

52. चारों गतियों के जीवों की उत्कृष्ट आयु :

कठोर पृथ्वीकायिक जीव की उत्कृष्ट आयु-	22 हजार वर्ष
मृदु पृथ्वीकायिक जीव की उत्कृष्ट आयु-	12 हजार वर्ष
जलकायिक जीव की उत्कृष्ट आयु-	7 हजार वर्ष
अग्निकायिक जीव की उत्कृष्ट आयु-	3 दिन
वायुकायिक जीव की उत्कृष्ट आयु-	3 हजार वर्ष
प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीव की उत्कृष्ट आयु-	10 हजार वर्ष
इतर निगोद सूक्ष्म बादर की आयु-	अन्तर्मुहूर्त
सूक्ष्म, पृथ्वी, अप्, तेज, वायु की आयु-	अन्तर्मुहूर्त
दो इन्द्रिय जीव की उत्कृष्ट आयु-	12 वर्ष

तीन इन्द्रिय जीव की उत्कृष्ट आयु-	49 दिन
चार इन्द्रिय जीव की उत्कृष्ट आयु-	6 महीने
पंचेन्द्रिय जीव की उत्कृष्ट आयु-	3 पल्य
देव व नारकी की उत्कृष्ट आयु-	33 सागर
देव व नारकी की जघन्य आयु-	10 हजार वर्ष
पक्षियों की उत्कृष्ट आयु-	72 हजार वर्ष
सर्पों की उत्कृष्ट आयु-	42 हजार वर्ष
छाती से सरकने वाले अजगर-	9 पूर्वांग

53. अवगाहना :

एकेन्द्रिय चतुष्क पृथ्वी, जल, तेज, वायुकाय के जीवों की अवगाहना उत्कृष्ट घन अंगुल के असंख्यातवें भाग है। प्रत्येक वनस्पति की उत्कृष्ट अवगाहना युक्त कमल एक हजार योजन का है।

दो इन्द्रिय शंख की उत्कृष्ट अवगाहना-	12 योजन लम्बा
तीन इन्द्रिय कानखजूरा उत्कृष्ट अवगाहना-	3 कोस लम्बा
चौ इन्द्रिय भ्रमर उत्कृष्ट अवगाहना-	1 योजन
पंचेन्द्रिय बड़ामच्छ उत्कृष्ट अवगाहना-	1000 योजन लम्बा
नरक में उत्कृष्ट अवगाहना-	500 धनुष
भवनवासी असुर देव उत्कृष्ट अवगाहना-	25 धनुष
बाकी नौ की ऊँचाई अवगाहना-	10 धनुष
व्यंतर देव ऊँचाई उत्कृष्ट अवगाहना-	10 धनुष
ज्योतिषी देव की उत्कृष्ट अवगाहना-	7 धनुष
सौधर्म ईशान की उत्कृष्ट अवगाहना-	7 हाथ
सानत्कुमार माहेन्द्र की उत्कृष्ट अवगाहना-	6 हाथ
ब्रम्ह ब्रम्होत्तर की उत्कृष्ट अवगाहना-	5 हाथ
लान्तव कापिष्ठ की उत्कृष्ट अवगाहना-	5 हाथ
शुक्रमहाशुक्र ऊँचाई की उत्कृष्ट अवगाहना-	4 हाथ
शतार सहस्रार की उत्कृष्ट अवगाहना-	4 हाथ
आनत प्राणत की उत्कृष्ट अवगाहना-	साढ़े तीन हाथ
आरण अच्युत की उत्कृष्ट अवगाहना-	3 हाथ
ग्रैवेयिक के शुरु में उत्कृष्ट अवगाहना-	ढ़ाई हाथ

ग्रैवेयिक के मध्य में उत्कृष्ट अवगाहना-	दो हाथ
ग्रैवेयिक के ऊपर में उत्कृष्ट अवगाहना-	डेढ़ हाथ
नव अनुदिश की उत्कृष्ट अवगाहना-	एक हाथ
पाँच अनुत्तर की उत्कृष्ट अवगाहना-	एक हाथ
मनुष्य अवसर्पिणी के पहला काल में-	तीन कोस
अन्तिम छठे काल में-	एक हाथ।

54. वैमानिकों के पटल :

सोलह स्वर्गों में	-	52 पटल
नव ग्रैवेयिकों मे	-	नौ पटल
नौ अनुदिश का	-	एक पटल
पाँच अनुत्तर विमान का-		एक पटल,

इस प्रकार कुल 63 पटल होते हैं।

55. योनि के भेद :

जीवों के उत्पत्ति स्थान को योनि कहते हैं। इसके 2 भेद हैं-

1. आकृति योनि, 2. गुण योनि।

आकृति योनि के तीन भेद-

शंखावर्त, कूर्मोन्नत, वंशपत्र।

गुण योनि के नौ भेद-

सचित्त, अचित्त, सचित्ताचित्त, शीत, उष्ण, शीतोष्ण, संवृत, विवृत, संवृतविवृत।

56. असंज्ञी जीव के विषय (गोम्मटसार गाथा नं० 168) :

एकेन्द्रिय, स्पर्शन इन्द्रिय का उत्कृष्ट विषय क्षेत्र- चार सौ धनुष है और द्वीन्द्रिय आदिक का वह विषय दोगुना दोगुना है।

द्वीन्द्रिय, रसनेन्द्रिय का उत्कृष्ट विषय क्षेत्र चौसठ धनुष है। वह भी आगे-आगे दुगुना है।

इसी प्रकार सभी इन्द्रियों का समझना चाहिए।

घ्राणेन्द्रिय का विषय तीन इन्द्रिय के	-	100 धनुष
चतुरेन्द्रिय के	-	200 धनुष
अंसज्ञी पंचेन्द्रिय	-	400 धनुष
चक्षुइन्द्रिय विषय क्षेत्र	-	2954 योजन
और असंज्ञी पंचेन्द्रिय	-	5908 योजन

असंज्ञी पंचेन्द्रिय के कर्ण का – 800 धनुष

संज्ञी जीव के स्पर्शन, रसना,घ्राण इन तीनों इन्द्रियों में से प्रत्येक का विषयभूत क्षेत्र नौ-नौ योजन है। श्रोत्रेन्द्रिय का उत्कृष्ट विषय क्षेत्र बारह योजन है तथा चक्षुइन्द्रिय का उत्कृष्ट विषय क्षेत्र सैंतालीस हजार दो सौ त्रेसठ योजन से कुछ अधिक है।

57. शरीर पाँच प्रकार के होते हैं :

1. **औदारिक शरीर** – मनुष्यों, तिर्यंचों के शरीर
2. **वैक्रियिक शरीर** – देवों और नारकियों के शरीर
3. **आहारक शरीर** – आहारक ऋद्धिधारी भावलिंगी मुनियों के मस्तिष्क से तत्त्वों की शंका को दूर करने अथवा तीर्थ वन्दना आदि के लिये निकले एक हाथ प्रमाण सप्तधातुरहित, श्वेत पुरुषाकार पुतले को आहारक शरीर कहते हैं।
4. **तैजस शरीर** – औदारिक, वैक्रियिक एवं आहारक शरीरों में कान्ति उत्पन्न करने में निमित्त।
5. **कार्मण शरीर** – ज्ञानावरणादि आठ कर्मों का समूह।

एक जीव को कम से कम दो और अधिक से अधिक चार शरीरों का संयोग हो सकता है।

पाँचों शरीरों में औदारिक शरीर सबसे स्थूल और कार्मण शरीर सबसे सूक्ष्म है।

58. शरीर की उत्कृष्ट स्थिति :

औदारिक शरीर की	–	तीन पल्य।
वैक्रियिक शरीर की	–	तैतीस सागर।
कार्मण शरीर की	–	सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर।

ये सामान्य रूप से है। विशेष रूप से ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अन्तराय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति तीस कोड़ाकोड़ी सागर है।

मोहनीय की सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर है।

नामकर्म व गोत्रकर्म की बीस कोड़ाकोड़ी सागर है।

आयु कर्म की तैंतीस सागर है।

59. निगोदिया :

निगोद के दो भेद होते हैं- 1. नित्य निगोद, 2. इतर निगोद।

नित्य निगोद -

जो जीव अनादिकाल से निगोद में ही अर्थात् जिसने आज तक निगोद से निकलकर दूसरी कोई पर्याय ही प्राप्त नहीं की, उसे नित्य निगोद कहते हैं।

इतर निगोद -

जो जीव निगोद से निकलकर दूसरी कोई पर्याय प्राप्त करने के बाद पुनः निगोद में उत्पन्न हो उसे इतर निगोद कहते हैं।

60. क्षुद्र भव :

श्वांस के अठारहवें भाग में जन्म-मरण करने वाले लब्ध्यपर्याप्तक जीव क्षुद्र भव वाले हैं। ये एक अन्तर्मुहूर्त में 66336 बार जन्म मरण कर लेते हैं। इसका विवरण इस प्रकार है-

क्षुद्र भव जीव		भव संख्या
पृथ्वीकायिक सूक्ष्म	-	6012
पृथ्वीकायिक बादर	-	6012
जलकायिक सूक्ष्म	-	6012
जलकायिक बादर	-	6012
अग्निकायिक सूक्ष्म	-	6012
अग्निकायिक बादर	-	6012
वायुकायिक सूक्ष्म	-	6012
वायुकायिक बादर	-	6012
प्रत्येक वनस्पति	-	6012
साधारण वनस्पति सूक्ष्म	-	6012
साधारण वनस्पति बादर	-	6012
दो इन्द्रिय	-	80
तीन इन्द्रिय	-	60
चार इन्द्रिय	-	40
असैनी पंचेन्द्रिय	-	8
सैनी पंचेन्द्रिय	-	8
मनुष्य	-	8

कुल लब्ध्यपर्याप्तक 66336 क्षुद्र भव

61. निगोद और क्षुद्र भव में अन्तर :

निगोद	क्षुद्र भव
1. ये मात्र साधारण वनस्पति एकेन्द्रिय हैं।	1. इनमें पाँचों इन्द्रिय वाले हैं।
2. ये पर्याप्तक और अपर्याप्तक दोनों प्रकार के हैं।	2. ये मात्र अपर्याप्तक हैं।
3. उनकी उत्कृष्ट आयु अन्तर्मुहूर्त है।	3. इनकी आयु मात्र श्वांस के अठारहवें भाग ही है।
4. इसे नहीं पाने वाले कोई भी जीव नहीं हैं।	4. इसे पाये बिना भी मोक्ष हो जाता है।
5. इनके भव असीमित हैं।	5. इनके भव सीमित हैं।
6. ये मात्र स्थावर हैं।	6. ये स्थावर -त्रस दोनों प्रकार के होते हैं।

62. सम्मूर्च्छन मनुष्य निर्देश :

कर्मभूमि में चक्रवर्ती, बलभद्र वगैरह बड़े राजाओं के सैन्यों में मल-मूत्रों का जहाँ क्षेपण करते हैं ऐसे स्थानों पर, वीर्य, नाक का मल, कफ, कान और दाँतों का मल और अत्यंत अपवित्र प्रदेश-इनमें जो तत्काल उत्पन्न होते हैं, उन्हें सम्मूर्छन मनुष्य कहते हैं। इनका शरीर अँगुल के असंख्यात भाग मात्र रहता है और ये जन्म लेने के बाद शीघ्र नष्ट होते हैं; लब्ध्यपर्याप्तक होते हैं।

63. अकृत्रिम जिन चैत्यालयों का वर्णन :

ऊर्ध्वलोक में - 84 लाख, 97 हजार, 023
मध्यलोक में - 458,
अधोलोक में - 7 करोड़, 72 लाख।
तीनों लोकों में कुल 8 करोड़, 56 लाख, 97 हजार, 481 अकृत्रिम चैत्यालय हैं।

64. मध्यलोक के 458 अकृत्रिम जिन चैत्यालयों का विवरण :

ढ़ाई द्वीप में पाँच मेरु पर्वत हैं। प्रत्येक मेरु पर सोलह-सोलह चैत्यालय हैं - इस तरह पंच मेरु के 80, एक-एक मेरु के पूर्व-पश्चिम विदेह क्षेत्रों में सोलह-सोलह वक्षार पर्वत हैं और प्रत्येक पर्वत पर एक-एक मन्दिर है; इस तरह वक्षार पर्वत के 80।

एक-एक मेरु सम्बन्धी चार-चार गजदन्त पर्वत हैं; इन पर भी एक-एक चैत्यालय हैं। इस तरह गजदन्तों के 20। एक-एक मेरु सम्बन्धी छह-छह कुलाचल पर्वतों पर 30, एक-एक मेरु सम्बन्धी देवकुरु और उत्तर कुरु नामक दो-दो भोग भूमियाँ हैं। वहाँ पर 10, इष्वाकार पर्वत पर 4, मानुषोत्तर पर्वत पर 4, नन्दीश्वर द्वीप में 52, रुचकवर द्वीप के रुचिक पर्वत पर 4 और कुण्डल द्वीप के कुंडल गिरि पर 4, विजयार्ध पर्वतों पर 170, इस प्रकार कुल 458 अकृत्रिम चैत्यालय हैं।

65. ऊर्ध्व लोक के अकृत्रिम चैत्यालय :

सौधर्म स्वर्ग में	-	32 लाख
ईशान स्वर्ग में	-	28 लाख
सनत्कुमार स्वर्ग में	-	12 लाख
माहेन्द्र स्वर्ग में	-	8 लाख
ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर स्वर्ग में	-	4 लाख
लांतव और कापिष्ट स्वर्ग में	-	50 हजार
शुक्र और महाशुक्र स्वर्ग में	-	40 हजार
सतार और सहस्रार स्वर्ग में	-	6 हजार
प्राणत, आनत, आरण और अच्युत स्वर्ग में	-	700
अधोग्रैवेयिक में	-	111
मध्य ग्रैवेयिक में	-	107
ऊर्ध्व ग्रैवेयिक में	-	91
अनुदिश विमान में	-	9
पंचानुत्तर में	-	5

इस तरह ऊर्ध्व लोक में कुल 84,97,023 अकृत्रिम चैत्यालय हैं।

66. नयों के नाम एवं उनका सामान्य परिचय :

जिन सैंतालीस नयों से आत्मा का वर्णन किया गया है, वे निम्न प्रकार हैं-

1. द्रव्य नय,
2. पर्याय नय,
3. अस्तित्व नय,
4. नास्तित्व नय,
5. अस्तित्व-नास्तित्व नय,
6. अवक्तव्य नय,
7. अस्तित्व-अवक्तव्य नय,
8. नास्तित्व-अवक्तव्य नय,

9. अस्तित्व-नास्तित्व-अवक्तव्य नय,

10. विकल्प नय,	11. अविकल्प नय,
12. नाम नय,	13. स्थापना नय,
14. द्रव्य नय,	15. भाव नय,
16. सामान्य नय,	17. विशेष नय,
18. नित्य नय,	19. अनित्य नय,
20. सर्वगत नय,	21. असर्वगत नय,
22. शून्य नय,	23. अशून्य नय,
24. ज्ञान-ज्ञेय अद्वैत नय,	25. ज्ञान-ज्ञेय द्वैत नय,
26. नियति नय,	27. अनियति नय,
28. स्वभाव नय,	29. अस्वभाव नय,
30. काल नय,	31.अकाल नय,
32. पुरुषकार नय,	33. दैव नय,
34. ईश्वर नय,	35. अनीश्वर नय,
36. गुणी नय,	37. अगुणी नय,
38. कर्तृनय,	39. अकर्तृ नय,
40. भोक्तृनय,	41. अभोक्तृ नय,
42. क्रिया नय,	43. ज्ञान नय,
44. व्यवहार नय,	45. निश्चय नय,
46. शुद्ध नय,	47. अशुद्ध नय।

67. शलाका पुरुष :

तीर्थंकर चक्रवर्ती आदि प्रसिद्ध पुरुषों को शलाका पुरुष कहते हैं। प्रत्येक कल्पकाल में ये 63 होते हैं। 24 तीर्थंकर, 12 चक्रवर्ती, 9 बलदेव, 9 नारायण, 9 प्रतिनारायण। अथवा 9 नारद, 11 रुद्र, 24 कामदेव व 14 कुलकर आदि मिलने से 24 भगवान के 24 माँ व 24 पिता इस प्रकार 169 शलाका पुरुष होते हैं।

68. आठ कर्मों के आठ सिद्धान्त :

1. मूर्ति पर यदि कपड़ा पड़ा हुआ हो तो जिस तरह उसका ज्ञान नहीं होता है, उसका रूप नहीं दिखता है; उसी प्रकार **ज्ञानावरण** कर्म का परदा पड़ने से आत्मा का ज्ञान गुण ढक जाता है।

2. जिस तरह दरबान अर्थात् पहरेदार राजा का दर्शन नहीं करने देता है उसी प्रकार **दर्शनावरण** कर्म आत्मा के दर्शन गुण का दर्शन नहीं होने देता है।
3. जिस तरह शहद में लिपटी हुई तलवार की धार चाटने से मीठी लगती है और साथ ही जीभ को काट डालती है, उसी प्रकार से **वेदनीय** कर्म आत्मा को सुखी-दुःखी करता है। यह आत्मा के अव्याबाध गुण का घात करता है।
4. जिस तरह शराब जीवों पर मोहना का अर्थात् बेहोशी का (अज्ञान का/पागलपन का) विस्तार करती है; उसी प्रकार **मोहनीय** कर्म आत्मा को मोहित कर डालता है। इस कर्म के संयोग से जीव पर-पदार्थों में इष्ट तथा अनिष्ट की कल्पना करता है और तद्रूप आचरण करता है अर्थात् इससे जीव के सम्यक्त्व और चारित्र गुण का घात होता है।
5. जिस तरह चोर का पैर काठ में दे देने से वह काठ उसकी स्थिति करता है, उसको कहीं हिलने चलने नहीं देता है उसी प्रकार से **आयु** कर्म जीव की भव-भव में स्थिति करता है। जब तक एक शरीर की आयु पूरी नहीं हो जाती है, तब तक जीव दूसरे शरीर में नहीं जा सकता है। इससे अवगाहनत्व गुण का घात होता है।
6. जिस तरह चित्रकार नाना प्रकार के चित्र बनाकर उसके जुदा-जुदा नाम रखता है; उसी प्रकार **नाम** कर्म एकेन्द्रियादि नाम वाले शरीर बनाता है। यह कर्म आत्मा के सूक्ष्मत्व गुण का घात करता है।
7. जिस प्रकार कुम्हार ऊँच-नीच अर्थात् छोटे-बड़े बर्तन बनाता है; उसी प्रकार से **गोत्र** कर्म ऊँच-नीच कुल में जीव को उत्पन्न कराता है। इससे अगुरुलघुत्व गुण का घात होता है।
8. जिस प्रकार भण्डारी राजा को दान करने से रोकता है; उसी प्रकार **अन्तराय** कर्म दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य में रुकावट करता है। यह वीर्य गुण का घात करता है।

69. सात नरकों और सोलह स्वर्गों में आवागमन :

सातवें नरक से निकलकर जीव क्रूर पंचेन्द्रिय पशु होता है, मनुष्य

नहीं होता है।

छठे नरक से निकलकर जीव मनुष्य तो हो जाता है, परन्तु महाव्रत धारण नहीं कर सकता है।

पाँचवें से निकलकर मनुष्य होता है और महाव्रत भी धारण कर सकता है; परन्तु समस्त कर्मों का क्षय करके मुक्त नहीं हो सकता है।

चौथे नरक से निकलकर मनुष्य होकर महाव्रत धारण करके मोक्ष को भी प्राप्त कर सकता है; पर तीर्थंकर नहीं हो सकता है।

तीसरे, दूसरे और पहिले नरक से निकलकर अचिन्त्य विभूति का धारक तीर्थंकर भी हो सकता है।

भवनत्रिक देव (भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी) और सौधर्म ईशान स्वर्गों के देव मरकर एकेन्द्रिय पर्याय में जन्म ले सकते हैं, परन्तु एकेन्द्रिय में अग्निकाय, वायुकाय के जीव नहीं हो सकते हैं, बादर पृथ्वीकाय, जलकाय, वनस्पतिकाय हो सकते हैं।

तीसरे सनत्कुमार स्वर्ग से बारहवें सहस्रार स्वर्ग तक के देव पंचेन्द्रिय पशु हो सकते हैं, एकेन्द्रियादि नहीं हो सकते।

बारहवें स्वर्ग से ऊपर के देव एक मनुष्य शरीर में ही अवतार लेते हैं, अन्य गतियों में नहीं जाते हैं।

स्वर्गों में आठ युगल हैं और उनमें बारह इन्द्र हैं, इन बारह इन्द्रों में छह उत्तर के हैं और छह दक्षिण के हैं। दक्षिण के छह इन्द्र, सौधर्म की इन्द्राणी, सौधर्म स्वर्ग के चारों लोकपाल (सोम, यम, वरुण, कुबेर) लौकान्तिक देव और सर्वार्थसिद्धि स्वर्ग के सब अहमिन्द्र – ये सब शीघ्र ही मोक्ष को प्राप्त होने वाले एक भवावतारी जीव हैं; केवल एक ही भव धारण करके मुक्त हो जाते हैं अर्थात् एक भव मनुष्य गति में लेकर मोक्ष अवस्था को प्राप्त होते हैं।

70. कर्म व नोकर्म में अन्तर :

आत्मा के योग परिणामों के द्वारा जो किया जाता है उसे कर्म कहते हैं। यह आत्मा को परतंत्र बनाने का मूल कारण है। कर्म के उदय से होने वाला यह औदारिक शरीर आदिरूप पुद्गल परिणाम जो आत्मा के सुख-दुःख में सहायक होता है, नोकर्म कहलाता है। स्थिति के भेद से भी कर्म और नोकर्म में अन्तर है।

71. कर्म जगत् का सृष्टा है :

विधि, सृष्टा, विधाता, देव, पुराकृत कर्म तथा ईश्वर ये सब कर्मरूपी ईश्वर के पर्याय वाचक शब्द हैं अर्थात् इनके सिवाय अन्य कोई लोक का बनाने वाला नहीं। **यह लोक अनादि से है और अनन्त काल तक विद्यमान रहेगा।**

72. कायक्लेश व परिषह में अन्तर :

कर्म के निमित्त से प्राप्त हुआ दु:ख परीषह और स्वयं किया गया दु:ख कायक्लेश है। यही दोनों में अन्तर है।

73. हुंडावसर्पिणी-काल की विशेषताएँ :

असंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी काल की शलाकाओं के बीत जाने पर प्रसिद्ध एक हुण्डावसर्पिणी आता है; उसके चिन्ह ये हैं-

1. इस हुण्डावसर्पिणी काल के भीतर सुषमा-दुषमा काल की स्थिति में से कुछ काल के अवशिष्ट रहने पर भी वर्षा आदि पड़ने लगती है और विकलेन्द्रिय जीवों की उत्पत्ति होने लगती है।
2. इसके अतिरिक्त इसी काल में कल्पवृक्षों का अन्त और कर्मभूमि का व्यापार प्रारम्भ हो जाता है।
3. इस काल में प्रथम तीर्थंकर और प्रथम चक्रवर्ती भी उत्पन्न हो जाते हैं
4. चक्रवर्ती का मान भंग हो जाता है।
5. थोड़े जीवों का मोक्षगमन भी हो जाता है।
6. इसके अतिरिक्त चक्रवर्ती से की गई द्विजो के वंश की उत्पत्ति भी होती है।
7. इस दुषमा-सुषमा काल में 59 ही श्लाका पुरुष हुए।
8. नौवें (पन्द्रहवें की बजाय) से सोलहवें तीर्थंकर तक सात तीर्थों में धर्म की व्युच्छिति हुई।
9. ग्यारह रुद्र और कलहप्रिय नौ नारद होते हैं।
10. सातवें, तेइसवें तथा अन्तिम चौबीसवें तीर्थंकर के उपसर्ग हुआ।
11. तृतीय, चतुर्थ व पंचम काल में उत्तम धर्म को नष्ट करने वाले विविध प्रकार के दुष्ट पापिष्ठ कुदेव और कुलिंगी भी दिखने लगते हैं।

12. चाण्डाल, शबर, पाण (श्वपच), पुंलिद, लाहल, किरात इत्यादि जातियाँ उत्पन्न हुई।
13. दुषमा नामक पंचम काल में 21 कल्की व 21 उपकल्की होते हैं।
14. तीर्थंकर को गृहस्थ दशा में कन्यायें भी उत्पन्न हुई हैं।
15. अतिवृष्टि, अनावृष्टि, भूवृद्धि और वज्राग्नि आदि का गिरना, इत्यादि विचित्र भेदों को लिये हुये नाना प्रकार के दोष इस हुण्डावसर्विणी काल में होते हैं।

74. चतुर्थ काल की कुछ विशेषताएँ :

इस काल में तीर्थंकर, सकल चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव और इनके प्रतिशत्रु उत्पन्न होते हैं। रुद्र, कामदेव, गणधर देव और जो चरम शरीरी मनुष्य हैं, उनकी उत्पत्ति दुषमा-सुषमा काल में मानी गई है।

75. पंचम काल की कुछ विशेषताएँ :

भगवान ऋषभदेव ने भरत चक्रवर्ती को उनके 16 स्वप्नों का फल दर्शाते हुये यह भविष्यवाणी की थी-

23 वें तीर्थंकर तक मिथ्यामतों का प्रचार अधिक न होगा। 24 वें तीर्थंकर के काल में कुलिंगी उत्पन्न हो जायेंगे। साधु तपश्चरण का भार वहन न कर सकेंगे। मूल व उत्तर गुणों को भी साधु भंग कर देंगे। मनुष्य दुराचारी हो जायेंगे, नीच कुलीन राजा होंगे, प्रजा जैन मुनियों को छोड़कर अन्य साधुओं के पास धर्म श्रवण करने लगेगी। व्यतंर देवों की उपासना का प्रचार होगा, धर्म म्लेच्छ खण्डों में रह जायेगा, ऋद्धिधारी मुनि नहीं होंगे, मिथ्या ब्राह्मणों का सत्कार होगा, अवधि व मन:पर्यय ज्ञान न होगा, तरुण अवस्था में ही मुनि पद में ठहरा जा सकेगा, मुनि एकल विहारी न होंगे, केवलज्ञान न होगा, प्रजा-चारित्र भ्रष्ट हो जायेगी, औषधियों के रस नष्ट हो जायेंगे। शिथिलाचारी साधु जिन भगवान का निर्मल शासन कलंकित करेंगे। जो भ्रष्टाचार और शिथिलाचार नष्ट करने में अपनी शक्ति लगाता है वहीं जैन समाज का सच्चा सेवक है। जब तक बाहरी पाखण्ड और मूढ़ता नष्ट नहीं होंगी तब तक सम्यक्त्व की अभ्यंतर प्रतीति की बातें बनाना महामूर्खता है। कषायें तभी मंद हो सकती हैं, जब बाह्य पाखण्ड नष्ट हो जाय।

76. पंचम काल में कल्कियों व उपकल्कियों का प्रमाण :

इस प्रकार 1000 वर्षों के बाद पृथक-पृथक एक-एक कल्की तथा 500 वर्षों के बाद एक-एक उपकल्की होता है - इस प्रकार 21 कल्की और इतने ही उपकल्की धर्म के द्रोह से एक सागरोपम आयु से युक्त होकर धम्मा पृथिवी (प्रथम नरक) में जन्म लेते हैं। इसके पश्चात् 3 वर्ष 8 मास और एक पक्ष के बीतने पर महा विषम, अति दुषमा छठाँ काल प्रविष्ट होता है।

77. अन्तिम कल्की के समय चर्तुसंघ की स्थिति :

उस समय वीरांगज नामक एक मुनि, सर्वश्री नामक आर्यिका तथा अग्निल, पंगुश्री नामके श्रावक युगल श्रावक-श्राविका होंगे। अन्त में ये चारों जन चार प्रकार के आहार और परिग्रह को मरण पर्यन्त छोड़कर संन्यास (समाधिमरण) को ग्रहण करते हैं।

78. प्रत्येक कल्की के काल में एक अवधिज्ञानी मुनि :

प्रत्येक कल्की के प्रति एक-एक दुषमाकालवर्ती साधु को अवधि ज्ञान प्राप्त होता है और उसके समय तक चातुर्वर्ण्य संघ भी अल्प हो जाता है।

79. छठे काल में :

छठे काल के अन्त में मनुष्य एक हाथ के लम्बे शरीर वाले होंगे और उनकी आयु बीस वर्ष होगी। उस काल के सब मनुष्य नरक और तिर्यंच योनि से ही मनुष्य पर्याय में जन्म धारण करेंगे और मरकर भी नरक व तिर्यंच गति में ही जायेंगे। शीत, क्षार, विष, वज्र, अग्नि, धूल और धूम्र इस प्रकार की सात तरह की सात-सात दिन तक भयंकर वर्षायें होंगी। इससे सारी पृथ्वी पर महान प्रलय हो जायगा। एक-एक योजन तक पृथ्वी जल मग्न हो जायेगी। इस महाप्रलय में अनेकों जीव मर जायेंगे।

श्रावण कृष्ण प्रतिपदा से उत्सर्पिणी काल का प्रारम्भ होगा; तब आयु, काय, बल, बुद्धि आदि उत्तरोत्तर बढ़ते जायेंगे। यह काल अवसर्पिणी काल से उल्टा चलेगा।

इस उत्सर्पिणी काल के प्रारम्भ से 49 दिन तक सात तरह की जैसे- जल, दूध, घृत, अमृत, सुगन्धित पवन आदि की शुभ वर्षायें होंगी। उनसे सर्वत्र शान्ति स्थापित हो जायेगी। वह दिन भाद्रपद शुक्ल पंचमी का दिन होगा।

80. कालों का समय :

विदेह क्षेत्र में हमेशा चतुर्थ काल रहता है। केवल भरत और ऐरावत क्षेत्रों में क्रम से निम्न प्रकार से काल परिवर्तन होता है - बीस कोड़ाकोड़ी सागर का एक कल्पकाल होता है। उसमें दस कोड़ाकोड़ी सागर का एक अवसर्पिणी काल और दस कोड़ाकोड़ी सागर का एक उत्सर्पिणी काल होता है। इन कालों में सुखमा सुखमा काल (पहला) चार कोड़ाकोड़ी सागर का, सुखम काल (दूसरा) तीन कोड़ाकोड़ी सागर का, सुखमादुखमा काल (तीसरा) दो कोड़ाकोड़ी सागर का, दुखमासुखमा काल (चौथा) बयालीस हजार वर्ष कम एक कोड़ाकोड़ी सागर का, दुखमा काल (पाँचवाँ) इक्कीस हजार वर्ष का और दुखमादुखमा काल (छठा) इक्कीस हजार वर्ष का होता है।

तीसरे सुखमादुखमा काल के अन्त में चौदह कुलकर होते हैं। चतुर्थ काल में तीर्थंकर, नारायण, प्रतिनारायण, चक्रवर्ती, आदि त्रेसठ शलाका पुरुष उत्पन्न होते हैं। इस काल में मनुष्य मुनि बनकर कर्मों को क्षय कर मोक्ष भी जाते हैं।

इस समय अवसर्पिणी काल चल रहा है। छठे काल के पूरा होने पर उत्सर्पिणी काल प्रारम्भ होगा। उसमें पहले छठा, फिर पाँचवाँ, फिर चौथा काल आयेगा। तब सबसे प्रथम श्रेणिक राजा का जीव, जो कि इस समय चौरासी हजार वर्ष की आयु लेकर पहले नरक में दु:ख भोग रहे हैं, वे पहले तीर्थंकर होंगे। उनका नाम **महापद्म** होगा और एक सौ सोलह वर्ष की उनकी आयु होगी। उनका शरीर सात हाथ का ऊँचा होगा। इसी प्रकार आयु, काय, बल यथाक्रम से बढ़ते चले जायेंगे।

80. सूर्य व चन्द्र ग्रहण के अर्थ में :

राहू चन्द्रमा को आच्छादित करता है और केतु सूर्य को आच्छादित करता है, इसी का नाम सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहण है।

81. सराग वीतराग चारित्र निर्देश :

वह चारित्र अन्य प्रकार से भी दो भेद रूप कहा जाता है - सराग व वीतराग। शुभोपयोगी साधु का व्रत, समिति, गुप्ति के विकल्पों रूप चारित्र सराग है और शुद्धोपयोगी साधु के वीतराग स्व-संवेदनरूप

ज्ञाता दृष्टा भाव वीतराग चारित्र है।

82. स्याद्वाद :

अनेकान्तमयी वस्तु का कथन करने की पद्धति स्याद्वाद है। किसी भी एक शब्द या वाक्य के द्वारा सारी की सारी वस्तु का युगपत् कथन करना अशक्य होने पर प्रयोजनवश कभी एक धर्म को मुख्य करके कथन करते हैं और कभी दूसरे को। मुख्य धर्म को सुनते हुए श्रोता को अन्य धर्म भी गौण रूप से स्वीकार होते रहें; उनका निषेध न होने पाये, इस प्रयोजन से अनेकान्तवादी अपने प्रत्येक वाक्य के साथ स्यात् या कथंचित् शब्द का प्रयोग करता है।

काहे होत अधीरा रे!

जो जो देखी वीतराग ने, सो सो होसी वीरा रे।
बिन देख्यो होसी नहीं क्यों ही, काहे होत अधीरा रे।।
समयो एक बढ़े नहीं घटसी, जो सुख-दु:ख की पीरा रे।
तू क्यों सोच करै मन कूड़ो, होय बज्र ज्यों हीरा रे।।
लगै न तीर कमान बान कहूँ, मार सके नहिं मीरा रे।
तूँ सम्हारि पौरूष - बल अपनौ, सुख अनन्त तौ तीरा रे।।
निश्चय ध्यान धरहु वा प्रभु को, जो टारै भव भीरा रे।
'भैया' चेत धरम निज अपनो, जो तारे भवनीरा रे।।

-भैया भगवतीदास जी

गुणस्थान सम्बन्धी चर्चा-

मिच्छो सासण मिस्सो, अविरदसम्मो य देसविरदो य।
विरदा पमत्त इदरो, अपुव्व अणियट्टि सुहुमो य॥
उवसंत खीणमोहो सजोगमेवलिजिणो अजोगी य।
चउदस जीव समासा कमेण सिद्धा य णादव्वा॥

(नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती रचित गोम्मटसार जीवकाण्ड से)

मोह और योग के निमित्त से जीव के श्रद्धा और चारित्र गुण की होने वाली तारतम्यरूप अवस्थाओं को गुणस्थान कहते हैं। गुणस्थान के निम्नलिखित चौदह भेद हैं -

1. मिथ्यात्व 2. सासादनसम्यक्त्व 3.सम्यग्मिथ्यात्व(मिश्र)
4. अविरतसम्यक्त्व 5. देशविरत 6. प्रमत्तविरत
7. अप्रमत्तविरत 8. अपूर्वकरण 9. अनिवृत्तिकरण
10. सूक्ष्मसांपराय 11. उपशांतमोह 12. क्षीणमोह
13. सयोगकेवली 14. अयोगकेवली।

भिन्न-भिन्न अपेक्षाओं से गुणस्थानों का विभाजन :-

1. अज्ञानी और ज्ञानी की अपेक्षा :

पहले मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर तीसरे सम्यग्मिथ्यात्व (मिश्र) गुणस्थानपर्यंत सर्व जीव मिथ्या श्रद्धान के धारक होने से अज्ञानी हैं, क्योंकि उन्हें सम्यग्दर्शन नहीं है। यहाँ यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि दूसरे और तीसरे गुणस्थानवर्ती जीव भव्य ही होते हैं और उनका मोक्ष जाना भी निश्चित है।

चौथे अविरतसम्यक्त्व गुणस्थान से चौदहवें अयोगकेवली गुणस्थानपर्यंत सभी जीव नियम से ज्ञानी अर्थात् सम्यग्ज्ञानी / यथार्थ ज्ञानी हैं (क्योंकि वे वस्तुस्वरूप को यथार्थ जानते हैं, उन्हें निजात्मा का ज्ञान तथा अनुभव है)।

2. अल्पज्ञ और सर्वज्ञ की अपेक्षा :

प्रथम गुणस्थान से लेकर बारहवें क्षीणमोह गुणस्थान पर्यंत के सभी जीव नियम से अल्पज्ञ ही हैं।

तेरहवें तथा चौदहवें गुणस्थानवर्ती परमगुरु अथवा अरहंत परमात्मा केवलज्ञान के धारक होते हैं (अत: वे सर्वज्ञ ही हैं)। सर्वज्ञ जीव पूर्ण ज्ञानी होते हैं। क्षायोपशमिक ज्ञान कभी पूर्ण नहीं होता है और केवलज्ञान कभी अपूर्ण नहीं होता; ऐसा नियम है।

3. **श्रावक की अपेक्षा :**

चतुर्थ तथा पंचम गुणस्थानवर्ती जीवों को श्रावक कहते हैं।

4. **रागी और वीतरागी की अपेक्षा :**

1. मात्र रागद्वेष परिणामों से सहित प्रथम तीनों गुणस्थानवर्ती जीव वीतरागभाव से रहित मात्र रागादि परिणाम वाले हैं, मोक्षमार्ग के विराधक हैं।
2. चौथे से दसवें गुणस्थान पर्यंत के सातों गुणस्थानवर्ती जीव राग तथा वीतरागरूप मिश्र परिणामों के धारक साधक जीव हैं।
3. ग्यारहवें गुणस्थान से लेकर चौदहवें गुणस्थानवर्ती सभी जीव नियम से मात्र वीतराग परिणाम के धारक ही होते हैं।

5. **दु:ख और सुख की अपेक्षा से चार प्रकार का विभाजन :**

1. पहले से तीसरे गुणस्थान पर्यंत सभी जीव दु:खी ही हैं।
2. चौथे से दसवें गुणस्थानवर्ती सभी जीव कथंचित् दु:खी भी हैं और सुखी भी हैं। कषाय के सद्भाव के कारण यथासंभव दु:ख है और यथायोग्य कषाय के अभाव से उत्पन्न वीतरागता के सद्भाव से यथासंभव सुखी भी हैं।
3. ग्यारहवें और बारहवें गुणस्थानवर्ती मुनिवर कषायों के अभाव के कारण पूर्ण सुखी हैं।
4. तेरहवें और चौदहवें गुणस्थानवर्ती अरहंत भगवन्तों में सुख अनन्तरूप से परिणमित होता है, अत: वे अनन्त सुखी हैं।

6. **बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा की अपेक्षा भेद :**

1. पहले से तीसरे गुणस्थानवर्ती सभी जीव बहिरात्मा हैं।
2. चौथे से बारहवें गुणस्थानवर्ती सभी जीव अंतरात्मा हैं।
3. तेरहवें और चौदहवें गुणस्थानवर्ती सभी जीव परमात्मा हैं।

7. **उपयोग की अपेक्षा :**

1. पहले से तीसरे गुणस्थानवर्ती सभी जीव मुख्यतया अशुभोपयोगी हैं।
2. चौथे से छठवें गुणस्थानवर्ती जीव मुख्यतया शुभोपयोगी और गौणरूप से शुद्धोपयोगी हैं।
3. सातवें से चौदहवें गुणस्थानवर्ती सभी जीव शुद्धोपयोगी हैं। एक अपेक्षा से चौथे गुणस्थान से लगाकर चौदहवें गुणस्थान पर्यंत के सर्व जीव धर्मात्मा कहलाते हैं।

गुणस्थानों में जीवों की संख्या

1. प्रथम गुणस्थान में जीवों की संख्या अनंतानंत है।
2. द्वितीय गुणस्थान में जीवों की संख्या पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण है।
3. तृतीय गुणस्थान में जीवों की संख्या पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण है।
4. चतुर्थ गुणस्थान में जीवों की संख्या पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण है।
5. पंचम गुणस्थान में जीवों की संख्या पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण है।
6. प्रथम गुणस्थान में मनुष्यों की अपेक्षा संख्या जगत श्रेणी के असंख्यातवें भाग प्रमाण है।
7. द्वितीय गुणस्थान में मनुष्यों की अपेक्षा संख्या बावन (52) करोड़ है।
8. तृतीय गुणस्थान में मनुष्यों की अपेक्षा संख्या एक सौ चार (104) करोड़ है।
9. चतुर्थ गुणस्थान में मनुष्यों की अपेक्षा संख्या सात सौ (700) करोड़ है।
10. पंचम गुणस्थान में मनुष्यों की अपेक्षा संख्या तेरह (13) करोड़ है।
11. छठवें गुणस्थान में जीवों की संख्या पाँच करोड़, तिरानवे लाख, अट्ठानवे हजार, दो सौ छह (5,93,98,206) है।
12. सातवें गुणस्थान में जीवों की संख्या दो करोड़, छियानवे लाख, निन्यानवे हजार, एक सौ तीन (2,96,99,103) है।
13. उपशम श्रेणी के आठवें, नौवें, दसवें, ग्यारहवें गुणस्थानों में 299,299,299,299 जीव हैं।
14. उपशम श्रेणी के चारों गुणस्थानों में जीवों की संख्या 1196 है।
15. क्षपक श्रेणी के आठवें, नौवें, दसवें, बारहवें गुणस्थानों में जीवों की संख्या 598,598,598,598 है।
16. क्षपक श्रेणी के चारों गुणस्थानों में जीवों की संख्या 2392 है।
17. तेरहवें गुणस्थान में जीवों की संख्या आठ लाख, अठानवे हजार, पाँच सौ दो (8,98,502) है।
18. चौदहवें गुणस्थान में जीवों की संख्या 598 है।
19. छठवें गुणस्थान से चौदहवें गुणस्थान तक जीवों की संख्या का जोड़ है – 5,93,98,206 + 2,96,99,103 + 1,196 + 2,392 + 8,98,502 + 598 = 8,99,99,997 ।
20. ये तीन कम नौ करोड़ मुनिराज भावलिंगी हैं।
21. द्रव्यलिंगी मुनिराज पहले, दूसरे, तीसरे, चौथे, पांचवे गुणस्थान में भी होते हैं।

बन्ध, उदय, सत्त्व

गुणस्थानों में बन्ध सम्बन्धी सामान्य नियम

1. मिथ्यात्व की प्रधानता से 16 प्रकृति का बंध होता है।
2. अनन्तानुबन्धी कषाय उदय जनित अविरती से 25 प्रकृति का बंध होता है।
3. अप्रत्याख्यानावरण कषायोदयजनित अविरती से 10 प्रकृति का बंध होता है।
4. प्रत्याख्यानावरण कषायोदयजनित अविरती से 4 प्रकृति का बंध होता है।
5. संज्वलन के तीव्र उदयजनित प्रमाद से 6 प्रकृति का बंध होता है।
6. संज्वलन और नोकषाय के मंद उदय से 58 प्रकृति का बंध होता है।
7. योग से एक साता वेदनीय का बंध होता है।
8. तीर्थंकर प्रकृति का बंध सम्यग्दृष्टि के चतुर्थ गुणस्थान से आठवें गुणस्थान के छठे भाग पर्यंत ही होता है।
9. आहारक शरीर और आहारक अंगोपांग का बंध सातवें से आठवें गुणस्थान के छठे भाग पर्यंत ही होता है।
10. तीसरे गुणस्थान में किसी भी आयु का बंध नहीं होता है।

गुणस्थानों में मूलकर्मों का बंध

1. ज्ञानावरण कर्म का बंध पहले गुणस्थान से दसवें गुणस्थान पर्यंत होता है।
2. दर्शनावरण कर्म का बंध पहले से दसवें गुणस्थान पर्यंत होता है।
3. मोहनीय कर्म का बंध पहले गुणस्थान से नौवें गुणस्थान पर्यंत होता है।
4. अंतराय कर्म का बंध पहले से दसवें गुणस्थान पर्यंत होता है।
5. आयु कर्म का बंध पहले से सातवें गुणस्थान पर्यंत होता है।
6. नामकर्म का बंध पहले से दसवें गुणस्थान पर्यंत होता है।
7. गोत्रकर्म का बंध पहले से दसवें गुणस्थान पर्यंत होता है।
8. वेदनीय कर्म का बंध पहले से तेरहवें गुणस्थान पर्यंत होता है।

गुणस्थानों में उदय

1. तीर्थंकर प्रकृति का उदय तेरहवें और चौदहवें गुणस्थान में ही होता है।
2. आहारक शरीर और आहारक अंगोपांग का उदय छठवें गुणस्थान में ही होता है।
3. सम्यग्मिथ्यात्व का उदय तीसरे गुणस्थान में ही होता है।
4. सम्यग्प्रकृति का उदय चौथे से सातवें गुणस्थान पर्यंत ही होता है।
5. नरकगत्यानुपूर्वी का उदय दूसरे गुणस्थान में नहीं होता है।
6. चौथे गुणस्थान में चारों आनुपूर्वी का उदय होता है।
7. पहला गुणस्थान एक मिथ्यात्व और चार अनन्तानुबन्धी के उदय से होता है।
8. दूसरा गुणस्थान अनन्तानुबन्धी के उदय से होता है।
9. तीसरा गुणस्थान सम्यग्मिथ्यात्व के उदय से होता है।
10. चौथा गुणस्थान सात प्रकृतियों - दर्शन मोहनीय की 3 और चारित्र मोहनीय की 4 प्रकृतियों के उपशम, क्षय या एक सम्यग्प्रकृति के उदय के साथ अप्रत्याख्यानावण 4, प्रत्याख्यानावरण 4, संज्वलन 4 और नो कषाय 9 - इन इक्कीस प्रकृति के उदय से होता है।
11. पाँचवाँ गुणस्थान चारित्र मोहनीय की 17 प्रकृतियों के उदय से होता है (प्रत्याख्यान 4, संज्वलन 4 और नौ नोकषाय)।
12. छठा गुणस्थान संज्वलन व नौ नोकषाय के तीव्र उदय से होता है।
13. सातवाँ गुणस्थान संज्वलन और नोकषाय के मंद उदय से होता है।
14. आठवाँ गुणस्थान संज्वलन और नौ नोकषाय के मंदतर उदय से होता है।
15. नवाँ गुणस्थान संज्वलन और नौ नोकषाय के मंदतम उदय से होता है।
16. दसवाँ गुणस्थान संज्वलन सूक्ष्म लोभ के उदय से होता है।
17. ग्यारहवाँ गुणस्थान मोहनीय कर्म के उपशम से होता है।
18. बारहवाँ गुणस्थान मोहनीय कर्म के क्षय से होता है।
19. तेरहवाँ गुणस्थान घातिया कर्म के क्षय से होता है।

गुणस्थानों में मूलकर्मों का उदय

1. ज्ञानावरण कर्म का उदय पहले से बारहवें गुणस्थान पर्यंत होता है।
2. दर्शनावरण कर्म का उदय पहले से बारहवें गुणस्थान पर्यंत होता है।
3. मोहनीय कर्म का उदय पहले से दसवें गुणस्थान पर्यंत होता है।
4. अंतराय कर्म का उदय पहले से बारहवें गुणस्थान पर्यंत होता है।
5. नाम कर्म का उदय पहले से चौदहवें गुणस्थान पर्यंत होता है।
6. आयु कर्म का उदय पहले से चौदहवें गुणस्थान पर्यंत होता है।
7. गोत्र कर्म का उदय पहले से चौदहवें गुणस्थान पर्यंत होता है।
8. वेदनीय कर्म का उदय पहले से चौदहवें गुणस्थान पर्यंत होता है।

गुणस्थानों में मूलकर्मों का सत्व

1. ज्ञानावरण कर्म का पहले से बारहवें गुणस्थान पर्यंत सत्त्व रहता है।
2. दर्शनावरण कर्म का पहले से बारहवें गुणस्थान पर्यंत सत्त्व रहता है।
3. मोहनीय कर्म का पहले से दसवें गुणस्थान पर्यंत सत्त्व रहता है।
4. अंतराय कर्म का पहले से बारहवें गुणस्थान पर्यंत सत्त्व रहता है।
5. नाम कर्म का पहले से चौदहवें गुणस्थान पर्यंत सत्त्व रहता है।
6. आयु कर्म का पहले से चौदहवें गुणस्थान पर्यंत सत्त्व रहता है।
7. गोत्र कर्म का पहले से चौदहवें गुणस्थान पर्यंत सत्त्व रहता है।
8. वेदनीय कर्म का पहले से चौदहवें गुणस्थान पर्यंत सत्त्व रहता है।

इस प्रकार का दुर्लभ अवसर प्राप्त करके हे जीव! यदि तूने अपने स्वज्ञेय को नहीं पहचाना और स्व आश्रय द्वारा मोक्षमार्ग को नहीं साधा तो तेरा जीवन व्यर्थ है। यह अवसर चला जायेगा और तू पश्चाताप करता ही रह जायेगा ..... इसलिये जाग ..... और स्वहित साधने में तत्पर हो।

चौबीस दंडक

दोहा-

वंदों वीर सुधीर को, महावीर गंभीर।
वर्धमान सन्मति महा, देवदेव अतिवीर।।
गत्यागत्य प्रकाश जो, गत्यागत्य वितीत।
अद्‌भुत अतिगत सुगति जो जैनेश्वर जगतीत।।
जाकी भक्ति बिना किल, गये अनंतेकाल।
अगिनत गत्यागति धरीं घट्‌यो न जग जंजाल।।
चौबीसौं दंडकविषै, धारी अनंती देह।
लख्यो न जिनपद ज्ञानविन, शुद्ध स्वरूप विदेह।।
जिनवाणी परसादतैं, लहिये आतमज्ञान।
दहिये गत्यागति सबै गहिये पद निर्वान।।
चौबीसौं दंडक तनी, गत्यागति सुनि लेहु।
सुनकर विरकत भाव धर, चहुँगति पानी देहु।।

चोपाई-

पहिलो दंडक नारकितनो। भवनपती दस दंडक भनो।
ज्योतिस व्यंतरस्वर्ग निवास। थावर पंच महा दुखरास।
विकलत्रय अरु नर तिर्यंच। पंचेंद्री धारक परपंच।
यह चौबीस जु दंडक कहे। अब सुनु इनमें भेद जु लहे।
नारक की गति आगति दोय। नर तिर्यंच पंचेंद्री जोय।
जाय असैनी पहली लगैं। मनविन हिंसाकर्म न पगैं।
सरीसर्प दूजे लौं जाय। अरु पक्षी तीजै लौं थाय।
सर्प जाय चौथे लौं सही। नाहर पंचम आगैं नहीं।
नारी छट्‌ठै लगही जाय। नर अरु मच्छ सातवैं थाय।
ऐतौ नारक आगति कही। अब सुन नारककी गति सही।
नरक सातवें को जा जीव। पशुगति ही पावै दुखदीव।
अरु सब नारक मर नर पशू। दोऊ गति पावैं परवसू।
छट्‌ठे को निकस्यो जु कदापि। सम्यक सह श्रावक निष्पाप।
पंचम-निकस्यो मुनि हू होय। चौथे का केवलि हू कोय।

तृतीय नरक को निकस्यो जीव। तीर्थंकर भी हो जगपीव।
यह नारक की गत्यागती। भाषी जिनवाणी मैं सती।
तेरह दंडक देव निकाय जिनको भेद सुनो मन लाय।
नर तिर्यंच पंचेंद्री बिना। औरन को नहिं सुरपद गिना।
देव मरै गति पांच लहाँहिं। भूजल तरुवर नर तिरमाहिं।
दूज सुरग उपरले देव। थावर हवै न कह्यो जिनदेव।
सहस्रारतैं ऊँचे खिरा मरकर होवै निश्चय नरा।
भोगभूमि के तिर्यंच नरा दूजे देवलोकतैं परा।
जाय नहीं यह निश्चय कही। देवन भोगभूमि नहिं गही।
कर्मभूमियाँ नर अरु ढोर। इन बिन भोगभूमि की ठौर।
जाइ न तातैं आगति दोइ। गति इनकी देवन की होइ।
कर्मभूमियाँ तिर्यग बुद्ध। श्रावकव्रत धार बारम शुद्ध।
सहस्रार ऊपर तिर्यंच। जाय नहीं तज ह्वै परपंच।
अव्रत सम्यग्दृष्टी नरा। बारम तैं ऊपर नहिं धरा।
अन्यमती पंचागनि साध। भवनत्रिक तैं जाइ न वाद।
परिव्राजक तिरदंडी देह। पंचम परै न उपजैं जेह।
परमहंस नामा परमती। सहस्रार ऊपर नहिं गती।
मोक्ष न पावै परमति माहिं। जैन बिना नहिं कर्म नसाहि।
श्रावक आर्य अणुव्रत धार। बहुरि श्राविकागण अविकार।
सोलह स्वर्ग परैं नहिं जाय। ऐसो भेद कहयो जिनराज।
द्रव्य लिंगधारी जे यती। नवग्रीवक ऊपर नहिं गती।
नव अनुउत्तर पंचोत्तरा। महामुनी बिन और न रंच।
केई बार जीव सुर भया। पण केइ पद नाहीं गहा।
इंद्र भयो न शचीहू भयो। लोकपाल कबहू नहिं थयो।
लोकांतिक हूवो न कदापि। नहीं अनुत्तर पहुँच्यो आप।
ए पद धार बहु भव नहिं धारै। अल्पकालमैं मुक्ति वरै।
हैं विमान सरवारथ सिद्ध। सबतैं ऊँचो अतुल सुरिद्ध।
ताके सिर पर है शिवलोक। परैं अनंतानंत अलोक।
गत्यागत्य देवगति भनी। अब सुन भ्रात मनुषगति तनी।
चौबीसों दंडक के माहिं। मनुष जांहिं यामैं शक नाहिं।

मोक्षहु पावैं मनुष मुनीश। सकल धरा को जो अवनीश।
मुनि बिन मोक्ष नहीं कोउ बरै। मनुष बिना नहिं मुनि ह्वै तरै।
सम्यग्दृष्टि जे मुनिराय। भवजल उतरै शिवपुर जाय।
तहाँ जाय अविनाशी होय। फिर पीछैं आवै नहिं कोय।
रहै शाश्वते शिवपुर माँहि। आतम राम भयो सक नाहिं।
गति पच्चीस कही नरतनी। आगति फुनि बाइसहि भनी।
तेजकाय अरु वाय जुकाय। इनविन और सबै नर थाय।
गति पच्चीस आगति बाईस। मनुषतनी जो भाखी ईश।
ताहि सुरासुर आतमरूप। ध्यावै चिदानंद चिद्रूप।
तौ उतरो भवसागर जिया। और न शिवपुर मारग लिया।
यह सामान्य मनुष की कही। अब सुन पदवी धार की सही।
तीर्थंकर की दो आगती। स्वर्ग नरक तैं आवे सती।
फेरि न गति धारै जगदीस। जाय विराजैं जग के शीस।
चक्री अर्धचक्रि अरु हली। सुरग लोक तैं आवैं बली।
इनकी आगति एकहि जान। गति की रीति कहूँ जू बखानि।
चक्री की गति तीन जु होय। सुरग नरक अरु शिवपुर जोय।
तप धारै तौ सुर शिव जांय। मरै राज मैं नरकहि ठांय।
आखरिमैं ह्वै पद निर्वान। पदवी धारक बड़े प्रधान।
बलभद्रन की दोयहि गती। सुरग जाँहि के हवै शिवपती।
तप धारैं ये निश्चय भया। मुक्तिपात्र ये श्रुति मैं कह्या।
अर्धचक्रि को एकहि भेद। नारक होय लहै अतिखेद।
राजमाहिं ये निश्चय मरैं। तद्भव मुक्ति पंथ नहिं धारैं।
आखिर पावै जिनवर लोक। पुरुष शलाका शिव के थोक।
ये पद कबहुँ न पाये जीव। ये पद पाय होय शिवपीव।
औरहु पद कइयक नहिं गहे। कुलकर नारद पदहु न लहे।
रुद्र भये न मदन ना भये। जिनवर मातपिता नहिं थये।
ये पद पाय जीव नहिं रुलै। थोड़े हि दिन मैं जिन सम तुलै।
इनकी आगति श्रुत तैं जानि। गति को भेद कहूँ जो बखानि।
कुलकर देवलोक ही गहै। मदन सुरग शिवपुर को लहै।
नारद रुद्र अधोगति जाय। सहै कलेश महा दुखदाय।

जन्मांतर पावैं निरवान। बड़े पुरुष जे सूत्र प्रमान।
तीर्थंकर के पिता प्रसिद्ध। स्वर्ग जांय कै हो हैं सिद्ध।
माता स्वर्ग लोक ही जाय। आखिर शिवपुर लोक लहाय।
ये सब रीति मनुष की कही। अब सुन तिर्यंग की गति सही।
पंचेंद्री पशु मरण कराय। चौबीसों दंडक मैं जाय।
चौबीसौं दंडक तैं मरै। पशू होय तौ नाहि न करै।
गति आगती कही चौबीस। पंचेंद्री पशु की जिन ईश।
तौ परमेश्वर को पथ गहौ। चौबिस दंडक नाहीं लहौ।
विकलत्रय की दश ही गती। दस आगती कहीं जगपती।
पाँचों थावर विकलजु तीन। नर तिर्यंच पंचेंद्री लीन।
इनहीं दश मैं उपजैं जाय। पृथिवी पानी तरवरकाय।
इनही तैं विकलत्रय आय। इनही दसमैं जन्म कराय।
नारक विन सब दंडक जोय पृथ्वी पानी तरुवर सोय।
तेज वायु मरि नवमैं जाय। मनुष होय नहिं सूत्र कहाय।
थावर पंच विकलत्रय ढौर। ये नवगति भाखी मदमोर।
दसतैं आवै तेज अरु वाय। होय सही गावै जिनराय।
ये चौईस दंडके कहे। इनकूँ त्याग परमपद लहे।
इनमैं रुलै सु जग को जीव इनतैं रहित सु त्रिभुवनजीव।
जीव ईस मैं और न भेद। ए करमी वे कर्म उछेद।
कर्म बंध जोलों जग जीव। नाशे कर्म होय शिव-पीव।

दोहा-

मिथ्या अव्रत योग अर, मद परमाद कषाय।
इंद्रियविषय जु त्याग ये, भ्रमन दूरि ह्वै जाय।।
जिन बिन गति भवतैं धारी, भयी नहीं सुरझार।
जिनमारग उर धारिये; हो हैं भवदधिपार।।
जिन भज सब परपंच तज बड़ी बात है येह।
पंच महाव्रत धारिकै, भवजल कों जल देह।।
अंतर करण जू सुद्ध हवै, जिनधर्मी अभिराम।
भाषा कारण कर सकूँ भाषी **दौलतराम**।।

स्वर्गों का वर्णन

स्वर्ग	स्वर्ग का नाम	एकत्रित	इन्द्र	नगरी	उत्कृष्ट आयु	जघन्य आयु	पटल	विमान की संख्या	अवगाहना	विरहकाल	जन्म मरण का उत्कृष्ट अन्तर
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
1.	सौधर्म	1	इन्द्र	84000	2 सागर	1 पल्य	सोलह स्वर्ग में 52 पटल, जिनमें देवों के विमान	32 लाख	7 हाथ	6 मुहूर्त	7 दिन
2.	ऐशान		इन्द्र	80000	2 सागर	1 पल्य		28 लाख	7 हाथ	4 मुहूर्त	7 दिन
3.	सानत कुमार	2	इन्द्र	72000	7 सागर	2 सागर		12 लाख	6 हाथ	9 दिन	15 दिन
4.	माहेन्द्र		इन्द्र	70000	7 सागर	2 सागर		8 लाख	6 हाथ	12 दिन	15 मास
5.	ब्रम्ह	3	इन्द्र	60000	10 सागर	7 सागर		4 लाख	5 हाथ	40 दिन	1 मास
6.	ब्रम्होन्तर		–	–	10 सागर	7 सागर			5 हाथ	80 दिन	1 मास
7.	लान्तव	4	–	–	14 सागर	10 सागर		50 लाख	4 हाथ	80 दिन	1 मास
8.	कापिष्ट		इन्द्र	50000	14 सागर	10 सागर			4 हाथ	80 दिन	1 मास

स्वर्गों का वर्णन

जघन्य अन्तर जन्म मरण	श्वासोच्छ्वास	आहार का समय	अवधि ज्ञान का क्षेत्र	देवों में गुणस्थान आदि का वर्णन	देवों के मुकुटों का चिन्ह	देवों में काम सेवन	लेश्या
13	14	15	16	17	18	19	20
1 समय	1 माह बाद	2 हजार वर्ष बाद मानसिक आहार	प्रथम नरक तक	देवों में प्रथम गुणस्थान से लेकर चौथे अविरति पर्यंत गुण स्थान होते हैं, प्राण दस, संज्ञायें 4, इन्द्रिय पांच और काय त्रय होता हैं। योग ग्यारह, वेद दो, दर्शन 3 और ज्ञान छः होते हैं।	सूअर	मनुष्यों की तरह शरीर से काम सेवन	पीत लेश्या
1 समय	1 माह बाद	2 हजार वर्ष बाद	प्रथम नरक तक		,,	,,	पीत लेश्या
1 समय	3½ माह बाद	7 हजार वर्ष बाद	प्रथम नरक तक		हिरण	स्पर्श मात्र से प्रवीचार है	पीत पद्म लेश्या
1 समय	3½ माह बाद	7 हजार वर्ष बाद	दूसरे नरक तक	,,	,,	,,	पीत पद्म लेश्या
1 समय	5 माह बाद	10 हजार वर्ष बाद	दूसरे नरक तक	,,	भैसा	परस्पर अवलोकन से प्रवीचार है	पद्म लेश्या
1 समय	5 माह बाद	10 हजार वर्ष बाद	तीसरे नरक तक	,,	,,	,,	पद्म लेश्या
1 समय	7 माह बाद	14 हजार वर्ष बाद	तीसरे नरक तक	,,	मछली	परस्पर अवलोकन से प्रवीचार है	पद्म लेश्या
1 समय	7 माह बाद	14 हजार वर्ष बाद	तीसरे नरक तक	,,	,,	,,	पद्म लेश्या

स्वर्गों का वर्णन

स्वर्ग	स्वर्ग का नाम	एकत्रलय	इन्द्र	नगरी	उत्कृष्ट आयु	जघन्य आयु	पटल	विमान की संख्या	अवगाहना	विरहकाल	जन्म मरण का उत्कृष्ट अन्तर
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
9.	शुक्र	5	इन्द्र	40000	16 सागर	14 सागर	और इन विमानों में अकृत्रिम चैत्यालय होते हैं।	40 हजार	3½ हाथ	80 दिन	2 मास
10.	महाशुक्र		–	–	16 सागर	14 सागर			3½ हाथ	80 दिन	2 मास
11.	शतार	6	–	–	18 सागर	16 सागर		6 हजार	3 हाथ	100 दिन	2 मास
12.	सहस्त्रार		इन्द्र	30000	18 सागर	16 सागर			3 हाथ	100 दिन	2 मास
13.	आनत	7	इन्द्र	20000	20 सागर	18 सागर		तेरहवें चौदहवें पन्द्रहवें और सोलहवें में 700 विमान	3 हाथ	100 वर्ष	4 मास
14.	प्राणत		इन्द्र	20000	20 सागर	18 सागर			3 हाथ	100 वर्ष	4 मास
15.	आरण	8	इन्द्र	20000	22 सागर	20 सागर			3 हाथ	100 वर्ष	4 मास
16.	अच्युत		इन्द्र	20000	22 सागर	20 सागर			3 हाथ	100 वर्ष	4 मास

स्वर्गों का वर्णन

जघन्य अन्तर जन्म मरण	श्वासोच्छ्वास	आहार का समय	अवधि ज्ञान का क्षेत्र	देवों में गुणस्थान आदि का वर्णन	देवों के मुकुटों का चिन्ह	देवों में काम सेवन	लेश्या
13	14	15	16	17	18	19	20
1 समय	8 माह बाद	16 हजार वर्ष बाद	चौथे नरक तक	,,	मेंढक	शब्द सुनने मात्र से प्रवीचार है।	पद्म और शुक्ल लेश्या
1 समय	8 माह बाद	16 हजार वर्ष बाद	चौथे नरक तक	,,	,,	,,	,,
1 समय	9 माह बाद	18 हजार वर्ष बाद	चौथे नरक तक	,,	छगला	,,	,,
1 समय	9 माह बाद	18 हजार वर्ष बाद	पाँचवे नरक तक	,,	,,	,,	,,
1 समय	10 माह बाद	20 हजार वर्ष बाद	पाँचवे नरक तक	,,	बैल	मन में चिंतवन मात्र से प्रवीचार है	शुक्ल लेश्या
1 समय	10 माह बाद	20 हजार वर्ष बाद	पाँचवे नरक तक	,,	,,	,,	शुक्ल लेश्या
1 समय	11 माह बाद	22 हजार वर्ष बाद	पाँचवे नरक तक	,,	कल्पवृक्ष	,,	शुक्ल लेश्या
1 समय	11 माह बाद	22 हजार वर्ष बाद	पाँचवे नरक तक	,,	,,	,,	,,

स्वर्गों का वर्णन

स्वर्ग	स्वर्ग का नाम	एकावतारी	इन्द्र	नगरी	उत्कृष्ट आयु	जघन्य आयु	पटल	विमान की संख्या	अवगाहना	विरहकाल	जन्म मरण का उत्कृष्ट अन्तर
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
	नवग्रैवेयिक										
1.	सुदर्शन		अहमिन्द्र		23 सागर	22 सागर		111 विमान	2½ हाथ	1 हजार वर्ष	
2.	अमोद				24 सागर	23 सागर					
3.	सुप्रबुद्ध				25 सागर	24 सागर					
4.	यशोधर				26 सागर	25 सागर					
5.	सुभद्र				27 सागर	26 सागर	9 पटल	107 विमान	2 हाथ	1 हजार वर्ष	6 मास
6.	ग्रैवेयिक				28 सागर	27 सागर					
7.	सुमनस				29 सागर	28 सागर					
8.	सोमनस				30 सागर	29 सागर					
9.	प्रीतिकर				31 सागर	30 सागर		91 विमान	1½ हाथ	1 हजार वर्ष	

स्वर्गों का वर्णन

जघन्य अन्तर जन्म मरण	श्वासोच्छ्वास	आहार का समय	अवधि ज्ञान का क्षेत्र	देवों में गुणस्थान आदि का वर्णन	देवों के मुकुटों का चिन्ह	देवों में काम सेवन	लेश्या
13	14	15	16	17	18	19	20
				,,			
	11½ माह बाद	23 हजार वर्ष बाद		,,	ये सब अहमिन्द्र होते हैं। इनमें किसी प्रकार की भी विषमता नहीं होती है।	काम वासना होती ही नहीं और न ही यहाँ देवांगना होती हैं।	शुक्ल लेश्या
	12 माह बाद	24 हजार वर्ष बाद		,,			
	12½ माह बाद	25 हजार वर्ष बाद		,,			
	13 माह बाद	26 हजार वर्ष बाद		,,			
1 समय	13½ माह बाद	27 हजार वर्ष बाद	छठवें नरक तक	,,			
	14 माह बाद	28 हजार वर्ष बाद		,,			
	14½ माह बाद	29 हजार वर्ष बाद		,,			
	15 माह बाद	30 हजार वर्ष बाद		,,			
	15½ माह बाद	31 हजार वर्ष बाद		,,			

स्वर्गों का वर्णन

स्वर्ग	स्वर्ग का नाम	इन्द्रक	इन्द्र	नगरी	उत्कृष्ट आयु	जघन्य आयु	पटल	विमान की संख्या	अवगाहना	विरहकाल	जन्म मरण का उत्कृष्ट अन्तर
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
	<u>नौ अनुदिश</u>										
1.	आदित्य		अहमिन्द्र								
2.	अर्ची										
3.	अर्चीमालिनी										
4.	वज्र									पल्य का	
5.	वैराच				32 सागर	31 सागर	1 पटल	9 विमान	1 हाथ	असंख्यातवाँ	6 मास
6.	सौम									भाग	
7.	सोमरूप										
8.	अंक										
9.	स्फुटिक										

स्वर्गों का वर्णन

जघन्य अन्तर जन्म मरण	श्वासोच्छ्वास	आहार का समय	अवधि ज्ञान का क्षेत्र	देवों में गुणस्थान आदि का वर्णन	देवों के मुकुटों का चिन्ह	देवों में काम सेवन	लेश्या
13	14	15	16	17	18	19	20
				चौथा अविरत सम्यक्त्व			
				,,			
				,,			
				,,			
1 समय	16 माह बाद	32 हजार वर्ष बाद	सातवें नरक तक	,,	,,	,,	परम शुक्ल लेश्या
				,,			
				,,			
				,,			

स्वर्गों का वर्णन

स्वर्ग	स्वर्ग का नाम	एकत्व	इन्द्र	नगरी	उत्कृष्ट आयु	जघन्य आयु	पटल	विमान की संख्या	अवगाहना	विरहकाल	जन्म मरण का उत्कृष्ट अन्तर
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
	अनुत्तर										
1.	विजय		अहमिन्द्र		33 सागर	32 सागर					
2.	वैजयन्त				33 सागर	32 सागर				पल्य का	
3.	जयन्त				33 सागर	32 सागर	1 पटल	5 विमान	1 हाथ	असंख्यातवाँ	6 मास
4.	अपराजित				33 सागर	32 सागर				भाग	
5.	सर्वार्थ सिद्धि				33 सागर	33 सागर					

स्वर्गों का वर्णन

जघन्य अन्तर जन्म मरण	श्वासोच्छ्वास	आहार का समय	अवधि ज्ञान का क्षेत्र	देवों में गुणस्थान आदि का वर्णन	देवों के मुकुटों का चिन्ह	देवों में काम सेवन	लेश्या
13	14	15	16	17	18	19	20
1 समय	16½ माह बाद	33 हजार वर्ष बाद	चौदह राजू, प्रमाण त्रस नाली पूर्ण तक	चौथा अविरत सम्यक्त्व	ये सब अहमिन्द्र होते हैं। इनमें किसी भी प्रकार की विषमता नहीं होती है।	यहाँ पर काम वासना नहीं होती और न ही यहाँ पर कोई देवांगना होती है।	परम शुक्ल लेश्या

विशेष :-

- सौधर्म, ऐशान, सानत और माहेन्द्र स्वर्ग में चार मानस्तम्भ होते हैं। उन मानस्तम्भों में तीर्थंकरों के वस्त्र व आभूषण रखने के रतनमयी पिटारे हैं पहले स्वर्ग के मानस्तम्भ में भरत क्षेत्र के तीर्थंकर के वस्त्र-आभूषण, दूसरे स्वर्ग के मानस्तम्भ में ऐरावत क्षेत्र के तीर्थंकरों के वस्त्र-आभूषण, तीसरे स्वर्ग के मानस्तम्भ में पूर्व विदेह के तीर्थंकरों और चौथे स्वर्ग के मानस्तम्भ में पश्चिम विदेह के तीर्थंकरों के वस्त्र-आभूषण रहते हैं।
- मानस्तम्भों के पास सुन्दर रत्नमयी उपपाद शैय्याएं हैं, जिन पर इन्दों का उपपाद जन्म होता है।
- स्वर्ग की समस्त देवांगनायें पहले व दूसरे स्वर्ग में ही जन्म प्राप्त करती है और अपने-अपने स्वर्ग के देव व इन्द्र अपनी अपनी देवांगनाओं को अपने विमानों में ले जाते हैं।
- सौधर्म, सानत, ब्रम्ह, लान्तव, आनत और आरण ये छः दक्षिणेन्द्र और ऐशान, माहेन्द्र, शुक्र, सहस्रार, प्राणत और अच्युत ये उत्तरेन्द्र हैं।
- इन्द्र तथा इन्द्र की देवी, प्रतीन्द्र और लोकपाल का उत्कृष्ट विरह काल छः मास का होता है। त्रायस्त्रिंश, सामानिक, आत्मरक्ष और पारिषद् जाति के देवों का विरह काल उत्कृष्ट 4 मास का है।
- स्वर्ग के छः दक्षिणेन्द्र जो कि एक भवतारी होते हैं उनकी देवांगनाओं की उत्कृष्ट आयु क्रमशः 5, 9, 13, 17, 34 और 48 पल्य होती है तथा छः उत्तरेन्द्र की देवांगनाओं की उत्कृष्ट आयु क्रम से 7, 11, 23, 27, 41 और 55 पल्य होती है।
- लौकान्तिक देव पाँचवें ब्रम्ह स्वर्ग के अन्त में दिशा और विदिशा में रहते हैं इनको ब्रम्ह ऋषि भी कहते हैं। इनकी कोई देवांगनायें नहीं होती। इनकी उत्कृष्ट और जघन्य आयु 8 सागर है, ये एक भवतारी होते हैं। यह केवल तीर्थंकर के वैराग्यवर्धन के लिये उनके पास जाते हैं, लौकान्तिक देव आठ प्रकार के होते हैं।

नरकों का वर्णन

नरक	नरक भूमि का यौगिक नाम	नरक रौढ़िक भूमि का नाम	पटल की संख्या	नरक बिलों की संख्या	नरकों की पृथ्वी की मोटाई	नरक की पृथ्वी का वर्णन	जन्म का अंतर	उत्कृष्ट आयु	अवधि ज्ञान की सीमा	अवधि ज्ञान की सीमा
1.	रत्न प्रभा	धम्मा	13	30 लाख	1 लाख 80 हजार योजन	रत्न के समान	24 मुहूर्त	1 सागर	4 कोस तक	10 हजार वर्ष
2.	शर्करा प्रभा	वंशा	11	25 लाख	32 हजार योजन	शर्करा के समान	7 दिन	3 सागर	3½ कोस तक	1 सागर
3.	बालुका प्रभा	मेघा	9	15 लाख	28 हजार योजन	रेत के समान	15 दिन	7 सागर	3 कोस तक	3 सागर
4.	पंक प्रभा	अंजना	7	10 लाख	24 हजार योजन	कीचड़ के समान	एक मास	10 सागर	2½ कोस तक	7 सागर
5.	धूम प्रभा	अरिष्ठा	5	3 लाख	20 हजार योजन	धुंऐ के समान	2 मास	17 सागर	2 कोस तक	10 सागर
6.	तमः प्रभा	मघवी	3	पाँच कम 1 लाख	16 हजार योजन	अन्धकार के समान	4 मास	22 सागर	1½ कोस तक	17 सागर
7.	महातमः प्रभा	माधवी	1	पाँच	8 हजार योजन	गहरे अंधकार के समान	6 मास	33 सागर	1 कोस तक	22 सागर
			49 पटल	**84 लाख**						

नरकों का वर्णन

नरक में आहार	नरक में दुर्गन्ध	गुण स्थान	सामान्य पर्याप्तियाँ विवरण	विशेष विवरण :
कड़वी तीखी मिट्टी का आहार	इसकी मिट्टी की दुर्गन्ध से 1 कोस के जीव मर जाये	पहले से चौथा गुणस्थान	नरकों में 10 प्राण, 6 प्राप्तियाँ, 4 संज्ञायें, 6 ज्ञान, तीन दर्शन, तीन अशुभ लेश्या, भव्यत्व अभव्यत्व पारिणमिक भाव, आर्त और रौद्र 2 ध्यान होते हैं।	1. नारकी जीव मरते ही नरक में जन्म नहीं लेता यह नियम है नरक से निकलकर सीधा मनुष्य अथवा तिर्यंच; पुनः नरक में इस प्रकार जीव 1 नरक में 8 बार, 2 नरक में 7 बार, 3 में 6 बार, 4 में 5 बार, 5 में 4 बार , 6 में 3 बार और 7 में 2 बार जन्म ले सकता है।
सड़ा हुआ दुर्गन्ध आहार	1½ कोस तक जीव मर जाये	,,	,,	
,,	2 कोस	,,	,,	
,,	2½ कोस	,,	,,	2. चारों गतियों में सम्यक्त्व की उत्पत्ति का कारण दर्शन मोहनीय का क्षय, उपशम एवं क्षयोपशम है; किन्तु बाह्य निमित्त कारणों में 1, 2 व तीसरे नरक में जाति-स्मरण, वेदना और उपदेश ये 3 कारण है। चौथें से सातवें नरक में केवल जाति-स्मरण और वेदना - ये दो ही निमित्त कारण है।
,,	3 कोस	,,	,,	
,,	3½ कोस	,,	,,	
,,	4 कोस	,,	,,	

इन्द्र 100

	इन्द्र व प्रतीन्द्र	
1. भवन वासी देव असुर कुमार, नागकुमार, विद्युत कुमार, सुपर्ण कुमार, अग्नि कुमार, वातकुमार, स्तनित कुमार, उदधि कुमार, द्वीपकुमार, दिक्कुमार	40	
2. व्यन्तर देव किन्नर, किम्पुरुष, महोरग, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, भूत, पिशाच;	32	
3. ज्योतिष्क देव सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र, तारागण;	2	
4. मनुष्य एवं तिर्यंच चक्रवर्ती, अष्टापद;	2	
5. कल्पवासी देव सौधर्म इन्द्र आदि	24	

ज्योतिष मण्डल की ऊँचाई

सम्पूर्ण ज्योतिष चक्र 110 योजन ऊँचाई और असंख्यात द्वीप समूह प्रमाण लम्बाई में है।

ज्योतिष्कदेव	ऊँचाई
भूतल से तारागण	790 योजन
भूतल से सूर्य	800 योजन
'' चन्द्रमा	880 योजन
'' नक्षत्र	884 योजन
'' बुध	888 योजन
'' शुक्र	891 योजन
'' बृहस्पति	894 योजन
'' मंगल	897 योजन
'' शनि	900 योजन

ढाई द्वीप में ज्योतिषमण्डल

	सूर्य	चन्द्रमा	नक्षत्र	ग्रह	तारामण्डल
जम्बूद्वीप	2	2	56	176	एक कोड़ा कोड़ी लाख, 33 कोड़ा कोड़ी हजार, 9 कोड़ा कोड़ी सैकडा, 50 कोड़ा कोड़ी
लवण समुद्र	4	4	112	352	2 कोड़ा कोड़ी लाख, 67 कोड़ा कोड़ी हजार, 9 कोड़ा कोड़ी सैकडा
धातकी खण्ड द्वीप	12	12	336	1056	8 लाख कोड़ा कोड़ी, लाख 37 सौ कोड़ा कोड़ी
कालोदधि समुद्र	42	42	1176	3695	28 कोड़ा कोड़ी लाख, 12 कोड़ा कोड़ी हजार, 9 कोड़ा कोड़ी सैकडा, 50 कोड़ा कोड़ी
पुष्करार्ध द्वीप	72	72	2016	6336	48 कोड़ा कोड़ी लाख, 22 कोड़ा कोड़ी हजार, 2 कोड़ा कोड़ी सैकडा
ढाई द्वीप में कुल	132	132	3696	11616	

नोट :- बाह्य पुष्करार्ध द्वीप में भी इतने ज्योतिष्क देव हैं। पुष्कर समुद्र में इससे चौगुनी संख्या है उससे आगे प्रत्येक द्वीप-समूह में दूनी दूनी संख्या जानना।

ज्योतिष देव

देव	निवास	भेद	इन्द्र	लेश्या	शरीर की ऊँचाई	उत्कृष्ट आयु	जघन्य आयु	प्रवीचार
ज्योतिष्क देव	मध्यलोक में पृथ्वी तल से 790 योजन से 900 योजन तक अर्थात 110 योजन प्रमाण ज्योतिष मण्डल है।	5	2	कृष्ण नील-कापोत जघन्य पीत लेश्या	7 धनुष	कुछ अधिक एक पल्य	1/8 पल्य	काया प्रवीचार
सूर्य		1	1	''	''	1 हजार वर्ष अधिक 1 पल्य	1/4 पल्य	''
चन्द्र		1	1	''	''	1 लाख वर्ष अधिक 1 पल्य	1/8 पल्य	''
नक्षत्र		1	–	''	''	आधा पल्य	''	''
ग्रह		1	–	''	''	1 पल्य	''	''
तारा गण		1	–	''	''	1/4 पल्य	1/4 पल्य	''

विशेष जानने योग्य :- प्रत्येक निकाय में इन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंश, पारिषद, लोकपाल, आत्मरक्षा, अनीक, प्रकीर्णक, अभियोग्य और किल्विषिक

इन्द्र :- यह अणिमा आदि ऋद्धि एवं ऐश्वर्यवाला देव ही इन्द्र होता है सब इसकी आज्ञा का पालन करते हैं।

सामानिक :- आज्ञा और ऐश्वर्य के अतिरिक्त इन्द्र के समान होता है।

त्रायस्त्रिंश :- ये मन्त्री और पुरोहित के समान होते हैं।

पारिषद :- ये सभ्य तथा सदस्यों के रूप में होते हैं।

आत्मरक्षक :- ये अंगरक्षक के समान कवच पहिने सशस्त्र होते हैं।

लोकपाल :- ये चौकीदार की तरह अर्थरक्षक हैं।

अनीक :- ये सात प्रकार की सेना के सिपाही रूप होते हैं।

प्रकीर्णक :- नगरवासियों या प्रान्तवासियों के समान होते हैं।

आभियोग्य :- ये दास के समान होते हैं।ये विमानों को भी खींचते हैं और वाहन आदि रूप परिणमन करते हैं।

किल्विषिक :- ये पापशील और अन्वासी की तरह द्वेषी, दुराचारी होते हैं।

नोट :- व्यन्तर और ज्योतिष्कों में त्रायस्त्रिंश और लोकपाल के अतिरिक्त आठ भेद होते हैं।

वैमानिक देव कल्पोत्पन्न और कल्पातीत								
देव विमान	निवास	भेद 12	इन्द्र-प्रतीन्द्र 24	लेश्या	शरीर की ऊँचाई	उत्कृष्ट आयु	जघन्य आयु	प्रवीचार
0						कुछ अधिक	कुछ अधिक	काय
सौधर्म-ऐशान	ऊर्ध्वलोक	2	4	पीत	7 हाथ	2 सागर	1 पल्य	प्रवीचार
सानत कुमार-माहेन्द्र	''	2	4	पीत-पदम्	6 हाथ	''7''	''2 सागर	अंग स्पर्श
ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर	''	1	2	पदम्	5 हाथ	''10''	''7 सागर	रूप देखकर
लान्तव-कापिष्ठ	''	1	2	पदम्	5 हाथ	''14''	''10 सागर	''
शुक्र-महाशुक्र	''	1	2	पदम्शुक्ल	4 हाथ	''16''	''14 सागर	शब्द श्रवण
शत्तार-सहस्त्रार	''	1	2	पदम्शुक्ल	4 हाथ	''18''	''16 सागर	''
आनत-प्राणत	''	2	4	शुक्ल	3.5 हाथ	''20''	''2 सागर	विचार मात्र
आरण-अच्युत	''	2	4	शुक्ल	3 हाथ	''22''	''20 सागर	''
अधो ग्रैवेयिक	''	भेद नहीं है	अंत के	परम शुक्ल	2.5 हाथ	23-24-25	22-23-24	अप्रवीचार
मध्य ग्रैवेयिक	''	''	सब	''	2 हाथ	26-27-28	25-26-27	''
ऊर्ध्व ग्रैवेयिक	''	''	अहमिन्द्र	''	1.5 हाथ	29-30-31	28-29-30	''
नव अनुदिश	''	''	ही होते हैं।	''	1 हाथ	32	31	''
विजय	''	''		''	1 हाथ	33	32	''
वैजयन्त	''	''		''	1 हाथ	33	32	''
जयन्त	''	''		''	1 हाथ	33	32	''
अपराजित	''	''		''	1 हाथ	33	32	''
सर्वार्थ सिद्धि	''	''		''	1 हाथ	33	33	''

भवनवासी देव								
देव विमान भवनवासी देव 10	निवास रत्नप्रभा	भेद 10	इन्द्र-प्रतीन्द्र 40	लेश्या कृष्ण, नील कापोत, पीत	शरीर की ऊँचाई 25	उत्कृष्ट आयु 1 सागर	जघन्य आयु 10 हजार वर्ष	प्रविचार काय प्रवीचार
1 असुर कुमार	पंक और अब्बहुल भाग	1 भेद	2 + 2	कृष्ण, नील कापोत, पीत	25 धनुष	1 सागर	''	''
2 नाग कुमार	खरभाग	1	2 + 2	''	10 धनुष	3 पल्य	''	''
3 विद्युत कुमार	''	1	2 + 2	''	10 धनुष	1.5 पल्य	''	''
4 सुपर्ण कुमार	''	1	2 + 2	''	10 धनुष	2.5 पल्य	''	''
5 अग्नि कुमार	''	1	2 + 2	''	10 धनुष	1.5 पल्य	''	''
6 वात कुमार	''	1	2 + 2	''	10 धनुष	1.5 पल्य	''	''
7 स्तनित कुमार	''	1	2 + 2	''	10 धनुष	1.5 पल्य	''	''
8 उदधि कुमार	''	1	2 + 2	''	10 धनुष	1.5 पल्य	''	''
9 द्वीप कुमार	''	1	2 + 2	''	10 धनुष	2 पल्य	''	''
10 दिक् कुमार	''	1	2 + 2	''	10 धनुष	1.5 पल्य	''	''

व्यन्तर देव								
देव विमान व्यन्तर देव 8	निवास	भेद 8	इन्द्र-प्रतीन्द्र 32	लेश्या कृष्ण, नील कापोत, पीत	शरीर की ऊँचाई 10 धनुष	उत्कृष्ट आयु 1 पल्य के कुछ अधिक	जघन्य आयु 10 हजार वर्ष	प्रविचार काय प्रवीचार
1 किन्नर	जम्बूद्वीप, लवण समुद्र आदि खर पृथ्वी भाग में तथा पंक में, अब्बहुल भाग में भी इनके निवास मिलते हैं।	1 भेद	4	कृष्ण, नील कापोत, पीत	10 धनुष	1 पल्य के कुछ अधिक	10 हजार वर्ष	काय प्रवीचार
2 किम्पुरूष		1	4	''	10 धनुष	''	''	''
3 महोरग		1	4	''	10 धनुष	''	''	''
4 गन्धर्व		1	4	''	10 धनुष	''	''	''
5 यक्ष		1	4	''	10 धनुष	''	''	''
6 राक्षस		1	4	''	10 धनुष	''	''	''
7 भूत		1	4	''	10 धनुष	''	''	''
8 पिशाच		1	4	''	10 धनुष	''	''	''

द्वीप-समुद्र

द्वीप	समुद्र (सागर)	पानी का रंग	पानी का स्वाद	जलचर
1 जम्बूद्वीप	लवण सागर	सामान्य	खारा	होते हैं
2 धातकी खण्ड द्वीप	कालोदधि सागर	कृष्ण वर्ण के समान	सामान्य जल	''
3 पुष्करवर द्वीप	पुष्कर वर सागर	मधु के समान	मधु जैसा	नहीं हैं
4 वारूणीवर द्वीप	वारूणीवर सागर	शराब के समान	शराब जैसा	''
5 क्षीरवर द्वीप	क्षीरवर सागर	दूध के समान	दूध जैसा	''
6 घृतवर द्वीप	घृतवर सागर	घृत के समान	घृत जैसा	''
7 क्षौद्रवर द्वीप	क्षौद्रवर सागर	इक्षुरस के समान	इक्षुरस के समान	''
8 नन्दीश्वर द्वीप	नन्दीश्वर सागर	''	''	''
9 अरूणवर द्वीप	अरूणवर सागर	''	''	''
10 अरूणाभास द्वीप	अरूणाभास सागर	''	''	''
11 कुण्डलवर द्वीप	कुन्डलवर सागर	''	''	''
12 शंखवर द्वीप	शंखवर सागर	''	''	''
13 रूचकवर द्वीप	रूचकवर सागर	''	''	''
14 भुजंगवर द्वीप	भुजंगवर सागर	''	''	''
15 कुशवर द्वीप	कुशवर सागर	''	''	''
16 क्रौंचवर द्वीप	क्रौंचवर सागर	''	''	''
आदि असंखात द्वीप	आदि असंख्यात सागर	''	''	''
मन:शील द्वीप	मन:शील सागर	सामान्य जल के समान	सामान्य	''
स्वयंभूरमण द्वीप	स्वयंभूरमण सागर	सामान्य जल के समान	सामान्य	होते हैं

जम्बूद्वीप के गिरी-पर्वत आदि:- जम्बूद्वीप में एक सुदर्शन मेरू पर्वत, चार गजदंत पर्वत, छ: कुलाचल पर्वत, दो सौ कंचन गिरी, आठ दिग्गज पर्वत, चार यमक गिरि, सोलह वक्षार गिरि, चौंतीस विजयार्ध, चौंतीस वृषभाचल पर्वत, चार नाभिगिरि इस प्रकार तीन सौ ग्यारह पर्वत हैं। चौदह बड़ी नदियाँ, छब्बीस द्रह (तालाब), सात क्षेत्र, एक सौ सत्तर मलेच्छ खण्ड, चौतीस कर्मभूमि, छ: भोगभूमि और पाँच सौ अड़सठ कूट हैं।

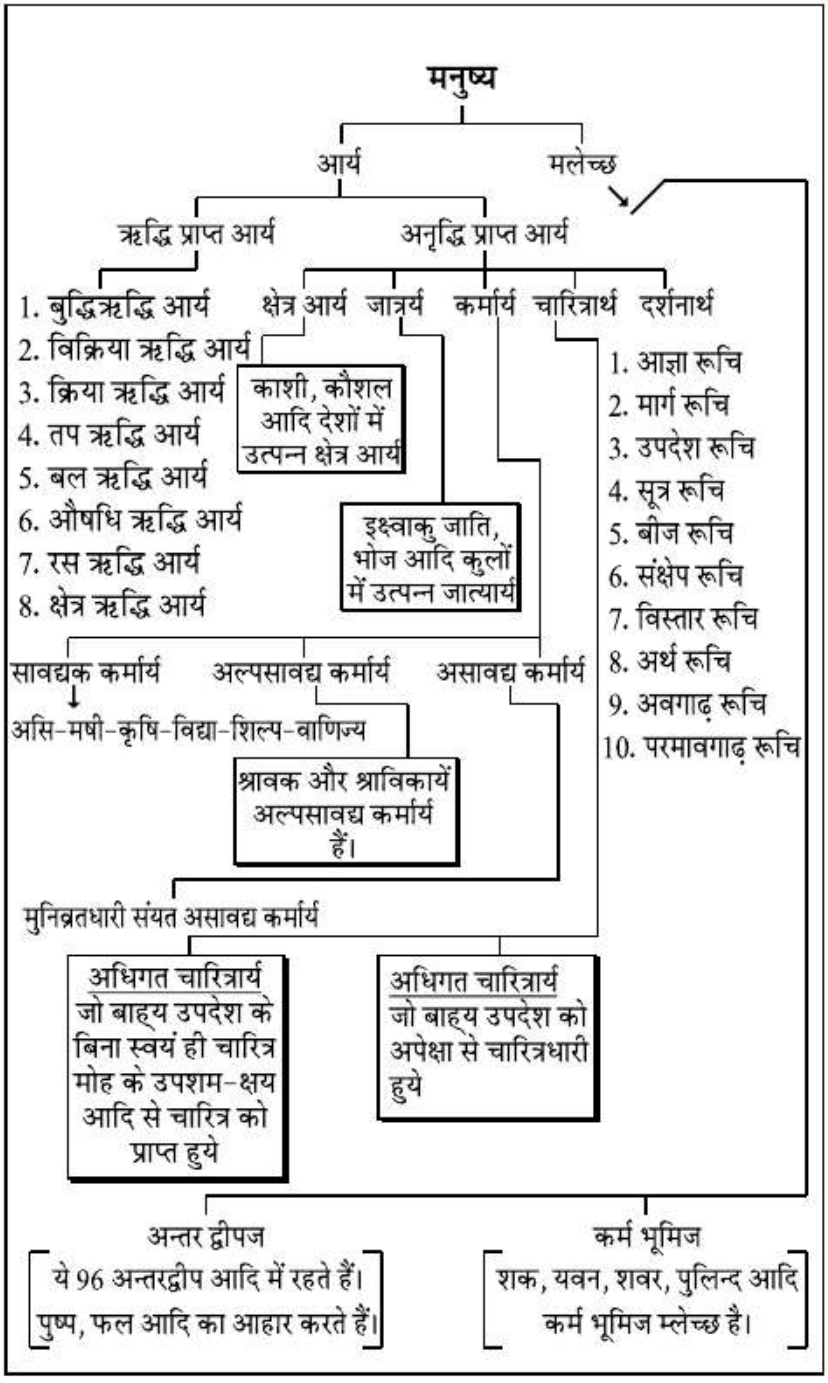
धातकी खण्ड द्वीप:- जम्बू द्वीप की जितनी रचना बताई गयी है, उसकी दूनी धातकी खण्ड द्वीप में है।

पुष्कराध द्वीप:- पुष्करार्ध द्वीप की रचना भी जम्बू द्वीप की रचना से दूनी अर्थात धातकी खण्ड द्वीप के बराबर है।

नोट:- प्रत्येक द्वीप व समुद्र की रचना पहले वाले समुद्र व द्वीप की रचना के दोगुना-दोगुना क्रमश: है।

चौरासी लाख योनियाँ

नित्य निगोद	7 लाख	
इतर निगोद	7 लाख	
पृथ्वी कायिक	7 लाख	
जल कायिक	7 लाख	
अग्नि कायिक	7 लाख	62
वायु कायिक	7 लाख	लाख
वनस्पति कायिक	10 लाख	तिर्यंच
द्वीन्द्रिय	2 लाख	
त्रिन्द्रिय	2 लाख	
चौइन्द्रिय	2 लाख	
पंचेन्द्रिय	4 लाख	
तिर्यंच		
नारक	4 लाख	4 लाख नारक
देव	4 लाख	4 लाख देव
मनुष्य	14 लाख	14 लाख मनुष्य
	84 लाख	84 लाख


मनुष्य
आर्य
मलेच्छ
ऋद्धि प्राप्त आर्य
अनृद्धि प्राप्त आर्य
1. बुद्धिऋद्धि आर्य
2. विक्रिया ऋद्धि आर्य
3. क्रिया ऋद्धि आर्य
4. तप ऋद्धि आर्य
5. बल ऋद्धि आर्य
6. औषधि ऋद्धि आर्य
7. रस ऋद्धि आर्य
8. क्षेत्र ऋद्धि आर्य
क्षेत्र आर्य
जात्यर्य
कर्मार्य
चारित्रार्थ
दर्शनार्थ
काशी, कौशल आदि देशों में उत्पन्न क्षेत्र आर्य
इक्ष्वाकु जाति, भोज आदि कुलों में उत्पन्न जात्यार्य
1. आज्ञा रूचि
2. मार्ग रूचि
3. उपदेश रूचि
4. सूत्र रूचि
5. बीज रूचि
6. संक्षेप रूचि
7. विस्तार रूचि
8. अर्थ रूचि
9. अवगाढ़ रूचि
10. परमावगाढ़ रूचि
सावद्यक कर्मार्य
अल्पसावद्य कर्मार्य
असावद्य कर्मार्य
असि-मषी-कृषि-विद्या-शिल्प-वाणिज्य
श्रावक और श्राविकायें अल्पसावद्य कर्मार्य हैं।
मुनिव्रतधारी संयत असावद्य कर्मार्य
अधिगत चारित्रार्य
जो बाह्य उपदेश के बिना स्वयं ही चारित्र मोह के उपशम-क्षय आदि से चारित्र को प्राप्त हुये
अधिगत चारित्रार्य
जो बाह्य उपदेश को अपेक्षा से चारित्रधारी हुये
अन्तर द्वीपज
ये 96 अन्तरद्वीप आदि में रहते हैं। पुष्प, फल आदि का आहार करते हैं।
कर्म भूमिज
शक, यवन, शवर, पुलिन्द आदि कर्म भूमिज म्लेच्छ है।

पुण्य प्रकृति		पाप प्रकृति	
भेद	अभेद	भेद	अभेद
सातावेदनीय-1, तिर्यंच, मनुष्य, देव, आयु 3; उच्च गोत्र 1; मनुष्यगति 1, मनुष्यगत्यानुपूर्वी 1, देवगति, देवगत्यानुपर्वी, पंचेन्द्रियजाति 1, शरीर 5, बंधन 5, संघात 5, अगोपांग 3; वर्ण, गन्ध, स्पर्श, रस इन चार के 20 भेद; सम चतुरस्र संस्थान 1, वज्रवृषभनाराच संहनन 1, अगुरू-लघु परघात 1, आताप 1, उद्योत 1, उच्छ्वास 1, विहायोगति प्रशस्त 1, त्रस 1, वादर 1, स्थावर 1, पर्याप्त 1, प्रत्येक 1, स्थिर 1, शुभ 1, सुभग 1, सुस्वर 1, आदेय 1, यश कीर्ति 1, तीर्थंकर 1,	साता वेदनीय तिर्यंच, मनुष्य-देव उच्च गोत्र-1 मनुष्यगति-1 मनुष्य गत्यानुपूर्वी-1 देवगति 1 वंगत्यानुपर्वी पंचेन्द्रिय जाति-1 शरीर-5 अंगोपांग-3 वर्ण-रस गन्ध-स्पर्श-4 समचतुरस्र संस्थान 1 वज्रवृषभनाराच संहनन-1 अगुरूलघु-1, परघात-1 आताप-1, उद्योत-1, उच्छ्वास-1 विहायोगति प्रशस्त-1, त्रस-1 बादर-1, पर्याप्ति-1, प्रत्येक-1, स्थिर-1, शुभ-1, सुभग-1, सुस्वर-1, आदेय-1 यश-1, तीर्थंकर 1,	घाति कर्म (ज्ञानावरण, दर्शनावरण मोहनीय अन्तराय)-47; नीचगोत्र-1, असाता वेदनीय-1, नरकआयु-1, नरकगति-1, नरकगत्यानुपूर्वी-1, एकेन्द्रियजाति आदि-4, प्रथम संस्थान के सिवाय-5, प्रथम संहनन के अतिरिक्त 5 संहनन; अशुभ वर्ण, रस, गंध, स्पर्श आदि 20 उपघात 1, अप्रशस्त विहायो गति 1; स्थावर आदि-10।	घाति कर्म 47 नीचगोत्र-1 असाता वेदनीय-1 नरक आयु-1 नरक गति-1 नरक गत्यानुपूर्वी-1 एक इन्द्रिय जाति आदि-4 प्रथम संस्थान के अतिरिक्त-5 प्रथम संहनन के अतिरिक्त-5 अशुभ वर्ण-रस गंध स्पर्श-4 उपघात; अप्रशस्त विहायोगति स्थावर 10
68	42	98 (100)	82 (84)

पुद्गल विपाकी	भव विपाकी	क्षेत्र विपाकी	जीव विपाकी
पाँच शरीरों से लेकर स्पर्श नाम कर्म तक 50, निर्माण, आताप, उघोत, स्थिर, शुभ और प्रत्येक, अस्थिर, अशुभ, साधारण, अगुरूलघु, उपघात, परघात।	नरक आयु। तिर्यंच आयु। मनुष्य आयु। देव आयु।	नरकगत्यानुपूर्वी। तिर्यंचगत्यानुपूर्वी। मनुष्यगत्यानुपूर्वी। देवगत्यानुपूर्वी।	वेदनीय-2, गोत्र-2, ज्ञानावरण 5, दर्शनावरण 9, मोहनीय 28, अन्तराय 5, नामकर्म 27 (तीर्थंकर प्रकृति-1, उच्छ्वास-1 बादर, पर्याप्ति, सुस्वर, आदेय यशकीर्ति, त्रस, विहायोगति और सुभग इनका जोड़ा-16 नरक आदि गति 4 एकेन्द्रियादि जाति 5)
62	4	4	78

कर्म प्रकृति

क्रमांक	मूल कर्म	प्रकृति	उत्तर प्रकृतियों के नाम	भेद जाति	कर्म का प्रभाव	कर्मों के क्षय से उत्पन्न गुण	उत्कृष्ट स्थिति	जघन्य स्थिति
1	ज्ञानावरण कर्म	5	मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मन:पर्यय ज्ञानावरण, केवल ज्ञानावरण	घाति	पर्दा अर्थात देवता के मुख पर परदे के समान	अनन्त ज्ञान	30 कोड़ा कोड़ी सागर	अन्तर्मुहूर्त
2	दर्शनावरण कर्म	9	चक्षु दर्शनावरण, अचक्षु दर्शनावरण अवधि दर्शनावरण, निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, केवल दर्शनावरण	घाति	राजद्वार पर बैठे हुऐ दरबान के समान	अनन्त दर्शन	30 कोड़ा कोड़ी सागर	अन्तर्मुहूर्त
3	वेदनीय कर्म	2	साता वेदनीय, असाता वेदनीय	अघाति	शहद में लिपटी तलवार की धार के समान	अव्याबाधत्व गुण	30 कोड़ा कोड़ी सागर	12 मुहूर्त
4	मोहनीय कर्म	28	मिथ्यात्व प्रकृति, सम्यक् मिथ्यात्व प्रकृति, सम्यक् प्रकृति; अनन्तानुबन्धी क्रोध-मान, माया-लोभ; अप्रत्याख्यान क्रोध-मान-माया-लोभ, प्रत्याख्यान क्रोध मान, माया, लोभ; हास्य, रति-अरति, शोक-भय-जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसक वेद	घाति	शराब समान	सम्यक्त्व	70 कोड़ा कोड़ी सागर दर्शनमोह, 40 कोड़ा कोड़ी सागर चरित्रमोह	अन्तर्मुहूर्त
5	आयुष्क कर्म	4	नरक आयुष्क, तिर्यंच आयुष्क, मनुष्य आयुष्क, देव-आयुष्क	अघातिया	काठ को घोड़ा अथवा खूँटा (जेल) समान	अवगाहनत्व गुण	33 सागर	अन्तर्मुहूर्त

कर्म प्रकृति

क्रमांक	मूल कर्म	उत्तर प्रकृति	उत्तर प्रकृतियों के नाम	भेद जाति	कर्म का प्रभाव	कर्मों के क्षय से उत्पन्न गुण	उत्कृष्ट स्थिति	जघन्य स्थिति
6	नाम कर्म	93	गति 4, जाति 5, शरीर 5, अंगोपांग 3, निर्माण, बन्धन 5, संघात 5, संस्थान 6, संहनन 6, वर्ण 5, गन्ध 2, रस 5, स्पर्श 8, गति आनुपूर्वी 4, अगुरूलघु, उपघात, परघात, आताप, उद्योत, विहायोगति 2, अपर्याप्ति, पर्याप्ति, उच्छ्वास, शुभ, अशुभ, प्रत्येक, साधारण शरीर, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुस्वर, त्रस, स्थावर, सूक्ष्म, बादर, स्थिर, अस्थिर, आदेय, अनादेय, यश, अपयश 1, तीर्थंकर 1	अघाति	चित्रकार यानी चितेरा समान	सूक्ष्मत्व	20 कोड़ा कोड़ी सागर	8 मुहूर्त
7	गोत्र कर्म	2	उच्च गोत्र, नीच गोत्र	अघाति	कुम्भकार समान	अगुरूलघुत्व	20 कोड़ा कोड़ी सागर	8 मुहूर्त
8	अन्तराय कर्म	5	दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय, वीर्यान्तराय	घाति	भण्डारी समान	अनन्तवीर्य	30 कोड़ा कोड़ी सागर	अन्तर्मुहूर्त

लेश्याओं का वर्णन

क्र.	लेश्या	वर्ण	लेश्या का कर्म	लक्षण	गति
1	कृष्ण लेश्या	भौरा समान	फल खाने के लिए मूल से वृक्ष को काटना समान	दुराग्रह, तीव्र बैर, अतिक्रोध, दुर्मुख, निर्दयता, क्लेश, ताप हिंसा, असंतोष, परम तामस भाव	पाँचवें नरक से सातवें नरक तक
2	नील लेश्या	मयूरकंठ समान	शाखा को काटना समान	आलस्य, मूर्खता, कार्यनिष्ठा, भीरूता, अति विषय अभिलाषा माया, तृष्णा, मान, अनृत भाषण, अतिलोभ, चपलता	तीसरे नरक से पाँचवें नरक तक
3	कापोत लेश्या	कबूतर समान	छोटी डालियाँ काटना समान	मात्सर्य, पैशुन्य, आत्म प्रशंसा, जीवन निराशा, प्रशंसक को धन देना, युद्ध, मरणोद्यम	पहले नरक तक
4	पीत(तेज) लेश्या	स्वर्ण समान	गुच्छे तोड़ना समान	दृढ़ मित्रता, दयालुता, सत्य वादिता, दानशीलता, स्वकार्य-पटुता, सर्वधर्म-समदर्शी	पहले स्वर्ग से चौथे स्वर्ग तक
5	पद्म लेश्या	रक्त समान	पके फल तोड़ना समान	मध्यम सत्यवाक्य, क्षमा, सात्विक, दान, पांडित्य, गुरू, देवता, पूजन रूचि	पाँचवें स्वर्ग से ग्यारहवें स्वर्ग तक
6	शुक्ल लेश्या	सफेद समान	गिरे हुए पके फल उठाकर खाना समान	उत्कृष्ट सत्य वाक्य, निर्वैर, वीतरागता, शत्रु के दोषों को न देखना, पर निन्दा न करना, पाप कार्यों से उदासीनता, श्रेयो मार्ग रूचि	बारहवें स्वर्ग से सर्वार्थ सिद्धि तक

लेश्याओं का वर्णन

क्र.	जघन्य काल	उत्कृष्ट काल	लक्षण	गति
1	अन्तर्मुहूर्त	कुछ अधिक 7 सागर 17 सागर, तैंतीस सागर	इस लेश्या में औदयिक भाव हैं, क्योंकि शरीर नाम कर्म और मोह के उदय से होती है।	विशेष अधिक अनन्त गुणे
2	अन्तर्मुहूर्त	कुछ अधिक 7, 17 तथा 33 सागर	इस लेश्या में औदयिक भाव हैं, क्योंकि शरीर नाम कर्म और मोह के उदय से होती है।	विशेष अधिक अनन्त गुणे
3	अन्तर्मुहूर्त	कुछ अधिक 7, 17 तथा 33 सागर	इस लेश्या में औदयिक भाव हैं, क्योंकि शरीर नाम कर्म और मोह के उदय से होती है।	अनन्त गुणे
4	अन्तर्मुहूर्त	कुछ अधिक 2, 18 तथा 33 सागर	इस लेश्या में औदयिक भाव हैं, क्योंकि शरीर नाम कर्म और मोह के उदय से होती है।	अनन्त गुणे
5	अन्तर्मुहूर्त	कुछ अधिक 2, 18 तथा 33 सागर	इस लेश्या में औदयिक भाव हैं, क्योंकि शरीर नाम कर्म और मोह के उदय से होती है।	असंख्यात गुणे
6	अन्तर्मुहूर्त	कुछ अधिक 2, 18 तथा 33 सागर	इस लेश्या में औदयिक भाव हैं, क्योंकि शरीर नाम कर्म और मोह के उदय से होती है।	संख्यात गुणे

षट् द्रव्यों की विशेषता बतलाने वाला यंत्र

संख्या	द्रव्य	सक्रिय वा निष्क्रिय	कायवान वा अकायवान	प्रदेशों की संख्या	चेतन या अचेतन	मूर्त या अमूर्त	पर्याय	विशेष गुण	संख्या द्रव्यों की	व्यापकता
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11
1	जीव	सक्रिय	कायवान	असंख्यात	चेतन	अमूर्त	अर्थ,व्यंजन पर्याय	ज्ञान, दर्शन सुख, वीर्य	अनन्त	शरीर व्यापी केवली समुद्घात में लोक व्यापी
2	पुद्गल	''	''	संख्यात असंख्यात अनन्त	अचेतन	मूर्त	अर्थ,व्यंजन पर्याय	स्पर्श, रस गंध, वर्ण	अनन्तानन्त	अणु की अपेक्षा एक प्रदेश व्यापी महास्कन्ध की अपेक्षा जगत व्यापी
3	धर्म	निष्क्रिय	''	असंख्यात	''	अमूर्त	अर्थपर्याय	गमन हेतु	एक	लोकाकाश व्यापी
4	अधर्म	''	''	''	''	''	''	स्थिति हेतु	''	''
5	आकाश	''	''	अनन्त	''	''	''	अवगाहन हेतु	''	सर्वव्यापी
6	काल	''	अकायवान	एकप्रदेश	''	''	''	वर्तना हेतु	असंख्यात	एकप्रदेश व्यापी

चरणानुयोग

1. बत्तीस अन्तराय :

मुनिराजों के भोजन के अन्तरायों का स्वरूप 'मूलाचार' में पिण्ड शुद्धि अधिकार में गाथा नं० 495 से 500 में लिखा है कि –

1. साधु के चलते समय व खड़े रहते समय ऊपर कौवा आदि बीट कर दें तो यह **काक** नामक अन्तराय है।
2. अशुचि वस्तु (विष्टा आदि) में चरण लिप्त हो जाना, सो **अमेध्य** नामक अन्तराय है।
3. आहार लेते समय वमन हो जाना, सो **छर्दि** अन्तराय है।
4. आहार लेते समय कोई आहार का रोध करें, सो **रोध** नामक अन्तराय है।
5. अपने व दूसरे के रक्त निकलता देख, सो **रुधिर** नामक अन्तराय है।
6. कु:दुख से अश्रु निकलता देखना, **अश्रुपात** नामक अन्तराय है।
7. घुटने से नीचे हाथ स्पर्श करना, सो **जान्वद्य परामर्श** नामक अन्तराय है।
8. गोडे (घुटनों) के प्रमाण काठ के ऊपर से उल्लँघना, सो **जानुपरि व्यतिक्रम** नामक अन्तराय है।
9. नाभि से नीचा मस्तक कर निकलना, सो **नाभ्यधो निर्गमन** नामक अन्तराय है।
10. त्याग की हुई वस्तु का भक्षण करना, सो **प्रत्याख्यान सेवना** नामक अन्तराय है।
11. सामने जीव वध होना, सो **जन्तु वध** नामक अन्तराय है।
12. कौआ आदि ग्रास ले जाये, तो **काकादि पिण्ड हरण** नामक अन्तराय है।
13. पाणिपात्र से (कर से) पिण्ड का गिर जाना, सो **पाणितः पिण्ड** नामक अन्तराय है।
14. पाणिपात्र में किसी जीव का मर जाना, सो **पाणि जन्तु** नामक अन्तराय है।
15. माँस का दिखना, सो **मांसादि दर्शन** नामक अन्तराय है।
16. देवादि कृत उपद्रव होना, सो **उपसर्ग** नामक अन्तराय है।

17. दोनों पैरों के बीच में किसी जीव आदि का गिर जाना, सो **प्राणी संपात** नामक अन्तराय है।
18. आहार देने वाले के हाथ से भोजन गिर जाना, सो **भोजन संपात** नामक अन्तराय है।
19. अपने उदर से मलादि निकल जाना, सो **उच्चार** नामक अन्तराय है।
20. मूत्रादि निकल जाना, सो **प्रस्त्रवण** नामक अन्तराय है।
21. चांडालादि अभेज्य के घर में प्रवेश हो जाना, सो **अभेज्य** नामक अन्तराय है।
22. मूर्छादि से आप गिर जाना, सो **पतन** नामक अन्तराय है।
23. भोजन करते बैठ जाना, सो **उपवेशन** नामक अन्तराय है।
24. कुत्ता आदि का काट जाना, सो **सदंश** नामक अन्तराय है।
25. हाथ से भूमि का छूना, सो **स्पर्शन** नामक अन्तराय है।
26. कफादि तथा मल का फेंकना, सो **निष्ठीवन** नामक अन्तराय है।
27. पेट से कृमि(कीड़ों) का निकलना, सो **उदर निर्गमन** नामक अन्तराय है।
28. बिना दिया किंचित मात्र भी ग्रहण करना, सो **अदत्त ग्रहण** नामक अन्तराय है।
29. अपने या अन्य के तलवार आदि से प्रहार हो, सो **प्रहार** नामक अन्तराय है।
30. ग्राम जले, सो **ग्राम दाह** नामक अन्तराय है।
31. पाँव से भूमि से किंचित मात्र भी उठाकर देना, सो **किंचित ग्रहण** नामक अन्तराय है।
32. हाथ द्वारा भूमि से कुछ उठाकर देना, सो **करेण किंचित ग्रहण** नामक अन्तराय है।

ये काकादि बत्तीस अन्तराय हैं तथा दूसरे भी चांडालादि स्पर्श, कलह, इष्ट मरण आदि बहुत से भोजन त्याग के कारण जानना, तथा राजादिक भय होने से, लोक निन्दा से, संयम के लिए वैराग्य के लिए आहार का त्याग करना चाहिए। मूलाचार में मल दोष के नाम पृष्ठ नं० 194-195 गाथा नं० 484 में लिखा है कि -

'णहरोम जन्तु अट्ठी कणकुण्डय, पूयि चम्मरु-हिरमांसाणि।
बीय फलकंद मूला छिण्णाणि मला चरु दसाहोंत्ति॥'

अर्थात नख, रोम (बाल), प्राण रहित शरीर, हाड, गेहूँ कण, कुंड अर्थात चावल का कण, खराब लोही (राधा), गीला चर्म, लोहु (रुधिर), माँस, बीज, अंकुर होने योग्य गेहूँ, सचित्त फल जैसे आम्र आदि फल, कंद, मूल ये चौदह मल हैं; इनको देखकर शास्त्रानुसार आहार त्याग देते हैं। मुनिराज कमण्डलु, शास्त्र उठाते - रखते हैं, तब दया सहित अर्थात् प्रथम (पहले) पीछी से झाड़कर, बाद में उठाते-रखते हैं। इसी प्रकार वे **आदान - निक्षेपण समिति** सहित होते हैं। मुनिराज लघु शंका तथा दीर्घ शंका जहाँ जीव-जन्तु न हों, ऐसी प्रासुक भूमि में जंगलों में ही जाते हैं। उनको कभी भी मल-मूत्र घर जाने का भाव नहीं होता है। ऐसे वे **प्रतिष्ठापन समिति** सहित है। कैसी भूमि में लघुशंका तथा दीर्घशंका के लिए जावे, तो उसके विषय में लिखा है कि -

वणदाहकिसि मसिकदे, थंडिल्लेणुपरोधे तित्थिण्णे।
अवगदजन्तु विवित्ते, अच्चारादि विसज्जेज्जों॥

(मूलाचार - पंचाचार)

दावाग्नि से जला हुआ प्रदेश, हल का जुता हुआ स्थान, श्मशान भूमि का प्रदेश, खार सहित भूमि, लोग जहाँ रुके नहीं, ऐसी जगह विशाल स्थान, त्रस जीव रहित स्थान, जन रहित स्थान, ऐसी जगह में मुनिराज मल-मूत्र का त्याग सावधानी से करें। मुनिराज निस्पृही तथा निरपेक्ष, जिनने पाँच इन्द्रियों तथा इन्द्रिय के विषय के प्रति राग को जीत लिया है जिस कारण वे जितेन्द्रिय जिन कहे जाते हैं। संसार के किसी पदार्थ के प्रति उन्हें राग द्वेष नहीं है। बहुत गर्मी पड़ने से उन्हें ऐसा भी विकल्प नहीं उठता है कि गर्मी सता रही है। महान शीत होने पर भी विकल्प नहीं उठता है कि शीत सता रही है। मुनिराज छह आवश्यक क्रियाओं को प्रमाद रहित नियम से करते हैं।

<u>षट् आवश्यक निम्न हैं -</u>

1.सामायिक, 2.चौबीस तीर्थंकरो की स्तुति,
3.एक तीर्थंकर सम्बन्धित वन्दना, 4.दिन में दो बार प्रतिक्रमण,
5.कायोत्सर्ग, 6.स्वाध्याय।

इस प्रकार आवश्यक करने योग्य क्रियाओं को करते हैं।

मुनिराज अचेलक मूल गुण सहित होते हैं, जिनका बाह्य लिंग तुरन्त जन्में हुए बालक जैसा नग्न तथा विकार रहित होता है नग्नता का किस प्रकार पालन करें उस विषय में कहा है कि-

वत्थाजिण वक्केण य, अहवा पत्तादिणा असंवरणं।
णिब्भूसण णिग्गंथं, अच्चेलक्कं जगदिपुज्जं॥

(मूलाचार - मूलगुण)

कपास, रेशम, रोम, तीन के बने हुए वस्त्र, मृगछाला आदि चर्म, वृक्षादि की छाल से उत्पन्न, सन आदि के टाट, पत्ते, तृण की बनी हुई चटाई, घास - इनसे शरीर को आच्छादन करने का भाव नहीं होता है। कड़े आदि आभूषणों से भूषित होने का भाव नहीं होता है। ऐसे तीन जगत के पूज्य वस्त्रादि बाह्य परिग्रह रहित, अचेलक व्रत सहित मुनिराज होते हैं।

2. आहार के 46 दोष :

आहार सम्बन्धी 46 दोष-

1. उद्गम दोष 16-

जो दोष दाता और पात्र दोनों के कारण आहार में उत्पन्न होता है।

2. उत्पाद दोष 16-

जो दोष पात्र के आधार से उत्पन्न होते हैं।

3. आहार सम्बन्धी दोष 14-

जो दोष आहार एवं दाता के कारण से उत्पन्न होते हैं।

<u>उद्गम दोषों का स्वरूप</u>-

1. औदेशिक (उद्दिष्ट) दोष-

संयमी मुनिराज के निमित्त भोजन बनाना, सो औदेशिक दोष है।

2. अध्याधि दोष-

संयमी मुनिराज को देखकर भोजन तैयार करने का आरम्भ करना, सो अध्याधि दोष है।

3. पूत्ति दोष-

प्रासुक आहारादि में अप्रासुक भोजन मिलना, सो पूत्ति दोष है।

4. मिश्र दोष-

शुद्ध प्रासुक आहार में अशुद्ध अप्रासुक आहार मिलाना एवं

प्रासुक तैयार हुआ भोजन अन्य भेष धारियों के साथ गृहस्थों के साथ संयमी साधुओं को देने का उद्देश्य करें, सो मिश्र दोष है।

5. स्थापित दोष-

जिस बर्तन में पकाया था, उससे दूसरे बर्तन में पके भोजन को रखकर अपने घर में तथा दूसरों के घर में जाकर उस अन्न को रख देना, उसे स्थापित दोष कहते हैं।

6. बलि दोष-

कुदेवादिक के पूजन निमित्त बना हुआ भोजन, सो बलि दोष है।

7. प्रावृर्तित दोष (प्राभृत)-

पात्र को पड़गाहने पीछे काल की हानि-वृद्धि करना अथवा नवधा भक्ति में शीघ्रता व विलम्ब करना सो प्रावर्तित दोष है।

8. प्राविश्करण दोष-

अंधेरा जानकर दीपक का उजाला करना, सो प्राविश्करण दोष है।

9. क्रीत दोष-

संयमी को भिक्षा के लिए प्रवेश कराने पर गाय आदि देकर बदले में भोजन लेकर साधु को देना, सो क्रीत दोष है।

10. प्राभृण्य (ऋण) दोष-

साधुओं को आहार कराने के लिए दूसरे से उधार सामग्री माँगकर आहार देना, सो प्राभृण्य (ऋण) दोष है।

11. परिवर्त दोष-

साधुओं को आहार कराने के लिए अशुद्ध शक्कर देकर और फिर शुद्ध शक्कर आदि लेकर आहार देना, सो परिवर्त दोष है।

12. अभिघट दोष-

अभिघट दोष के दो भेद है- 1.देशाभिघट, 2.सर्वाभिघट।

देशाभिघट के दो भेद- 1.आचिन्न, 2. अन्नाचिन्न।

1. **आचिन्न** - पंक्तिबद्ध सीधे तीन अथवा सात घरों से आया आहार ग्रहण करने योग्य है, सो आचिन्न दोष है।
2. **अन्नाचिन्न** - इससे उल्टे/सीधे घर न हो, ऐसे सात घर से लाया हुआ आहार अथवा आठवाँ आदि घर से आहार ग्रहण करने योग्य नहीं है, सो अन्नाचिन्न है।

सर्वाभिघट के चार भेद-

1.स्वग्राम, 2.परग्राम, 3.स्वदेश, 4.परदेश।

स्वग्रामाभिघट दोष - पूर्व दिशा के मौहल्ले से पश्चिम दिशा के मुहल्ले में भोजनादि ले जाना स्वग्रामाभिघट दोष है इसी प्रकार तीनों भेद भी जानना है।

13. उद्भिन्न दोष-

बंधी व सील लगी हुई वस्तु को खोलकर संयमी साधु को देना, सो उद्भिन्न दोष है।

14. मालारोहण दोष-

रसोई के स्थान से ऊपर की मंजिल में रखी हुई सीढ़ी पर चढ़कर वस्तु निकालकर साधु को देना, सो मालारोहण दोष है।

15. आछेद्य दोष-

पर को भय दिखाकर भोजन देना, सो आछेद्य दोष है।

16. अनिसार्थ दोष-

दाता असमर्थ होने पर भी दान देवे, सो अनिसार्थ दोष है।

<u>उत्पाद दोषों का स्वरूप-</u>

1. धात्री दोष-

गृहस्थ को मंडन, भजन, क्रीड़ादि धात्री दोष का उपदेश देकर आहार ग्रहण करना, सो धात्री दोष है।

2. दूत दोष-

दाता को प्रदेश का समाचार कहकर, आहार ग्रहण करना सो दूत दोष है।

3. निमित्त दोष-

अष्टांग निमित्त ज्ञान कहकर आहार ग्रहण करना, सो निमित्त दोष है।

4. आजीविका दोष-

अपनी जाति तपश्चरण बताकर, आहार ग्रहण करना, सो आजीविका दोष है।

5. वनीपक दोष-

दातार के अनुकूल बातें कहकर आहार ग्रहण करना, सो वनीपक दोष है।

6. चिकित्सा दोष-

दातार को औषधि बताकर, आहार ग्रहण करना, सो चिकित्सा दोष है।

7. से 10. कषाय दोष-

क्रोध, मान, माया, लोभपूर्वक आहार लेना, सो क्रोध, मान, माया, लोभ नाम का दोष है।

11. पूर्व स्तुति दोष-

भोजन के पूर्व दाता की प्रशंसा करना, सो पूर्व स्तुति दोष है।

12. पश्चात् स्तुति दोष-

आहार किये पीछे स्तुति, सो पश्चात स्तुति दोष है।

13. विद्या दोष-

आकाश गामिनी आदि विद्या बताकर आहार लेना, सो विद्या दोष है।

14. मन्त्र दोष-

सर्प, बिच्छू आदि का मंत्र बताकर, आहार लेना सो मंत्र दोष है।

15. चूर्ण दोष-

शरीर की शोभा, पुष्टता निमित्त चूर्णादि बताकर आहार लेना, सो चूर्ण दोष है।

16. मूल कर्म दोष-

अवश को वश बताकर सो आहार लेना, सो मूल कर्म दोष है।

आहार सम्बन्धी दोष-

1. शंकित दोष-

चार प्रकार के आहार आगम अनुकूल मेरे लेने योग्य है या नहीं, ऐसे संदेह सहित भोजन (आहार) लेना, सो शंकित दोष है।

2. मृक्षित दोष-

संचिक्कण हाथ या बर्तन में रखा हुआ भोजन ग्रहण करना, सो मृक्षित दोष है।

3. निक्षिप्त दोष-

सचित्त पत्रादि में रखा हुआ भोजन ग्रहण करना, सो निक्षिप्त दोष है।

4. पिहित दोष-

अचित पत्रादि में रखा हुआ आहार ग्रहण करना, सो पिहित दोष है।

5. संव्यवहरण दोष–

दान देने की शीघ्रता कर अपने वस्त्र को नहीं सँभालना या भोजन को देखे बिना देना, सो संव्यवहरण दोष है।

6. दायक दोष–

जो स्त्री बालक को सजाती हो,
जो मदिरा पीने में लम्पट हो,
जो रोगी हो,
जो मुर्दे को जलाकर आया हो,
जो नपुंसक हो,
जो वायु आदि से पीड़ित हो,
जो वस्त्रादि ओढ़े हुए न हो,
जो मूत्र आदि करके आया हो,
जो मूर्छा से गिर पड़ा हो,
जो वमन कर आया हो,
जो लोई सहित हो,
जो दासी हो,
जो अर्जिका रक्त पटिका आदि हो,
जो अंग के मर्दन करने वाली हो,
जो अति बालक हो,
जो अधिक बूढ़ी हो,
जिसके भोजन करते हुए झूठ मुँह में हो,
पाँच महीना आदि गर्भ से युक्त हो,
जो अंधी हो,
जो मुँह से फूँक कर अग्नि जलाती हो,
जो काठ आदि डालकर अग्नि जलाती हो,
जो काठ को जलने के लिए सरकाती हो,
जो राख से अग्नि को ढकती हो,
जो जलादि से अग्नि को बुझाती हो,
जो स्नानादि क्रिया करती हो,
जो दूध पीते बालक को छोड़कर आहार देती हो,
इत्यादि क्रियाओं से आहार दे, तो **दायक नाम** दोष है।

7. उन्मिश्र दोष-

सचित्त से मिला आहार लेना, सो उन्मिश्र दोष है।

8. अपरिणत दोष-

अग्नि से परिपूर्ण नहीं पका व जला हुआ भोजन तथा तिल, तन्दुल, हरड आदि से स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण रंग बदले बिना जल लेना, सो अपरिणत दोष है।

9. लिप्त दोष-

गेरू, हड़ताल, खड़िया आदि अप्रासुक द्रव्यों से लिप्त बर्तन द्वारा दिया हुआ आहार, सो लिप्त दोष है।

10. परित्यजन दोष-

दाता द्वारा पात्र के हाथ में स्थापित किया हुआ आहार पाणिपात्र में से गिरता हो, अथवा पाणि/कर पात्र में आये हुए आहार को छोड़कर और आहार ग्रहण करना, सो परित्यजन दोष है।

11. संयोजन दोष-

शीतल जल में उष्ण या उष्ण में शीतल भोजन अथवा जल मिलाना सो संयोजन दोष है।

12. अप्रमाण दोष-

गृद्धता के कारण प्रमाण से अधिक आहार करना, अप्रमाण दोष है।

13. अंगार दोष-

गृद्धतायुक्त आहार करना, सो अंगार दोष है।

14. धूम दोष-

जो भोजन प्रकृति विरुद्ध है ऐसे ग्लानियुक्त भोजन करना, सो धूम दोष है।

3. मुनि के षट् आवश्यक कार्य :

1. सामायिक, 2. स्तुति, 3. वन्दना,
4. प्रतिक्रमण, 5. स्वाध्याय, 6. कायोत्सर्ग।

4. मुनियों के सात शेष गुण :

1. नग्नता, 2. खड़े होकर आहार लेना,
3. केश लोंच करना, 4. एक समय आहार करना,
5. दन्त धोवन नहीं करना, 6. एक करवट से भूमिशयन,
7. स्नान नहीं करना।

5. त्यागी का परिग्रह परिमाण, इन्द्रिय संयम मर्यादा एवं चातुर्मास आहार:

1. गोला अच्छा हो तो ले सकता है किन्तु उसकी भीतर से रंगत नहीं पलटनी चहिए।
2. त्यागी केवल बादाम ले सकता है, चातुर्मास में बाकी सब मेवाओं का त्याग करना होता है।
3. हरी व सूखी, दोनों प्रकार की पत्ती का त्याग सारी उम्र के लिए करना चाहिए।
4. हींग, हींगड़ा ये दोनों ही पैदायश पेड़ में से काठ फोड़कर निकलते हैं, अत: अभक्ष्य हैं।
5. टमाटर नहीं लेना चाहिए। यह बहुबीजा है और बैंगन से भी खराब है। इसके बीजों की प्रजनन शक्ति समाप्त नहीं होती।
6. भिंडी नहीं लेनी चाहिए। इसके ऊपर रोम होते हैं, जिनमें चतुरिन्द्रय जीव बैठे रहते हैं। अन्दर भी त्रस जीव होने की संभावना रहती है।
7. पपीता नहीं लेना चाहिए, क्योंकि दूध निकलता है।
8. पिण्ड खजूर नहीं लेनी चाहिए, यह गीली होती है। इस पर मच्छर आदि बैठकर उड़ते नहीं, बल्कि मर जाते हैं।
9. आड़ू नहीं लेना चाहिए, क्योंकि ऊपर रोम होते हैं तथा अन्दर भी जीव की उत्पत्ति होती है।
10. जमीन की कन्द नहीं खानी चाहिए - हल्दी, सोंठ आदि को पानी में डालने से त्रस जीवों की उत्पत्ति होती है।
11. पानी का छिड़काव नहीं करना चाहिए, त्रस जीवों की हिंसा होती है।
12. फूल न ही सूँघने चाहिए न ही तुड़वाने चाहिए। एक फूल के तोड़ने से एक मुनि की हत्या बताई गई है। आचार्यों ने फूल को भगवान पर चढ़ाने में महान दोष बताया है; अत: इस पाप से बचना चाहिये।
13. पंचामृत-दूध, दही, घृत, मीठा आदि से अभिषेक नहीं करना चाहिए, क्योंकि इनसे जीवों की उत्पत्ति हो जाती है और उन जीवों को चिड़िया आदि चुगती है। बड़ा भारी पाप है, जो नहीं करना चाहिए।
14. हवन वगैरह नहीं करना चाहिए। चौ इन्द्रिय तक के जीवों का घात होता है। आरम्भ बहुत होता है, यह जैन धर्म में वर्जित है।

15. जहाँ साधु रहते हों वहाँ रंच मात्र भी आरम्भी हिंसा नहीं होनी चाहिए। यह पाप का कारण है तथा नरक-निगोद में पटकने वाला है।
16. मच्छर को मारने के लिए धुँआ या पंखा या दवाई का इस्तेमाल नहीं करना चाहिए; क्योंकि इनसे मच्छर मर जाते हैं।
17. द्विदल अर्थात् जिस वस्तु के दो दल हो जावें, उनको दही, मट्ठा, दूध से मिलाकर नहीं खाना चाहिए, क्योंकि मुँह में पहुँचते ही सम्मूर्छन पंचेन्द्रिय जीवों की उत्पत्ति हो जाती है।
18. स्त्रियों को प्रक्षाल नहीं करनी चाहिए। उनके शरीर में चौबीस घंटे आठ जगह सम्मूर्छन पंचेन्द्रियों की उत्पत्ति होती रहती है। वे इस योग्य नहीं है। स्त्री त्यागी को भी नहीं छूती, फिर भगवान को कैसे छू सकती हैं।
19. अनजानी सब्जी नहीं खानी चाहिए, जब पूरा विश्वास हो जावें तब खावें।
20. चटाई नहीं लेनी चाहिए, क्योंकि इसे कपड़े के समान आचार्यों ने मानी है।
21. कागज-पत्ती नहीं लेनी चाहिए। कागज से गन्दे जीव उत्पन्न होते हैं।
22. सामायिक चार बार करनी चाहिए। सुबह, दिन के बारह बजे, शाम को, रात्रि के 12 बजे।
23. दिन को सोना नहीं चाहिए। रात्रि को अधिकतम तीन घण्टा चमक नींद सोना चाहिए। दाँत नकली नहीं लगवाना चाहिए।
24. तेल की मालिश नहीं करानी चाहिए। बीमारी की दशा में शुद्ध तेल की मालिश दिन में श्रावक यदि अपनी इच्छा से करें, तो ठीक है, किन्तु मुनि के भाव नहीं होने चाहिए।
25. पंखा, हीटर, कूलर, परदा, कपड़ा या खस-खस को अपने काम में नहीं लेनी चाहिए, क्योंकि इनसे हिंसा होती है।
26. किवाड़ों की चटखनी लगाकर नहीं सोना चाहिए। मच्छरदानी, डोली, लकड़ी का बक्स, मोटर, पाटा आदि सामान नहीं रखना चाहिए। आहार का सामान साथ नहीं रखना चाहिए और न याचना करना चाहिए। चटाई आदि परिग्रह का सामान नहीं रखना चाहिए।

27. अकेली स्त्रियों में उपदेश नहीं देना चाहिए और न पढ़ाना चाहिए। पुरुष साथ हो तो उपदेश दे सकते हैं। उपदेश राग का नहीं देना, बल्कि वीतरागता का देना चाहिए। विकथायें नहीं करनी चाहिए।

उपर्युक्त के अतिरिक्त –

भोजन गरिष्ठ नहीं खाना, नीरस भोजन करना, ताकि सामायिक में प्रमाद न हो, चन्दा याचना नहीं करना, अट्ठाईस मूलगुण का ठीक तरह पालन करना। चौबीसों प्रकार के परिग्रह रहित होना चाहिए। बैण्ड-बाजे नहीं बजवाने चाहिए। अपनी वर्षगाँठ नहीं मनवानी चाहिए। जिसका दुबारा जन्म न हो, उसकी वर्षगाँठ होती है। फूलों की वर्षा नहीं करानी चाहिए, क्योंकि इस काम में हिंसा होती है। अपनी आरती नहीं उतरवानी चाहिये, क्योंकि इसमें त्रस एवं स्थावर दोनों ही प्रकार के जीवों की हिंसा होती है। ऐसे कार्य साधुओं को नहीं करने चाहिए।

6. प्रतिक्रमण के भेद :

1. प्रतिक्रमण – लगे हुए दोषों को प्रायश्चित से दूर करना।
2. प्रतिसरण – दोषों को दूर करने हेतु परम गुरु की शरण लेना।
3. परिहार – दोषों को दूर करने हेतु प्रायश्चित स्वरूप सावधि त्याग करना।
4. धारणा – दोषों को दूर करने हेतु विशिष्ट व्रतों को धारण करना।
5. निवृत्ति – कुछ परित्याग करना, चित्त वृत्ति को रोकना।
6. निन्दन – अपने दोषों के प्रति पश्चाताप करना।
7. गर्हा – गुरु समीप अपने दोषों की निन्दा करना।
8. शुद्धि – उत्पन्न दोषों को दूर करना, परिणामों में शुद्धि उत्पन्न करना, गुरु प्रदत्त प्रायश्चित को स्वीकार करना ही शुद्धि का कारण है।

7. साधु को आजीविका करने का निषेध :

यदि कोई निर्दय निर्लज्ज साधुपन में भी अतिशय निन्दा योग्य कार्य करता है, तो वह समीचीन मार्ग का विरोध कर नरक में प्रवेश करता है। जैसे कोई अपनी माता को वेश्या बनाकर उससे धनोपार्जन करते हैं वैसे

ही जो मुनि होकर उस मुनिदीक्षा को जीवन का उपाय बनाते हैं और उसके द्वारा धनोपार्जन करते हैं वे अतिशय निर्दय और निर्लज्ज हैं।

– (गुणभद्र स्वामी कृत **आत्मानुशासन** से उद्धृत)

8. पूजा के अंग :

व्यवहार में पूजा के पाँच अंगों की प्रवृत्ति है–1.आह्वानन, 2.स्थापना, 3.सन्निधिकरण, 4.पूजन, 5.विसर्जन।

9. द्विदल के 3 भेद :

1. अन्नद्विदल– मूँग, मोठ, अरहर, मसूर, उर्द, चना, कुल्थी आदि।
2. काष्ठ द्विदल– चारोली, बादाम, पिस्ता, धनिया आदि।
3. हरी द्विदल– तोरई, फदकुली, खरबूजा, ककड़ी, मिर्च, परमल, सेम, लौकी, करेला, खीरा आदि अनेक बीज–युक्त पदार्थ।

   (नोट :– इन वस्तुओं में से परमल के बीज दो दाल वाले नहीं होते फिर भी अधिक बीजों की अपेक्षा इन्हें द्विदल में गिनाया गया है– ऐसा प्रतीत होता है और खरबूजे आदि के बीज से ही द्विदल होता है, उसके गूदे से नहीं।)
4. शिखरनी– दही और छाछ में कोई मीठा पदार्थ डालने पर उसकी मर्यादा कुल अर्न्तमुर्हूत रहती है।
5. काँजी– दही, छाछ में राई व नमक आदि मिलाकर दाल के पकौड़े आदि डालना। यह सर्वथा अभक्ष्य है।

10. गोरस आदि के लक्षण :

घी, दूध, आदि गोरस कहा है। शक्कर, गुड़ आदि इक्षुरस है। द्राक्षारस आम आदि के रस को फल रस तथा तेल, माण्ड को धान्य रस कहते हैं।

11. मूल बीज, अग्र बीज आदि के उदाहरण :

जिनका मूल अर्थात जड़ ही बीज है जैसे अदरख, हल्दी आदि। अग्रबीज वह है जिसका अग्र भाग ही बीज हो, जैसे कमृक, उदीची आदि।

पर्व ही बीज जिनका वे पर्वबीज जाने जाते हैं, जैसे ईख, बेत आदि। जो कन्द से उत्पन्न होती है वे कन्दबीजी कही जाती हैं, जैसे–

आलू सूरणादि। जो स्कन्ध से उत्पन्न होती है वे स्कन्दबीज कहलाते हैं, जैसे सलरि, पलाश आदि।

जो बीज से ही उत्पन्न होती है वह बीजरूद्ध कहलाती है। जैसे चावल, गेहूँ आदि। जो नियत बीज आदि की अपेक्षा से रहित, केवल मिट्टी और जल के सम्बन्ध से उत्पन्न होती है, उनके सम्मूर्छन कहते हैं, जैसे-फूई, काई आदि। ये मूलादि सम्मूर्छन वनस्पति सप्रतिष्ठित प्रत्येक और अप्रतिष्ठित प्रत्येक दोनों प्रकार की होती हैं और सब की सब सम्मूर्छन ही होती हैं, गर्भज नहीं।

12. धूप दशमी व्रत :

यह व्रत श्वेताम्बर आम्नाय में प्रचलित है।

(वृत विधान संग्रह पृ० 130) (नवलशाह कृत वर्धमान पुराण)

13. पानी छानकर क्यों प्रयोग करना चाहिये?

अनछने पानी में असंख्य त्रस जीव होते हैं (उनमें से कुछ तो सूक्ष्मदर्शी से देखे भी जा सकते हैं। पानी छानने पर अधिकांशत: जीव निकल जाते हैं; इसीलिए अहिंसा की दृष्टि से पानी छानकर ही प्रयोग करना चाहिये।

14. पानी छानने की विधि :

सफेद व अत्यन्त गाढ़े वस्त्र को दुहरा करके उससे पानी छानना चाहिए तथा उसके मध्य स्थित जीवों को बड़े यत्न से छने जल के द्वारा नीचे जल की सतह में डाल देना चाहिये। बावड़ी आदि में वह जल ऊपर से फेंककर सतह पर नहीं डालना चाहिये, क्योंकि इसमें तो जीवों का हनन होता है (परन्तु उसे किसी बाल्टी में डालकर धीरे - धीरे जल की सतह तक पहुँचा देना चाहिये। इस विधि से छाने गये जल की मर्यादा दो घड़ी (अड़तालीस मिनट) की होती है (यदि उसे हरडे आदि से प्रासुक कर लिया जाये तो दो प्रहर (छह घण्टे) की और अत्यन्त गर्म कर लिया जाये तो आठ प्रहर (चौबीस घण्टे) की है। उपरोक्त मर्यादा के पश्चात् वह जल पुन: बिना छने के समान हो जाता है। कच्चे जल को छोड़कर शेष जल मर्यादा के पश्चात् अभक्ष्य हो जाता है, उनकी मर्यादा पुन: नहीं बढ़ सकती।

15. रात में भोजन करना क्यों हानिकारक है?

रात्रि भोजन में स्थूल तथा सूक्ष्म, दोनों ही प्रकार के जीवों की हिंसा होती है। यदि रात्रि में साँप, बिच्छू आदि कोई जीव भोजन में गिर जायें तो अन्धकार होने से वे दिखाई नहीं देंगे। रात्रि में भोजन बनाने व भोजन करने की क्रिया में बहुत से **जीवों की हिंसा** होती है। रात्रि में ये जीव दिखाई भी नहीं देते। रात्रि भोजन में गृद्धता अधिक होने से राग की भी तीव्रता रहती है, अत: वह आत्म साधना में भी बाधक है। शास्त्र का पठन, श्रवण, चर्चा आदि का अवसर भी रात्रि भोजन करने वाले को नहीं मिलता है; अत: रात्रि भोजन बहुत हानिकारक है।

16. रात्रि भोजन में गृद्धता अधिक क्यों कही है?

रात्रि भोजन में निम्नांकित कारणों से गृद्धता अधिक कही गई है-

1. रात्रि भोजन में महा हिंसा होने पर भी गृद्धतावश यह जीव उसका त्याग नहीं करता है।
2. रात्रि भोजन में तीव्र पापबंध होने से वह आगे चलकर महान कष्टों का कारण बनता है-यह जानने पर भी मनुष्य इसका त्याग नहीं करता।
3. भोजन के प्रति तीव्र गृद्धता के कारण यह भोजन त्याग का बंधन थोड़े घण्टों (रात्रि के) के लिए भी रखने को तैयार नहीं है।

17. क्षेत्रपाल, पद्मावती आदि अन्य रागी-द्वेषी देवी-देवताओं की पूजा का निषेध :

क्षेत्रपाल, पद्मावती, चक्रेश्वरी आदि जो शस्त्र धारण किये हुये हैं, जिन शासन की रक्षक हैं; ये धर्मात्माओं की भी रक्षा करती हैं; इसलिये इन देवियों का और यक्षों का पूजन-स्तवन करना क्या उचित है? इस सबका परमागम से अच्छी तरह जानकर निर्णय करना चाहिए। अज्ञानी लोगों के कहने में आकर चाहे जैसी प्रवृत्ति नहीं करनी चाहिए।

प्रथम तो भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी - इन तीन प्रकार के देवों में मिथ्यादृष्टि ही उत्पन्न होते हैं। सम्यग्दृष्टि भवनत्रिक देवों में उत्पन्न ही

नहीं होता है; स्त्री पर्याय में भी नहीं जाता है। (पद्मावती, चक्रेश्वरी तो भवनवासिनी तथा स्त्री पर्याय में हैं; क्षेत्रपालादि व्यन्तर हैं। उनमें सम्यग्दृष्टि कैसे उत्पन्न होगा? उनमे तो नियम से मिथ्यादृष्टि ही उत्पन्न होते है। ऐसा हजारों बार परमागम में कहा है।

यदि इनको जैन धर्म से प्रीति है तो जिनधर्म के धारकों से अपनी पूजा वंदना नहीं चाहेंगे। जो जैनी है और अपने को अव्रती जानता है, वह सम्यग्दृष्टि से अपनी पूजा वंदना कैसे करायेंगे? साधर्मियों का उपकार तो वह बिना कहे ही करेगा।

भगवान का प्रतिबिम्ब तो अपने मस्तक ऊपर रखे है तथा भगवान के भक्तों से अपनी पूजा करावे, ऐसी अविनय कोई धर्मात्मा होकर कैसे करेगा? जिन शासन के तो सौधर्म इन्द्र से लगाकर असंख्यात देव-देवियाँ सभी रक्षक हैं। तब क्या उन सबकी पूजा की जाये? जैन शास्त्रों में भी ऐसे अनेकों प्रसंग हैं जहाँ शीलवान तथा ध्यानी तपस्वियों के धर्म के प्रसाद से देवों के आसन कम्पित हुए, फिर देवों ने जाकर उपसर्ग दूर किया और अनेक प्रकार के रत्नों से धर्मात्माओं की पूजन की, किन्तु ऐसी कोई भी कथा नहीं है, जहाँ धर्मात्मा पुरुषों ने देवों की पूजा की हो।

स्वामी कार्तिकेय ने **कार्तिकेयानुप्रेक्षा** में लिखा है :

णय को वि देदि लच्छी ण को वि जीवस्स कुणदि उवयारं।
उवयारं अवयारं कम्मं पि सुहासुहं कुणदि ॥319॥
भत्तीए पुज्जमाणो विंतर देवों वि देदि जदि लच्छी।
तो किं धम्मे कीरदि एवं चिंतेई सद्दिट्ठी ॥320॥

अर्थात्: इस जीव को कोई लक्ष्मी नहीं देता है और न ही जीव का कोई उपकार - अपकार करता हुआ दिखाई देता है। वह अपने किये हुये शुभ-अशुभ कर्मों द्वारा होता है। भक्तिपूर्वक पूजा करने से यदि व्यंतर देव ही लक्ष्मी देते हों तो दान, पूजा, शील, संयम, ध्यान, अध्ययन, तप रूप समस्त शुभ भाव रूप पुण्य क्यों किये जायें? यदि भक्तिपूर्वक पूजा-वंदना करने से कुदेव ही संसार के कार्य सिद्ध करने लगेंगे तो कर्म कुछ वस्तु ही नहीं रहेगी, व्यंतर ही समस्त सुख का देने वाला

रहेगा तथा धर्म का आचरण निष्फल रहेगा? इसलिये जो जीव सुख के इच्छुक हैं? उनको दया, क्षमा, संतोष, निर्वांछकता, मंदकषायता, वीतरागता के द्वारा अकेले धर्म की ही आराधना करनी चाहिये, अन्य प्रकार से वाँछा करके पाप बंध नहीं करना चाहिये। यदि देव की संगति करने की ही इच्छा है तो उत्तम सम्यग्दृष्टि सौधर्म इन्द्र, शची इन्द्राणी, लौकान्तिक देवों की संगति करने की भावना करनी चाहिये। अन्य अधम देवों की सेवा करने से क्या सिद्ध होगा? ये कुदेव आदि कुछ फल भी नहीं देते। **'बृहद् द्रव्य संग्रह'** में **ब्रम्हदेव सूरि** लिखते हैं कि रामचन्द्र और लक्ष्मण के विनाश के लिये रावण ने बहुरूपिणी विद्या सिद्ध की। पाण्डवों का सत्तानाश करने के लिये कौरवों ने कात्यायिनी विद्या सिद्ध की तथा कृष्ण नारायण के नाश के लिये कंस ने बहुत सी विद्याओं की आराधना की; परन्तु उन विद्याओं द्वारा रामचन्द्र, पांडव, कृष्ण नारायण का कुछ भी अनिष्ट नहीं हुआ तथा रामचन्द्र आदि ने मिथ्या देवों की आराधना नहीं की, तो भी निर्मल सम्यग्दर्शन से उपार्जित पूर्व भव के पुण्य द्वारा उनके सब विघ्न दूर हो गये। इससे स्पष्ट होता है कि **इन कुदेवों की कोई ताकत नहीं जो किसी का भला-बुरा कर सके**। अरे! अनन्त बलशाली जिनेन्द्र भी किसी का भला-बुरा नहीं कर सकते फिर इन तुच्छ बलशाली मिथ्या देवी-देवताओं की तो बात ही क्या? क्योंकि **अपना भला-बुरा, अपने भले बुरे परिणामों से ही होता है**।

आचार्य समन्तभद्र रत्नकरण्ड श्रावकाचार में कहते हैं-

कापथे पथि दुःखानां कापथस्थेऽप्यसम्मतिः।
असंपृक्तिरनुत्कीर्तिरमूढ़ादृष्टिरुच्यते ॥ 14 ॥

अर्थात् : नरक, तिर्यंच, कुमनुष्यादि गतियों का घोर दुःखों का मार्ग, ऐसा जो मिथ्यामार्ग उसकी, तथा कुमार्गी अर्थात् मिथ्यामार्ग पर चलने वाले पुरुषों की जो मन से प्रशंसा नहीं करता, वचनों से स्तवन नहीं करता तथा काय से हाथ की अँगुलियों आदि को मिलाकर सराहना नहीं करता वह अमूढ़दृष्टि है।

इसी प्रकार देवमूढ़ता कहने वाले श्लोक में भी आचार्य समन्तभद्र लिखते हैं :-

वरोपलिप्सयाशावान् रागद्वेषमलीमसाः।
देवता यदुपासीत देवतामूढ़मुच्यते॥ 23 ॥

अर्थात् : जो अपने को अच्छा लगता है उसे वर कहते हैं। वर की इच्छा करके आशावान होकर के जो रागद्वेष से मलिन देवताओं का सेवन करता है, पूजन करता है उसे देवमूढ़ता कहते हैं और उसका कार्य देवमूढ़ता कहलाती है।

पुण्योदय हो तो सर्व ही पदार्थ उपकार में निमित्त होते हैं और पाप का उदय हो तो कोई भी रक्षा (उपकार) में निमित्त नहीं होता। अनेक कथानकों एवं दृष्टांत से समस्त प्रथमानुयोग के शास्त्र साक्षी हैं।

आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी विरचित **अष्ट पाहुड़** ग्रन्थ की श्रुतसागर सूरि द्वारा रचित संस्कृत टीका में लिखा है-

'लाख परस्त्रियों के सेवन से जो कुशील सम्बन्धी पाप होता है, उससे भी **चौगुना पाप** इन कुदेवों को एक बार भी नमस्कार करने पर होता है अर्थात् मिथ्यात्व हिंसादि पाँच पापों की अपेक्षा भयंकर पाप है।' मूल श्लोक इस प्रकार है-

सकृद्वारे नमस्कारे परदेवकृते सति।
परदारेषु लक्षेषु तस्मात् पापं चतुर्गुणम्॥

<u>कुदेव पूजक कुमानुष बनते हैं :</u>

महानसमर्थ यतिवृषभाचार्य **तिलोयपण्णत्ति** में लिखते हैं कि मिथ्यात्व में रत मंद कषायी, प्रिय बोलने वाले, कुटिल धर्म के फल को खोजने वाले, मिथ्यादृष्टि देवों की भक्ति में तत्पर, कायक्लेश करने वाले सम्यकत्वरहित अधन्य जीव अज्ञानरूपी जल में डूबते हुये लवण समुद्र के द्वीपों में कुमानुष होते हैं।

आचार्य पूज्यपाद स्वामी तथा आचार्य अकलंकस्वामी ने मोक्षशास्त्र अध्याय 7 के पाँचवें सूत्र की टीका करते हुये लिखा है कि-

-सच्चे देव-शास्त्र-गुरु की पूजा सम्यक्त्व क्रिया है और अन्य देवों की आराधना मिथ्यात्व क्रिया है।'

आचार्य श्रेष्ठ कुन्दकुन्दाचार्य ने लिखा है जो व्यक्ति लज्जा, भय और गौरव से कुत्सित (खोटे) देव, धर्म और कुत्सित लिंग की वन्दना करता है वह मिथ्यादृष्टि है; अतः सर्वकार्यों में पंचपरमेष्ठी ही पूज्य है।

कार्तिकेयानुप्रेक्षा नामक महाग्रन्थ मे आचार्य कार्तिकेय स्वामी कहते हैं कि-

'यदि मरते हुये मनुष्यों को कदाचित् क्षेत्रपालादिक देव, मंत्र से, तन्त्र से या विद्या से रक्षा करने में समर्थ होते तो मनुष्य अक्षय हो जाते। इस प्रकार संपूर्ण संसार को अशरण देखता हुआ भी यह मूढ़ जन ग्रह, भूत, पिशाच, योगिनी, चंडिका तथा यक्षादि कुदेवों की शरण की कल्पना करता है यह तीव्र मिथ्यात्व भाव है।'

गाथाएँ इस प्रकार हैं -

जई देवो वि य रक्खदि, मंतो तंतो च खेत्तपालो य।
मियमाणं पि मणुस्सं तो मणुया अक्खया होंति ॥ 25 ॥
एवं पेच्छन्तो त्रि हु गह भूय - पियास जोइणी जक्खं।
सरणं मण्णई मूढो सुगाद मिच्छत्त भावादो ॥ 26 ॥

सर्व प्रकार से निर्णय एवं विचार करते हुये अत्यंत करुणा बुद्धि से पण्डित प्रवर टोडरमल चेतावनी देते हुये लिखते हैं - जिन धर्म में तो ऐसी आम्नाय है कि पहले बड़ा पाप छुड़ाकर फिर छोटा पाप छुड़ाया है; इसलिये इस कुदेवादि पद्मावती, क्षेत्रपाल, यक्ष-यक्षिणी, चक्रेश्वरी, ज्वालामालिनी, कुलदेवी, शासनदेवी, देवता, नवग्रह आदि की पूजारूप गृहीत मिथ्यात्व को सप्त व्यसन से भी बड़ा पाप जानकर पहले छुड़ाया है, इसलिये जो जीव पाप के फल से डरते हैं, अपने आत्मा को दुःख समुद्र में नहीं डुबोना चाहते, वे जीव इस मिथ्यात्व को अवश्य छोड़ें। अपना आत्म कल्याण करें।

यह मानुष पर्याय सुकुल सुनिवो जिनवाणी।
इह विधि गये न मिले सुमणि ज्यों उदधि समानी॥

18. हवन एवं अग्नि में धूप डालने का निषेध :

(देखें - कार्तिकेयानुप्रेक्षा, गाथा नं० 405)

जैन धर्म अहिंसा प्रधान धर्म है, अतः इसमे पाप से बचने और

पुण्योपार्जन के जितने भी साधन पूजा विधानादि है, उनमें अहिंसात्मक पद्धति को प्रधान मानकर ही विधि विधान है। यदि इसमें भी अन्य मत के समान पूजा विधान आदि की पद्धति होती तब तो हमें यह पता हीं नहीं चलता कि जैन धर्म और अन्य धर्म में भेद भी है। यह तो सर्वगत है कि जैन धर्म में पद-पद पर जिस कार्य में हिंसा अल्प और पुण्य अधिक हो, वही कार्य सराहनीय कहा गया है। यहाँ प्रत्येक क्रिया विवेकपूर्ण ही होती है। यदि श्रावकों ने सावधानी नहीं रखी और मात्र परम्परावश क्रिया के करने के पक्षपाती रहे तो निश्चित है कि पुण्य के बदले पाप ही बँधने वाला है। भगवान वासुपूज्य की स्तुति करते हुये आचार्य समन्तभद्र ने **'वृहत्स्वयंभूस्त्रोत'** में लिखा है कि -

पूज्य जिनं त्वाऽर्चयतो जनस्य, सावद्य लेशो बहुपुण्यराशौ।
दोषायनालं कणिकाविषस्य, न दूषिका शीतशिवाम्बुराशौ॥ 58 ॥

सराग परिणति अथवा आरम्भजनित थोड़ा सा पाप का लेश, बहुत पुण्य की राशि में दोष के लिये समर्थ नहीं है। जिसप्रकार विष की अल्पमात्र शीतल एवं आल्हादकारी जल से युक्त समुद्र में दोष उत्पन्न करने वाली नहीं है। जिसमें आरम्भ अल्प और पुण्य बहुत प्राप्त हो, वह कार्य ही करने योग्य है।

लेकिन आज जैन धर्म का मूल अहिंसा को जानने, मानने वाले और अपने को जैन धर्म का कट्टर श्रद्धानी बताने वाले भी रूढ़ि वश भट्टारक परम्परा से प्राप्त विकृतियों को ही पीटते चले जा रहे हैं और विधान, वेदी प्रतिष्ठा, पंचकल्याणकों में शांति - विसर्जन में अन्य धर्मों के समान, मेवा, घी, शक्कर आदि पदार्थों से बनी धूप, जिसमें शीघ्र ही त्रस जीवों की उत्पत्ति हो जाती है; को अग्नियुक्त कुण्ड में आहुति देकर हवन कराये जा रहे हैं। प्रथम तो अग्नि स्वयं एक इन्द्रिय जीव है तथा उसमें डाली गयी धूप और समिधा में भी त्रस जीव पाये जाते हैं - यह साक्षात् हिंसा प्रतिरूपक उदाहरण है। बाजार में बनी धूप में लट, तिरूला आदि दो इन्द्रिय जीव भी पाये जाते हैं, लेकिन फिर भी अज्ञानी जीव उस धूप की अग्नि में आहुति देते हैं। धूप के अग्नि में खेने से मंदिर जी में चारों ओ धुँआ भर जाता है जिस कारण हवन में बैठने

वालों के आँख-कान से पानी बहने लगता है। जब मनुष्यों की यह दशा होती है तब मक्खी, मच्छर आदि छोटे-छोटे जीवों की क्या दशा होती होगी? राजा वज्रजंघ और रानी श्रीमती का मरण भी धूपधड़ों के धुएँ की घुटन से ही हुआ था यह उल्लेख पुराणों में मिलता है। हम जिस धूप को अग्नि में डालकर धर्म मानते हैं महापुराण के रचयिता आचार्य जिनसेन ने तो उस धूप को भोग का कारण कहा है :-

भोगांगेनापि धूपेन तयोरासीत्परास्तृता।
धिगिमान् भोगि भोगाभान् भोगान् प्राणापहारिणः॥

अर्थातः देखहु भोग का कारण जो धूप, ताकरि राजा-रानी (राजा वज्रजंघ व रानी श्रीमती) दोऊ मृतक अवस्था कूं प्राप्त भये, सो धिक्कार होऊ इन भोगनि कूँ।

जैन धर्म की मूल वस्तु है **अंतरंग में राग-द्वेषादि कषायों का अभाव करना** तथा **बाह्य में जीव दया का पालन** (ये दोनों ही अग्नि में धूप खेने से तथा हवन से घटित नहीं होते हैं। अग्निकायिक जीवों का घात एवं उन्हें बाधा पहुँचती है। साथ ही धुएँ से मन्दिर की सफेद दीवारों पर बने बहुमूल्य भाव चित्रों की, वेदी पर स्वर्ण कार्य की, छत्र, चमर, चँदोवा आदि की आभा अत्यन्त मलिन हो जाती है। कोयले की अग्नि से लकड़ी की मेज, चौकी, चटाई आदि जलकर खराब हो जाते हैं। आज के जमाने में घृत, मेवा, मिष्ठान्न, फलादि पदार्थ वैसे ही महँगाई की पराकाष्ठा तक पहुँचकर जन साधारण के लिये अत्यन्त दुर्लभ हो गये हैं; उनको अग्नि में जलाकर धर्म मानना **इससे बढ़कर अज्ञानता** अन्य क्या हो सकती है? अहिंसामय जैन धर्म में यह निरर्थक क्रिया कैसे पनप रही है? इसी बात को स्पष्ट करते हुये **पं० दौलतराम जी** ने **छहढ़ाला** की दूसरी ढाल में स्पष्ट लिखा है-

रागादि भाव हिंसा समेत, दर्वित त्रस थावर मरण खेत।
जे क्रिया तिन्हें जानहुँ कुधर्म, तिन सरधौ जीव लहै अशर्म॥

मेरा सभी श्रावकों के लिये यह सन्देश है कि आप मंदिर में चंदन का गट्टा एवं रेती मंगवा लें और अधिकतम तीन दिन के लिये चंदन रेत लें तथा धूप के स्थान पर चन्दन चूरा चढ़ाकर हिंसा से बचकर पुण्योपार्जन

करें। जिससे मंदिर में किया गया सोने आदि का कीमती कार्य भी सुरक्षित रहेगा। आप धुएँ आदि की बाधा से भी बच जावे और **महान पाप से तो बचेंगे ही।**

आजकल भगवान की वेदी पर अगरबत्ती, धूपबत्ती का प्रचलन भी देखने में आता है इसको तत्काल ही रोकना अनिवार्य है क्योंकि इनका निर्माण महान अपवित्र वस्तुओं के मिश्रण से होता है। मात्र सुगन्धित पदार्थ मिलाने से वह पवित्र और शुद्ध नहीं हो जाती है। यह आर्ष मार्ग की परम्परा न होकर मात्र कुछ अज्ञानी एवं असंयमियों की गलत शुरुआत है इसको तुरन्त बंद करना चाहिए। वैदिक संस्कृति एवं पूजन पद्धति का प्रवेश जिनालयों में कदापि नहीं होना चाहिए। जिनमंदिर में पूजन के द्रव्यों को प्रासुक जल से धोकर ही ले जाना चाहिए, अपवित्र वस्तुओं को मंदिर में ले जाना, चढ़ाना महा अविनय है।

मंदिर जी में वेदी के ऊपर किसी का भी फोटो नहीं लगाना चाहिए चूँकि समवसरण में सबसे ऊपर भगवान विराजमान होते हैं और मंदिर भी समवसरण का प्रतीक है इसलिये वेदी के ऊपर अर्थात् भगवान के ऊपर किसी का फोटो रखना भगवान का अविनय है। णमोकार मंत्र लिखे ब्रासलेट, कड़े, माला आदि पहनने का तथा भगवान की फोटो बने पैन आदि का प्रचलन रोकना चाहिए; क्योंकि इससे प्रभावना के नाम पर महान अविनय ही होती है।

19. दीपक से आरती करना एवं अखंड ज्योति जलाना :

दीपक से आरती करना जैन सिद्धान्त के अनुकूल नहीं है। आरती का समय तो सामायिक का समय है। आरती के लिये रात्रि में दीपक जलाना पड़ता है जो किसी भी तरह उचित नहीं है। सामायिक के समय को टालकर उसको आरती के काम में लगाना शास्त्र से कभी सिद्ध नहीं होता। आरती के विषय में शास्त्रों मे कहा गया है :-

दीप प्रकाशे प्रपतोन्तजीवाः, अरार्तिकं दीपमृते न भावि।
तज्जीवघातान्नरकप्रसूति, ररार्तिकं नैव ततो विधेयम् ॥ 1 ॥
दीपप्रकाशव्यसना हि शलभाः, दीपे पतन्तो विरमन्ति नैव।
तज्जीवधातान्नरके प्रयान्ति, अरार्तिकं नैव दयालुध्येयम् ॥ 2 ॥

अर्थात् : नियम से दीपक शिखा पर मच्छर और पतंगे आदि चतुरिन्द्रिय जीवों का घात होता है। मच्छर आदि प्रकाश के व्यसनी जीव हैं, वे आने से कभी नहीं रुकते और जीव घात से प्राणी नियम से नरक को जाते हैं। आरती बिना दीपक के नहीं बनती; अतः आरती करना विज्ञ तथा दयालु पुरुषों का कभी ध्येय नहीं हो सकता। यदि यह कहा जाये कि आरती में जो जीव घात होता है वह धर्म के लिये होता है, इसलिये ऐसे जीव घात से बचने की जरूरत नहीं है, सो ठीक नहीं है, क्योंकि शास्त्र मे लिखा हैं:-

देवधर्मतपस्विनां कार्ये महति सत्यपि।
जीवघातो न कर्तव्यः अभ्रपातकहेतुमान् ॥ 1 ॥

अर्थात् : देव धर्म और गुरुओं के निमित्त भी महान से भी महान कार्य पड़ने पर भी जीव घात नहीं करना चाहिये; क्योंकि जीव घात नरक में ले जाने का कारण है। जो इसकी परवाह नहीं करते, वे जिनेन्द्र भगवान के वचन रूपी आँखों से रहित हैं।

न देवं ना अदेवं न शुभंगुरूमेन न कुगुरूं,
न धर्म ना अधर्मं न गुणपरिणलं न विगुणम्।
न कृत्यं ना अकृत्यं न हितमहितं न निपुणम् न मूर्खं
विलोकन्ते लोकाः जिनवचनचक्षुर्विरहिताः॥

(सुक्ति मुक्तावली)

अर्थात् : जो प्राणी जिनेन्द्र देव के वचनरूपी चक्षुओं से रहित हैं, वे न देवों को देखते हैं, न अदेवों को, न श्रेष्ठ गुरु को देखते हैं, न कुगुरु को, न धर्म को देखते हैं और न अधर्म को; न गुणी को देखते हैं, न अगुणी को; करने योग्य और न करने योग्य एवं अपने हित तथा अहित को भी नहीं देखते हैं। **उन्होंने तो जो हठ पकड़ ली है वह ही करते हैं।** उनके पक्ष भरा रहता है, वे यह विचार ही कर नहीं पाते हैं कि यह पुण्य कार्य है अथवा पाप कार्य है। इस प्रकार पक्ष पकड़कर कार्य करना अपना हित एवं अहित नहीं विचारना, पाप का कारण एवं नरक ले जाने वाला है। दीपक से आरती करने में प्रत्यक्ष उड़ने वाले चार इन्द्रिय जीव आकर गिर ही जाते हैं। इसप्रकार प्रत्यक्ष हिंसा जैन धर्मानुयायी किस प्रकार से कर सकेगा? क्योंकि जहाँ हिंसा है वहाँ धर्म

नहीं, ऐसा जैन धर्म का मुख्य उद्देश्य है।

अब से लगभग 400 वर्ष पहले जब भारत में मुसलमान शासकों का राज्य था और जबरदस्ती मूर्तियाँ खंडित की जा रही थीं, ऐसे संकटकाल में जिन मंदिरों में जैनी लोग दर्शन करने जाते थे तब रात्रि में प्रकाश हेतू दीपक जलाते थे, चूँकि उस समय आज की तरह बिजली प्रकाश नहीं था एवं मंदिरों में खिड़कियाँ एवं रोशनदान नहीं बनाये जाते थे जिससे प्रकाश अपर्याप्त रहता था। तब एक हाथ में दीपक लेकर उसके द्वारा भगवान की प्रतिमा के दर्शन करते थे और उनका गुणानुवाद करते थे। चूँकि प्रतिमा के दर्शन करने में दीपक को दाये-बायें, ऊपर-नीचे गोलाकार रूप में घुमाते रहते थे और मुख से उनका गुणानुवाद करते रहते थे इसलिये बाद में इस क्रिया को आरती से जोड़ दिया गया, जबकि उस समय की परिस्थितियों में ऐसा करना उनकी विवशता थी, उनके अभिप्राय में दोष नहीं था, हठ नहीं था; लेकिन आज उस क्रिया को धर्म की क्रिया बताना महान अज्ञान है। इसी प्रकार अखंड ज्योति जलाना भी जैन आम्नाय की परिचायक नहीं है; क्योंकि इससे भी महान हिंसा होती है। धर्म स्थान में धार्मिक क्रियाओं में कदापि हिंसा नहीं करनी चाहिए। शास्त्रों में कहा है-

अन्य स्थाने कृतं पापं धर्मस्थाने विनश्यति।
धर्म स्थाने कृतं पापं वज्रलेपो भविष्यति॥

अर्थात् : अन्य स्थानों में किया गया पाप मंदिर आदि धार्मिक स्थानों पर कट जाता है, किन्तु धर्म स्थान में किया गया पाप वज्र लेप हो जाता है। अत: ग्रहस्थों को सावधानीपूर्वक मंदिर बनवाना, पूजन आदि भक्ति करनी चाहिए। आरती आदि हिंसक कार्य नहीं करने चाहिए एवं आरती का सम्बन्ध दीपक से कदापि नहीं है। पंडित प्रवर संत लाल जी ने सिद्धचक्र विधान में कई जगह भगवान की महिमा का वर्णन करने को आरती नाम दिया है-

जग आरत भारत महा, गारत करि जयपाय।
विजय आरती तिन कहूँ, पुरुषारथ गुणगाय॥

इसी प्रकार अन्य पूजाओं में भी आरती शब्द का अर्थ **गुणगान** करना

ही सिद्ध होता है :-

पंचमेरु की 'आरती', पढ़ै सुनै जो कोय।
द्यानत फल जाने प्रभु, तुरत महासुख होय॥

तीन घाटि नव कोड़ि, सब बन्दों शीष नवाय।
गुण तिन अट्ठाईस लो, कहूँ 'आरती' गाय॥

दशलक्षण बन्दौ सदा, मनवांछित फल दाय।
कहो 'आरती' भारती, हम पर होहु सहाय॥

उनतिस अंग की 'आरती', सुनो भविक चित्त लाय।
मन वच तन सरधा करो, उत्तम नरभव पाय॥

यह क्षमावाणी 'आरती', पढै सुनै जो कोय।
कहे मल्ल सरधा करो, मुक्ति श्री फल होय॥

इस प्रकार पूजन साहित्य में आये उपर्युक्त कथनों से स्पष्ट है कि आरती शब्द का अर्थ केवल स्तुति (गुणगान) करना है, अन्य कुछ नहीं।

अब यदि यह कहें कि मंदिर में बड़े-बड़े बल्ब, लाईट आदि से भी तो जीव मरते हैं। जनरेटर आदि चलाये जाते हैं उससे भी तीव्र हिंसा होती है उसका पहला समाधान यह है कि उसका भी समर्थन नहीं किया जा रहा है। आज के भौतिकवादी युग में मनुष्यों में वैसी श्रद्धा नहीं है जैसी पूर्वकाल में थी; यह पंचमकाल का प्रभाव है। यदि मंदिरों में बल्ब आदि नहीं जलायें, तब रात्रि में मंदिर खुलेगा ही नहीं और लोग मंदिर में आना ही बन्द कर देंगे, तब स्वाध्याय आदि का क्रम लुप्त प्राय हो जायेगा। रात्रि में तो मनुष्यों को अपने सब आरम्भ आदि क्रियाओं से विराम लेकर सामायिक आदि क्रियाओं मे लीन होना चाहिए; लेकिन ऐसा तो करेंगे नहीं तथा जिनदर्शन करना तथा जिनालय आना भी बन्द कर देंगे, तब महान अहित होगा। आज भी दिल्ली के धर्मपुरा में 250 वर्ष प्राचीन मंदिर है, जहाँ बिजली का कनैक्शन ही नहीं है, रात्रि में मन्दिर खुलता ही नही है तथा दीपक व अखण्ड ज्योति भी नहीं जलायी जाती।

दूसरे मन्दिर में बल्ब आदि जलाने में धर्म नहीं माना जाता, परन्तु दीपक

जलाकर आरती करने को लोग धर्म मानते हैं; इस प्रकार यह उल्टी मान्यता होने के कारण मिथ्यात्व की ही श्रेणी में आयेगी; अत: आज के सन्दर्भ में दीपक व आरती का यथार्थ अभिप्राय व प्रयोजन जानकर प्रचलित प्रथा को सही दिशा देने का प्रयास करना चाहिए तथा रूढ़िवाद, अज्ञानता व पक्षपात को छोड़कर सही मार्ग को समझकर जिनधर्म की सच्ची प्रभावना करनी चाहिए।

20. निर्वाण दिवस पर निर्वाण लड्डू नहीं अपितु निर्वाण फल चढ़ाना चाहिए :

अनेक स्थानों पर तीर्थंकरों के मोक्ष कल्याणक के दिन मंदिर जी में लड्डू चढ़ाने की परम्परा है, जो कि उचित नहीं है। लड्डू बनाने में हिंसा होती है, लड्डू पहले दिन अथवा कई दिन पहले से बनाया जाता है, जिससे मर्यादित नहीं रहता तथा इसके बनाने में महान आरम्भ होता है। अक्सर बनाने वाले भी अविवेकी होते हैं, उन्हें पानी छानने आदि की क्रियाओं का सामान्य ज्ञान भी नहीं होता है। सब कार्य पैसे देकर व्यापारिक स्तर से कराया जाता है, इसलिये मन्दिर जी मे लड्डू चढ़ाना नितान्त विपरीत क्रिया है। मंदिर जी में लड्डू चढ़ाते हैं तो अनेकों चीटिंयों, मकोड़ों की हिंसा का निमित्त होता है।

एक ओर तो मुनिराजों को भी मर्यादित भोजन का आहार दिया जाता है, वहीं दूसरी ओर भगवान के समक्ष अमर्यादित लड्डू चढ़ाते हैं। जिनेन्द्र पूजन में फल के अष्टक में मोक्ष फल की प्राप्ति हेतु मोक्ष फल अर्थात् बादाम, पिस्ता, गोला आदि चढ़ाया जाता है। निर्वाण लड्डू चढ़ाना **आगम से विरुद्ध, भट्टारकीय प्रथा** है इसलिये इस रूढ़िवादी परम्परा के स्थान पर निर्वाण दिवस पर बादाम अथवा गोला ही चढ़ाया जाना चाहिए। इससे हम हिंसा से भी बच सकते हैं और भगवान का निर्वाण पर्व भी मना सकते हैं।

21. पंचामृत अभिषेक का निषेध :

वि०सं०753 में काष्ठा संघ की उत्पत्ति हुई। इस संघ में काष्ठ की प्रतिमा का अभिषेक जल से ही होता है। अनन्तर वह काष्ठ की प्रतिमा फटने लगी तब काष्ठा संघ के संस्थापक गुणभद्र और कुमारसेन नामक

मुनियों ने दुग्ध, दही, घृत, इक्षुरस और सर्वौषधि से प्रतिमा का अभिषेक करने को कहा। यह कार्य मात्र मूर्ति को फटने से रोकने का उपचार था तथा बाद में जल से अभिषेक करने की आज्ञा दी, साथ में यह भी कहा कि जब तक धातु अथवा पाषाण की दूसरी प्रतिमा तैयार न हो जाये तब तक ही यह पंचामृताभिषेक करना। जब दूसरी प्रतिमा तैयार हो जावे तब इन सब प्रपंचों को छोड़कर भगवान का अभिषेक केवल शुद्ध जल से ही करना। अब वह पंचामृताभिषेक अनेक जगह रूढ़ि में आ गया है।

काष्ठासंघ आम्नाय आर्ष मार्ग नहीं है। ये लोग भट्टारक थे। इनमें अभिमान तथा कषायों की प्रबलता थी। जो इन्होंने एक बार मुख से निकाल दिया, उसकी ही पुष्टि करते चले गये। धर्म की परवाह एवं चिन्ता नहीं की। उनके पास मन्त्र और यन्त्र आदि का बल तथा विद्या बल था; अत: लोगों को मनवा दिया तथा श्रावकों को भी उनके अनुकूल करना पड़ा।

पक्षपात की यहाँ तक वृद्धि हुई कि धर्म की परम्परा नष्ट होने का कोई ध्यान नहीं रखा गया। अत्यंत अपवित्र गाय के गोबर से भगवान की आरती का विधान तथा गोमूत्र तक से प्रतिमा का अभिषेक करने का विधान लिख दिया।

विचार करने की बात है अहिंसाव्रत एवं अहिंसा के पूर्ण रूप से पोषक जैन धर्म में अभिषेक के पाँच पदार्थों का विधान कहाँ तक संगत होगा जिसमें प्रत्यक्ष परिग्रह की झलक के साथ न केवल स्थावर की हिंसा, बल्कि उसके सहयोग से इक्षुरस आदि मिष्ठान्न के कारण चीटिंयों आदि त्रस जीवों की भी हिंसा होती है। दूध, दही, घी आदि कभी – कभी शुद्ध न मिलने पर अमर्यादित तथा बाजार एवं नीचों से स्पृष्ट तक भी काम में लाये जाते हैं। यदि वीतराग धर्म में भी अभिषेक पंचामृत से मान लिया तो सर्वथा अहिंसा तथा निवृत्ति मार्ग का लोप हो जायेगा। अत: पंचामृताभिषेक वीतरागता, अहिंसा एवं अपरिग्रहत्व का विरोधी धर्म है। पाप से भयभीत एवं विचारशील जीवों को यह नहीं करना चाहिए। इसप्रकार कृत्रिम और अकृत्रिम प्रतिमाओं के अभिषेक का विधान जल से ही अधिकतर स्थानों में पाया जाता है। **जिनसेनाचार्य**

एवं **गुणभद्राचार्य** आदि मूलसंघ के दिगम्बर आचार्यों ने कहीं पर भी पंचामृताभिषेक का नाम तक भी नहीं लिया है। आगे इसके विषय में प्रमाण भी लिखते हैं :

अभिषेकमहं नित्यं सुरनाथाः सुरै समम्।
द्विद्वि प्रहरपर्यन्तमेकैकदिशि शान्तये ॥ 69 ॥
कनत्कञ्चनकुंभस्य निर्गतैः निर्मलांबुभिः।
महोत्सवैश्तैर्वाद्यैर्जयकोलाहलैः स्वनैः ॥ 70 ॥
नित्यं प्रकुर्वते भूत्या विश्वविघ्नहरं शुभं।
जिनेन्द्र दिव्यबिम्बानां गर्तिनृत्यस्तवैः सह ॥ 71 ॥

(सिद्धान्तसार)

दिगम्बर सम्प्रदाय में जो पंचामृताभिषेक की प्रथा चली है वह वि०सं० 137 के बाद अर्थात् वीर निर्वाण सं० 787 से श्वेताम्बर सम्प्रदाय से ही आयी है। श्वेताम्बर सम्प्रदाय में एक **पउमचरिउ** नामक ग्रन्थ में पंचामृताभिषेक का कथन मिलता है, उसकी रचना का समय वीर निर्वाण सं० 530 और वि०सं० 70 का बतलाते हैं। यह कथन यथार्थ प्रतीत नहीं होता। दिगम्बर सम्प्रदाय के भोले जीवों ने **पउमचरिउ** को वि०सं० 70 की रचना तथा स्व सम्प्रदाय का ग्रन्थ मानकर अपना लिया है एवं भगवान के चरणों के ऊपर केशर तथा पुष्प चढ़ाने लगे है तथा पंचामृताभिषेक करने लग गये हैं। पंचम काल के काल दोष से भगवान को परिग्रह सहित करने की तथा हिंसा पोषक एवं हिंसा के कारणभूत पंचामृताभिषेक प्रथा शुद्ध दिगम्बरों में भी हो गयी है।

यह सब आडम्बर शिथिलाचारी भ्रष्ट पंडितों तथा पातालों (साधुओं) से हुआ है।

पंडितैर्भ्रष्टचारित्रैः वठरैश्चतपोधनैः।
शासनं जिनचन्द्रस्य निर्मलं मलिनीकृतम्॥

अर्थात् : भ्रष्ट पंडित और साधुओं से जिन शासन मलिन हुआ है। अभिषेक तो बाल तीर्थंकर का सौधर्म इन्द्र ने पांडुकशिला पर क्षीर सागर के जल से किया था। अर्हंत अवस्था में भगवान का अभिषेक नहीं होता। मुनिराज अस्नानव्रत के धारी होते हैं और अर्हंत भगवान महामुनिराज हैं तब उनका अभिषेक कैसे सम्भव है? प्रतिमा भी अर्हंत भगवान के समान है, उनका अभिषेक नहीं होता, मात्र बिम्ब की

स्वच्छता हेतु प्रतिमा का प्रक्षाल किया जाता है। जिसमें प्रासुक जल से ही मात्र बिम्ब का प्रक्षाल किया जाता है। पंचामृताभिषेक करना महान अज्ञानकारी क्रिया है।

22. गंधोदक केवल मस्तक पर लगाना चाहिये :

भगवान का गंधोदक परम पवित्र है वह कोई साधारण जल नहीं है; अपितु भगवान के शरीर के स्पर्श से अत्यन्त पवित्र हुआ है। इसकी महान विनय करनी चाहिए तथा मात्र उसे दो अँगुलियों से लेकर केवल मस्तक पर (माथे पर) विनयपूर्वक लगाना चाहिए। शरीर का अन्य कोई भाग गंधोदक लगाने लायक नहीं है। कुछ व्यक्ति उसे सिर पर, आँखों पर, गले पर, पेट पर, छाती पर लगाते हैं। कुछ व्यक्ति उसे पीने भी लगे हैं तथा अपनी दुकान तथा मकान पर ले जाकर छिड़कते हैं। यह महान अज्ञानता है तथा गंधोदक की महान अविनय होने के कारण महान पाप का कार्य है। शरीर के समस्त भागों से मल स्राव होता रहता है, इसलिये गंधोदक को मात्र मस्तक पर लगाना चाहिए।

23. भगवान को फूल चढ़ाने का निषेध :

इस दु:खम काल में विकलत्रय जीवों की उत्पत्ति बहुत अधिक है। फूलों में दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय जीव प्रगट नेत्रों से दिखने वाले दौड़ते दिखाई पड़ते हैं। फूल के पत्तों को झाड़कर के देखिये तो हजारों जीव फिरते-दौड़ते दिखाई देते हैं। फूलों में त्रस जीव तो बहुत होते ही हैं, बादर निगोदिया जीव भी अनंत होते हैं। चैत्र माह में तथा वर्षा ऋतु में त्रस जीव बहुत ही उत्पन्न होते हैं, फूल स्वयं एकेन्द्रिय वनस्पतिकायिक जीव है। इसलिये जो ज्ञानी हैं, धर्म बुद्धि वाले हैं, वे तो धर्म के सभी कार्य यत्नाचार से करते हैं, और करना भी चाहिए। जिसप्रकार जीवों की विराधना न हो उसप्रकार करना चाहिए। फूलों के धोने में दौड़ते हुये त्रस जीवों की बहुत ही हिंसा होती है। इसमें हिंसा तो बहुत है तथा परिणामों की विशुद्धता थोड़ी है। इसलिये पक्षपात छोड़कर जिनेन्द्र देव के द्वारा कहे अहिंसा धर्म को ग्रहण करके जितना कार्य करो उतना यत्नाचार रूप होकर जीवों की विराधना टालकर करो। लोक में भी वही कार्य किया जाता है जिसमें नफा अधिक और नुकसान कम हो, उसी प्रकार धर्म क्षेत्र में भी यत्नाचार वृत्ति से अल्प

आरम्भ जनित हिंसा के अल्प नुकसान के बदले तीव्र पुण्य रूप महा लाभ संचय हेतु जिनेन्द्र पूजन प्रासुक जल, गंध एवं अक्षत को चन्दन, केशर आदि से रंगकर सुगन्धित अक्षतों में पुष्पों की कल्पना करके इन पुष्पों से पूजन करना चाहिए। आगम में वर्णित स्वर्ण के पुष्प, चाँदी के पुष्प, रत्नजड़ित स्वर्ण के पुष्प तथा लवंग आदि अनेक मनोहर पुष्पों से जिनेन्द्र भगवान का पूजन करना चाहिए।

रत्नकरण्ड श्रावकाचार में **आचार्य समंतभद्र** लिखते हैं-

देवाधिदेवचरणे परिचरणं सर्वदुःखनिर्हरणम्।
कामदुहि कामदाहिनी परिचिनुयादादृतो नित्यम्॥ 9 ॥

अर्थात् : देव जो इंद्रादि उनके अधिदेव अर्थात् स्वामी जो अरहंत देव उनके चरणों के समीप जो परिचरण अर्थात् पूजन, वह नित्य ही करना चाहिए। कैसी है पूजन? समस्त दु:खों का नाश करने वाली, मनोवांछा को पूर्ण करने वाली और काम भाव का नाश करने वाली है।

गृहस्थ को नित्य ही सर्वप्रथम जिनेन्द्र का अत्यन्त विशुद्ध परिणामों से पूजन करना चहिए। जिनेन्द्र के पूजन समान सर्वोत्तम कार्य दूसरा नहीं है। चन्दन के स्थान पर हार सिंगार के फूलों का प्रयोग कदापि नहीं करना चाहिए, इनमें अनन्तकायिक जीव अर्थात् एक देह में अनंत जीव हैं।

24. स्त्री द्वारा अभिषेक का निषेध :

जन्म कल्याणक के समय इन्द्र ने भी जब भगवान का अभिषेक किया था उस समय भी इन्द्राणी को साथ में नहीं लिया था, तब फिर स्त्री को प्रक्षाल करने की आज्ञा शास्त्र देता है, यह कैसे कहा जा सकता है? मुनिराज को आर्यिका आदि स्त्रियाँ क्रमश: 7 हाथ दूर से ही नमस्कार करती हैं, तब महामुनिराज अर्हंत परमात्मा को स्त्री कैसे स्पर्श कर सकती है? स्त्री द्वारा अभिषेक से उनके ब्रम्हचर्य एवं शील में दोष लगेगा। स्त्री द्वारा भगवान का अभिषेक करना सर्वथा धर्म विरूद्ध क्रिया है। अभिषेक सहित पूजन के छह भेद (अभिषेक, आह्वान, स्थापना, सन्निधिकरण, पूजन, विसर्जन) में स्त्रियों के अभिषेक के अतिरिक्त पाँच भेद ही आगम प्रमाण से अभिमत हैं।

25. मंदिर जी में चमड़े की ढोलक, पर्स, बेल्ट, घड़ी के पट्टे आदि लेकर प्रवेश नहीं करना चाहिए :

चमड़ा महा अस्पृश्य वस्तु है; उसकी उत्पत्ति जीवों के घात से होती है एवं मृत पशु का जो चमड़ा होता है उसे चाण्डाल, चमार आदि नीच लोग ही तैयार करते हैं। उन चाण्डालों के स्पर्श से ही जब सब लोग अछूत गिनते हैं तथा मन में इतनी ग्लानि रखते हैं कि घर आकर जल से स्नान करते हैं, तब चमड़े की क्या कही जाये? चमड़े में निरन्तर सूक्ष्म जीव भी उत्पन्न होने के कारण, उसका प्रयोग निरन्तर तीव्र पाप बन्ध का ही कारण है। तीन लोक के अधिपति जिनेन्द्र देव के स्थान जिन मन्दिर में चमड़े आदि के वाद्ययन्त्र कदापि नहीं बजाने चाहिए। जैन श्रावकों के तो चमड़े का सर्वथा त्याग होता है, तब धर्मायतनों में भी चमड़े से बनी वस्तुओं का प्रयोग कदापि नहीं होना चाहिए। भक्ति में विवेक से कार्य करना चहिए। श्रावक का अर्थ श्रद्धावान, विवेकवान एवं क्रियावान होता है तब प्रत्येक क्रिया विवेक और श्रद्धा से करनी चाहिए।

26. मूर्ति को चन्दन नहीं लगाना चाहिए :

वीतरागी प्रतिमा के चन्दन लगाने से वह सरागी हो जाती है इसलिये प्रतिमा पर चंदन नहीं लगाना चाहिए। जब अकलंक और निकलंक प्रतिमा पर एक धागा पड़ा होने मात्र से उसे लांघकर पार हो गये तब चन्दन लगी प्रतिमा किस प्रकार पूज्य हो सकती है? कदापि नहीं। जिनेन्द्र देव की प्रतिमा जिनेन्द्र देव के समान ही है एवं उनसे हजार गुना उपकार करती है। **आचार्य पद्मनन्दी जी** ने **पद्मनन्दी पंचविंशतिका** में कहा है कि - एक सामान्य केवली से जितनी प्रभावना होती है उससे सौ गुनी प्रभावना एक तीर्थंकर से होती है और एक तीर्थंकर से सौ गुनी प्रभावना जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमा से होती है; क्योंकि केवली और तीर्थंकर का सदैव समागम नहीं होता, हर काल में नहीं होता और हर क्षेत्र में नहीं होता; लेकिन जिन प्रतिमा के दर्शन हर काल और हर क्षेत्र में सदैव उपलब्ध रहते हैं। इसलिये उनकी

प्रतिमा को सरागी नहीं बनाना चाहिए। प्रतिमा पूर्णतः वीतरागी ही पूज्य है।

27. वीतरागी मुनियों को हिंसात्मक क्रियाओं का अनुमोदन नहीं करना चाहिए :

मुनिराज अहिंसा महाव्रत के धारी होते हैं एवं उनके नव कोटि से अर्थात् मन, वचन, काय और कृत, कारित, अनुमोदना से सर्वथा हिंसा का त्याग होता है। इसमें से यदि किसी प्रकार से भी दोष लगता है तो वह मुनि कहलाने योग्य नहीं है। मुनिराज के तो मात्र ये तीन ही कार्य हैं- ज्ञान, ध्यान और तप। प्रथम तो उन्हें अपने स्वरूप का ध्यान करना चाहिए यदि वहाँ उपयोग न टिक पा रहा हो तब शास्त्रों का अध्ययन करना चाहिए। उपदेशादि भी अध्ययन की श्रेणी में आते हैं।

ऐसी समस्त क्रियायें जहाँ लेशमात्र का भी आरम्भ हो, उसका उपदेश भी मुनि अवस्था में नहीं होता। यहाँ तक कि जिनमन्दिर बनाने को भी मुनिराज नहीं कह सकते, मात्र जिन दर्शन की प्रेरणा और उपदेश देते हैं, क्योंकि जिनालयों के निर्माण में भी आरम्भ होता है और जहाँ - जहाँ आरम्भ होता है वहाँ - वहाँ हिंसा भी नियम से होती है और मुनिराज तो अहिंसा महाव्रत के धारी होते हैं इसलिये उनके द्वारा हिंसा के उत्पत्तिजनक आरम्भ आदि क्रियाओं की अनुमोदना भी नहीं होनी चाहिए।

28. तीर्थंकर पार्श्वनाथ की केवली (अरहंत) अवस्था में फण नहीं होना चाहिए :

केवल ज्ञान होने पर उपसर्ग नहीं होता, किन्तु भगवान पार्श्वनाथ जिनेन्द्र की प्रतिमा, बिना फण वाली बनाते ही नहीं है। भगवान पार्श्व अर्हन्त के समवसरण मे मस्तक के ऊपर धरणेन्द्र द्वारा फण बनाना कैसे सम्भव है? धरणेन्द्र ने तो भगवान के तपस्या करते समय मुनि अवस्था में फण मण्डप बनाया था, उसके पश्चात् अर्हन्त अवस्था में फण बनाने का कोई प्रयोजन नहीं है। जब भगवान पार्श्व जिनेन्द्र अर्हन्त बन गये और इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने समवसरण की रचना की थी तब

वहाँ भगवान पार्श्वनाथ फण सहित विराजमान नहीं थे। वहाँ चार निकाय के देव, मनुष्य और तिर्यंच धर्म श्रवण-स्तवन-वन्दन करते हुये ही बैठते हैं (इसलिये स्थापित प्रतिमा में अर्हन्त के प्रतिबिम्बों के फण कैसे सम्भव होगा? वीतराग मुद्रा तो इस प्रकार की नहीं होती।

काल के प्रभाव से धरणेन्द्र-पद्मावती की पूजा-प्रभावना दिखलाने को अज्ञानी लोग विपरीत कल्पना करने लगे हैं सो उन्हें कौन दूर कर सकता है? जैसे पाषाण की भगवान की प्रतिमा में अंगों की सुन्दरता व मस्तक की रक्षा के लिये कर्णों को लम्बा करके कंधों से जोड़ देते हैं उन्हें देखकर सभी धातु की प्रतिमाओं के भी कर्ण कंधों से जोड़ने लगे, सो यह तो देखा-देखी चल गई। उसी प्रकार अर्हन्त की प्रतिमा के ऊपर फण का आकार बनाते हुये लोगों को देखकर तत्व को समझे बिना फण बनाने की प्रवृत्ति चल गई। इस प्रकार पार्श्व जिनेन्द्र की प्रतिमा पर फण नहीं होना चाहिए।

नोट :

ये सब बातें पंथवाद या पक्षपात की नहीं है। आगम तथा आर्ष ग्रन्थों की हैं। आप कहेंगे कि प्रथमानुयोग ग्रन्थों में कुछ चर्चा है, परन्तु इन ग्रन्थों का मेल आर्ष ग्रन्थों से नहीं खाता। इसलिये आप स्वयं ही विवेकशील बनें। जब अणुव्रतों की बात आती है तब सबसे पहले अहिंसा आती है, जब महाव्रतों की बात आती है तब सबसे पहले अहिंसा आती है। आप कहेंगे कि हम गृहस्थी में भी अनेक कार्य करते हैं। परन्तु गृहस्थी के कार्य को आप धर्म नहीं मानते। लेकिन मन्दिर की क्रिया को आप धर्म मानते हैं, इसलिये विपरीत क्रिया से हिंसा के पाप के साथ-साथ मिथ्यात्व का भी पोषण होता है।

अतः वीतरागी जैन धर्म को मानने वाले, हिंसा से बचने वाले और पापों से भयभीत श्रावकों को ऊपर दी गयी कुरीतियों के स्थान पर शास्त्रोक्त उचित क्रियाओं को ही अपनाना चाहिये।

卐 卐 卐 卐 卐

मन्दिर में न करने योग्य चौरासी आसातन

1.थूकना, 2.हास्य विनोद क्रीड़ा करना, 3.कलह क्लेश करना, 4.कला चतुराई करना, 5.कुल्ला करना, 6. पान सुपारी खाना, 7.पान का उगाल करना, 8.गाली देना, 9.अँगुली चटकाना, 10.बिना छने पानी से नहाना, 11.हजामत बनवाना, 12.नाखून काटना, 13.रूधिर बहाना, 14.भोजन कराना, 15.चमड़ा काटना, 16.पित्त डालना, 17.वमन करना, 18.दंतौन करना, 19.सोना, 20.गाय-भैंस आदि बांधना, 21.दांतों को कुचर खून निकालना, 22.नेत्रों का मैल निकालना, 23.नाखून का मैल निकालना, 24.गले का मैल निकालना, 25.नाक का मैल निकालना, 26.बालों का मैल निकालना, 27.कान का मैल निकालना, 28.मल मूत्र करना, 29.अधोवायु छोड़ना, 30.सलाह मशवरा करना, 31.विवाह सगाई करना व कराना, 32.चिटठी लिखना व लिखाना, 33.कुत्सित शास्त्रों का लिखना, 34.धन, मकान व जायदाद आदि का बंटवारा करना व कराना, 35.भण्डार में पदार्थ रखवाना, 36.दुष्ट व अनुचित आसनों पर बैठना, 37.पैरों पर पैर रखकर बैठना, 38.कंडे थपवाना, 39.वस्त्रों का धोना, धुलवाना, सुखाना, सुखवाना, 40.दाल दलवाना व सुधवाना, 41.पापड़ बनवाना, 42.मंगौढ़ी बनवाना, 43.चारों विकथाओं का करना, 44.शत्रु आदि के भय से भाग कर वहाँ छिपना, 45.रोना रूलाना, 46.आभूषण बनवाना, 47.वस्त्र सिलवाना, 48.तोता मैना आदि को पाल कर पिंजरे में रखना, 49.अग्नि जलवाकर तापना, 50.रसोई बनवाना, 51.सोना चाँदी रूपया वगैरह परखना, 52.निस्सहि तथा जय जय शब्द को आते जाते नहीं बोलना, 53.पगड़ियाँ बाँधना व बँधवाना, 54.जूता या खड़ाऊँ पहन कर मन्दिर में घूमना, 55.शास्त्रों का लाँघना, 56.छत्र लगवाना या अपने ऊपर चंवर ढुरवाना, 57. पँखों से हवा करवाना, पँखा खिचवाना, 58.मन से बुरे विचार कर उद्‌गार निकालना, 59.तेल और उबटन लगवाना, 60.स्वयं की सचित्त पूजन कराना, 61.विकार पैदा करने वाले चित्राम बनवाना तथा टाँगना, 62.नंगे शरीर बैठना, नंगे बदन रहना, जाँघे उघाड़कर बैठना, 63.पुष्पों को टाँगना, श्रृंगार के वास्ते तिलक लगवाना, 64.शर्त लगाना, हार-जीत की बाजी

लगाना, 65.शतरंज, चौपड़, तास, नकली मूँठ वगैरह खेलना, 66.नमोस्तु, इच्छाकार, जुहारादिक श्रावकादिकों से मन्दिर में करवाना, 67.भाँडरूप क्रियाओं को करना, 68.तू मैं आदि अपमान जनक शब्दों का कहना, 69.दाढ़ी मूँछ के बालों को मरोड़ना, 70.युद्ध कराना, युद्धों के उपन्यासों का संग्रह करना और वाँचना, 71.केश बखेरना, कंघी करना, हजामत कराना, सोड़ा साबुन लगाना, 72.बालों को संभालकर श्रृंगार करना, 73.पैरों को फैलाकर बैठना, 74.पैरों को दबाना, जुलाब लेना, मल-मूत्र विक्षेपण करना, पैरों की कीचड़ को धुलवाना, 75.स्त्रियों का आना जाना रखना, मैथुन सेवन करना, 76.शरीर या वस्त्रों के मैल को दूर करना, 77.हारजीत के खेल खेलना, 78.पुष्प वाटिका लगवाना, बिना छने पानी से सिंचवाना, 79. घोड़ा-घोड़ी, बैल-गाय, ऊँट-ऊँटनी, गाड़ा-गाड़ी, रथ-पालकी आदि रखना, चौका लगवाकर भोजन तैयारकर आप जीमना औरों को निमंत्रण कर जिमवाना, 80.गुह्य अंगों का उघाड़ना, 81.वैद्यक, यन्त्र, मंत्र और तंत्र करना, 82.वाणिज्य एवं व्यापार करना या करवाना, 83. खाट पलंग कुर्सी आदि बिछवाना और उन पर बैठना सोना, 84.जल क्रीड़ा करना, मकान, बगीचा, निवाड़ बनवाना या सलाह देना।

卐 卐 卐 卐 卐

सच्चा जैन!

जिनको सच्चा जैन बनना हो उनको शास्त्र के आश्रय से तत्त्वनिर्णय करना योग्य है; किन्तु जो तत्त्वनिर्णय नहीं करते और पूजा, स्तोत्र, दर्शन, त्याग, तप, वैराग्य, संयम, संतोष आदि सर्व कार्य करते हैं सो उनके सर्व कार्य असत्य हैं; इसलिये आगम का सेवन, युक्ति का अवलम्बन, परम्परा गुरूओं का उपदेश और स्वानुभव द्वारा तत्त्वनिर्णय करना योग्य है।

देव गुरू-धर्म तो सर्वोत्कृष्ट पदार्थ हैं, इनके आदर से धर्म है। इनमें शिथिलता रखने से अन्य धर्म किस प्रकार होगा? इसलिये बहुत कहने से क्या? सर्वथा प्रकार से कुदेव-कुगुरु-कुधर्म का त्यागी होना योग्य है।

- मोक्ष मार्ग प्रकाशक

बाईस परीषह

क्षुधा तृषा हिम ऊन डंसमंसक दुःख भारी।
निरावरण तन अरति वेद उपजावन नारी।।
चरया आसन शयन दुष्ट वायक बध बन्धन।
याचै नहीं अलाभ रोग तृण परस होय तन।।
मल जनित मान सनमान वश प्रज्ञा और अज्ञान कर।
दरशन मलीन बाईस सब साधु परीषह जान नर।।
सूत्र पाठ अनुसार ये कहे परीषह नाम।
इनके दुख जो मुनि सहैं तिन प्रति सदा प्रणाम।।

(1) क्षुधा परीषह

अनसन ऊनोदर तप पोषत पक्ष मास दिन बीत गये हैं।
जो नहिं बने योग्य भिक्षा विधि सूख अंग सब शिथिल भये हैं।।
तब वहाँ दुस्सह भूख की वेदन सहत साधु नहिं नेक नये हैं।
तिनके चरणकमल प्रति प्रतिदिन हाथ जोड़ हम शीश नये हैं।।

(2) तृषा परीषह

पराधीन मुनिवर की भिक्षा परघर लेंय कहैं कुछ नाहीं।
प्रकृति विरुद्ध पारणा भुंजत बढ़त प्यास की त्रास तहाँहीं।।
ग्रीषमकाल पित्त अतिकोपै लोचन दोय फिर जब जाहीं।
नीर न चहैं सहैं ऐसे मुनि जयवन्ते वर्तो जगमाही।।

(3) शीत परीषह

शीतकाल सबही नर कम्पत खड़े तहाँ वन वृक्ष डहे हैं।
झंझा वायु चलै वर्षाऋतु वर्षत बादल झूम रहे हैं।।
तहाँ धीर तटनी तट चौपट ताल पाल पर कर्म दहे हैं।
सहैं सँभाल शीत की बाधा ते मुनि तारण तरण कहे हैं।।

(4) उष्ण परीषह

भूख प्यास पीड़ें उर अंतर प्रजुलै आँत देह सब दागै।
अग्नि सरूप धूप ग्रीषम की ताती वायु झालसी लागै।।
तपैं पहाड़ ताप तन उपजति कोपै पित्त दाह ज्वर जागै।
इत्यादिक गर्मी की बाधा सहैं साधु धीरज नहीं त्यागैं।।

(5) डन्समशक परीषह

डन्स मशक माखी तनु काटैं पीड़ैं बन पक्षी बहुतेरे।
डसैं ब्याल विषहारे विच्छु लगैं खजूरे आन घनेरे।।
सिंह स्याल सुंडाल सतावैं रीछ रोझ दुःख देहिं घनेरे।
ऐसे कष्ट सहैं समभावन ते मुनिराज हरो अघ मेरे।।

(6) नग्न परीषह

अन्तर विषय वासना बरतै बाहर लोक लाज भय भारी।
यातैं परम दिगम्बर मुद्रा धार नहिं सकैं दीनसंसारी।।
ऐसी दुर्धर नगन परीषह जीतैं साधु शीलव्रतधारी।
निर्विकार बालक-वत निर्भय तिनके चरणों धोक हमारी।।

(7) अरति परीषह

देशकाल का कारण लहिकै होत अचैन अनेक प्रकारैं।
तब तहाँ खिन्न होत जग वासी कलमलाय थिरतापद छाडैं।।
ऐसी अरति परीषह उपजत तहाँ धीर धीरज उर धारैं।
ऐसे साधुन को उर अंतर बसो निरन्तर नाम हमारे।।

(8) स्त्री परीषह

जो प्रधान केहरि को पकडैं पन्नग पकड़ पानसे चाबैं।
जिनकी तनक देख भौं बांकी कोटिन सूर दीनता जापैं।।
ऐसे पुरुष पहाड़ उड़ावन प्रलय पवन त्रिय वेद न व्यापै।
धन्य-2 वे सूर साहसी मन सुमेर जिनका नहिं काँपै।।

(9) चर्या परीषह

चार हाथ परवान परख पथ चलत दृष्टि इत उत नहिं तानैं।
कोमल चरण कठिन धरती पर धरत धीर बाधा नहिं मानैं।।
नाग तुरंग पालकी चढ़ते ते सर्वादि यादि नहिं आनैं।
यों मुनिराज सहैं चर्या तब दृढ़तर कर्म कुलाचन भानैं।।

(10) आसन परीषह

गुफा मसान शैल तरु कोटर निवसैं जहाँ शुद्ध भूँ हेरैं।
परमितकाल रहैं निश्चल तन बार बार आसन नहिं फेरैं।।
मानुष देव अचेतन पशुकृत बैठे विपत्ति आन जब घेरै।
ठौर न तजैं भजैं थिरतापद ते गुरु सदा बसो उर मेरै।।

(11) शयन परीषह

जो प्रधान सोने के मन्दिर सुन्दर सेज सोय सुख जोवैं।
ते अब अचल अंग एकासन कोमल कठिन भूमि पर सोवैं।।
पाहनखंड कठोर काँकरी गड़त कोर कायर नहिं होवैं।
ऐसी शयन परीषह जीतैं ते मुनि कर्मकालिमा धोवैं।।

(12) आक्रोश परीषह

जगत जीव जावन्त चराचर सबके हित सब को सुखदानी।
तिन्हें देख दुर्वचन कहैं खल पाखंडी ठग यह अभिमानी।।
मारो याहि पकड़ पापी कौं तपसी भेष चोर है छानी।
ऐसे वचन बाण की वेला क्षमा ढाल ओढ़ै मुनि ज्ञानी।।

(13) बध-बंधन परीषह

निरपराध निर्वैर महामुनि तिनको दुष्ट लोग मिल मारैं।
कोई खैंच खंभसै बाँधै कोई पावक मैं परजारैं।।
तहाँ कोप करते न कदाचित पूरब कर्म विपाक विचारैं।
समरथ होय सहैं बध बंधन ते गुरु भव भव शरण हमारैं।।

(14) याचना परीषह

घोर वीर तप करत तपोधन भये क्षीण सूखी गल बाँहीं।
अस्थि चाम अवशेष रहो तन नदसाँजाल झलकैं तिसमाहीं।।
औषधि असन पान इत्यादिक प्राण जाउ पर जाँचत नाहीं।
दुर्धर अयाचीक व्रत धारैं करैं न मलिन धरम परछाहीं।।

(15) अलाभ परीषह

एक बार भोजन की बेला मौन साध बस्ती में आवैं।
जो न बनै योग्य भिक्षा विधि तो महन्त मन खेद न लावैं।।
ऐसे भ्रमत बहुत दिन बीतैं तब तप वृद्धि भावना भावैं।
यों अलाभ की परम परीषह सहैं साधु सो ही शिव पावैं।।

(16) रोग परीषह

वात पित्त कफ श्रोणित चारों ये जब घटैं बढ़ैं तनु माहीं।
रोग संयोग शोक जब उपजत जगत जीव कायर हो जाहीं।।
ऐसी व्याधि वेदना दारुण सहैं सूर उपचार न चाहीं।
आतमलीन विरक्त देहसों जैनयती निज नेम निवाहीं।।

(17) तृण स्पर्श परीषह

सूखेतृण अरु तीक्षण काँटे कठिन कांकरीपांय विदारैं।
रज उड़ आन पड़े लोचन में तीर फाँस तनु पीर विथारैं।।
तापर पर सहाय नहिं वांछत अपने करसैं काढ न डारैं।
यों तृण परस परीषह विजयी ते गुरु भव भव शरण हमारैं।।

(18) मल परीषह

यावज्जिव जल न्हौन तजो जिन नग्नरूप वन थान खड़े हैं।
चलै पसेव धूप की बेला उड़त धूल सब अंग भरे हैं।।
मलिन देह को देख महामुनि मलिनभाव उर नाहिं करैं हैं।
यों मल जनित परीषह जीतैं तिनहिं हाथ हम सीस धरे हैं।।

(19) सत्कार पुरस्कार परीषह

जो महान विद्यानिधि विजयी चिर तपसी गुण अतुल भरे हैं।
तिनकी विनय वचन से अथवा उठ प्रणाम जन नाहिं करैं हैं।।
तो मुनि तहाँ खेद नहिं मानत उर मलीनता भाव हरे हैं।
ऐसे परम साधु के अहनिशि हाथ जोड़ हम पाँय परे हैं।।

(20) प्रज्ञा परीषह

तर्क छंद व्याकरण कलानिधि आगम अलंकार पढ़ जानैं।
जाकी सुमति देख परवादी विलखत होंय लाज उर आनैं।।
जैसे सुनत नाद के हरिका वनगयंद भाजत भय मानैं।
ऐसी महाबुद्धि के भाजन पर मुनीश मद रंच न ठानैं।।

(21) अज्ञान परीषह

सावधान वर्तें निशिवासर संयमशूर परम वैरागी।
पालत गुप्ति गये दीरघदिन सकल संग ममता परत्यागी।।
अवधिज्ञान अथवा मनपर्यय केवलि ऋद्धि न अजहूँ जागी।
यों विकल्प नहिं करैं तपोनिधि सो अज्ञान विजयी बड़भागी।।

(22) अदर्शन परीषह

मैं चिरकाल घोर तप कीना अजों ऋद्धि अतिशय नहिं जागै।
तपबल सिद्ध होत सब सुनियत सो कुछ बात झूठसी लागै।।
यों कदापि चित में नहिं चिंतत समकित शुद्ध शांति रस पागैं।
सोई साधु अदर्शन विजई ताके दर्शन से अघ भागैं।।

卐 卐 卐 卐 卐

द्रव्यानुयोग

1. **वस्तु स्वरूप क्या है?**

'अनादिनिधन वस्तुएँ भिन्न-भिन्न अपनी मर्यादा सहित परिणमित होती हैं, कोई किसी के आधीन नहीं है, कोई किसी के परिणमित कराने से परिणमित नहीं होती।'

'तथा उन्हें यथार्थ मानना और परिणमित कराने से अन्यथा परिणमित नहीं होंगी - ऐसा मानना, सो ही दु:ख दूर होने का उपाय है।'

-मोक्ष मार्ग प्रकाशक, (तीसरा अधिकार)

'जीव अनन्त, पुद्गल अनन्तानन्त, धर्म-अधर्म-आकाश एक-एक, और काल लोकप्रमाण असंख्यात हैं। प्रत्येक द्रव्य में अनन्त - अनन्त गुण हैं। प्रत्येक गुण में प्रति समय एक पर्याय का उत्पाद, एक पर्याय का व्यय और गुण ध्रुव रहता है। प्रत्येक द्रव्य के प्रत्येक गुण में इसी प्रकार होता रहा है, हो रहा है और होता रहेगा।

- श्री प्रवचनसार (गाथा 93)

2. **विश्व किसे कहते हैं?**

छह द्रव्यों के समूह को विश्व कहते हैं।

विश्व को बनाने वाला कौन है?

विश्व अनादि अनन्त स्वनिर्मित है, इसे बनाने वाला कोई नहीं है।

क्या भगवान विश्व को नहीं बनाते?

भगवान विश्व को जानने वाले हैं, बनाने वाले नहीं।

3. **द्रव्य किसे कहते हैं?**

गुणों के समूह को द्रव्य कहते हैं।

4. **गुण किसे कहते हैं?**

जो द्रव्य के सम्पूर्ण भागों में एवं उसकी सम्पूर्ण अवस्थाओं में रहते हैं उनको गुण कहते हैं।

5. **पर्याय किसे कहते हैं?**

गुणों के कार्य को पर्याय कहते हैं।

6. **द्रव्य कितने प्रकार के हैं?**

जाति अपेक्षा द्रव्य छह प्रकार के हैं -

जीवद्रव्य, पुद्गलद्रव्य, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य, कालद्रव्य।

संख्या अपेक्षा द्रव्य -

जीव अनन्त, पुद्गल अनन्तानन्त, धर्म-अधर्म-आकाश एक-एक और कालद्रव्य लोक प्रमाण असंख्यात।

7. जीव द्रव्य किसे कहते हैं?

जिसमें चेतना अर्थात् ज्ञान-दर्शन रूप शक्ति हो, उसे जीवद्रव्य कहते हैं।

8. पुद्गलद्रव्य किसे कहते हैं?

जिसमें स्पर्श, रस, गंध और वर्ण पाया जाता है, उसे पुद्गल कहते हैं।

9. धर्म द्रव्य किसे कहते हैं?

स्वयं गमन करते हुए जीव और पुद्गल को गमन करने में जो निमित्त हो, उसे धर्म द्रव्य कहते हैं। जैसे- गमन करती हुई मछली को गमन करने में पानी।

10. अधर्म द्रव्य किसे कहते हैं?

स्वयं गतिपूर्वक स्थितिरूप परिणमन करने वाले जीव और पुद्गल को ठहरने में जो निमित्त हो, उसे अधर्मद्रव्य कहते हैं। जैसे - पथिक को ठहरने में वृक्ष की छाया।

11. क्या धर्म द्रव्य जीव-पुद्गल को चलाता है व अधर्म द्रव्य उन्हें ठहराता है?

नहीं। वास्तव में तो जीव-पुद्गल अपनी स्वयं की शक्ति से चलते हैं व ठहरते हैं। धर्म-अधर्म द्रव्य तो उसमें निमित्त मात्र हैं।

12. 'धर्मद्रव्य' व 'अधर्मद्रव्य' में अन्तर बताइये?

धर्म द्रव्य जीव-पुद्गल को चलने में निमित्त है तथा अधर्म द्रव्य उन्हें ठहराने में निमित्त है।

13. 'धर्म' व 'धर्मद्रव्य' में अन्तर बताइये?

आत्मा के सम्यग्दर्शनादि शुद्ध भाव ही धर्म हैं तथा स्थूलतया पूजा-पाठ आदि शुभाचरण को भी धर्म कहा जाता है। धर्म द्रव्य तो छह द्रव्यों में से एक द्रव्य है। वह जीव और पुद्गलों को चलने में निमित्त है।

14. अधर्म व अधर्म द्रव्य में अन्तर बताइये?

समस्त रागादि परलक्षी भाव ही अधर्म है तथा स्थूलतया हिंसादि

पापाचरण को ही अधर्म कहा गया है। अधर्म द्रव्य तो छह द्रव्यों में से एक द्रव्य है। वह जीव और पुद्गल को ठहरने में निमित्त है।

15. आकाश द्रव्य किसे कहते हैं?

जो जीवादि पाँचों द्रव्यों को रहने के लिए स्थान देता है, उसे आकाश द्रव्य कहते हैं। आकाश द्रव्य सर्वव्यापक है, सर्वत्र है।

16. जो ऊपर नीला-नीला आसमान दिखाई देता है, क्या वही आकाश है?

नहीं। नीलापन तो पुद्गल की पर्याय है। आकाश तो अरूपी है; उसमें कोई रंग नहीं होता।

17. काल द्रव्य किसे कहते हैं?

अपनी-अपनी अवस्था रूप से स्वयं परिणमते हुए जीवादि द्रव्यों के परिणमन में जो निमित्त हो उसे काल द्रव्य कहते हैं जैसे - कुम्हार के चाक को घूमने के लिए लोहे की कीली।

18. अजीव किसे कहते हैं?

जो जानता नहीं है, जिसमें ज्ञान नहीं है, उसे अजीव कहते हैं। जीवों को छोड़कर बाकी पाँच द्रव्य- पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश व काल अजीव द्रव्य हैं।

19. अरूपी किसे कहते हैं? छह द्रव्यों में कौन-कौन से द्रव्य अरूपी है?

जिसमें स्पर्श, रस, गंध, वर्ण न पाया जाए उसे अरूपी कहते हैं। पुद्गल को छोड़कर बाकी पाँच द्रव्य- जीव, धर्म, अधर्म, आकाश, काल अरूपी हैं।

20. जब द्रव्य छह प्रकार के हैं तो हमें केवल पुद्गल ही क्यों दिखाई देता है?

वर्तमान में हमें इन्द्रिय ज्ञान है। इन्द्रिय ज्ञान द्वारा मात्र रूपादि युक्त पुद्गल पदार्थ ही जाने जा सकते हैं रूपादि रहित अन्य पाँच अरूपी पदार्थ नहीं। इसीलिए हमें प्राप्त इन्द्रिय ज्ञान द्वारा मात्र पुद्गल ही दिखाई देता है, अन्य पाँच अरूपी पदार्थ नहीं।

21. विश्व में होने वाले कार्यों का कर्ता कौन है?

प्रत्येक द्रव्य अपनी-अपनी पर्याय (कार्यों) का कर्त्ता है, कोई भी द्रव्य किसी अन्य द्रव्य के कार्यों का कर्ता नहीं है।

22. गुणों के कितने भेद हैं?

गुणों के 2 भेद हैं- 1.सामान्य गुण, 2.विशेष गुण।

सामान्य गुण : जो समस्त द्रव्यों में रहते हैं, उन्हें सामान्य गुण कहते हैं।

विशेष गुण : जो सब द्रव्यों में न रहकर अपने-अपने द्रव्य में रहते हैं, उनको विशेष गुण कहते हैं।

23. सामान्य गुण कितने हैं?

सामान्य गुण अनन्त हैं, परन्तु उनमें मुख्य छह हैं-

1.अस्तित्व गुण, 2.वस्तुत्व गुण, 3.द्रव्यत्व गुण,
4.प्रमेयत्व गुण, 5.अगुरुलघुत्व गुण, 6.प्रदेशत्व गुण।

24. इन छह सामान्य गुणों की परिभाषायें:

1. **अस्तित्व गुण :**
   जिस शक्ति के कारण से द्रव्य का कभी नाश न हो, किसी से उत्पन्न भी न हो, उसको अस्तित्व गुण कहते हैं।
2. **वस्तुत्व गुण :**
   जिस शक्ति के कारण से द्रव्य में अर्थक्रियाकारित्व हो, उसको वस्तुत्व गुण कहते हैं।
3. **द्रव्यत्व गुण :**
   जिस शक्ति के कारण से द्रव्य की अवस्थाएँ निरन्तर बदलती रहती हैं, उसको द्रव्यत्व गुण कहते हैं।
4. **प्रमेयत्व गुण :**
   जिस शक्ति के कारण से द्रव्य किसी न किसी ज्ञान का विषय हो, उसको प्रमेयत्व गुण कहते हैं।
5. **अगुरुलघुत्व गुण :**
   जिस शक्ति के कारण द्रव्य में द्रव्यपना कायम रहता है अर्थात् (1) एक द्रव्य दूसरे द्रव्यरूप नहीं होता है। (2) एक गुण दूसरे गुण रूप नहीं होता है। (3) द्रव्य में रहने वाले अनन्त गुण बिखरकर अलग-अलग नहीं हो जाते हैं; उस शक्ति को अगुरुलघुत्व गुण कहते हैं।
6. **प्रदेशत्व गुण :**
   जिस शक्ति के कारण से द्रव्य का कोई न कोई आकार अवश्य रहता है उसको प्रदेशत्व गुण कहते हैं।

25. तत्त्व कितने होते हैं?

तत्त्व सात होते हैं–

जीव, अजीव, आश्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष।

जीव तत्त्व : जिसमें ज्ञान–दर्शन हो, वह जीव तत्त्व है।

अजीव तत्त्व : जिसमें ज्ञान–दर्शन नहीं है, वह अजीव तत्त्व है।

आस्रव तत्त्व : शुभाशुभ विकारी भावों का उत्पन्न होना आस्रव तत्त्व है।

बन्ध तत्त्व : शुभाशुभ विकारी भावों में अटकना बन्ध तत्त्व है।

संवर तत्त्व : शुद्धि का प्रगट होना संवर तत्त्व है।

निर्जरा तत्त्व : शुद्धि की वृद्धि होना निर्जरा तत्त्व है।

मोक्ष तत्त्व : पूर्ण शुद्धि का प्रगट होना मोक्ष तत्त्व है।

26. मोक्ष कितने प्रकार के हैं :

1. शक्ति रूप मोक्ष – निगोद से लेकर सिद्ध दशा तक प्रत्येक जीव के पास शक्तिरूप मोक्ष अनादिअनन्त है।
2. दृष्टि रूप मोक्ष – शक्ति रूप मोक्ष का आश्रय लेने से चौथे गुणस्थान में दृष्टि रूप मोक्ष प्रकट होता है।
3. मोह मुक्त मोक्ष – शक्ति रूप मोक्ष में विशेष एकाग्रता करने से दृष्टिरूप मोक्ष के पश्चात 12वें गुणस्थान में मोह मुक्त मोक्ष प्रकट होता है।
4. जीवन मुक्त मोक्ष – 13वें तथा 14वें गुणस्थान में प्रकट होता है।
5. विदेह मोक्ष – यह मोक्ष 14वें गुणस्थान से पार सिद्धदशा में प्रकट होता है।

27. नवदेव कौन से हैं?

अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सर्वसाधु, जिनधर्म, जिनवचन, जिनप्रतिमा और जिनमन्दिर – ये नवदेव हैं।

28. जीव का स्वरूप :

वह जीव महात्मा,

1. वास्तव में नित्य चैतन्य उपयोग होने से **एक ही** है।
2. ज्ञान और दर्शन ऐसे भेदों के कारण **दो भेद** वाला है।
3. कर्मफल चेतना, कार्य चेतना और ज्ञान चेतना ऐसे भेदों द्वारा या ध्रौव्य, उत्पाद और विनाश ऐसे भेदों द्वारा लक्षित होने से

त्रिलक्षण वाला है।

4. चार गतियों में भ्रमण करता है इसलिए **चतुर्विध भ्रमण** वाला है।
5. पारिणामिक, औदयिक इत्यादि पाँच मुख्य गुणों द्वारा प्रधानता होने से **पाँच मुख्य गुणों से प्रधान** वाला है।
6. चार दिशाओं में एवं ऊपर और नीचे इस प्रकार षड़विधि भवान्तर गमन रूप उपक्रम से युक्त होने के कारण अर्थात् अन्य भव में जाते हुए उपर्युक्त छह दिशाओं में गमन होता है; इसलिए **छह अपक्रम सहित** है।
7. अस्ति नास्ति आदि सात भंगों द्वारा जिसका सद्भाव है, ऐसा होने से **सात भंगपूर्वक सद्भाववान** है।
8. ज्ञानावरणी आदि आठ कर्मों के अथवा सम्यक्त्वादि आठ गुणों के आश्रय भूत होने से **आठ गुणों के आश्रय रूप** है।
9. नव पदार्थ रूप से वर्तता है इसलिए **'नव अर्थ रूप'** है।
10. पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, साधारण वनस्पति, प्रत्येक वनस्पति, द्वीन्द्रिय, त्रिइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय रूप दस स्थानों में प्राप्त होने से **दस स्थान गत** है।

29. पुद्गल का स्वरूप :

भेद से होने वाले पुद्गल विकल्पों का (पुद्गल भेदों का) टीकाकार **श्रीजयसेनाचार्य देव** ने वर्णन किया है–

अनन्त परमाणु पिंडात्मक घट-पटादि रूप जो विवक्षित सम्पूर्ण वस्तु उसे **स्कन्ध संज्ञा** है। भेद द्वारा जो उसके पुद्गल विकल्प होते हैं, वे निम्न दृष्टान्त अनुसार समझना - मान लो कि सोलह परमाणुओं से निर्मित एक पुद्गल पिण्ड है और उसके टूटने से उसके टुकड़े होते हैं। सोलह परमाणुओं के पूर्व पिण्ड को **स्कन्ध** माने तो आठ परमाणुओं वाला उसका अर्धभाग रूप टुकड़ा **देश** है, चार परमाणुओं वाला उसका चतुर्थ भाग रूप टुकड़ा **प्रदेश** है और अविभागी छोटे से छोटा टुकड़ा **परमाणु** है। पुनश्चः जिस प्रकार सोलह परमाणु वाले पूर्व पिण्ड को **स्कन्ध** संज्ञा है, उसी प्रकार पन्द्रह से लेकर नौ परमाणओं तक के किसी भी टुकड़े को भी **स्कन्ध** संज्ञा है। जिस प्रकार आठ

परमाणुओं वाले उसके अर्धभाग रूप टुकड़े को **देश** संज्ञा है, उसी प्रकार सात से लेकर पाँच परमाणुओं तक के उसके किसी भी टुकड़े को **देश** संज्ञा कहा है। जिस प्रकार चार परमाणु वाले उसके चतुर्थ भाग रूप टुकड़े को प्रदेश संज्ञा है। उसी प्रकार तीन, दो परमाणु वाले टुकड़े की भी प्रदेश संज्ञा है तथा अविभागी एक परमाणु है। इस दृष्टान्त के अनुसार भेद द्वारा होने वाले का पुद्गली विकल्प समझना है।

30. उपयोग के भेद :

उपयोग के दो भेद- 1.दर्शन उपयोग, 2.ज्ञानोपयोग

ज्ञानोपयोग के दो भेद-

1.स्वभाव ज्ञानोपयोग, 2.विभाव ज्ञानोपयोग

स्वभाव ज्ञान उपयोग के दो भेद-

1.कार्य स्वभाव ज्ञान उपयोग अर्थात् केवलज्ञान उपयोग

2.कारण स्वभाव ज्ञान उपयोग, सहज ज्ञानोपयोग

विभाव ज्ञानोपयोग भी दो प्रकार का है-

1.सम्यक् विभाव ज्ञानोपयोग,

2. मिथ्या विभाव ज्ञानोपयोग

31. जीव के अनादिकाल से संसार परिभ्रमण का कारण :

जीव अनादिकाल से मिथ्यात्व के कारण वस्तु का सच्चा स्वरूप तो जानता नहीं है और शरीर, स्त्री, पुत्र, धन-धान्यादि पर पदार्थों में एकत्व, ममत्व, कर्तृत्व एवं भोक्तृत्व की मिथ्या मान्यताओं के कारण संसार में पभ्रिमण कर रहा है।

32. दुःख क्या है?

आकुलता, चिन्ता, क्लेश, झंझट एवं वस्तुस्वरूप की उल्टी समझ ही दुःख है।

33. सुख क्या है?

आकुलता रहित, चिन्तारहित, क्लेशरहित, झंझटरहित, वस्तुस्वरूप की सच्ची समझ को सुख कहते हैं।

34. क्या बाह्य संयोग सुख-दुःख के कारण हैं :

बाहर के संयोग अथवा पर पदार्थ कदाचित सुख-दुःख के कारण नहीं हैं, वरन् इनमें इष्ट-अनिष्ट पने की बुद्धि ही सुख-दुःख का कारण है।

35. दुःख दूर करने और सुख पाने का सच्चा उपाय क्या है?

दुःख का लक्षण आकुलता है और मोक्ष में आकुलता का अभाव है, अतः सुख-प्राप्ति के लिये मोक्षमार्ग में लगना चाहिये।

36. सुख चाहने वाले जीव को क्या करना योग्य है?

निराकुल और सच्चे सुख को चाहने वाले भव्य जीवों को प्रमाद का त्यागकर, शास्त्राभ्यास एवं ज्ञानी गुरु की देशना प्राप्तकर, परद्रव्यों से भिन्न अपने आत्मस्वभाव का निर्णय कर, सर्वप्रथम सम्यग्दर्शन प्राप्त करना चाहिए, क्योंकि निश्चय सम्यग्दर्शन - ज्ञानपूर्वक ही एकदेशचारित्र रूप श्रावकदशा, सकलचारित्ररूप मुनिदशा की प्राप्ति होकर क्रम से यथाख्यातरूप पूर्णचारित्र की प्राप्ति होकर, नियम से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

37. सम्यग्दर्शन के चार सोपान :

1. सच्चे देव, शास्त्र, गुरु का श्रद्धान करना।
2. जीवादिक सातों तत्त्वों का सच्चा श्रद्धान करना।
3. स्व-पर भेद विज्ञान अर्थात् निज आत्मा शरीर आदि परद्रव्यों से भिन्न है, ऐसी यथार्थ श्रद्धा का होना।
4. आत्मस्वरूप की श्रद्धा, प्रतीति एवं अनुभव होना (सम्यक्त्वाचरण)।

38. सम्यग्दर्शन प्रकट करने का उपाय :

पहले तो आज्ञादि से व किसी परीक्षा से कुदेवादि की मान्यता छोड़कर अरहन्तदेवादि का श्रद्धान करना, क्योंकि यह श्रद्धान होने पर गृहीत मिथ्यात्व का तो अभाव होता है तथा मोक्षमार्ग के विघ्न करने वाले कुदेवादि का निमित्त दूर होता है, मोक्षमार्ग के सहायक अरहंत देवादि का निमित्त मिलता है; इसलिये पहले देवादिक (सच्चे देव-गुरु-शास्त्र) का श्रद्धान करना। फिर जिनमत में कहे जीवादिक तत्त्वों का विचार करना, नाम लक्षणादि सीखना; क्योंकि इस अभ्यास से तत्त्वार्थ श्रद्धान की प्राप्ति होती है। फिर आपा-पर (स्व-पर) का भिन्नपना जैसे भासित हो, वैसे विचार करता रहे; क्योंकि इस अभ्यास से भेदविज्ञान होता है। फिर आपमें अपनत्व मानने के अर्थ स्वरूप का विचार करता रहे, क्योंकि इस अभ्यास से आत्मानुभव (सम्यग्दर्शन) की प्राप्ति होती है। **-मोक्षमार्ग प्रकाशक।**

39. राग क्या है?

जीव का किसी परपदार्थ को इष्ट जानकर उसके प्रति प्रीतिरूप परिणामों का होना राग है।

40. द्वेष क्या है?

जीव का किसी परपदार्थ को अनिष्ट जानकर उसके प्रति अप्रीतिरूप परिणामों का होना द्वेष है।

41. मोक्षमार्ग में पुण्य और पाप दोनों हेय क्यों?

जैसे पाप नरक आदि गतियों में दु:ख देने वाले है, उसी प्रकार पुण्य भी स्वर्गादि में सांसारिक सुख सामग्री का भोग कराने वाला होने से आत्मा के मोक्ष में बाधक है। अर्थात् जैसे लोहे की और स्वर्ण की, दोनों बेड़ियाँ ही मनुष्य को बन्धन में डालकर उसकी स्वतन्त्रता में बाधक होती हैं, उसी प्रकार पुण्य और पाप - ये दोनों ही आत्मा को संसार में रखकर उसके मोक्ष में बाधक हैं। कहा भी है -

वरं व्रतैः पदं दैवं नाव्रतैर्वत्नारकम्।
छायातपस्थयोर्भेदः प्रतिपालयतोर्महान् ॥3॥

(इष्टोपदेश)

जो जीव हिंसा आदि पाप करके उनके फल से नरकादि गतियों में दु:ख भोगता है वह तो मोक्ष न होने तक संसार में दु:खी रहता है और जो जीव दया, परोपकार आदि शुभ काम करता है वह भी मोक्ष की प्राप्ति न होने तक स्वर्गादि गतियों में रहकर सुख से काल व्यतीत करता है। इसको पूज्यपाद स्वामी ने इष्टोपदेश में अपने तीसरे साथी की बाट देख रहे उन दो पथिकों की भाँति बताया है, जिनमें से एक तो वृक्ष की छाया के नीचे सुख से बैठकर बाट देख रहा है और दूसरा धूप में खड़ा होकर बाट देखता है। जैसे किसान खेती करता है उसको खेती का मुख्य फल अन्न तो प्राप्त होता ही है परन्तु साथ में बिना चाहा चारा भी प्राप्त होता है, उसी प्रकार मोक्षार्थी को बिना इच्छा के भी सातिशय पुण्य बंध स्वयं ही होता है। निश्चय से तो पुण्य और पाप दोनों ही हेय हैं और आत्मस्वरूप की प्राप्ति में बाधक हैं फिर भी पाप से तो पुण्य अच्छा है, यह विचार कर भव्य जीवों को जब तक शुद्धोपयोग की प्राप्ति न हो, तब तक शुभोपयोग रूप पुण्य कर्मों में वर्तना चाहिये।

42. निज ज्ञायक भगवान आत्मा की महिमा कैसे आये?

1. विश्व में जीव अनन्त हैं।
2. जीव से अनन्त गुणे अधिक पुद्गल द्रव्य हैं।
3. पुद्गल द्रव्य से अनन्त गुणे अधिक तीन काल के समय हैं।
4. तीन काल के समयों से अनन्तगुणा अधिक आकाश के प्रदेश हैं।
5. आकाश के प्रदेशों से अनन्तगुणा अधिक एक द्रव्य में गुण हैं।
6. एक द्रव्य के गुणों से अनन्तगुणा अधिक सब द्रव्यों के गुण हैं।
7. सब द्रव्यों के गुणों से अनन्तगुणा अधिक सब गुणों की पर्यायें हैं।
8. सब द्रव्यों की पर्यायों से अनन्तगुणा अधिक अविभाग प्रतिच्छेद है।
9. अपनी आत्मा में आकाश के प्रदेशों से अनन्तगुणा अधिक गुण हैं। आत्मा में ज्ञान नामक गुण है। उसकी केवलज्ञान रूप एक पर्याय है। उस पर्याय में ऊपर 8 नंबर तक जो ज्ञेय हैं, वह एक समय में ज्ञेय रूप से जाना जाता है। ऐसी ताकत केवलज्ञान की एक पर्याय में है। यदि ऐसे-ऐसे अनन्त विश्व हों, तो भी वे मेरे केवलज्ञान की पर्याय में ज्ञेय हो सकते हैं। एक समय की पर्याय की कितनी ताकत है और केवलज्ञान, केवलज्ञान ऐसी अनन्त पर्यायें हैं।
10. जब केवलज्ञान की इतनी शक्ति है, तो जिसमें से केवलज्ञान आता है उस ज्ञान गुण की ताकत की मर्यादा का क्या कहना, अमर्यादित ताकत है।
11. ज्ञान गुण जैसे अनन्तगुण मेरे में हैं। मैं उन अनन्त गुणों का स्वामी हूँ।

-ऐसी अपनी महिमा समझ में आ जाये तो जो अनादि से पर द्रव्यों के पक्ष की महिमा है, उसका अभाव होकर धर्म की शुरुआत होकर, वृद्धिपूर्वक निर्वाण का पथिक बने।

卐 卐 卐 卐 卐

श्रावक प्रतिक्रमण

गुरु वन्दना

नमस्ते - नमस्ते - नमस्ते - नमस्ते।
गुरुदेव तुमको नमस्ते - नमस्ते॥
चरणों में तेरे लग जायें रहने।
तो पा जाएं मुक्ति फिर हँसते हँसते॥

तुम्हारे चरण के परस में जो आये।
मिथ्या को तज के सम्यक् को पाये॥
तुम्हीं ने तो खोले हैं आगम के दस्ते।
सदगुरु तुमको नमस्ते नमस्ते॥

तुम्हारे चरण में मिले ज्ञान - पानी।
तुम्हारे चरण में कटे जिन्दगानी॥
कई जन्मों से खोते आये हैं खुशियाँ।
भोगों के पथ पर तरसते - तरसते॥

चिदानन्द तुमहो दयानन्द तुमहो।
हमारे लिए तो श्री कुन्द तुम हो॥
उपदेश देकर बचाया है हमको।
मोह कीच माया में फँसते-फँसते॥

नहीं पार पाया किसी ने तुम्हारा।
जो आया शरण में वो पाये सहारा॥
मन में हमारे भरे भाव ऐसे।
करो पार नैया को तुम हँसते-हँसते॥

श्रावक प्रतिक्रमण

हे भगवन्!

हे जिनेन्द्र!

हे प्रभो!

हे देवाधिदेव!

मैं 48 मिनट तक के लिए सब प्राणी पर दया करते हुए पापों के प्रक्षालन हेतु, मुक्त होने के लिए, आत्मा की आलोचना तथा पापों का प्रायश्चित प्रतिक्रमण करूँगा।

(इस प्रकार प्रतिज्ञा करके पद्मासन, अर्धपद्मासन या एक आसन की मुद्रा में बैठकर प्रतिक्रमण प्रारम्भ करें)

करते प्रमादवश जीव अनेक दोष,
होवे प्रतिक्रमण तो आता स्व होश ।
पाने विशुद्धि सब दोष अभी तजूँगा,
निर्दोष भाव मन में अब मैं रखूँगा ।।

हे जिनेन्द्र!

हे परमपिता, परमेश्वर! मैं पापी हूँ, पामर हूँ, दुष्ट हूँ, क्रूर हूँ, क्रोधी हूँ, मानी हूँ, मायाचारी हूँ, मूढ़मति हूँ, मैंने राग-द्वेष युक्त मन से बहुत पाप कर्मों का संचय किया है, इसलिए मैं सभी जीवों से क्षमा चाहता हूँ। सब जीव मुझ पर क्षमा करें, मैं भी सब जीवों पर क्षमा भाव रखता हूँ, क्षमा करता हूँ।

मेरा किसी से बैर भाव, शत्रुता नहीं है। मेरी प्राणी मात्र से मित्रता है, फिर भी अज्ञानवश यदि कोई पाप हुआ हो तो वे सभी पाप कर्म मिथ्या होंवें।

तस्स मिच्छा मे दुक्कडं

हाय-हाय! मैंने दुष्ट कर्म किए। दुष्ट कर्मों का बारंबार चिंतवन किया। दुष्ट मन भेदक वचन कहे - किये। इस प्रकार मन - वचन - काय की दुष्टता से न जाने कितने पाप तथा अपराध किए।

हे प्रभु! हे विभु! यदि मैंने एकेन्द्रिय, द्विइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय,

पंचेन्द्रिय, पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक तथा त्रसकायिक जीवों को कष्ट दिया हो, अन्य से दिलाया हो, देने दिलाने वाले को अच्छा कहा हो, तो हे प्रभु! मेरे सारे अपराध क्षमा हों।

माफ हों! माफ हों। माफ हों।

तस्स मिच्छा मे दुक्कडं। इस प्रकार क्षमा याचना करते हुए पंचपरमेष्ठी भगवान के श्री चरणों में बारम्बार –

नमस्कार! नमस्कार!! नमस्कार!!!

(नौ बार णमोकार मंत्र स्मरण)

हे भगवन्!

ढ़ाई द्वीप और दो समुद्र संबंधी पन्द्रह कर्मभूमियों में रहने वाले सभी तीर्थंकरों को, अरहंतों को, भगवन्तों को, तीर्थ प्रवर्तकों को, जिनेश्वरों को, केवलियों को, सामान्य केवलियों को, मूक केवलियों को, अनुबद्ध केवलियों को, संतप केवलियों को, अंत:कृत केवलियों को, उपसर्ग केवलियों कों, गणधरों को, संसार समुद्र से पार होने वाले पारंगतों को, धर्माचार्यों को, धर्मोपदेशकों को, उपाध्यायों को, धर्म अनुष्ठान करने वाले चौसठ ऋद्धि धारी मुनिश्वरों को, ऐसे द्वादशांग अमृत का पान कराने वाले तीन कम नौ करोड़ मुनिराजों को मेरा मन-वचन-काय त्रियोग को सम्हालकर भाव वन्दना सहित बारम्बार-

नमस्कार! नमस्कार!! नमस्कार!!!

(नौ बार णमोकार मंत्र स्मरण)

(तत्पश्चात् पंचपरमेष्ठी का गुणानुवाद करें।)

णमो अरहंताणं

णमो सिद्धाणं

णमो आयरियाणं

णमो उवज्झायाणं

णमो लोए सव्व साहूणं

णमो अरहंताणं

अरहन्तों को मेरा नमस्कार हो। कैसे हैं वे अरहन्त? क्या है उनका स्वरूप? हे प्रभो, आप मेरे आराध्य स्तुत्य हैं, आप पाँच महाकल्याणकों से सुशोभित हैं, अष्ट प्रातिहार्य से युक्त हैं, चौंतीस अतिशयों से युक्त हैं, अनन्त चतुष्टय के धनी हैं, केवलज्ञानी, केवलज्ञान रूपी अभ्यन्तर लक्ष्मी के स्वामी, समवसरणादि बहिरंग लक्ष्मी के स्वामी, हे प्रभो! हे विभो! बृहस्पति भी आपकी महिमा को न गा सका। कैसे हैं आप? आप देवाधिदेव / सवीन्द्र / बलदेव / वासुदेव / चक्रवर्ती / राजा / महाराजा / कवि / ऋषि / मुनि / यति / गणधर और अनागारों से सुशोभित वन्दित सैकड़ों और हजारों स्तुतियों से पूजनीय, स्तुत्य ऐसे ऋषभादि महावीर पर्यंत समस्त भूत, भविष्यत् चौबीस तथा विद्यमान बीस तीर्थंकरों को मेरा बारम्बार-

नमस्कार! नमस्कार!! नमस्कार!!!

(नौ बार णमोकार मंत्र स्मरण)

णमो सिद्धाणं

सिद्धों को मेरा नमस्कार हो! कैसे हैं वे सिद्ध! क्या है उनका स्वरूप! जो अतिन्द्रिय हैं, अनुपम हैं, आठ कर्मों से रहित हैं, आठ गुणों से सहित हैं, उपचार से तीर्थंकरों के गुरू हैं। स्वभाव अर्थ पर्याय, स्वभाव व्यंजन पर्याय से युक्त हैं, लोक के अन्त में विराजमान हैं, अनन्त गुणों से पूज्य हैं, ऐसे भूत, भविष्य, संप्रति (वर्तमान) संबंधी समस्त सिद्धों को मेरा नमस्कार हो।

क्यों नमस्कार करते हो? प्रभो मेरे दु:खों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, मेरा शुभ गति में गमन हो, समाधि मरण हो, रत्नत्रय की प्राप्ति हो और निज गुणों की प्राप्ति हो, इसलिए आपसे विनती करता हूँ क्योंकि आप तप से सिद्ध हैं, चरित्र से सिद्ध हैं, नय से सिद्ध हैं और संयम से सिद्ध हैं; अत: क्षायिक लब्धियों से युक्त हैं और अवगाहन से सिद्ध, भव भ्रमण नष्ट होने हेतु सिद्ध परमेष्ठियों को पुनीत / पावन भावना के साथ सिर झुका कर बारंबार-

नमस्कार! नमस्कार!! नमस्कार!!!

(नौ बार णमोकार मंत्र स्मरण)

णमो आयरियाणं

आचार्यों को मेरा नमस्कार हो। कैसे हैं आचार्य परमेष्ठी? क्या है उनका स्वरूप? जो द्वादशांगमय सूत्ररूपी समुद्र के पारगामी, ज्ञान, ध्यान और तपस्या में लवलीन, बाह्य अभ्यन्तर परिग्रह से रहित 36 गुणों से युक्त, जितेन्द्रिय, शिष्यों से उनका आचरण कराने वाले, स्वसमय और परसमय में पारंगत, मेरु के समान निश्चल, षट् आवश्यक पालने में सजग, देश कुल जाति से शुद्ध, ऐसे आचार्यों के चरणों में बारंबार-

नमस्कार! नमस्कार!! नमस्कार!!!

(नौ बार णमोकार मंत्र स्मरण)

णमो उवज्झायाणं

उपाध्यायों को मेरा नमस्कार हो। कैसे हैं उपाध्याय परमेष्ठी? क्या है उनका स्वरूप? वे ध्यान और ज्ञान के सागर हैं, पच्चीस मूलगुणों से युक्त हैं, मोक्षमार्ग में स्थित हैं, मोक्ष इच्छुक मुनिश्वरों को उपदेश देने में कुशल, प्रवीण, चतुर, ऐसे सम्पूर्ण शास्त्र द्वादशांग के पाठी उपाध्याय परमेष्ठी के चरणों में बारम्बार-

नमस्कार! नमस्कार!! नमस्कार!!!

(नौ बार णमोकार मंत्र स्मरण)

णमो लोए सव्व साहूणं

लोक में समस्त समकितवन्त साधुओं को मेरा नमस्कार हो। कैसे हैं वे साधु? क्या है उनका स्वरूप? जो विषयों की आशाओं से दूर हैं, आरम्भ और परिग्रह से दूर हैं। ज्ञान-ध्यान में, तप में, व्रत में लीन हैं, शुद्ध आत्मा की साधना करने वाले, और कैसे हैं

आप दया के सागर, सागर के समान गम्भीर, गज के समान स्वाभिमानी, मृग के समान सरल, सूर्य के समान तेजस्वी, सुमेरु के समान अकम्प, निश्चल, आकाश के समान निर्लेप, चन्द्रमा के समान शीतल और अट्ठाईस

मूलगुणों का निरतिचार पूर्वक पालन करने वाले, उपसर्ग और परिषह को जीतने वाले, चलते - फिरते तीर्थ समान, ऐसे पूज्य तीन कम नौ करोड़ मुनीश्वरों के चरणों में त्रियोग पूर्व बारम्बार

नमस्कार! नमस्कार!! नमस्कार!!!

(नौ बार णमोकार मंत्र स्मरण)

हे भगवन्!

हे प्रभु!

हे विभु!

यदि मेरे द्वारा एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय पर्यन्त स्थावर और त्रसकायिक जीवों की विराधना हुई हो; कृत, कारित, अनुमोदना की हो, पाँच प्रकार के मिथ्यात्व का सेवन किया हो, जिन दर्शन, जलगालन, रात्रि भोजन त्याग, पाँच उदम्बर त्याग, मद्य त्याग, माँस त्याग, मधु त्याग और जीव दया, इन श्रावक के आठ मूलगुण पालन करने में पाप लगे हों, जिनेन्द्र भगवान की अवहेलना हुई हो तथा दर्शन - पूजन करते समय मन-वचन-काय की शुद्धि नहीं रखी हो, मोक्षमार्ग में तथा मोक्षमार्ग मय जिनमार्ग में शंका की हो इत्यादि अतिचार, अनाचार रूप दूषण मेरे व्रतों में लगे हों, तो वे सारे पाप मिथ्या हों।

तस्स मिच्छा मे दुक्कडं

पाँच इन्द्रिय और मन को वश न करने में, हिंसा से भरे समस्त चमड़े की बनी हुई सामग्री का प्रयोग करने में, चल अश्लील चित्र देखने में और मुनि, आर्यिका, श्रावक और श्राविका की किसी भी प्रकार से निन्दा की हो, कराई हो, अनुमोदना की हो, सुनी हो, सुनाई हो, इससे जो भी पाप लगें हो, तो वे सारे मिथ्या हों।

तस्स मिच्छा मे दुक्कडं

हे देवाधिदेव!

हे परमपिता परमेश्वर!

हे प्रभु!

आपका जीवन कितना पवित्र है, भगवन् मुझे भी ऐसा आशीष दो, हे दया निधान दया करो, मैं भी आपके पद का अनुसरण कर सकूँ।

हे प्रभु! क्या मेरी योग्यता है कि मैं आपके पद का अनुसरण कर सकूँ? नहीं, नहीं, नहीं। मैं ठहरा पापी, अज्ञानी, कषायी मुझमें वह शक्ति कहाँ है, जो मैं आपके जैसा बन सकूँ।

हाय रे मेरा भाग्य! हाय रे मेरी किस्मत! परन्तु आज सब कुछ बदल गया है। आज मेरी किस्मत जाग गयी, मेरे जीवन भर के सभी पाप धुल गये। आपने इस पामर पर अपार उपकार किये। आपने मुझे मार्ग दर्शन दिया।

ओह-ओह मैं कितना पापी हूँ जो आज तक आपके पास नहीं आ सका। हाय रे अज्ञानी, हाय रे प्रमादी! आज तक आपके सान्निध्य को न पा सका। बस हो, अब इन दुष्कृत्यों से। प्रभो! आप आशीष प्रदान करना, अगर आपका आशीर्वाद रहा तो मैं निश्चित ही एक दिन आप जैसा बनूँगा।

प्रभु मैं आपसे कुछ नहीं चाहता, संसार की कोई दौलत पाने की कामना मेरे मन में नहीं है। बस एक ही भावना है कि वह घड़ी कब आयेगी, वह दिन कब आयेगा कि मैं इस घर-गृहस्थी को छोड़कर, माया जाल को छोड़कर, एक हाथ में पिच्छी और एक हाथ में कमण्डलु लेकर नगर-नगर, डगर-डगर में जाकर आपके संदेश को सुनाऊँगा, जँगल में सिंह की भाँति विचरण करूँगा, खड़े होकर अपने पाणी - पात्र में आहार करूँगा। वर्षा ऋतु में वृक्ष के नीचे, ग्रीष्म ऋतु में पहाड़ पर और शीत काल में नदियों के किनारे आत्म स्थिर रहूँगा। हे प्रभु! बस यही आशीष प्रदान करो; और मुझे कुछ नहीं चाहिए।

बस इसी भावना के साथ मेरा प्रणाम स्वीकार हो।

(नौ बार णमोकार मंत्र स्मरण)

(इसके पश्चात् कुछ क्षणों तक ऊँकार की ध्वनि से मन की वीणा झंकृत करें, परचात् आत्म-चिन्तन किसी प्रतिमा / सिद्धक्षेत्र / अतिशय क्षेत्र आदि का ध्यान करें। संसार, शरीर, भोगों की नश्वरता का चिन्तन करें।)

(हाथ जोड़कर बोलें)

अधोलोक में 7 करोड़ 72 लाख अकृत्रिम जिन मन्दिर, मध्य लोक में 458 और उर्ध्व लोक में 84 लाख 97 हजार 23 अकृत्रिम चैत्यालयों में नौ अरब पच्चीस करोड़ 53 लाख 27 हजार 948 अकृत्रिम जिन प्रतिमायें, उनको मैं विशुद्ध भक्ति पूर्वक नमस्कार करता हूँ। हे प्रभो! मेरे दु:खों का क्षय हो,

कर्मों का क्षय हो, मुझे रत्नत्रय की प्राप्ति हो, मेरा शुभगति में गमन हो, समाधिमरण हो और जिनगुणों की प्राप्ति हो।

(नौ बार णमोकार मंत्र स्मरण)

(अब कल्पना करो, आँखें बन्द करके आपके सामने एक विशाल और सुन्दर मन्दिर बना है और कमलासन पर एक मनोज्ञ जिन - प्रतिमा विराजमान है। उस प्रतिमा में बहुत मनोज्ञता है, आप प्रतिमा के सन्मुख बैठे हो, आप अपने आत्मा की आलोचना, प्रायश्चित कर रहे हो, ऐसा विचार करो, सुनिये ध्यान से। मान लीजिये कि स्तुति आप स्वयं कर रहें हैं)

हे प्रभो!

हे कृपा निधान!

आप तो घट-घट के अन्तर्यामी हो, सकल द्रव्य के अनन्त गुण पर्यायों को आप जानते हो, आप मेरे पाप को, पाप क्रिया को भी जानते हो, प्रभो! क्या मैं अपना पाप आपके चरणों में छुपा सकता हूँ - नहीं, नहीं, नहीं। हे प्रभु! फिर भी मैं अपनी पाप क्रिया, पाप को आपके चरणों में रख रहा हूँ। हे दया निधान! कृपा करो और मेरी विनती को सुनो। प्रस्तुत है, अगर कहीं गलतियाँ, अशुद्धियाँ रहीं हों तो क्षमा करना।

माफ करना। माफ करना।

इस दुनियाँ के भव वन में, एक आत्मा भटका है,

एक आत्मा भटका है।

वह भोगों में अटका है, वह रोगों में लटका है,

वह रोगों में लटका है।।

भव भोगों में भटका आत्मा, शुद्धात्मा हो जावे।

महात्मा हो जावे, ये आत्मा हमारा परमात्मा हो जावे।।

हे प्रभु सुनिए, सुनिए ये मेरा जीवन कैसा है।

पाप किये हैं मैंने, क्षण-प्रतिक्षण जीवन में,

क्षण-प्रतिक्षण जीवन में।

और पुण्य नहीं कर पाया, पल-दो-पल जीवन में,

पल-दो-पल जीवन में।।

पल-पल का ये मेरा जीवन,
पल-दो पल का मेरा जीवन।
पुण्यात्मा हो जावे, शुद्धात्मा हो जावे।।
प्रभु सुन रहे हो न!
हे नाथ! यहाँ आओ,
सुन लेना यह मेरी आराधना, कैसा है मेरा जीवन सुनिए;
सच है मैंने निश दिन, विष ही विष पिया है,
विष ही विष पिया है,
क्या कहूँ भगवन् आप तो जानते हैं;
जीवन की उजली चादर को पापों से रँगा है,
पापों से रँगा है,
हे प्रभो! मैंने अपनी चादर को पापों से रँगा है,
कैसे साफ करूँ?
जीवन की उजली चादर को पापों में रँगा है,
पापों से रँगा है।
तीर्थंकर जैसा निर्मल, ये आत्मा हो जावे, शुद्धात्मा हो जावे,
ये आत्मा हमारा, परमात्मा हो जावे।।
प्रभो! ज्यादा तो कुछ नहीं कह सकता; और एक स्तुति है,
उसे भी आप स्वीकार करना;
हे प्रभो! मैं कैसा हूँ? आओ! आ गए न! सुन रहे हो न!
कहीं ऐसा न हो जाए कि मैं स्तुति करूँ और आप न आ सको
प्रभु जरूर आना, जरूर आना, जरूर आना।
प्रभु मैं कैसा हूँ?
पामर, अबोध अज्ञानी, पददलित सदा अभिमानी,
पद दलित सदा अभिमानी।
तुम जगत बन्धु जिनेश्वर, मैं दीन हीन सा प्राणी,
मैं दीन हीन सा प्राणी।।

हे प्रभो!

हे परमेश्वर!

शुभवर मुझको मिल जाए, शुद्धात्मा हो जावे,

महात्मा हो जावे।

ये आत्मा हमारा परमात्मा हो जावे।।

हे प्रभो!

मेरा जीवन आपके चरणों में समर्पित है,

इस पावन भावना के साथ सादर –

नमस्कार! नमस्कार!! नमस्कार!!!

(नौ बार णमोकार मंत्र स्मरण)

(अब प्रतिक्रमण आलोचना में लगे हुए दोषों की क्षमा याचना करते हुए अपने पापों का स्मरण करें।)

हे जिनेन्द्र!

हे प्रभु!

आज के इस प्रतिक्रमण में प्रमादवश, कषायवश, अज्ञानतावश, प्रतिक्रमण के अक्षर, पद, मात्रा के उच्चारण में, त्रियोग की चंचलता से कोई अतिचार, अनाचार लगा हो, कोई अपराध हुआ हो तो

तस्स मिच्छा में दुक्कडं

वे सारे पाप मिथ्या होवें, मिथ्या होवें

(नौ बार णमोकार मंत्र स्मरण)

(अब अपने स्थान पर खड़े होकर निम्नोक्त मंत्रों द्वारा चतुर्दिग् वन्दना करें।)

पूर्व दिशा में जितने भी अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सर्व साधु, जिनधर्म, जिनागम, जिन चैत्य, जिन चैत्यालय, सिद्धक्षेत्र, तीर्थक्षेत्र, अतिशय क्षेत्र हों, उनको मेरा त्रियोग पूर्वक बार – बार :

नमस्कार! नमस्कार!! नमस्कार!!!

(नौ बार णमोकार मंत्र स्मरण)

दक्षिण दिशा में जितने भी अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सर्व साधु, जिनधर्म, जिनागम, जिन चैत्य, जिन चैत्याल्य, सिद्धक्षेत्र, तीर्थक्षेत्र, अतिशय क्षेत्र हों, उनको मेरा त्रियोग पूर्वक बार – बार :

नमस्कार! नमस्कार!! नमस्कार!!!

(नौ बार णमोकार मंत्र स्मरण)

पश्चिम दिशा में जितने भी अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सर्व साधु, जिनधर्म, जिनागम, जिन चैत्य, जिन चैत्याल्य, सिद्धक्षेत्र, तीर्थक्षेत्र, अतिशय क्षेत्र हों, उनको मेरा त्रियोग पूर्वक बार - बार :

नमस्कार! नमस्कार!! नमस्कार!!!

(नौ बार णमोकार मंत्र स्मरण)

उत्तर दिशा में जितने भी अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सर्व साधु, जिनधर्म, जिनागम, जिन चैत्य, जिन चैत्याल्य, सिद्धक्षेत्र, तीर्थक्षेत्र, अतिशय क्षेत्र हों, उनको मेरा त्रियोग पूर्वक बार - बार :

नमस्कार! नमस्कार!! नमस्कार!!!

(नौ बार णमोकार मंत्र स्मरण)

॥ इति प्रतिक्रमण ॥

नहीं चाहिए देव इन्द्र पद,
अब भोगों की चाह नहीं।
नहीं चाहिए चक्रवर्ती पद,
अब प्रभुता की दाह नहीं॥
नहीं चाहिए पुण्य कि जिससे,
बढ़ता अब संसार रहे।
नहीं चाहिए पाप कि जिससे,
दूर मुक्ति का द्वार रहे॥
यही चाह है तव भक्ति से,
स्व-पर भेद का ज्ञान करूँ।
यही चाह है निज शक्ति से,
चित् स्वरूप का ध्यान करूँ॥

क्षमा प्रार्थना

किया अपराध जो मैंने, तुम्हारे जान अनजाने।
क्षमा करना सभी मुझको, क्षमा करना सभी जन को॥
सभी संग मित्रता मेरे, किसी से बैर न क्षण को।
यही है भावना मेरी, जिनेश्वर हो कृपा तेरी॥
किया त्रय योग से छेदन, रहा हो भाव में वेदन।
उन्हीं को त्यागता हूँ मैं, रहे जो भाव वह मुझमें॥
नैक भव बैर जो तुमसे, रहा हो भाव दूषित से।
उदय बिन नाश हो जावे, दया मय भावमय होवे॥
क्षमा करना, क्षमा करना, न दिल में रोष को धरना।
शुद्ध दिल से मैं क्षमता हूँ, क्षमा भावों से झुकता हूँ॥
क्षमा का स्रोत बरसाओ, वीर का धर्म दरसाओ।
क्षमा भूषण गुणी-जन का, कहें गुरूवर धरम निज का॥

जयवन्तो मेरी जिनवाणी माँ

जिनवाणी माँ, जिनवाणी माँ, जयवन्तो मेरी जिनवाणी माँ॥
शुद्धातम का ज्ञान कराती, चिदानन्द रसपान कराती॥
तत्त्वों का है ज्ञान कराती, आतम प्रभु का बोध कराती।
जिनवाणी माँ.....॥
नित्य बोधनी माँ जिनवाणी, स्व-पर विवेक जगाती वाणी।
मिथ्या भ्रान्ति नशाती वाणी, ज्ञायक प्रभु दर्शाती वाणी॥
जिनवाणी माँ.....॥
सदाचार सिखलाती वाणी, सत्य धर्म प्रगटाती वाणी।
भव दुख हरण पीयूष समानी, भवदधि तारक नौका वाणी॥
जिनवाणी माँ.....॥
जो हित चाहो भविजन प्राणी, पढो सुनो ध्याओ जिनवाणी।
स्वानुभूति से करो प्रमाणी, शिवपुर पथ की यही निशानी॥
जिनवाणी माँ.....॥

अपनापन

जो अपना नहिं उसके अपनेपन में जीवन चला गया।
पर में अपनापन करके हा! मैं अपने से छला गया॥

जग में ऐसा हुआ कौन जो अपने से ही हारा।
जिसकी परिणति को अनादि से मोह शत्रु ने मारा॥
जिसने जिसको अपना जाना उसे छोड वह चला गया।
पर में अपनापन करके हा! मैं अपने से छला गया॥

अपने को विस्मृत करके हा! जिसको अपना जाना।
क्या वह अपना हुआ कभी यह सत्य अरे न जाना॥
जो अनादि से अपना है वह विस्मृत में ही चला गया।
पर में अपनापन करके हा! मैं अपने से छला गया॥

परभावों के प्रबल वेग में निशिदिन बहता रहता।
ज्ञान पटल पर कर्म उदय निज गाथा कैसे लिखता?
प्रगट ज्ञान का अंश अरे! पर-परिणति में क्यों चला गया?
पर में अपनापन करके हा! मैं अपने से छला गया॥

अपने में पर के शासन का अन्त कहो कब होगा।
पर में निज के अवभासन का अन्त कहो कब होगा॥
परभावों के वेदन में ही सारा जीवन चला गया।
पर में अपनापन करके हा! मैं अपने से छला गया॥

जिसने वीतराग मुद्रा लख निजस्वरूप को जाना।
रंग राग से भिन्न अरे! निज ज्ञान तत्त्व पहचाना॥
प्रगट ज्ञान का अंश तभी निज ज्ञान पुंज में चला गया।
अपने में अपनापन करके मैं अपने में चला गया॥

सामायिक पाठ (श्री अमितगति सूरि)

परमात्मद्वात्रिंशतिका

हिन्दी अनुवाद - कवि रामचन्द्र जैन

नित देव! मेरी आत्मा धारण करें इस नेम को,
मैत्री करे सब प्राणियों से गुणी जनों से प्रेम को।
उन पर दया करता रहे, जो दु:ख-ग्राह-गृहीत हैं,
उनसे उदासी सी रहे, जो धर्म से विपरीत हैं ।। 1 ।।

करके कृपा कुछ शक्ति ऐसी दीजिए मुझमें प्रभो,
तलवार को ज्यों म्यान से करते विलग हैं हे विभो।
गत दोष आत्मा शक्तिशाली है मिला मम अंग से,
उसको विलग उस भाँति करने के लिए ऋजु ढंग से ।। 2 ।।

हे नाथ! मेरे चित्त में समता सदा भरपूर हो,
सम्पूर्ण ममता की कुमति मेरे हृदय से दूर हो।
वन में, भवन में, दु:ख में, सुख में नहीं कुछ भेद हो,
अरि-मित्र में, मिलने-बिछुड़ने में न हर्ष न खेद हो ।। 3 ।।

अतिशय घनी तम राशि को दीपक हटाते हैं यथा,
दोनों कमल-पद आपके अज्ञान तम हरते तथा।
प्रतिबिम्ब सम स्थिर रूप वे मेरे हृदय में लीन हों,
मुनिनाथ! कीलित तुल्य वे उर पर सदा आसीन हों ।। 4 ।।

यदि एक इन्द्रिय आदि देही घूमते फिरते महीं,
जिन देव! मेरी भूल से पीड़ित हुए होवें कहीं।
टुकड़े हुए हों, मल गये हों, चोट खायें हो कभी,
तो नाथ! वे दुष्टाचरण मेरे बनें झूठे सभी ।। 5 ।।

सन्मुक्ति के सन्मार्ग से प्रतिकूल पथ मैंने लिया,
पंचेन्द्रियों चारों कषायों में स्वमन मैंने किया।
इस हेतु शुद्ध चारित्र का जो लोप मुझसे हो गया,
दुष्कर्म वह मिथ्यात्व को हो प्राप्त प्रभु! करिये दया ।। 6 ।।

चारों कषायों से, वचन, मन, काय से जो पाप है,
मुझसे हुआ, हे नाथ! वह कारण हुआ भव ताप है।
अब मारता हूँ मैं उसे आलोचना-निन्दादि से,
ज्यों सकल विष को वैद्यवर है मारता मंत्रादि से ।। 7 ।।

जिन देव! शुद्ध चारित्र का मुझसे अतिक्रम जो हुआ,
अज्ञान और प्रमाद से व्रत का व्यतिक्रम जो हुआ।
अतिचार और अनाचरण जो जो हुए मुझसे प्रभो,
सबकी मलिनता मेटने को प्रतिक्रम करता विभो ।। 8 ।।

मन की विमलता नष्ट होने को अतिक्रम है कहा,
और शील चर्या के विलंघन को व्यतिक्रम है कहा।
हे नाथ! विषयों में लपटने को कहा अतिचार है,
आसक्त अतिशय विषय में रहना महाऽनाचार है ।। 9 ।।

यदि अर्थ, मात्रा वाक्य में पद में पढ़ी त्रुटि हो कहीं,
तो भूल से ही वह हुई मैंने उसे जाना नहीं।
जिन देव वाणी! तो क्षमा उसको तुरत कर दीजिये,
मेरे हृदय में देव! केवलज्ञान को भर दीजिये ।। 10 ।।

हे देव! तेरी वन्दना मैं कर रहा हूँ इसलिए,
चिन्तामणि-प्रभ है सभी वरदान देने के लिए।
परिणाम-शुद्धि समाधि मुझमें बोधि का संचार हो,
हो प्राप्ति स्वात्मा की तथा शिव सौख्य की भव पार हो ।। 11।।

मुनि नायकों के वृन्द जिसको स्मरण करते सदा,
जिसका सभी नर-अमरपति भी स्तवन करते सदा।
सच्छास्त्र वेद पुराण जिसको सर्वदा हैं गा रहे,
वह देव का भी देव बस मेरे हृदय में आ रहे ।। 12 ।।

जो अन्त रहित सुबोध-दर्शन और सौख्य स्वरूप है,
जो सब विकारों से रहित, जिससे अलग भवकूप है।
मिलता बिना न समाधि जो, परमात्म जिसका नाम है,
देवेश वह उर आ बसे मेरा खुला हृद्धाम है ।। 13 ।।

जो काट देता है जगत के दु:ख निर्मित जाल को,
जो देख लेता है जगत की भीतरी भी चाल को।
योगी जिसे हैं देख सकते, अन्तरात्मा जो स्वयं,
देवेश! वह मेरे हृदय-पुर का निवासी हो स्वयं ।। 14 ।।

कैवल्य के सन्मार्ग को दिखला रहा है जो हमें,
जो जन्म के या मरण के पड़ता न दु:ख सन्दोह में।
अशरीर हो त्रैलोक्यदर्शी दूर है कुकलंक से,
देवेश! वह आकर लगे मेरे हृदय के अंक से ।। 15 ।।

अपना लिया है निखिल तनुधारी-निबह ने ही जिसे,
रागादि दोष व्यूह भी छू तक नहीं सकता जिसे।
जो ज्ञानमय है, नित्य है, सर्वेन्द्रियों से हीन है,
जिन देव देवेश्वर वही मेरे हृदय में लीन है ।। 16 ।।

संसार की सब वस्तुओं में ज्ञान जिसका व्याप्त है,
जो कर्म बंधन हीन बुद्ध, विशुद्ध सिद्धी प्राप्त है।
जो ध्यान करने से मिटा देता सकल कुविकार को,
देवेश वह शोभित करे मेरे हृदय-आगार को ।। 17 ।।

तम-संघ जैसे सूर्य-किरणों को न छू सकता कहीं,
उस भाँति कर्म-कलंक दोषाकर जिसे छूता नहीं।
जो है निरंजन वस्त्वपेक्षा नित्य भी है एक है,
उस आप्त प्रभु की शरण में हूँ प्राप्त जो कि अनेक है ।। 18 ।।

यह दिवस नायक लोक का जिसमें कभी रहता नहीं,
त्रैलोक्य भाषक ज्ञान रवि पर है वहाँ रहता सही।
जो देव स्वात्मा में सदा स्थिर रुपता को प्राप्त है,
मैं हूँ उसी की शरण में, जो देववर है, आप्त है ।। 19 ।।

अवलोकने पर ज्ञान में जिसके सकल संसार ही,
है स्पष्ट दिखता, एक से है दूसरा मिलकर नहीं।
जो शुद्ध शिव है शान्त भी है नित्यता को प्राप्त है,
उसकी शरण को प्राप्त हूँ जो देववर है आप्त है ।। 20 ।।

वृक्षावली जैसे अनल की लपट से रहती नहीं,
त्यों शोक, मन्मथ मान को रहने दिया जिसने नहीं।
भय, मोह, नींद, विषाद, चिन्ता भी न जिसको व्याप्त है,
उसकी शरण में हूँ गिरा, जो देववर है, आप्त है ।। 21 ।।

विधिवत शुभासन घास का या भूमि का बनता नहीं,
चौकी, शिला को ही शुभासन मानती बुधता नहीं।
जिससे कषायें इन्द्रियाँ खट पट मचाती हैं नहीं,
आसन सुधी जन के लिए है आत्मा निर्मल वही ।। 22 ।।

हे भद्र! आसन, लोक पूजा संघ की संगति तथा,
ये सब समाधि के न साधन वास्तविक में है प्रथा।
सम्पूर्ण बाहर वासना को इसलिए तू छोड़ दे,
अध्यात्म में तू हर घड़ी होकर निरत रति जोड़ दे ।। 23 ।।

जो बाहरी हैं वस्तुएं, वे हैं नहीं मेरी कहीं,
उस भाँति हो सकता कहीं उनका कभी मैं भी नहीं।
यों समझ बाह्याडम्बरों को छोड़ निश्चित रूप से,
हे भद्र! हो जा स्वस्थ तू बच जाएगा भवकूप से ।। 24 ।।

निज को निजात्मा-मध्य में ही सम्यक् अवलोकन करे,
तू दर्श प्रज्ञा चरित मय है शुद्ध से भी है परे।
एकाग्र जिसका चित्त है तू सत्य इसको मानना,
चाहे कहीं भी हो समाधी प्राप्त उसका जानना ।। 25 ।।

मेरा अकेला आत्मा परिवर्तनों से हीन है,
अतिशय विनिर्मल है सदा, सद्ज्ञान में ही लीन है।
जो अन्य सब हैं वस्तुएँ वे ऊपरी ही हैं सभी,
निज कर्म से उत्पन्न हैं अविनाशिता क्यों हो कभी ।। 26 ।।

है एकता जब देह के भी साथ में जिसकी नहीं,
पुत्रादिकों के साथ उसका ऐक्य फिर क्यों हो कहीं।
जब अंग पर से मनुज के चमड़ा अलग हो जायेगा,
तो रोगटों का छिद्र गण कैसे नहीं खो जायेगा ।। 27 ।।

संसार रूपी गहन वन में है, जीव बहु दुःख भोगता,
वह बाहरी सब वस्तुओं के साथ कर संयोगता।
यदि मुक्ति की है चाह तो फिर जीवगण सुन लीजिये,
मन से, वचन से, काय से, उसको अलग कर दीजिये ।। 28 ।।

देही! विकल्पित जाल को तू दूर करदे शीघ्र ही,
संसार वन में डालने का मुख्य कारण है यही।
तू सर्वदा सबसे अलग निज आत्मा को देखना,
परमातमा के तत्त्व में तू लीन निज को लेखना ।। 29 ।।

पहले समय में आतमा ने कर्म हैं जैसे किए,
वैसे शुभाशुभ फल यहाँ पर इस समय उसने लिए।
यदि दूसरे के कर्म का फल जीव को हो जाए तो,
हे जीवगण! फिर सफलता निज कर्म की खो जाए तो ।। 30 ।।

अपने उपार्जित कर्म फल को जीव पाते हैं सभी,
इसके सिवा कोई किसी को कुछ नहीं देता कभी।
ऐसा समझना चाहिये एकाग्र मन होकर सदा,
दाता अपर है भोग का इस बुद्धि को खोकर सदा ।। 31 ।।

सबसे अलग परमातमा है अमितगति से वन्द्य है,
हे जीवगण! वह सर्वदा सब भाँति ही अनवद्य है।
मन से उसी परमातमा को ध्यान में जो लाएगा,
वह श्रेष्ठ लक्ष्मी के निकेतन मुक्ति पद को पायेगा ।। 32 ।।

पढ़कर इन द्वात्रिंश पद्य को,
लखता जो परमात्म वन्द्य को।
वह अनन्यमय हो जाता है,
मोक्ष निकेतन को पाता है।।

卐 卐 卐 卐 卐

चौबीस तीर्थंकर वन्दना

चौबीसों परिग्रह रहित, चौबीसों जिनराज।
वीतराग सर्वज्ञ जिन, हितकर सर्व समाज।।

श्री **आदिनाथ** अनादि मिथ्या मोह का मर्दन किया।
आनन्दमय ध्रुवधाम निज भगवान का दर्शन किया।।
निज आतमा को जानकर निज आतमा अपना लिया।
निज आतमा में लीन हो निज आतमा को पा लिया ।। 1 ।।

जिन **अजित** जीता क्रोध रिपु निज आतमा को जानकर।
निज आतमा पहिचान कर निज आतमा का ध्यान धर।।
उत्तम क्षमा की प्राप्ति की बस एक ही है साधना।
आनन्दमय ध्रुव धाम निज भगवान की आराधना ।। 2 ।।

सम्भव असम्भव मान मार्दव धर्ममय शुद्धातमा।
तुमने बताया जगत को सब आतमा परमातमा।।
छोटे बड़े की भावना ही मान का आधार है।
निज आतमा की साधना ही साधना का सार है ।। 3 ।।

निज आतमा को आतमा ही जानना है सरलता।
निज आतमा की साधना आराधना है सरलता।।
वैराग्य जननी नन्दनी **अभिनन्दनी** है सरलता।
है साधकों की संगिनी आनन्द जननी सरलता ।। 4 ।।

हे सर्वदर्शी **सुमति** जिन! आनन्द के रस कन्द हो।
हो शक्तियों के संग्रहालय ज्ञान के घनपिण्ड हो।।
निर्लोभ हो निर्दोष हो निष्क्रोध हो निष्काम हो।
हो परम पावन पतित-पावन शौचमय सुख धाम हो ।। 5 ।।

मानता आनन्द सब जग हास में परिहास में।
पर आपने निर्मद किया परिहास को परिहास में।।
परिहास भी है परिग्रह जग को बताया आपने।
हे **पद्मप्रभ** परमात्मा पावन किया जग आपने ।। 6 ।।

पारस सुपारस है वही पारस करे जो लोह को।
वह आतमा ही है **सुपारस** जो स्वयं निर्मोह हो।।
रति-राग वर्जित आतमा ही लोक में आराध्य है।
निज आतमा का ध्यान ही बस साधना है साध्य है ।। 7 ।।

रति-अरति हर श्री चन्द्र जिन तुम ही अपूरव चन्द्र हो।
निश्शेष हो निर्दोष हो, निर्विघ्न हो निष्कंप हो।।
निकलंक हो अकलंक हो निश्ताप हो निष्पाप हो।
यदि है अमावस अज्ञ जन तो पूर्णमासी आप हो ।। 8 ।।

विरहित विविध विधि **सुविधि** जिन निज आतमा में लीन हो।
हो सर्व गुण सम्पन्न जिन सर्वज्ञ हो स्वाधीन हो।।
शिवमग बतावन हार हो शत इन्द्र करि अभिवन्द्य हो।
दुख शोक हर भ्रम रोग हर संतोष कर सानन्द हो ।। 9 ।।

आपका गुणगान जो जन करें नित अनुराग से।
सब भय भयंकर स्वयं भय करि भाग जावें भाग से।।
तुम हो स्वयंभू नाथ निर्भय जगत को निर्भय किया।
हो स्वयं **शीतल** मलय गिरि से जगत को शीतल किया ।।10 ।।

नरतन विदारन मरन-मारन मलिन भाव विलोक के।
दुर्गन्ध मय मलमूत्रमय नरकादि थल अवलोक के।।
जिनके न उपजे जुगुप्सा समभाव महल मसान में।
वे श्रेय श्रेयस्कर श्री **श्रेयांस** विचरें हमारे ध्यान में ।। 11 ।।

निज आतमा के भान बिन सुख मान कर रति-राग में।
सारा जगत नित जल रहा है वासना की आग में।।
तुम वेद विरहित वेद विद जिन वासना से दूर हो।
वसुपुज्य सुत बस आप ही आनन्द से भरपूर हो ।। 12 ।।

बस आतमा ही बस रहा जिनके **विमल** श्रद्धान में।
निज आतमा बस एक ही नित रहे जिनके ध्यान में।।
सब द्रव्य-गुण-पर्याय जिनके नित्य झलके ज्ञान में।
वे वेद विरहित विमल जिन विचरें हमारे ध्यान में ।। 13 ।।

तुम हो अनादि **अनन्त** जिन तुम ही अखण्डानन्त हो।
तुम वेद विरहित वेद विद शिव कामिनी के कन्त हो।।
तुम सन्त हो भगवन्त हो तुम भव जलधि के अन्त हो।
तुम में अनन्तानन्त गुण तुम ही अनन्तानन्त हो ।। 14 ।।

हे **धर्म** जिन सद्धर्ममय सत्धर्म के आधार हो।
भव भूमि का परित्याग कर जिन भव जलधि के पार हो।।
आराधना आराधकर आराधना के सार हो।
धरमातमा परमातमा तुम धरम के अवतार हो ।। 15 ।।

मोहक महल मणिमाल मण्डित सम्पदा षट्खण्ड की।
हे **शान्ति** जिन तृण सम तजी ली शरण एक अखण्ड की।।
पायो अखण्डानन्द दर्शन ज्ञान बीरज आपने।
संसार पार उतारनी दी देशना प्रभु आपने ।। 16 ।।

मनहर मदन तन वरन सुवरन सुमन सुमन समान ही।
धन धान्य पूरित सम्पदा अगणित कुबेर समान थी।।
थीं उरवसी सी अंगनाएँ संगिनी संसार की।
श्री **कुन्थु** जिन तृण सम तजी ली राह भवदधि पार की ।। 17।।

हे चक्रधर जगजीत कर षट्खण्ड को निज वश किया।
पर आतमा निज नित्य एक अखण्ड तुम अपना लिया।।
हे ज्ञान धन **अरनाथ** जिन धन धान्य को ठुकरा दिया।
विज्ञान घन आनन्द घन निज आतमा को पा लिया ।। 18 ।।

हे दुपद त्यागी **मल्लि** जिन मन-मल्ल का मर्दन किया।
एकान्त पीड़ित जगत को अनेकान्त का दर्शन दिया।।
तुमने बताया जगत को क्रमबद्ध है सब परिणमन।
हे सर्वदर्शी सर्वज्ञानी नमन हो शत-शत नमन ।। 19 ।।

मुनि मन हरण श्री **मुनि सुव्रत** चतुष्पद परित्याग कर।
निज पद विहारी हो गये तुम अपद पद परिहार कर।।
पाया परमपद आपने निज आतमा पहिचान कर।
निज आतमा को जानकर निज आतमा का ध्यान धर ।। 20 ।।

निज पद विहारी धरमधारी धरममय धरमातमा।
निज आतमा को साध पाया परम पद परमातमा।।
हे यान त्यागी **नमी** तेरी शरण में मम आतमा।
तुमने बताया जगत को सब आतमा परमातमा ।। 21 ।।

आसन बिना आसन जमा गिरनार पर घनश्याम तन।
सद्बोध पाया आपने जग को बताया **नेमि** जिन।।
स्वाधीन है प्रत्येक जन स्वाधीन है प्रत्येक कन।
पर द्रव्य से है पृथक् पर, हर द्रव्य अपने में मगन ।। 22 ।।

तुम हो अचेलक **पार्श्व** प्रभु वस्त्रादि सब परित्याग कर।
तुम वीतरागी हो गये रागादि भाव निवार कर।।
तुमने बताया जगत को प्रत्येक कण स्वाधीन है।
कर्ता न धर्ता कोई है अणु-अणु स्वयं में लीन है ।। 23 ।।

हे पाणि पात्री **वीर** जिन, जग को बताया आपने।
जग जाल में अब तक फँसाया पुण्य एवं पाप ने।
पुण्य एवं पाप से है पार मग सुख शान्ति का।
यह धरम का है मरम यह विस्फोट आतम क्रान्ति का ।। 24 ।।

(सोरठा)

पुण्य पाप से पार निज आतम का धर्म है।
महिमा अपरम्पार परम अहिंसा है यही।।

卐 卐 卐 卐 卐

निज स्वरूप को परम रस जामै भरो अपार।
बन्दौं परमानन्दमय समयसार अविकार।।

卐 卐 卐 卐 卐

महावीर वन्दना

जो मोह माया मान मत्सर मदन मर्दन वीर हैं।
जो विपुल विघ्नों बीच में भी ध्यान धारण धीर हैं॥
जो तरण-तारण भव निवारण भव जलधि के तीर हैं।
वे वन्दनीय जिनेश तीर्थंकर स्वयं महावीर हैं ॥ 1 ॥

जो राग द्वेष विकार वर्जित लीन आतम ध्यान में।
जिनके विराट विशाल निर्मल अचल केवल ज्ञान में॥
युग पद विशद् सकलार्थ झलकें ध्वनित हो व्याख्यान में।
वे वर्धमान महान जिन विचरें हमारे ध्यान में ॥ 2 ॥

जिनका परम् पावन चरित्र जल निधि समान अपार है।
जिनके गुणों के कथन में गणधर न पावें पार है॥
बस वीतराग विज्ञान ही जिनके कथन का सार है।
उन सर्वदर्शी सन्मति को वन्दना शत बार है ॥ 3 ॥

जिनके विमल उपदेश में सबके उदय की बात है।
समभाव समताभाव जिनका जगत् में विख्यात है॥
जिसने बताया जगत् को प्रत्येक कण स्वाधीन है।
कर्ता न धर्ता कोई है अणु-अणु स्वयं में लीन है ॥ 4 ॥

आतम बने परमातमा हो शान्ति सारे देश मे।
है देशना सर्वोदयी महावीर के संदेश में॥



निर्वाण-काण्ड (भाषा)

दोहा

वीतराग वन्दौं सदा, भाव सहित सिरनाय।
कहूँ काण्ड निर्वाण की, भाषा सुगम बनाय॥

चौपाई

अष्टापद आदीश्वर स्वामि, वासुपूज्य चम्पापुर नामि।
नेमिनाथ स्वामि गिरनार, वन्दौं भाव-भगति उरधार॥
चरम तीर्थंकर चरम शरीर, पावापुरि स्वामि महावीर।
शिखर सम्मेद जिनेसुर बीस, भाव सहित वन्दौं निश-दीस॥

वरदत्तराय रु इन्द्र मुनिन्द्र सायरदत्त आदि गुण वृन्द।
नगर तारवर मुनि उठकोड़ि वन्दौं भाव सहित कर जोड़ि॥
श्री गिरनार शिखर विख्यात, कोड़ि बहत्तर अरु सौ सात।
शम्बु प्रदुम्न कुमार द्वै भाय, अनिरुध आदि नमूँ तसु पाय॥

रामचन्द्र के सुत द्वै वीर, लाड-नरिन्द आदि गुणधीर।
पाँच कोड़ मुनि मुक्ति मँझार, पावागिरि वन्दौं निरधार॥
पाण्डव तीन द्रविड राजान, आठ कोड़ि मुनि मुकति पयान।
श्री शत्रुञ्जय गिरि के सीस, भाव सहित वन्दौं निशदीस॥

जे बलभद्र मुकति में गये, आठ कोड़ि मुनि औरहु भये।
श्री गजपन्थ शिखर सुविशाल, तिनके चरण नमूँ तिहुँ काल॥
राम हणु सुग्रीव सुडील, गव गवाख्य नील महानील।
कोड़ि निन्याणव मुक्ति पयान, तुंगीगिरि वन्दौं धरि ध्यान॥

नंग अनंग कुमार सुजान, पाँच कोड़ि अरु अर्ध प्रमान।
मुक्ति गये सोनागिरि शीश, ते बन्दौं त्रिभुवन पति ईस।
रावण के सुत आदिकुमार, मुक्ति गये रेवातट सार।
कोटि पंच अरु लाख पचास, ते वन्दौं धरि परम हुलास॥

रेवा नदी सिद्धवर कूट, पश्चिम दिशा देह जहँ छूट।
द्वै चक्री दस कामकुमार, ऊठ कोड़ि बन्दौं भव पार।।
बड़वानी बड़नयर सुचंग, दक्षिण दिशि गिरि चूल उतंग।
इन्द्रजीत अरु कुम्भ जु कर्ण, ते वन्दौं भव सागर तर्ण।।

सुवरण-भद्र आदि मुनि चार, पावागिरि वर शिखर मँझार।
चेलना-नदी तीर के पास, मुक्ति गये वन्दौं नित तास।।
फल होड़ी बड़गाम अनूप, पश्चिम दिशा द्रोणगिरि रूप।
गुरुदत्तादि मुनी सुर जहाँ, मुक्ति गये वन्दौं नित तहाँ।।

बाल महाबाल मुनि दोय नाग कुमार मिले त्रय होय।
श्री अष्टापद मुक्ति मँझार, ते बन्दौं नित सुरत संभार।।
अचलापुर की दिश ईसान, तहाँ मेढगिरि नाम प्रधान।
साढ़े तीन कोड़ि मुनि राय, तिनके चरण नमूँ चित लाय।।

वंस स्थल वन के ढिग होय, पश्चिम दिशा कुन्थु गिरि सोय।
कुलभूषण देशभूषण नाम, तिनके चरणनि करूँ प्रणाम।।
दसरथ राजा के सुत कहे, देश कलिंग पाँच सौ लहे।
कोटिशिला मुनि कोटि प्रमान, वन्दन करूँ जोरिजुगपान।।

समवसरण श्री पार्श्व-जिनन्द, रेसिन्दीगिरि नयनानन्द।
वरदत्तादि पंच ऋषिराज ते वन्दौं नित धरम-जिहाज।।
तीन लोक के तीरथ जहाँ नित प्रति वन्दन कीजे तहाँ।
मन-वच-काय सहित सिरनाय वन्दन करहिं भविक गुणगाय।।

संवत सतरह सौ इकताल, आश्विन सुदी दशमी सुविशाल।
भैया वन्दन करहिं त्रिकाल, जय निर्वाण काण्ड गुणमाल।।



नीरव-निर्झर

प्रेमभाव हो सब जीवों से, गुणी जनों में हर्ष प्रभो।
करुणा स्रोत बहे दुखियों पर, दुर्जन में मध्यस्थ विभो ।। 1 ।।

यह अनन्त बल शील आतमा, हो शरीर से भिन्न प्रभो।
ज्यों होती तलवार म्यान से, वह अनन्त बल दो मुझको ।। 2 ।।

सुख दुख बैरी बन्धु वर्ग में, काँच कनक में समता हो।
वन उपवन प्रासाद कुटी में, नहीं खेद नहिं ममता हो ।। 3 ।।

जिस सुन्दरतम पथ पर चलकर, जीते मोह मान मन्मथ।
वह सुन्दर पथ ही प्रभु मेरा, बना रहे अनुशीलन पथ ।। 4 ।।

एकेन्द्रिय आदिक प्राणी की, यदि मैंने हिंसा की हो।
शुद्ध हृदय से कहता हूँ, वह निष्फल हो दुष्कृत्य प्रभो ।। 5 ।।

मोक्षमार्ग प्रतिकूल प्रवर्तन, जो कुछ किया कषायों से।
विपथ गमन सब कालुष मेरे, मिट जावें सद्भावों से ।। 6 ।।

चतुर वैद्य विष विक्षत करता, त्यों प्रभु! मैं भी आदि उपांत।
अपनी निंदा आलोचना से, करता हूँ पापों को शान्त ।। 7 ।।

सत्य अहिंसादिक व्रत में भी, मैंने हृदय मलीन किया।
व्रत विपरीत प्रवर्तन करके, शीलाचरण विलीन किया ।। 8 ।।

कभी वासना की सरिता का, गहन सलिल मुझ पर छाया।
पी-पीकर विषयों की मदिरा, मुझमें पागल पन आया ।। 9 ।।

मैंने छली और मायावी, हो असत्य आचरण किया।
पर निन्दा गाली चुगली जो, मुँह पर आया वमन किया ।। 10 ।।

निरभिमान उज्ज्वल मानस हो, सदा सत्य का ध्यान रहे।
निर्मल जल की सरिता सदृश, हिय में निर्मल ज्ञान बहे। । 11 ।।

मुनि चक्री शक्री के हिय में, जिस अनन्त का ध्यान रहे।
गाते वेद पुराण जिसे वह, परम देव मम हृदय रहे ।। 12 ।।

दर्शन ज्ञान स्वभावी जिसने, सब विकार ही वमन किये।
परम ध्यान गोचर परमातम, परम देव मम हृदय रहे ।। 13 ।।

जो भव दु:ख का विध्वंसक है, विश्व विलोकी जिसका ज्ञान।
योगी जन के ध्यान गम्य वह, बसे हृदय में देव महान ।। 14 ।।

मुक्ति मार्ग का दिग्दर्शक है, जन्म-मरण से परम अतीत।
निष्कलंक त्रैलोक्य-दर्शि वह, देव रहे मम हृदय समीप ।। 15 ।।

निखिल विश्व के वशीकरण में, राग रहे ना द्वेष रहे।
शुद्ध अतीन्द्रिय ज्ञान स्वरूपी, परम् देव मम हृदय रहे ।। 16 ।।

देख रहा जो निखिल विश्व को, कर्म कलंक विहीन विचित्र।
स्वच्छ विनिर्मल निर्विकार वह, देव करे मम हृदय पवित्र ।। 17 ।।

कर्म कलंक अछूत न जिसका, कभी छू सके दिव्य प्रकाश।
मोह तिमिर को भेद चला जो परम शरण मुझको वह आप्त ।। 18 ।।

जिसकी दिव्य ज्योति के आगे, फीका पड़ता सूर्य प्रकाश।
स्वयं ज्ञानमय स्व-पर प्रकाशी, परम शरण मुझको वह आप्त ।। 19 ।।

जिसके ज्ञान रूप दर्पण में, स्पष्ट झलकते सभी पदार्थ।
आदि-अन्त से रहित शान्त शिव,परम शरण मुझको वह आप्त ।। 20 ।।

जैसे अग्नि जलाती तरु को, तैसे नष्ट हुए स्वयमेव।
भय विषाद चिन्ता सब जिसके, परम शरण मुझको वह देव ।। 21 ।।

तृण चौकी शिल शैल शिखर नहीं, आत्म समाधि के आसन।
संस्तर पूजा संघ सम्मिलन, नहीं समाधि के साधन ।। 22 ।।

इष्ट-वियोग, अनिष्ट-योग में, विश्व मनाता है मातम।
हेय सभी है विश्व वासना, उपादेय निर्मल आतम ।। 23 ।।

बाह्य जगत कुछ भी नहिं मेरा, और न बाह्य जगत का मैं।
यह निश्चित कर छोड़ बाह्य को, मुक्ति हेतु नित स्वस्थ रमें।। 24 ।।

अपनी निधि तो अपने में हैं, बाह्य वस्तु में व्यर्थ प्रयास।
जग का सुख तो मृग-तृष्णा है, झूठे हैं उसके पुरुषार्थ ।। 25 ।।

अक्षय है शाश्वत है आत्मा, निर्मल ज्ञान स्वभावी है।
जो कुछ बाहर है सब पर है, कर्माधीन विनाशी है ।। 26 ।।

तन से जिसका ऐक्य नहीं, हो सुत-तिय-मित्रों से कैसे।
चर्म दूर होने पर तन से, रोम समूह रहे कैसे ।। 27 ।।

महाकष्ट पाता जो करता, पर पदार्थ जड़ देह संयोग।
मोक्ष महल का पथ है सीधा, जड़ चेतन का पूर्ण वियोग ।। 28 ।।

जो संसार पतन के कारण, उन विकल्प जालों को छोड़।
निर्विकल्प निर्द्वन्द्व आतमा, फिर फिर लीन उसी में हो ।। 29 ।।

स्वयं किये जो कर्म शुभाशुभ, फल निश्चय ही वे देते।
करे आप फल देय अन्य तो, स्वयं किये निष्फल होते ।। 30 ।।

अपने कर्म सिवाय जीव को, कोई न फल देता कुछ भी।
पर देता है यह विचार तज, स्थिर हो छोड़ प्रमादि बुद्धि ।। 31 ।।

निर्मल सत्य शिवं सुन्दर है, अमित गति वह देव महान।
शाश्वत निज में अनुभव करते, पाते निर्मलपद निर्वाण ।। 32 ।।

卐 卐 卐 卐 卐

राग-द्वेष आदि के कारण से जीवों को अनेक प्रकार के दुःख भोगने पड़ते हैं; परन्तु शुद्ध चिद्रूप का स्मरण करते ही वे पलभर में नष्ट हो जाते हैं, ठहर नहीं सकते; क्योंकि बिना रागादि के दूर हुये शुद्ध चिद्रूप का ध्यान हो ही नहीं हो सकता।

बारह - भावना (पं० जयचन्द जी)

द्रव्य रूप करि सर्व थिर, परजय थिर है कौन।
द्रव्य दृष्टि आपा लखो, परजय नय करि गौन।।

शुद्धातम अरु पंच गुरु जग में सरनौ दोय।
मोह उदय जिय के वृथा आन कल्पना होय।।

पर द्रव्यन तैं प्रीति जो, है संसार अबोध।
ताको फल गति चार में, भ्रमण कह्यो श्रुत शोध।।

परमारथ तैं आतमा एक रूप ही जोय।
कर्म निमित्त विकलप घने, तिन नासे शिव होय।।

अपने-अपने सत्त्व कूँ, सर्व वस्तु विलसाय।
ऐसे चितवे जीव तब, पर तैं ममत न थाय।।

निर्मल अपना आतमा, देह अपावन गेह।
जानि भव्य निज भाव को, यासों तजो सनेह।।

आतम केवल ज्ञानमय, निश्चय दृष्टि निहार।
सब विभाव परिणाम मय, आस्रव भाव विडार।।

निज स्वरूप में लीनता, निश्चय संवर जानि।
समिति गुप्ति संजम धरम, धरैं पाप की हानि।।

संवरमय है आतमा, पूर्व कर्म झड़ जाय।
निज स्वरूप को पायकर, लोक शिखर जब थाय।।

लोक स्वरूप विचारि कैं, आतम रूप निहारि।
परमारथ व्यवहार गुणि, मिथ्या भाव निवारि।।

बोधि आपका भाव है, निश्चय दुर्लभ नाहिं।
भव में प्रापति कठिन है, यह व्यवहार कहाहिं।।

दर्श ज्ञान मय चेतना, आतम धर्म बखानि।
दया क्षमादिक रत्नत्रय, यामें गर्भित जानि।।

卐 卐 卐 卐 卐

वीतराग स्तोत्र

शिवं शुद्ध बुद्धं, परं विश्वनाथं,
न देवो न बंधुर्न, कर्ता न कर्म।
न अंगं न संगं, न स्वेच्छा न कायं,
चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम् ।।1।।

न बंधो न मोक्षो, न रागादिदोषं,
न योगं न भोगं, न व्याधिर्न शोकं।
न कोपं न मानं, न माया न लोभं,
चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम् ।।2।।

न हस्तौ न पादौ, न घ्राणं न जिह्वा,
न चक्षुर्न कर्णं, न वक्त्रं न निद्रा।
न स्वामी न भृत्यः न देवो न मर्त्यः,
चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम् ।।3।।

न जन्म न मृत्यु, न मोहं न चिंता,
न क्षुद्रो न भीतो, न कार्श्यं न स्थूलं।
न स्वेदं न खेदं, न वर्णं न मुद्रा,
चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम् ।।4।।

त्रिदण्डे त्रिखण्डे, हरे विश्वनाथं,
हृषीकेश विध्वस्त कर्मारिजालं।
न पुण्यं न पापं न चाक्षादि गात्रं,
चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम् ।।5।।

न बालो न वृद्धो, न तुच्छो न मूढो,
न स्वेदं न भेदं, न मूर्तिर्न स्नेहः।
न कृष्णं न शुक्लं, न मोहं न तन्द्रा,
चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम् ।।6।।

न आद्यां न मध्यं, न अंतं न चान्यत्,
न द्रव्यं न क्षेत्रं, न कालो न भावः।
न शिष्यो गुरुर्नापि, हीनं न दीनं,
चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम् ।।7।।

इदं ज्ञानरूपं, स्वयं तत्त्व वेदी,
न पूर्णं न शून्यं, न चैत्यं स्वरूपी।
न चान्यो न भिन्नं, न परमार्थमेकम्,
चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम् ।।8।।

आत्माराम गुणाकरं गुणनिधिं चैतन्य - रत्नाकरं।
सर्वे भूतगतागते सुख-दुखे ज्ञाते त्वया सर्वगे।।
त्रैलोक्याधिपते स्वयं स्वमनसा ध्यायंति योगीश्वराः।
वंदे तं हरिवंश हर्ष हृदयं श्रीमान् हृदाभ्युद्यताम् ।।9।।

卐 卐 卐

परमानन्द स्तोत्र

परमानन्दसंयुक्तं निर्विकारं निरामयम्।
ध्यानहीना न पश्यन्ति, निज देहे व्यवस्थितम् ।। 1 ।।

अनन्तसुखसम्पन्नं ज्ञानामृतपयोधरम्।
अनन्तवीर्यसम्पन्नं, दर्शनं परमात्मनः ।। 2 ।।

निर्विकारं निराबाधं, सर्वसंगविवर्जितम्।
परमानन्दसम्पन्नं, शुद्धचैतन्यलक्षणम् ।। 3 ।।

उत्तमा स्वात्मचिंता स्यान्मोहचिंता च मध्यमा।
अधमा कामचिंता स्यात्, परचिंताऽधमाधमा ।। 4 ।।

निर्विकल्पसमुत्पन्नं ज्ञानमेव सुधारसम्।
विवेकमंजुलिं कृत्वा तत्पिबंति तपस्विनः ।। 5 ।।

सदानन्दमयं जीवं, यो जानाति स पण्डितः।
स सेवते निजात्मानं, परमानन्दकारणम् ।। 6 ।।

नलिन्यां च यथा नीरं भिन्नं तिष्ठति सर्वदा।
अयमात्मा स्वभावेन देहे तिष्ठति निर्मलः ।। 7 ।।

द्रव्यकर्ममलैर्मुक्तं, भावकर्मविवर्जितम्।
नोकर्मरहितं विद्धि, निश्चयेन चिदात्मनः ।। 8 ।।

आनन्दं ब्रम्हणोरूपं, निजदेहे व्यवस्थितम्।
ध्यानहीना न पश्यन्ति, जात्यन्धा इव भास्करम् ।। 9 ।।

तद्ध्यानं क्रियते भव्यै, र्मनो येन विलीयते।
तत्क्षणं दृश्यते शुद्धं, चिच्चमत्कारलक्षणम् ।। 10 ।।

ये ध्यानशीला मुनयः प्रधाना, सतेदुःखहीना नियमाद् भवन्ति।
सम्प्राप्य शीघ्रं परमात्मतत्त्वम्, व्रजन्ति मोक्षं क्षणमेकमेव ।। 11 ।।

आनन्दरूपं परमात्मतत्त्वम्, समस्तसंकल्पविकल्प मुक्तम्।
स्वभावलीना निवसन्ति नित्यम्, जानाति योगी स्वयमेव तत्त्वम् ।। 12 ।।

परमात्म स्वरूप

चिदानन्दमयं शुद्धं, निराकारं निरामयं।
अनन्तसुखसम्पन्नं, सर्वसंगविवर्जितम् ।। 13 ।।

लोकमात्रप्रमाणोऽयं, निश्चये न हि संशयः।
व्यवहारे तनूमात्रः कथितः परमेश्वरैः ।। 14 ।।

यत्क्षणं दृश्यते शुद्धं तत्क्षणं गतविभ्रमः।
स्वस्थचित्तः स्थिरीभूत्वा, निर्विकल्प-समाधितः ।। 15 ।।

स एव परमं ब्रम्ह, स एव जिनपुंगव।
स एव परमं तत्त्वं, स एव परमो गुरुः ।। 16 ।।

स एव परमं ज्योतिः स एव परमं तपः।
स एव परमं ध्यानं, स एव परमात्मकः ।। 17 ।।

स एव सर्व कल्याणं, स एव सुखभाजनं।
स एव शुद्धचिद्रूपं, स एव परमं शिवः ।। 18 ।।

स एव परमानन्दः, स एव सुखदायकः।
स एव परमज्ञानं, स एव गुण सागरः ।। 19 ।।

परमाह्लादसम्पन्नं, रागद्वेषविवर्जितम्।
सोऽहं तं देहमध्येषु, यो जानाति सः पंडितः ।। 20 ।।

आकाररहितं शुद्धं, स्व स्वरूपे व्यवस्थितम्।
सिद्धमष्टगुणोपेतं, निर्विकारं निरंजनं ॥ 21 ॥

तत्सदृशं निजात्मानं, यो जानाति सः पंडितः।
सहजानन्दचैतन्य - प्रकाशाय महीयसे ॥ 22 ॥

पाषाणेषु यथा हेम, दुग्धमध्ये यथा घृतम्।
तिलमध्ये यथा तैलं, देहमध्ये तथा शिवः ॥ 23 ॥

काष्ठमध्ये यथा वन्हि, शक्ति रूपेण तिष्ठति।
अयमात्मा शरीरेषु, यो जानाति स पंडितः ॥ 24 ॥

सर्व दोष प्रायश्चित्त विधिः

ॐ ह्रीं अर्हं असिआउसा त्र्यस्त्रिंशदऽत्यासादना-त्यागायाऽनुष्ठित प्रोषधोद्योतनाय नमः ॥ 1 ॥
ॐ ह्रीं अर्हं अहिंसा महाव्रतस्याऽत्यासादना-त्यागायाऽनुष्ठित प्रोषधोद्योतनाय नमः ॥ 2 ॥
ॐ ह्रीं अर्हं सत्यमहाव्रतस्याऽत्यासादना-त्यागायाऽनुष्ठित प्रोषधोद्योतनाय नमः ॥ 3 ॥
ॐ ह्रीं अर्हं अचौर्य महाव्रतस्याऽत्यासादना-त्यागायाऽनुष्ठित प्रोषधोद्योतनाय नमः ॥ 4 ॥
ॐ ह्रीं अर्हं ब्रम्हचर्य महाव्रतस्याऽत्यासादना-त्यागायाऽनुष्ठित प्रोषधोद्योतनाय नमः ॥ 5 ॥
ॐ ह्रीं अर्हं अपरिग्रह महाव्रतस्याऽ-त्यासादनात्यागायाऽनुष्ठित प्रोषधोद्योतनाय नमः ॥ 6 ॥
ॐ ह्रीं अर्हं ईर्यासमितेरऽत्यासादना-त्यागायाऽनुष्ठित प्रोषधोद्योतनाय नमः ॥ 7 ॥
ॐ ह्रीं अर्हं भाषासमितेरऽत्यासादना-त्यागायाऽनुष्ठित प्रोषधोद्योतनाय नमः ॥ 8 ॥
ॐ ह्रीं अर्हं एषणासमितेरऽत्यासादना-त्यागायाऽनुष्ठित प्रोषधोद्योतनाय नमः ॥ 9 ॥

ॐ ह्रीं अर्हं आदाननिक्षेपण समितेरऽत्यासादना-
त्यागायाऽनुष्ठित प्रोषधोद्योतनाय नमः ॥ 10 ॥
ॐ ह्रीं अर्हं उत्सर्ग समितेरऽत्यासादना-
त्यागायाऽनुष्ठित प्रोषधोद्योतनाय नमः ॥ 11 ॥
ॐ ह्रीं अर्हं मनोगुप्तेरऽत्यासादना-
त्यागायाऽनुष्ठित प्रोषधोद्योतनाय नमः ॥ 12 ॥
ॐ ह्रीं अर्हं वचो गुप्तेरऽत्यासादना-
त्यागायाऽनुष्ठित प्रोषधोद्योतनाय नमः ॥ 13 ॥
ॐ ह्रीं अर्हं कायगुप्तेरऽत्यासादना-
त्यागायाऽनुष्ठित प्रोषधोद्योतनाय नमः ॥ 14 ॥
ॐ ह्रीं अर्हं जीवास्ति कायस्याऽत्यासादना-
त्यागायाऽनुष्ठित प्रोषधोद्योतनाय नमः ॥ 15 ॥
ॐ ह्रीं अर्हं पुद्गलास्ति कायस्याऽत्यासादना-
त्यागायाऽनुष्ठित प्रोषधोद्योतनाय नमः ॥ 16 ॥
ॐ ह्रीं अर्हं धर्मास्तिकायस्याऽत्यासादना-
त्यागायाऽनुष्ठित प्रोषधोद्योतनाय नमः ॥ 17 ॥
ॐ ह्रीं अर्हं अधर्मास्तिकायस्याऽत्यासादना-
त्यागायाऽनुष्ठित प्रोषधोद्योतनाय नमः ॥ 18 ॥
ॐ ह्रीं अर्हं आकाशास्तिकायस्याऽत्यासादना-
त्यागायाऽनुष्ठित प्रोषधोद्योतनाय नमः ॥ 19 ॥
ॐ ह्रीं अर्हं पृथिविकायिकस्याऽत्यासादना-
त्यागायाऽनुष्ठित प्रोषधोद्योतनाय नमः ॥ 20 ॥
ॐ ह्रीं अर्हं अप्कायिकस्याऽत्यासादना-
त्यागायाऽनुष्ठित प्रोषधोद्योतनाय नमः ॥ 21 ॥
ॐ ह्रीं अर्हं तेजःकायिकस्याऽत्यासादना-
त्यागायाऽनुष्ठित प्रोषधोद्योतनाय नमः ॥ 22 ॥
ॐ ह्रीं अर्हं वायुकायिकस्याऽत्यासादना-
त्यागायाऽनुष्ठित प्रोषधोद्योतनाय नमः ॥ 23 ॥

ॐ ह्रीं अर्हं वनस्पतिकायिकस्याऽत्यासादना-
त्यागायाऽनुष्ठित प्रोषधोद्योतनाय नमः ॥ 24 ॥
ॐ ह्रीं अर्हं त्रसकायिकस्याऽत्यासादना-
त्यागायाऽनुष्ठित प्रोषधोद्योतनाय नमः ॥ 25 ॥
ॐ ह्रीं अर्हं जीवपदार्थस्याऽत्यासादना-
त्यागायाऽनुष्ठित प्रोषधोद्योतनाय नमः ॥ 26 ॥
ॐ ह्रीं अर्हं अजीवपदार्थस्याऽत्यासादना-
त्यागायाऽनुष्ठित प्रोषधोद्योतनाय नमः ॥ 27 ॥
ॐ ह्रीं अर्हं आस्रवपदार्थस्याऽत्यासादना-
त्यागायाऽनुष्ठित प्रोषधोद्योतनाय नमः ॥ 28 ॥
ॐ ह्रीं अर्हं बंध-पदार्थस्याऽत्यासादना-
त्यागायाऽनुष्ठित प्रोषधोद्योतनाय नमः ॥ 29 ॥
ॐ ह्रीं अर्हं संवरपदार्थस्याऽत्यासादना-
त्यागायाऽनुष्ठित प्रोषधोद्योतनाय नमः ॥ 30 ॥
ॐ ह्रीं अर्हं निर्जरापदार्थस्याऽत्यासादना-
त्यागायाऽनुष्ठित प्रोषधोद्योतनाय नमः ॥ 31 ॥
ॐ ह्रीं अर्हं मोक्षपदार्थस्याऽत्यासादना-
त्यागायाऽनुष्ठित प्रोषधोद्योतनाय नमः ॥ 32 ॥
ॐ ह्रीं अर्हं पुण्य-पदार्थस्याऽत्यासादना-
त्यागायाऽनुष्ठित प्रोषधोद्योतनाय नमः ॥ 33 ॥
ॐ ह्रीं अर्हं पापपदार्थस्याऽत्यासादना-
त्यागायाऽनुष्ठित प्रोषधोद्योतनाय नमः ॥ 34 ॥

ॐ ह्रीं अर्हं सम्यग्दर्शनाय नमः ॥ 35 ॥
ॐ ह्रीं अर्हं सम्यग्ज्ञानाय नमः ॥ 36 ॥
ॐ ह्रीं अर्हं सम्यक् चारित्राय नमः ॥ 37 ॥

तेरह प्रकार के चारित्र, 6 द्रव्य, 9 पदार्थ, 6 जीवकाय, 3 रत्नत्रय, 30 धर्म, 18000 शील के भेद, 84 लाख उत्तर गुण, 28 मूल गुण, 5 पंचाचार, मुनियों के इन सबका पालन करने में जो दोष लगा हो, उसका प्रायश्चित।

(इति सर्व दोष प्रायश्चित्त विधि)

शिष्य सधर्माणः दैवसिक (रात्रिक) प्रतिक्रमण लघ्वीभिः सिद्ध-श्रुताचार्य-भक्तिभिः नमोऽस्तु।
आचार्यवन्दनायां प्रतिष्ठापनविधिराचार्य वन्देरन् सिद्ध भक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(जाप्य 9)

सम्मत्त-णाण-दंसण-वीरिय-सुहुमं तहेव अवगहणं ।
अगुरु-लघु-मव्बाहं, अट्ठगुणा होंति सिद्धाणं ।।
तव-सिद्धे णय-सिद्धे संजम सिद्धे चरित्त-सिद्धे य ।
णाणम्मि दंसणम्मि य सिद्धे सिरसा णमंसामि ।।

नमोऽस्तु आचार्य-वन्दनायां प्रतिष्ठापन श्रुतभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(जाप्य 9)

कोटी-शतं द्वादश चैव कोट्यो, लक्षाण्यशीतिस्त्र्यधिकानि चैव।
पंचाशदष्टौ च सहस्त्र-संख्या मेतच्छुतं पंच पदं नमामि।

अरहंत-भासियत्थं गणहर-देवेहिं गंथियं सम्मं ।
पणमामि भत्तिजुत्तो सुद-णाम महोवहिं सिरसा ।।

नमोऽस्तु आचार्य वन्दनायां प्रतिष्ठापनाचार्य भक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(जाप्य 9)

श्रुत-जलधि-पारगेभ्यः, स्व-पर-मत-विभावना-पटु-मतिभ्यः।
सुचरित-तपो-निधिभ्यो, नमो, गुरुभ्यो गुण-गुरुभ्यः ।। 1 ।।
छत्तीस-गुण-समग्गे, पंच-विहाचार-करण-संदरिसें।
सिस्साणुग्गह-कुसले, धम्माइरिए सदा वन्दे ।। 2 ।।
गुरु-भत्ति संजमेण य, तरन्ति संसार-सायरं घोरम्।
छिण्णंति अट्ठ-कम्मं, जम्मण-मरणं ण पावेंति ।। 3 ।।
ये नित्यं व्रत-मंत्र-होम-निरता, ध्यानाग्नि-होत्रा-कुलाः।
षट्-कर्माभि-रतास्तपोधन-धनाः, साधु-क्रियाः साधवः ।। 4 ।।
शील-प्रावरणा-गुण-प्रहरणाश्-चन्द्रार्क-तेजोऽधिका।
मोक्ष-द्वार-कपाट-पाटन-भटाः, प्रीणन्तु माम् साधवः।।
गुरवः पांतु नो नित्यं, ज्ञान-दर्शन-नायकाः।
चारित्रार्णव-गम्भीरा, मोक्ष-मार्गोपदेशकाः ।। 5 ।।

इति समाप्त

श्री गौतम स्वामी विरचित

दैवसिक (रात्रिक) प्रतिक्रमण

जीवे प्रमाद-जनिताः प्रचुराः प्रदोषाः,
यस्मात् प्रतिक्रमणतः प्रलयं प्रयान्ति।
तस्मात् तदर्थ-ममलं मुनि-बोधनार्थम्,
वक्ष्ये विचित्रभवकर्मविशोधनार्थम् ।। 1 ।।

पापिष्ठेन दुरात्मना जड़धिया मायाबिना लोभिना,
रागद्वेषमलीमसेन मनसा दुष्कर्म यन्निर्मितम्।।
त्रैलोक्याधिपते जिनेन्द्र! भवतः श्री-पादमूलेऽधुना,
निन्दापूर्वमहं जहामि सततं वर्वर्तिषुः सत्पथे ।। 2 ।।

खम्मामि सव्वजीवाणं, सव्वे जीवा खमंतु मे।
मित्ती मे सव्वभूदेसु वैरं मज्झं ण केणवि ।। 3 ।।

रागवंधपदोसं च, हरिसं दीणभावयं।
उस्सुगत्तं भयं सोगं, रदिमरदिं च वोस्सरे ।। 4 ।।

हा ! दुट्ठु-कयं, हा ! दुट्ठुचिंतियं, भासियं च हा दुट्ठुं।
अंतो-अंतो डज्झमि, पच्छुत्तावेण वेदंतो ।। 5 ।।

दव्वे खेत्ते काले भावेय कदावराह-सोहणयं।
णिंदण, गरहण जुत्तो, मण, वय, कायेण पडिकमणं ।। 6 ।।

एइन्दिया, बेइन्दिया, तेइन्दिया, चतुरिंदिया, पंचिंदिया, पुढविकाइया, आउकाइया, तेउकाइया, वाउकाइया, वणप्फदिकाइया, तसकाइया, एदेसिं उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा में दुक्कडं।। 7 ।।

वद, समिदिंदिय रोधो, लोचावस्सयमचेलमण्हाणं।
खिदिसयणमदंतवणं, ठिदि-भोयणमेयभत्तं च ॥ 8 ॥

एदे खलु मूल गुणा, समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता।
एत्थ पमादकदादो, अइचारादो णियत्तोऽहं ॥ 9 ॥

छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं।

पंचमहाव्रत-पंचसमिति-पंचेन्द्रियरोध-लोच-षडावश्यक-क्रियादयो अष्टाविंशति-मूलगुणाः, उत्तम क्षमा-मार्दवार्जवशौचसत्य-संयम-तपस् त्यागाकिंचन्य ब्रम्हचर्याणि, दश-लाक्षणिको धर्मः, अष्टादश शील सहस्त्रणि, चतुरशीति-लक्षगुणाः, त्रयोदशविधं चारित्रं, द्वादशविधं तपश्चेति सकलं सम्पूर्णं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय-सर्वसाधु साक्षिकं, सम्यक्त्वपूर्वकं दृढव्रतं सुव्रतं, समारूढ़ में भवतु।

अथ सर्वातिचार विशुद्धयर्थं दैवसिक (रात्रिक) प्रतिक्रमण-क्रियायां कृतदोष-निराकरणार्थं पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भाव-पूजा-वन्दना-स्तव-समेतं आलोचना सिद्ध - भक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम्।

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं,
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं॥

चत्तारि मंगलं-अरहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं केवलिपण्णतो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा-अरहन्ता लोगुत्तमा, सिद्धालोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलि पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि-अरहंते सरणं पव्वज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि, केवलि पण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि।

अड्ढाइज्ज-दीव दो-समुद्देसु, पण्णारस-कम्मभूमीसु, जाव अरहंताणं, भयवंताणं, आदियराणं, तित्थयराणं, जिणाणं, जिणोत्तमाणं, केवलियाणं, सिद्धाणं, बुद्धाणं, परिणिव्वुदाणं, अंतयडाणं, पारगयाणं, धम्माइरियाणं,

धम्मदेसयाणं, धम्मणायगाणं, धम्म वर चाउरंग चक्क वट्टीणं, देवाहि-देवाणं, णाणाणं, दंसणाणं, चरित्ताणं, सदा करोमि, करियम्मं, करेमि भंते! सामायियं सव्वसावज्जजोगं पच्चक्खामि, जावज्जीवं (जावन्नियम) तिविहेण-मणसा वचसा काएण, ण करेमि, ण कारेमि, ण अण्णं करंतं पि समणुमणामि। तस्स भन्ते! अइचारं पडिक्कमामि णिंदामि, गरहामि, अप्पाणं, जाव अरहंताणं, भयवंताणं, पज्जुवासं करेमि, तावकालं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।

(27 श्वासोच्छवास में 9 बार णमोकार मंत्र की जाप्य)

चतुर्विंशति-स्तवम्

थोस्सामि हं जिणवरे, तित्थयरे केवली अणंतजिणे।
णर पवर लोय महिए, विहुयरयमले महप्पण्णे ॥ 1 ॥

लोयस्सुज्जोययरे, धम्मं तित्थंकरे जिणे वन्दे।
अरहतें कित्तिस्से, चौवीसं चैव केवलिणो ॥ 2 ॥

उसह - मजियं च वंदे, संभवमभिणंदणं च सुमइं च।
पउमप्पहं सुपासं, जिणं च चंदप्पहं वंदे ॥ 3 ॥

सुविहिं च पुप्फयंतं, सीयल सेयं च वासुपुज्जं च।
विमल - मणंतं भयवं, धम्मं संतिं च वंदामि ॥ 4 ॥

कुन्थुं च जिणवरिंदं, अरं च मल्लिं च सुव्वयं च णमिं।
वंदाम्यरिट्ठणेमिं, तह पासं वड्ढमाणं च ॥ 5 ॥

एवं मए अभित्थुआ, विहुयरयमला पहीणजर - मरणा।
चउवीसं पि जिणवरा, तित्थयरा मे पसीयंतु ॥ 6 ॥

कित्तिय वंदिय महिया एदे लोगोत्तमा जिणा सिद्धा।
आरोग्ग णाण लाहं, दिंतु समाहिं च मे बोहिं ॥ 7 ॥

चंदेहिं णिम्मलयरा, आइच्चेहिं अहियपयासंता।
सायरमिव गंभीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥ 8 ॥

श्रीमते वर्धमानाय, नमो नमितविद्विषे।
यज्ज्ञानान्तर्गतं भूत्वा, त्रैलोक्यं गोष्पदायते ।। 1 ।।

लघु सिद्ध-भक्ति

तव सिद्धे णयसिद्धे, संजमसिद्धे चरित्तसिद्धे य।
णाणम्मि दंसणम्मि य, सिद्धे सिरसा णमस्सामि ।। 2 ।।

अंचलिका

इच्छामि भंते! सिद्धभक्ति काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचरित्त-जुत्ताणं, अट्ठविह-कम्मविप्पमुक्काणं, अट्ठगुणसंपण्णाणं उड्ढलोयमत्थयम्मि पयट्ठियाणं, तवसिद्धाणं, णयसिद्धाणं, संजमसिद्धाणं, चरित्तसिद्धाणं, अतीताणागदवट्टमाणकालत्तय सिद्धाणं, सव्वसिद्धाणं, णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वन्दामि, णमंसामि दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाओ सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिनगुण-सम्पत्तिं होउ मज्झं।

आलोचना

इच्छामि भंते! चरित्तायारो तेरसविहो, परिविहाविदो, पंचमहव्वदाणि, पंचसमिदीओ, तिगुत्तीओ चेदि। तत्थ पढमे महव्वदे पाणादिवादादो वेरमणं, से पुढविकाइयाजीवा असंखेज्जासंखेज्जा, आउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, तेउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, वाउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, वणप्फदिकाइया जीवा अणंताणंता, हरिया, वीआ, अंकुरा, छिण्णा, भिण्णा एदेसिं, उद्दावणं परिदावणं, विराहणं, उवघादो कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो, **तस्स मिच्छा मे दुक्कडं** ।। 1 ।।

बे इन्दिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, कुक्खि किमिशंख-खुल्लुय-वराऽय, अक्खरिट्ठय गण्डवाल संबुक्क-सिप्पि-पुलविकाइया एदेसिं उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो **तस्स मिच्छा मे दुक्कडं** ।। 2 ।।

तेइन्दिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, कुन्थूदेहियविंच्छिय-गोभिंद-गोजुव-मक्कुणपिपीलियाइया एदेसिं उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं उवघादो कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो **तस्स मिच्छा मे दुक्कडं** ॥ 3 ॥

चउरिंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, दंसमसय-मक्खि-पयंग-कीड-भमर-महुयर गोमच्छियाइया एदेसिं उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो, **तस्स मिच्छा मे दुक्कडं** ॥ 4 ॥

पंचिंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, अंडाइया, पोदाइया, जराइया, रसाइया, संसेदिमा, सम्मुच्छिमा, उब्भेदिमा, उववादिमा, अवि चउरासी-दिजोणि पमुह सद-सहस्सेसु, एदेसिं, उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो, **तस्स मिच्छा मे दुक्कडं** ॥ 5 ॥

प्रतिक्रमण पीठिका दण्डक

इच्छामि भंते! देवसियम्मि (राइयम्मि) आलोचेउं, पंच महव्वदाणि तत्थ पढमं महव्वदं पाणादिवादादो वेरमणं, विदियं महव्वदं मुसावादादो वेरमणं, तिदियं महव्वदं अदिण्णादाणादो वेरमणं, चउत्थं, महव्वदं मेहुणादो वेरमणं, पंचमं महव्वदं परिग्गहादो वेरमणं, छट्ठं अणुव्वदं राइ भोयणादो वेरमणं, इरिया समिदीए, भाषासमिदीए, एषणा समिदीए, आदाण-निक्खेवण समिदीए उच्चार पस्सवण खेल सिंहाणं वियडि पइट्ठावणिया समिदीए मणगुत्तीए, वचि गुत्तिए, काय गुत्तिए णाणेसु, दंसणेसु, चरित्तेसु, बावीसा य परीसहेसु, पणवीसाए भावणासु, पणवीसाय किरियासु, अट्ठारस सील सहस्सेसु, चउरासीदि गुणसयसहस्सेसु, बारसण्हं सेजमाणं, बारसण्हं तवाणं बारसण्हं अंगाणं, चोदूसण्हं पुव्वाणं, दंसण्हं मुंडाणं, दंसण्हं समणधम्माणं, दंसण्हं धम्मज्झाणाणं, णवण्हं बंभचेरगुत्तीणं णवण्हं णोकसायाणं, सोलसण्हं कसायाणं, अट्ठण्हं कम्माणं, अट्ठण्हं पवयणमाउयाणं, अट्ठण्हं सुद्धीणं, सत्तण्हं भयाणं, सत्तविह संसाराणं, छण्हं जीवणिकायाणं, छण्हं आवासयाणं, पंचण्हं इन्दियाणं, पंचण्हं महव्वयाणं, पंचण्हं समिदीणं, पंचण्हं चरित्ताणं, चउण्हं सण्णाणं, चउण्हं पच्चयाणं,

चउण्हं उवसग्गाणं, मूलगुणाणं, उत्तरगुणाणं, दिट्ठियाए पुट्ठियाए, पदोसियाए, परदावणियाए, से कोहेण वा, माणेण वा, मायाए वा, लोहेण वा, रागेण वा, दोसेण वा, मोहेण वा, हस्सेण वा, भएण वा, पदोसेण वा, पमादेण वा, पिम्मेण वा, पिवासेण वा, लज्जेण वा, गारवेण वा, एदेसिं अच्चासणदाय, तिण्हं दण्डाणं, तिण्हं लेस्साणं, तिण्हं गारवाणं, दोण्हं अट्ट रुदद् संकिलेस परिणामाणं, मिच्छा णाण, मिच्छा दंसण, मिच्छा चरित्ताणं, मिच्छत्त पाउग्गं, असंयम पाउग्गं, कसाय पाउग्गं, जोग पाउग्गं, अपाउग्ग सेवणदाए, पाउग्गरहणदाए, इत्थ मे जो कोई देवसिओ (राइयो) अदिक्कमो, वदिक्कमो अइचारो, अणाचारो, आभोगो, अणाभोगो, तस्स भन्ते! पडिक्कमामि, मए पडिक्कंतं, तस्स मे समाहिमरणं, पंडियमरणं, वीरियमरणं, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाओ सुगइगमणं, समाहिमरणं जिणगुण सम्पत्तिं होउ मज्झं।। 2 ।।

वद-समि दिंदियरोधो, लोचावासय - मचेलमण्हाणं।
खिदिसयण मदंतवणं, ठिदि-भोयण-मेय-भत्तं च ।। 1 ।।
एदे खलु मूलगुणा, समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता।
एत्थ पमादकदादो, अइचारादो णियत्तोऽहं ।। 2 ।।

छेदोवट्ठावणं होउ मज्झं।

(इति प्रतिक्रमण पीठिका दंडक)

अथ सर्वातिचारविशुद्धयर्थं दैवसिक (रात्रिक) प्रतिक्रमणक्रियायां कृत दोषनिराकरणार्थं पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं, भाव पूजा वन्दना स्तव समेतं श्री प्रतिक्रमण भक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम्।

णमो अरहंताणं इत्यादिदंडकं पठित्वा कायोत्सर्गं कुर्यात् अनंतरं थोस्सामीत्यादि पठेत्।

(प्रथम णमो अरहंताणं इत्यादि सामायिक दंडक पढ़कर 27 उच्छ्वास प्रमाण कायोत्सर्ग करें, पश्चात् चतुर्विंशति स्तव पढ़ें।)

निषिद्विका दंडक-

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं,
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।। 3 ।।

(इसे तीन बार पढ़ना चाहिये)

णमो जिणाणं, णमो जिणाणं, णमो जिणाणं! णमो णिस्सिहीए, णमो णिस्सिहीए, णमो णिस्सिहीए! णमोत्थुदे, णमोत्थुदे, णमोत्थुदे! अरहन्त! सिद्ध! बुद्ध! णीरय! णिम्मल! सममण! सुभमण! सुसमत्थ! समजोग समभाव! सल्लघट्टाणं! सल्लघत्ताणं! णिब्भय! णीराय! णिंद्दोस! णिम्मोह! णिम्मम! णिस्संग! णिस्सल्ल! माण-माय-मोसमूरण! तवप्पहावण! गुणरयण सीलसायर! अणन्त! अप्पेमेय! महदि महावीर वड्ढमाणं बुद्धिरिसिणों! चेदि णमोत्थु ए, णमोत्थु ए, णमोत्थु ए।

मम मंगलं-अरहंताय, सिद्धाय, बुद्धाय, जिणाय, केवलिणो, ओहिणाणिणो, मणपज्जवणाणिणो, चउदस पुव्वगामिणो, सुद समिदि समिद्धा य तवो य बारह विहो तवस्सी, गुणा य, गुणवंतो य, महरिसी, तित्थ, तित्थंकरा य, पवयणं, पवयणी य, णाणं, णाणीय दंसणं-दंसणीय, संजमो संजदाय, विणयो विणदाय, बंभचेरवासो, बंभचारीय, गुत्तियो चेव गुत्तिमंतोय, मुत्तिओ चेव, मुत्तिमंतोय, समिदीओ चेव, समिदि मंतोय, सुसमय-परसमय-विदुखंति खंतिवंतोय, खवगाय, खीणमोहाय, खीणवंतो य, बोहिय बुद्धा य, बुद्धिमंतो य, चेइयरुक्खाय चेइयाणि।

उड्ढ - मह - तिरिय - लोए, सिद्धायदणाणि णमस्सामि, सिद्धणिसीहियाओ अट्ठावयपव्वये, सम्मेदे, उज्जंते, चंपाए, पावाए मज्झिमाए, हत्थिवालियसहाय, जाओ अण्णाओ काओविणिसीहियाओ जीवलोयम्मि, ईसिपब्भारतलगयाणं, सिद्धाणं बुद्धाणं कम्मचक्कमुक्काणं णीरयाणं, णिम्मलाणं गुरुआइरिय-उवज्झायाणं, पव्व तित्थेर कुलयराणं, चउवण्णो य समणसंघो य, दससु भहेरावएसु, पंचसु महाविदेहेसु जे लोए संति साहवो, संजदा, तवसी एदे मम मंगलं पवित्तं, एदेहं मंगलं करेमि भावदो विसुद्धो, सिरसा अहिवंदिऊण सिद्धेकाऊण अंजलिं मत्थयम्मि तिविहं तियरण सुद्धो।

1. मन वचन काय द्वारा दोषों की आलोचना

पडिक्कमामि भंते! राइयस्स (देवसियस्स) अइचारस्स,

अणाचारस्स, मणदुच्चरियस्स, वरिदुच्चरियस्स, कायदुच्चरियस्स, णाणाइचारस्स, दंसणाइचारस्स, तवाइचारस्स, वीरियाइचारस्स, चरित्ताइचारस्स, पंचण्हं महव्वयाणं, पंचण्हंसमिदीणं, तिण्हं गुत्तीणं, छण्हं आवासयाणं, छण्हं जीवणिकायाणं, विराहणाए, पील कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो, **तस्स मिच्छा मे दुक्कडं** ॥ 1 ॥

2. ईर्या पथ (गमनागमन) दोषों की आलोचना

पडिक्कमामि भंते! अइग्गमणे, णिग्गमणे, ठाणे गमणे, चंकमणे, उव्वत्तणे अउट्ठणे परिवहणे, आकुंचणे, पसारणे आमासे, परिमासे, कुइदे, कक्कराइदे, चलिदे णिसण्णे, सयणे, उव्वट्टणे, परियट्टणे एइन्दियाणं, बेइन्दियाणं, ते इन्दियाणं, चउरिंदियाणं, पंचिंदियाणं जीवाणं, संघट्टणाए संघादणाए, उद्दावणाए, परिदावणाए, विराहणाए, एत्थ मे जो कोई देवसियो (राइयो) अदिक्कमो, वदिक्कमो, अइचारो, अणाचारो, **तस्स मिच्छा मे दुक्कडं** ॥ 2 ॥

3. ईर्यापथ (गमनागमन संबंधी) दोषों की द्वितीय आलोचना

पडिक्कमामि भन्ते! इरियावहियाए, विराहणाए, उड्ढमुहं चरंतेण वा, अहोमुहं चरंतेण वा, तिरियमुहं चरंतेण वा, दिसिमुहं चरंतेण वा, विदिसि मुहं चरंतेण वा, पाण चंकमणदाए, वीयचंकमणदाए, हरिय चंकमणदाए, उत्तिंगपणयदयमट्टिय मक्कडय-तन्तु संताण चंकमणदाय, पुढविकाइया-संघट्टणाए, आउकाइया-संघट्टणाए, तेउकाइया संघट्टणाए, वाउकाइया-संघट्टणाए, वणप्फदिकाइया संघट्टणाए, तसकाइया संघट्टणाए, उद्दावणाए, परिदावणाए, विराहणाए इत्थ मे जो कोई इरिया वहियाए, अइचारो, अणाचारों, **तस्स मिच्छा मे दुक्कडं** ॥ 3 ॥

4. मलमूत्रादि के क्षेपण संबंधी दोषों की आलोचना

पडिक्कमामि भन्ते! उच्चार-पस्सवण-खेल-सिंहाण-वियडिपइट्ठा वणियाए, पइट्ठावंतेण जो कोई पाणा वा, भूदा वा, जीवा वा, सत्ता वा, संघट्टिदा वा, संघादिदा वा, उद्दाविदा वा, परिदाविदा वा, इत्थ मे जो कोई देवसिओ (राइयो) अइचारो, अणाचारो, **तस्स मिच्छा मे दुक्कडं** ॥ 4 ॥

5. एषणा (आहार संबंधी) दोषों की आलोचना

पडिक्कमामि भन्ते! अणेसणाए, पाणभोयणाए, पणयभोयणाए, वीयभोयणाए, हरिय भोयणाए, आहाकम्मेण वा, पच्छा कम्मेण वा, पुराकम्मेण वा, उद्दिट्ठयडेण वा, णिद्दिट्ठयडेण वा, दयसंसिदट्ठयडेण वा, रस संसिदट्ठयडेण वा, परिसादणियाए, पइट्ठावणियाए, उद्देसियाए, णिद्देसियाए, कीदयडे, मिस्से, जादे, ठविदे, रहदे, अणसिट्ठे वलि पाहुडदे, पाहुडदे, घट्टिदे, मुच्छिदे अइमत्तभोयणाए, इत्थ मे जो कोई गोयरिस्स अइचारो, अणाचारो, **तस्स मिच्छा मे दुक्कडं** ।। 5 ।।

6. स्वप्न संबंधी दोषों की आलोचना

पडिक्कमामि भंते! सुमणिंदियाए, विराहणाए, इत्थिविप्परियासियाए, दिट्ठिविप्परियासियाए, मणोविप्परियासियाए, वेविप्परियासियाए, कायविप्परियासियाए, भोयणविप्परियासियाए, उच्चावयाए, सुमणदंसणविप्परियासियाए, पुव्वरए, पुव्वखेलिए, णाणाचिंतासु विसोतियासु इत्थ मे जो कोई देवसियो (राइओ) अइचारो, अणाचारो, **तस्स मिच्छा मे दुक्कडं** ।। 6 ।।

7. विकथा संबंधी दोषों की आलोचना

पडिक्कमामि भंते! इत्थिकहाए, अत्थकहाए, भत्तकहाए, रायकहाए, चोरकहाए, बेरकहाए, परपासंडकहाए, देसकहाए, भासकहाए, अकहाए, विकहाए, निठुल्लकहाए, परपेसुण्णकहाए, कन्दप्पियाए, कुक्कुच्चियाए, डंबरियाए, मोक्खरियाए, अप्पपसंसणदाए, परपरिवादणाए, परदुगञ्छणदाए, परपीड़ाकराए, सावज्जाणु मोयणियाए इत्थ मे जो कोई देवसियो (राइयो) अइचारो, अणाचारो, **तस्स मिच्छा मे दुक्कडं** ।। 7 ।।

8. अशुभ आर्त्त ध्यानादि तथा कषायादि दोषों की आलोचना

पडिक्कमामि भंते! अट्टज्झाणे, रुद्दज्झाणे, इहलोएसण्णाए, परलोएसण्णाए, आहारसण्णाए, भयसण्णाए, मेहुणसण्णाए, परिग्गहसण्णाए, कोहसल्लाए, माणसल्लाए, मायासल्लाए, लोहसल्लाए, पेम्मसल्लाए, पिवासल्लाए, णियाणसल्लाए, मिच्छादंसंणसल्लाए,

कोहकसाए, माणकसाए, मायाकसाए, लोहकसाए, किण्डलेस्सपरिणामे, णीललेस्सपरिणामे, काउलेस्सपरिणामे, आरम्भपरिणामे, परिग्गहपरिणामे, पडिसियाहिलास-परिणामे, मिच्छा-दंसण-परिणामे, असंजम-परिणामे, पावजोगपरिणामे, कायसुहाहिलाससद्देसु, रूवेसु, गन्धेसु, रसेसु, फासेसु काइयाहिकरणियाए, पदोसियाए, परदावणियाए, पाणाइवाइयासु, इत्थ मे जो कोई देवसियो (राइयो) अइचारो, अणाचारो, **तस्स मिच्छा मे दुक्कडं** ॥ 8 ॥

9. एकादि तैंतीस संख्या पर ध्यान रखते हुये दोषों की आलोचना

पडिक्कमामि भंते! एक्के भावे अणाचारे, दोसुरायदोसेसु, तीसु दंडेसु, तीसुगुत्तीसु, तीसु गारवेसु, चउसु कसाएसु, चउसु सण्णासु, पंचसु महव्वएसु, पंचसु समिदीसु, छसु जीवणिकाएसु, छसु आवासएसु, सत्तसु भएसु, अट्ठसु मएसु, णवसु वंभचेरगुत्तीसु, दसविहेसु समणधम्मेसु, एयारसविहेसु उवासयपडिमासु, बारहविहेसु भिक्खुपडिमासु, तेरसविहेसु किरियाट्ठाणेसु, चउदसविहेसु भूदगामेसु, पणरसविहेसु पमाय-ट्ठाणेसु, सोलहविहेसु पवयणेसु, सत्तारसविहेसु असंजमेसु, अट्ठारसविहेसु असंपराएसु, उणवीसाय णाहज्झाणेसु, वीसाए असमाहिट्ठाणेसु, एक्कवीसाए सवलेसु, बावीसाए परीसहेसु, तेवीसाय सुद्वयडज्झाणेय, चंउवीसाए अरहंतेसु, पणवीसाए भावणासु, पणवीसाए किरियाट्ठाणेसु, छब्बीसाय पुढवीसु, सत्तावीसाए अणगारगुणेसु, अट्ठावीसाए आयारकप्पेसु एउणतीसाए पाव-सुत्तपसंगेसु, तीसाए मोहणीठाणेसु, एकत्तीसाए कम्माविवाएसु, बत्तीसाए जिणोवएसेसु, तेतीसाए अच्चासणदाए, संखेवेण जीवाण अच्चासणदाए, अजीवाण अच्चासणदाय, णाणस्य अच्चासणदाए, दंसणस्स अच्चासणदाए, चरित्तस्स अच्चासणदाए, तवस्स अच्चासणदाए, वीरियस्स अच्चासणदाए, तं सव्वं पुव्वं दुच्चरियं गरहामि, आगामेसीएसु पच्चुप्पण्णं इक्कंतं पडिक्कमामि, अणागयं पच्चक्खामि अगरहियं गरहामि अणिदियं णिंदामि, अणालोचियं आलोचेमि आराहणमब्भुट्ठेमि, विराहणं पडिक्कमामि, इत्थ मे जो कोई देवसियो (राइयो) अइचारो, अणाचारो, **तस्स मिच्छा मे दुक्कडं** ॥ 9 ॥

निर्ग्रन्थ पद की वाँछा

इच्छामि भन्ते! इमं णिग्गंथं पावयणं अणुत्तरं केवलियं पडिपुण्णं, णेगाइयं सामाइय, संसुद्धं, सल्लघट्टाणं, सल्लघत्ताणं, सिद्धिमग्गं, सेढिमग्गं, खंतिमग्गं, मुत्तिमग्गं, पमुत्तिग्गं, मोक्खमग्गं, पमोक्खमग्गं, णिज्जाणमग्गं, णिव्वाणमग्गं, सव्वदुक्खपरिहाणिमग्गं, सुचरियपरिणि-व्वाणमग्गं, अवित्तहं, अविसंतिपवयणं, उत्तमं, तं सद्दहामि, तं पत्तियामि, तं रोचेमि, तं फासेमि, इदोत्तरं अण्णं णत्थि णभूदं, णभवं, णभविस्सदि, णाणेण वा, दंसेणेण वा, चरित्तेण वा, सुत्तेण वा, इदो जीवा सिज्झंति बुज्झंति, मुच्चंति, परिणिव्वाणयंति, सव्वदुक्खाणमंतं करेंति, पडिवियाणंति, समणोमि, संजदोमि, उवरदोमि, उवसंतोमि, उवहिणियडिमाणमायामोस-मिच्छाणाण - मिच्छादंसण - मिच्छाचरित्तं च पडिविरदोमि, सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचरित्तं च रोचेमि, जं जिणवरेहं पण्णत्तं, इत्थ मे जो कोई देवसिओ (राइयो) अइचारो, अणाचारो, **तस्स मिच्छा मे दुक्कडं** ॥ 10 ॥

सर्वकालीन दोषों की प्रतिक्रमण

पडिक्कमामि भन्ते! सव्वस्स, सव्वकालियाए, इरियासमिदीए, भाषासमिदीए, एसणासमिदीए, आदाणनिक्खेवणसमिदीए, उच्चारपस्सवण खेलसिंहाणयवियडिपइट्ठावणिसमिदीए, मणगुत्तीए, वचिगुत्तीए, कायगुत्तीए, पाणादिवादादो वेरमणाए, मुसावादादो वेरमणाए, अदिण्णदाणादो वेरमणाए, मेहुणादो वेरमणाए, परिग्गहादो वेरमणाए, राइभोयणादो वेरमणाए, सव्वविराहणाए, सव्वधाम्म-अइक्कमणदाए, सव्वमिच्छाचरियाए, इत्थ मे जो कोई देवसिओ (राइयो) अइचारो, अणाचारों **तस्स मिच्छा मे दुक्कडं** ॥ 11॥

वीर भक्ति कायोत्सर्ग की आलोचना

इच्छामि भंते! वीरभक्ति काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं जो मे देवसिओ (राइओ) अइचारो, अणाचारो, आभोगो, अणाभोगो, काइओ बाइओ माणसिओ, दुच्चिंतिओ, दुब्भासिओ, दुप्परिणामिओ, दुस्समणिओ णाणे, दंसणे, चरित्ते सुत्ते सामाइए, पंचण्हं महव्वयाणं, पंचण्हं समिदीणं,

तिण्हं गुत्तीणं, छण्हं जीवणिकायाणं, छण्हं आवासयाणं विराहणाए, अट्ठविहस्स कम्मस्स-णिग्घादणाए, अण्णहा उस्सासिएण वा, णिस्सासिएण वा, उम्मिसिएण वा, णिम्मिसिएण वा, खासिएण वा, छिक्किएण वा, जंभाइएण वा, सुहुमेहिं अंगचलाचलेहिं, दिट्ठिचलाचलेहिं, एदेहिं सव्वेहिं आयरेहिं असमाहिं पत्तेहिं आयरेहिं, जावअरहंताणं, भयवंताणं, पज्जुवासं करेमि ताव कायं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि ।। 1।।

वद-समिदिंदिय रोधो लोचावासय-मचेल-मण्हाणं।
खिदि-समण-मदंत-वणं, ठिदि-भोयण मेय-भत्तं च ।। 1 ।।

एदे खलु मूलगुणा, समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता।
एत्थ पमाद-कदादो, अइचारादो णियत्तोऽहं ।। 2 ।।

छेदोवट्ठावणं होउ मज्झं।

सर्वातिचार-विशुद्धयर्थं देवसिक (रात्रिक) प्रतिक्रमण क्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भाव पूजा-वन्दना-स्तव समेतं निष्ठितकरणं वीरभक्ति कायोत्सर्गं कुर्वेऽहं।

इति प्रतिज्ञाप्य (ऐसी प्रतिज्ञा करके) दिवसे 108, रात्रि प्रतिक्रमणे 54 उच्छ्वासेषु णमो अरहंताणं इत्यादि दंडकं पठित्वा कायोत्सर्गं कुर्यात् पश्चात् थोस्सामीत्यादि चतुर्विंशति स्तवं पठेत्।

अर्थ-

दिन में 108 श्वासोच्छ्वास (4 बार कायोत्सर्ग) तथा रात्रि में 54 श्वासोच्छ्वास (2 बार) में ''णमो अरहंताणं इत्यादि से लेकर चत्तारि मंगलं'' को पढ़ें।

卐 卐 卐 卐 卐

वीर भक्ति

यः सर्वाणि चराचराणि विधवद् द्रव्याणि तेषां गुणान्।
पर्यायानपि भूतभाविभवितः सर्वान् सदा सर्वदा।।
जानीते युगपत्प्रतिक्षणमतः, सर्वज्ञ इत्युच्यते।
सर्वज्ञाय जिनेश्वराय महते वीराय तस्मै नमः ।। 1 ।।

वीरः सर्व सुरासुरेन्द्र महितो, वीरं बुधाः संश्रिताः।
वीरेणाभिहतः स्व-कर्म-निचयो, वीराय भक्त्या नमः।।
वीरात् तीर्थ-मदं प्रवृत्तमतुलं, वीरस्य घोरं तपो।
वीरे श्रीद्युतिकान्तिकीर्ति-धृतयो हे वीर ! भद्रं त्वयि ।। 2 ।।

ये वीर पादौ प्रणमन्ति नित्यं,
ध्यान स्थिताः संयम योग युक्ताः।
ते वीत शोका हि भवन्ति लोके,
संसार दुर्गं विषमं तरन्ति ।। 3 ।।

व्रत समुदयमूलः, संयमस्कन्ध - बन्धो,
यमनियमपयोभिर्बर्धितः शील-शाखः।
समिति-कलिक-भारो गुप्ति-गुप्त-प्रवालो,
गुण कुसुम सुगन्धिः सत् तपश्चित्र पत्रः ।। 4 ।।

शिव-सुख-फल-दायी यो दया-छाययोघः,
शुभजनपथिकानां, खेदनोदे समर्थः।
दुरित-रविज तापं, प्रापयन्नंत भावं,
स भव-विभवहान्यै, नोऽस्तु चरित्रवृक्षः ।। 5 ।।

चारित्रं सर्व जिनैश्चरितं प्रोक्तं च सर्व शिष्येभ्यः।
प्रणमामि पंचभेदं, पंचम-चारित्र-लाभाय ।। 6 ।।

धर्मः सर्वसुखाकरो हितकरो, धर्मं बुधाश्चिन्वते,
धर्मेणैव समाप्यते शिवसुखं, धर्माय तस्मै नमः।
धर्मान्नास्त्यपरः सुहृद्भवभृतां, धर्मस्य मूलं दया,
धर्मे चित्तमहं दधे प्रतिदिनं, हे धर्म ! मां पालय ।। 7 ।।

धम्मो मंगल-मुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो।
देवावि तं णमंसंति, जस्स धम्मे सयामणो ।। 8 ।।

अंचलिका

इच्छामि भन्ते! पडिक्कमणादिचारमालोचेउं, सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचारित्त-तव-वीरियाचारेसु, जमंणियम-संजम-सील-मूलुत्तर-गुणेसु, सव्वमइचारं सावज्जजोगं पडिविरदोमि, असंखेज्जलोग अज्झवसाय-ठाणाणि, अप्पसत्थ जोग-सण्णा-णिंदिय-कसाय-गारव-किरियासु मण-वयण-कायकरण-दुप्पणि-हाणाणि, परिचिंतियाणि किण्ह-णील-काउलेस्साओ, विकहापालिकुंचिएण उम्मग-हस्स-रदि-अरदि-सोय-भय-दुगंछ-वेयण विज्झंजांइ आणि, अट्ठ-रुद्द-संकिलेस-परिणामाणि परिणामदाणि, आणिहुद-कर-चरण-मण-वयण-काय करणेण, अक्खित्त, बहुल परायणेण, अपडिपुण्णेण वासरक्खरावय परिसंघाय पडिवत्तिएण, अच्छा-कारिदं मिच्छा मेलिदं, आमेलिदं, वामेलिदं, अण्णहादिण्णं, अण्णहापडिच्छिंदं, आवासएसुपरिहीणदाए, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणु मण्णिदो, **तस्स मिच्छा मे दुक्कडं** ।। 1 ।।

वद-समिदिंदिय-रोधो, लोचावासय-मचेल-मण्हाणं।
खिदिसयणमदंतवणं, ठिदि-भोयण-मेयभत्तं च ।। 1 ।।

एदे खलु मूलगुणा, समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता।
एत्थ पमादकदादो अइचारादो णियत्तोऽहं ।। 2 ।।

छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं।

अथ सर्वातिचार विशुद्धयर्थं दैवसिक (रात्रिक) प्रतिक्रमणक्रियायां कृतदोषनिराकरणार्थं पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकल-कर्म-क्षयार्थं भाव पूजावंदनास्तवसमेतं चतुर्विंशतितीर्थंकर भक्ति-कायोत्सर्गं कुर्वेऽहं।

(इति प्रतिज्ञाप्य) णमो अरहंताणं इत्यादि दंडकं पठित्वा कायोत्सर्गं कुर्यात्।

(चतुर्विंशति स्तवं पठेत्।)

चतुर्विंशति तीर्थंकर भक्ति

चउवीसं तित्थयरे, उसहाइ वीर-पच्छिमे वंदे।
सव्वेसिं-समणाणं, सिद्धे सिरसा णमंसामि ।। 1 ।।

ये लोकेऽष्ट-सहस्त्र-लक्षण धराः, ज्ञेयार्णवान्तर्गताः।
ये सम्यग्भवजालहेतु मथनाश्चन्द्रार्कतेजोऽधिकाः।।
ये साध्विन्द्रसुराप्सरो-गणशतै र्गीत-प्रणुत्यार्चिताः।
तान् देवान् वृषभादि-वीर-चरमान्, भक्त्या नमस्याम्यहम् ।।2।।

नाभेयं देव-पूज्यं, जिनवर-मजितं, सर्वलोकप्रदीपं।
सर्वज्ञं संभवाख्यं मुनिगणवृषभं नन्दनं देव-देवम्।।
कर्मारिघ्नं सुबुद्धिं, वरकमलनिभं, पद्मपुष्पाभिगंधं।
क्षान्तं दान्तं सुपार्श्वं, सकलशशिनिभं चन्द्रनामानमीडे ।।3।।

विख्यातं पुष्पदंतं, भव-भय मथनं, शीतलं लोकनाथम्।
श्रेयांसं शीलकोषं, प्रवर-नर-गुरुं, वासुपूज्यं सुपूज्यम्।।
मुक्तं दान्तेन्द्रियाश्वं विमलमृषिपतिं सिंह-सैन्य मुनीन्द्रम।
धर्मं सद्धर्म-केतुं शमदमनिलयं, स्तौमि शान्तिं शरण्यम् ।।4।।

कुन्थुं सिद्धालयस्थं श्रमणपतिमरं त्यक्त-भोगेषु चक्रम्।
मल्लिं विख्यातगोत्रं, खचरगणनुतं, सुव्रतं सौख्य-राशिम्।।
देवेन्द्रार्च्यं नमीशं, हरिकुल-तिलकं, नेमिचन्द्रं भवान्तम्।
पार्श्वं नागेन्द्रवन्द्यं शरणमहमितो वर्धमानं च भक्त्या ।।5।।

अंचलिका

इच्छामि भन्ते ! चउवीसं तित्थयर भक्तिं काउस्सग्गो कओ, तस्सालोचेउं पंच-महाकल्लाण-संपण्णाणं, अट्ठमहा-पाडिहेर-सहियाणं, चउतीसातिसय-विसेस-संजुत्ताणं, बत्तीस-देविद-मणि-मउड-मत्थय महिदाणं, बलदेव-वासुदेव-चक्कहर-रिसि-मुणि-जइ-अणगारोवगूढाणं, थुइ-सय-सहस्स-णिलयाणं, उसहाइ-वीर-पच्छिम-मंगल-महापुरिसाणं, णिच्चकालं अंचेमि, पुज्जेमि, वंदामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ बोहिलाओ सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुण संपत्ति होउ मज्झं।

वद-समिदिंदिय-रोधो लोचावासय-मचेल-मण्हाणं।
खिदि-सयण-मदंतवणं, ठिदिभोयण-मेय-भत्तं च ।। 1 ।।

एदे खलु मूलगुणा, समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता,
एत्थ-पमाद-कदादो, अइचारादो णियत्तोऽहं ।। 2 ।।

छेदोवट्टावणं होउ मज्झं।

अथ सर्वातिचार-विशुद्धयर्थं दैवसिक (रात्रिक) प्रतिक्रमणक्रियायां कृत-दोषनिराकरणार्थं पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकल-कर्म-क्षयार्थं भावपूजा-वन्दना-स्तव समेतं श्री सिद्धभक्तिं, प्रतिक्रमणभक्तिं, निष्ठितकरण-वीरभक्तिं, चतुर्विंशति तीर्थंकर भक्तिं कृत्वा तद्धीनादिक-दोष-विशुद्धयर्थं, आत्म-पवित्री करणार्थं समाधिभक्तिं कायोत्सर्गं करोम्यहं।

समाधि-भक्ति

अथेष्ट प्रार्थना प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नमः।

शास्त्राभ्यासो जिनपतिनुतिः, संगति सर्वदार्यैः।
सद्वृत्तानां गुणगणकथा, दोष-वादे च मौनम्।।
सर्वस्यापि, प्रियहितवचो, भावना चात्म-तत्त्वे।
सम्पद्यन्तां मम भवभवे यावदेतेऽपवर्गः ।। 1 ।।

तव पादौ मम हृदये, मम हृदयं तव पद द्वये लीनम्।
तिष्ठतु जिनेन्द्र ! तावद् यावन्-निर्वाण-सम्प्राप्तिः ।। 2 ।।

अक्खर-पयत्थ-हीणं, मत्ताहीणं च जं मए भणियम्।
तं खमहु णाणदेव ! य, मज्झवि दुक्खक्खयं कुणउ ।। 3 ।।

इच्छामि भंते ! समाहिभत्ति काउस्सग्गो कओ, तस्सालोचेउं, रयणत्तय-सरूव-परमप्पज्झाण-लक्खण-समाहिभत्तीए णिच्चकालं अच्चेमि, पुज्जेमि, वंदामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ बोहिलाओ, सुगइगमणं समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

इति दैवसिक (रात्रिक) प्रतिक्रमण समाप्त।

अथ चतुर्दिग्वंदना

प्राग्दिग्विदिगंतरे, केवलि - जिन - सिद्ध - साधुगण देवाः।
ये सर्वर्धि समृद्धाः, योगिगणास्तानहं वन्दे ।।1।।

दक्षिण - दिग्विदिगंतरे, केवलि - जिन - सिद्ध - साधुगण देवाः।
ये सर्वर्धि समृद्धाः, योगिगणास्तानहं वन्दे ।।2।।

पश्चिम - दिग्विदिगंतरे, केवलि - जिन - सिद्ध - साधुगण देवाः।
ये सर्वर्धि समृद्धाः, योगिगणास्तानहं वन्दे ।।3।।

उत्तर - दिग्विदिगंतरे, केवलि - जिन - सिद्ध - साधुगण देवाः।
ये सर्वर्धि समृद्धाः, योगिगणास्तानहं वन्दे ।।4।।

卐 卐 卐 卐 卐

कुन्दकुन्द शतक (पद्यानुवाद)

सुर-असुर-इन्द्र-नरेन्द्र वंदित कर्ममल निर्मल करन।
वृष तीर्थ के करतार श्री वर्धमान, जिन शत-शत नमन ।।1।।

प्रवचनसार, गाथा 1

अरहन्त सिद्धाचार्य पाठक साधु हैं परमेष्ठि पण।
सब आतमा की अवस्थाएँ आतमा ही है शरण ।।2।।

अष्टपाहुड : मोक्षपाहुड, गाथा 104

सम्यक् सुदर्शन ज्ञान तप समभाव सम्यक् आचरण।
सब आतमा की अवस्थाएँ आतमा ही है शरण ।।3।।

अष्टपाहुड : मोक्षपाहुड, गाथा 105

निर्ग्रन्थ है नीराग है निःशल्य है निर्दोष है।
निर्मान मद यह आतमा निष्काम है निष्क्रोध है ।।4।।

नियमसार, गाथा 44

निर्दण्ड है निर्द्वन्द्व है यह निरालम्बी आतमा।
निर्देह है निर्मूढ है निर्भयी निर्मम आतमा ।।5।।

नियमसार, गाथा 43

मैं एक दर्शन-ज्ञानमय नित शुद्ध हूँ रूपी नहीं।
ये अन्य सब पर द्रव्य किंचित् मात्र भी मेरे नहीं ।।6।।

समयसार, गाथा 38

चैतन्य गुणमय आतमा अव्यक्त अरस अरूप है।
जानो अलिंगग्रहण इसे यह अनिर्दिष्ट अशब्द है ।।7।।

समयसार, गाथा 49

जिस भाँति प्रज्ञा छैनी से पर से विभक्त किया इसे।
उस भाँति प्रज्ञा छैनी से ही अरे ग्रहण करो इसे ।।8।।

समयसार, गाथा 219

जो जानता मैं शुद्ध हूँ वह शुद्धता को प्राप्त हो।
जो जानता अविशुद्ध वह अविशुद्धता को प्राप्त हो ।।9।।

समयसार, गाथा 186

यह आत्म ज्ञान प्रमाण है अर ज्ञान ज्ञेय प्रमाण है।
हैं ज्ञेय लोकालोक इस विधि सर्वगत यह ज्ञान है ।।10।।

प्रवचनसार, गाथा 23

चारित्र दर्शन ज्ञान को सब साधुजन सेवें सदा।
ये तीन ही हैं आतमा बस कहे निश्चय नय सदा ।।11।।

समयसार, गाथा 16

'यह नृपति है' - यह जानकर अर्थार्थिजन श्रद्धा करें।
अनुचरण उसका ही करें अति प्रीति से सेवा करें ।।12।।

समयसार, गाथा 17

यदि मोक्ष की है कामना तो जीवनृप को जानिए।
अति प्रीति से अनुचरण करिये प्रीति से पहिचानिए ।।13।।

समयसार, गाथा 18

जो भव्यजन संसार-सागर पार होना चाहते।
वे कर्म ईंधन दहन निज शुद्धात्मा को ध्यावते ।।14।।

अष्टपाहुड : मोक्षपाहुड, गाथा 26

मोक्ष पथ में थाप निज को चेत कर निज ध्यान धर।
निज में ही नित्य विहार कर पर द्रव्य में न विहार कर ।।15।।

समयसार, गाथा 412

जीवादि का श्रद्धान सम्यक् ज्ञान सम्यग्ज्ञान है।
रागादि का परिहार चारित यही मुक्तिमार्ग है ।।16।।

समयसार, गाथा 155

तत्त्व रुचि सम्यक्त्व है तत्ग्रहण सम्यग्ज्ञान है।
जिन देव ने ऐसा कहा परिहार ही चारित्र है ।।17।।

अष्टपाहुड : मोक्षपाहुड, गाथा 38

जानना ही ज्ञान है अरु देखना दर्शन कहा।
पुण्य-पाप का परिहार चारित्र यही जिनवर ने कहा ।।18।।

अष्टपाहुड : मोक्षपाहुड, गाथा 37

दर्शन रहित यदि वेष हो चारित्र विरहित ज्ञान हो।
संयम रहित तप निरर्थक आकाश-कुसुम समान हो ।।19।।

अष्टपाहुड : शीलपाहुड, गाथा 5

दर्शन सहित हो वेष चारित्र शुद्ध सम्यग्ज्ञान हो।
संयम सहित तप अल्प भी हो तदपि सुफल महान हो ।।20।।

अष्टपाहुड :शीलपाहुड, गाथा 6

परमार्थ से हो दूर पर तप करें व्रत धारण करें।
सब बालतप है बालव्रत वृषभादि सब जिनवर कहें ।।21।।

समयसार, गाथा 152

व्रत नियम सब धारण करें तप शील भी पालन करें।
पर दूर हों परमार्थ से ना मुक्ति की प्राप्ति करें ।।22।।

समयसार, गाथा 153

जो शक्य हो वह करें और अशक्य की श्रद्धा करें।
श्रद्धान ही सम्यक्त्व है इस भाँति सब जिनवर कहें।।23।।

अष्टपाहुड : दर्शनपाहुड, गाथा 22

जीवादि का श्रद्धान ही व्यवहार से सम्यक्त्व है।
पर नियत नय से आत्म का श्रद्धान ही सम्यक्त्व है।।24।।

अष्टपाहुड : दर्शनपाहुड, गाथा 20

नियम से निज द्रव्य में रत श्रमण सम्यग्वन्त हैं।
सम्यक्त्व-परिणत श्रमण ही क्षय करें करमानन्त हैं ।।25।।

अष्टपाहुड : मोक्षपाहुड, गाथा 14

मुक्ती गये या जायेंगे माहात्म्य है सम्यक्त्व का।
यह जान लो हे भव्यजन! इससे अधिक अब कहें क्या ।।26।।

अष्टपाहुड : मोक्षपाहुड, गाथा 87

वे धन्य हैं सुकृतार्थ हैं वे शूर नर पण्डित वही।
दु:स्वप्न में सम्यक्त्व को जिनने मलीन किया नहीं ।।27।।

अष्टपाहुड : मोक्षपाहुड, गाथा 89

चिदचिदास्रव पाप-पुण्य शिव बंध संवर निर्जरा।
तत्त्वार्थ ये भूतार्थ से जाने हुए सम्यक्त्व हैं ।।28।।

समयसार, गाथा 13

शुद्धनय भूतार्थ है अभूतार्थ है व्यवहारनय।
भूतार्थ की ही शरण गह यह आतमा सम्यक् लहे ।।29।।

समयसार, गाथा 11

अनार्य भाषा के बिना समझा सकें न अनार्य को।
त्योंहि समझा सकें ना व्यवहार बिन परमार्थ को ।।30।।

समयसार, गाथा 8

देह चेतन एक हैं - यह वचन है व्यवहार का।
ये एक हो सकते नहीं, यह कथन है परमार्थ का ।।31।।

समयसार, गाथा 27

दृग ज्ञान चारित जीव के हैं - यह कहा व्यवहार से।
ना ज्ञान दर्शन चरण ज्ञायक शुद्ध है परमार्थ से ।।32।।

समयसार, गाथा 7

जो सो रहा व्यवहार में वह जागता निज कार्य में।
जो जागता व्यवहार में वह सो रहा निज कार्य में ।।33।।

अष्टपाहुड : मोक्षपाहुड, गाथा 31

इस ही तरह परमार्थ से कर नास्ति इस व्यवहार की।
निश्चयनयाश्रित श्रमणजन प्राप्ति करें निर्वाण की ।।34।।

समयसार, गाथा 272

सद्धर्म का है मूल दर्शन जिनवरेन्द्रों ने कहा।
हे कान वालो सुनो ! दर्शन हीन वंदन योग्य ना ।।35।।

अष्टपाहुड : दर्शनपाहुड, गाथा 2

जो ज्ञान दर्शन भ्रष्ट हैं चारित से भी भ्रष्ट हैं।
वे भ्रष्ट करते अन्य को वे भ्रष्ट से भी भ्रष्ट हैं ।।36।।

अष्टपाहुड : दर्शनपाहुड, गाथा 8

दृग भ्रष्ट हैं वे भ्रष्ट हैं उनको कभी निर्वाण ना।
हों सिद्ध चारित्र-भ्रष्ट पर दृग-भ्रष्ट को निर्वाण ना ।।37।।

अष्टपाहुड : दर्शनपाहुड, गाथा 3

जो लाज गारव और भयवश पूजते दृग-भ्रष्ट को।
की पाप की अनुमोदना ना बोधि उनको प्राप्त हो ।।38।।

अष्टपाहुड : दर्शनपाहुड, गाथा 13

चाहें नमन दृगवंत से पर स्वयं दर्शनहीन हों।
है बोधिदुर्लभ उन्हें भी वे भी वचन पग हीन हों ।।39।।

अष्टपाहुड : दर्शनपाहुड, गाथा 12

यद्यपि करें वे उग्र तप शत-सहस कोटी वर्ष तक।
पर रत्नत्रय पावें नहीं सम्यक्त्व विरहित साधु सब ।।40।।

अष्टपाहुड : दर्शनपाहुड, गाथा 5

जिस तरह द्रुम परिवार की वृद्धि न हो जड़ के बिना।
बस उस तरह ना मुक्ति हो जिनमार्ग में दर्शन बिना ।।41।।

अष्टपाहुड : दर्शनपाहुड, गाथा 10

असंयमी न वन्द्य है दृगहीन वस्त्र विहीन भी।
दोनों ही एक समान हैं दोनों ही संयत हैं नही ।।42।।

अष्टपाहुड : दर्शनपाहुड, गाथा 26

ना वंदना हो देह की कुल की नहीं ना जाति की।
कोई करे क्यों वंदना गुणहीन श्रावक-साधु की ।।43।।

अष्टपाहुड : दर्शनपाहुड, गाथा 27

मैं कर्म हूँ नो कर्म हूँ या हैं हमारे ये सभी।
यह मान्यता जब तक रहे अज्ञानी हैं तब तक सभी ।।44।।

समयसार, गाथा 19

करम के परिणाम को नो करम के परिणाम को।
जो ना करे बस मात्र जाने प्राप्त हो सद्ज्ञान को ।।45।।

समयसार, गाथा 75

मैं मारता हूँ अन्य को या मुझे मारें अन्यजन।
यह मान्यता अज्ञान है जिनवर कहें हे भव्यजन ! ।।46।।

समयसार, गाथा 247

निज आयुक्षय से मरण हो यह बात जिनवर ने कही।
तुम मार कैसे सकोगे जब आयु हर सकते नहीं ।।47।।

समयसार, गाथा 248

निज आयुक्षय से मरण हो यह बात जिनवर ने कही।
वे मरण कैसे करें तब जब आयु हर सकते नहीं ।।48।।

समयसार, गाथा 249

मैं हूँ बचाता अन्य को मुझको बचावें अन्यजन।
यह मान्यता अज्ञान है जिनवर कहें हे भव्य जन ।।49।।

समयसार, गाथा 250

सब आयु से जीवित रहें-यह बात जिनवर ने कही।
जीवित रखोगे किस तरह जब आयु दे सकते नहीं ? ।।50।।

समयसार, गाथा 251

सब आयु से जीवित रहें-यह बात जिनवर ने कही।
कैसे बचावें वे तुझे जब आयु दे सकते नहीं ।।51।।

समयसार, गाथा 252

मैं सुखी करता दु:खी करता हूँ जगत में अन्य को।
यह मान्यता अज्ञान है, क्यों ज्ञानियों को मान्य हो ? ।।52।।

समयसार, गाथा 253

मारो न मारो जीव को हो बन्ध अध्यवसान से।
यह बंध का संक्षेप है तुम जान लो परमार्थ से ।।53।।

समयसार, गाथा 262

प्राणी मरें या ना मरें हिंसा अयत्नाचार से।
तब बंध होता है नहीं जब रहें यत्नाचार से ।।54।।

प्रवचनसार, गाथा 217

उत्पाद-व्यय-ध्रुवयुक्त सत्, सत् द्रव्य का लक्षण कहा।
पर्याय-गुणमय द्रव्य है-यह वचन जिनवर ने कहा ।।55।।

पंचास्तिकायसंग्रह, गाथा 10

पर्याय बिन ना द्रव्य हो, ना द्रव्य बिन पर्याय ही।
दोनों अनन्य रहें सदा - यह बात श्रमणों ने कही ।।56।।

पंचास्तिकायसंग्रह, गाथा 12

द्रव्य बिन गुण हों नहीं, गुण बिना द्रव्य नहीं बने।
गुण द्रव्य अव्यतिरिक्त हैं - यह कहा जिनवर देव ने ।।57।।

पंचास्तिकायसंग्रह, गाथा 13

उत्पाद हो न अभाव का, ना नाश हो सद्भाव में।
उत्पाद-व्यय करते रहें, सब द्रव्य गुण पर्याय में ।।58।।

पंचास्तिकायसंग्रह, गाथा 15

असद्भूत हों सद्भूत हों, सब द्रव्य की पर्याय सब।
सद्ज्ञान में वर्तमानवत ही हैं सदा वर्तमान सब ।।59।।

प्रवचनसार, गाथा 37

पर्याय जो अनुत्पन्न हैं या नष्ट जो हो गईं हैं।
असद्भावी वे सभी पर्याय ज्ञान प्रत्यक्ष हैं ।।60।।

प्रवचनसार, गाथा 38

पर्याय जो अनुत्पन्न हैं या हो गईं हैं नष्ट जो।
फिर ज्ञान की क्या दिव्यता यदि ज्ञात होवें नहीं वो? ।।61।।

प्रवचनसार, गाथा 39

अरहन्तभासित ग्रथित-गणधर सूत्र से ही श्रमणजन।
परमार्थ का साधन करें अध्ययन करो हे भव्यजन ।।62।।

अष्टपाहुड : सुत्रपाहुड, गाथा 1

डोरा सहित सुई नहीं खोती गिरे चाहे वन-भवन।
संसार-सागर पार हों जिन सूत्र के ज्ञायक श्रमण ।।63।।

अष्टपाहुड : सुत्रपाहुड, गाथा 3

तत्त्वार्थ को जो जानते प्रत्यक्ष या जिन शास्त्र से।
दृग मोह क्षय हो इसलिए स्वाध्याय करना चाहिये ।।64।।

प्रवचनसार, गाथा 86

जिन-आगमों से सिद्ध हों सब अर्थ गुण-पर्यय सहित।
जिन आगमों से ही श्रमणजन जानकर साधें स्वहित ।।65।।

प्रवचनसार, गाथा 235

स्वाध्याय से जो जानकर निज अर्थ में एकाग्र हैं।
भूतार्थ से वे ही श्रमण, स्वाध्याय ही बस श्रेष्ठ है ।।66।।

प्रवचनसार, गाथा 232

जो श्रमण आगमहीन हैं वे स्व-पर को नहिं जानते।
वे कर्मक्षय कैसे करें जो स्व-पर को नहिं जानते ।।67।।

प्रवचनसार, गाथा 233

व्रत सहित पूजा आदि सब जिनधर्म में सत्कर्म है।
दृग मोह क्षोभ विहीन निज परिणाम आतमधर्म है ।।68।।

अष्टपाहुड - भावपाहुड, गाथा 83

चारित्र ही बस धर्म है वह धर्म समताभाव है।
दृगमोह-क्षोभ विहीन निज परिणाम समताभाव है ।।69।।

प्रवचनसार, गाथा 7

प्राप्त करते मोक्षसुख शुद्धोपयोगी आतमा।
पर प्राप्त करते स्वर्गसुख हि शुभोपयोगी आतमा ।।70।।

प्रवचनसार, गाथा 11

शुभोपयोगी श्रमण हैं शुद्धोपयोगी भी श्रमण।
शुद्धोपयोगी निरास्रव हैं आस्रवी हैं शेष सब ।।71।।

प्रवचनसार, गाथा 245

काँच-कंचन बंधु-अरि सुख-दुख प्रशंसा-निन्द में।
शुद्धोपयोगी श्रमण का समभाव जीवन मरण में ।।72।।

प्रवचनसार, गाथा 241

भावलिंगी सुखी होते द्रव्य लिंगी दुख लहें।
गुण-दोष को पहिचान कर सब भाव से मुनि पद गहें ।।73।।

अष्टपाहुड : भावपाहुड, गाथा 127

मिथ्यात्व का परित्याग कर हो नग्न पहले भाव से।
आज्ञा यही जिनदेव की फिर नग्न होवे द्रव्य से ।।74।।

अष्टपाहुड : भावपाहुड, गाथा 73

जिन भावना से रहित मुनि भव में भ्रमें चिरकाल तक।
हों नगन पर हों बोधि-विरहित दुख लहें चिरकाल तक ।।75।।

अष्टपाहुड : भावपाहुड, गाथा 68

वस्त्रादि सब परित्याग कोड़ा-कोड़ी वर्षों तप करें।
पर भाव बिन ना सिद्धि हो सत्यार्थ यह जिनवर कहें ।।76।।

अष्टपाहुड : भावपाहुड, गाथा 4

नारकी तिर्यंच आदिक देह से सब नग्न हैं।
सच्चे श्रमण तो हैं वही जो भाव से भी नग्न हैं ।।77।।

अष्टपाहुड : भावपाहुड, गाथा 67

जन्मते शिशुवत अकिंचन नहीं तिल-तुष हाथ में।
किंचित् परिग्रह साथ हो तो श्रमण जाँय निगोद में ।।78।।

अष्टपाहुड : सुत्रपाहुड, गाथा 18

जो आर्त होते जोड़ते रखते रखाते यत्न से।
वे पाप मोहितमती हैं वे श्रमण नहिं तिर्यंच हैं ।।79।।

अष्टपाहुड : लिंगपाहुड, गाथा 5

राग करते नारियों से दूसरों को दोष दें।
सद्ज्ञान-दर्शन रहित हैं वे श्रमण नहिं तिर्यंच है ।।80।।

अष्टपाहुड : लिंगपाहुड, गाथा 17

श्रावकों में शिष्यगण में नेह रखते श्रमण जो।
हीन विनयाचार से वे श्रमण नहिं तिर्यंच हैं ।।81।।

अष्टपाहुड : लिंगपाहुड, गाथा 18

पार्श्वस्थ से भी हीन जो विश्वस्त महिला वर्ग में।
रत ज्ञान-दर्शन-चरण दें वे नहीं पथ अपवर्ग में ।।82।।

अष्टपाहुड : लिंगपाहुड, गाथा 20

धर्म से हो लिंग केवल लिंग से न धर्म हो।
समभाव को पहिचानिये द्रवलिंग से क्या कार्य हो? ।।83।।

अष्टपाहुड : लिंगपाहुड, गाथा 2

विरक्त शिवरमणी वरें अनुरक्त बाँधे कर्म को।
जिनदेव का उपदेश यह मत कर्म में अनुरक्त हो ।।84।।

समयसार, गाथा 150

परमार्थ से हैं बाह्य वे जो मोक्षमग नहीं जानते।
अज्ञान से भवगमन-कारण पुण्य को हैं चाहते ।।85।।

समयसार, गाथा 154

सुशील है शुभकर्म और अशुभ करम कुशील हैं।
संसार के हैं हेतु वे कैसे कहें कि सुशील हैं ।।86।।

समयसार, गाथा 145

ज्यों लोह बेड़ी बाँधती त्यों स्वर्ण की भी बांधती।
इस भाँति ही शुभ-अशुभ दोनों कर्म बेड़ी बाँधती ।।87।।

समयसार, गाथा 146

दु:शील के संसर्ग से स्वाधीनता का नाश हो।
दु:शील से संसर्ग एवं राग को तुम मत करो ।।88।।

समयसार, गाथा 147

पुण्य-पाप में अन्तर नहीं है-जो न मानें बात ये।
संसार-सागर में भ्रमें मद-मोद से आच्छन्न वे ।।89।।

प्रवचनसार, गाथा 77

इन्द्रिसुख सुख नहीं दु:ख है विषम बाधा सहित है।
है बंध का कारण दु:खद परतंत्र है विच्छिन्न है ।।90।।

प्रवचनसार, गाथा 76

शुभ-अशुभ रचना वचन वा रागादिभाव निवारि के।
जो करें आतम ध्यान नर उनके नियम से नियम है ।।91।।

नियमसार, गाथा 120

सद्ज्ञान-दर्शन-चरित ही है 'नियम' जानो नियम से।
विपरीत का परिहार होता 'सार' इस शुभ वचन से ।।92।।

नियमसार, गाथा 3

जैन शासन में कहा है मार्ग एवं मार्गफल।
है मार्ग मोक्ष-उपाय एवं मोक्ष ही है मार्गफल ।।93।।

नियमसार, गाथा 2

हैं जीव नाना कर्म नाना लब्धि नानाविध कही।
अतएव वर्जित वाद है निज-पर समय के साथ भी ।।94।।

नियमसार, गाथा 156

ज्यों निधी पाकर निज वतन में गुप्त रह जन भोगते।
त्यों ज्ञानिजन भी ज्ञाननिधि परसंग तज के भोगते ।।95।।

नियमसार, गाथा 157

यदि कोई ईर्ष्याभाव से निन्दा करे जिनमार्ग की।
छोड़ो न भक्ती वचन सुन इस वीतरागी मार्ग की ।।96।।

नियमसार, गाथा 186

जो थाप निज को मुक्तिपथ भक्ती निवृत्ती की करें।
वे जीव निज असहाय गुण सम्पन्न आतम को वरें ।।97।।

नियमसार, गाथा 136

मुक्तिगत नरश्रेष्ठ की भक्ति करें गुणभेद से।
वह परमभक्ति कही है जिनसूत्र में व्यवहार से ।।98।।

नियमसार, गाथा 135

द्रव्य गुण पर्याय से जो जानते अरहन्त को।
वे जानते निज आतमा दृगमोह उनका नाश हो ।।99।।

प्रवचनसार, गाथा 80

सर्व ही अरहन्त ने विधि नष्ट कीने जिस विधी।
सबको बताई वही विधि हो नमन उनको सब विधी ।।100।।

प्रवचनसार, गाथा 82

है ज्ञान दर्शन शुद्धता निज शुद्धता श्रामण्य है।
हो शुद्ध को निर्वाण शत-शत बार उनको नमन है ।।101।।

प्रवचनसार, गाथा 274

-लेखक : डा० हुकुमचन्द भारिल्ल

卐 卐 卐 卐 卐

जिनवाणी का महत्त्व

जिनवाणी की विराधना से मानव धिक्कार पाता है,
जिनवाणी की आराधना से मन का विकार जाता है।
जिनेन्द्र का मार्ग कठोरतम होते हुए भी,
जिन मार्ग पर चलने से जीवन में निखार आता है ।।1।।

जिनवाणी के बिना ज्ञान नहीं होता,
उदारता के बिना दान नहीं होता।
आप्त की प्राप्ति की इच्छा करने वालों,
भगवती आराधना के बिना उद्धार नहीं होता ।।2।।

जिनवाणी वही सुन सकता है जो संसार से भयभीत है,
जिन वचन वही पचा सकता है जो धीर व गम्भीर है।
बाहर के दुश्मनों को पराजित करने वालों,
आत्म आराधना से ही कर्म विजय होती है ।।3।।

जिनवाणी के बिना साधना नहीं होती,
निर्मलता के बिना उपासना नहीं होती।
इष्ट सिद्धि के लिए माला फेरने वालों,
अध्यात्म के बिना आराधना नहीं होती ।।4।।

जिनवाणी का अस्तित्व होता नहीं जहाँ मुमुक्षु नहीं,
भौंरे वहाँ जाते नहीं जिस फूल में सुगन्ध नहीं।
निभा सकते हैं, व्यवहार ऊपर का मगर,
जिन मर्म वहाँ खिलता नहीं जहाँ आत्मीय संबंध नहीं ।।5।।

जिनवाणी के बिना अन्तर में प्रकाश नहीं है,
बिन गुरु के विद्या का विकास नहीं है।
पर आश्चर्य की बात तो यह है कि,
जैनियों का जिनवाणी पर विश्वास नहीं है ।।6।।

जिनवाणी के बिना आह्लाद नहीं होता,
नींव के बिना प्रासाद नहीं होता।
धन के संग्रह में लीन रहने वालो,
दर्शन मूल के बिना निर्वाण नहीं होता ।।7।।

जिनवाणी की विराधना से कोई गुणवान नहीं होता,
जिन शास्त्र को रोंदने से कोई पहलवान नहीं होता।
सत्गुरुओं को दोष नहीं लगाओ थोड़ा गहराई से सोचो,
अनुचित बातें करने से कोई विद्वान नहीं होता ।।8।।

जिनवाणी के बिना सच्चा ज्ञान नहीं होता,
केवल अक्षर के जानने से कोई विद्वान नहीं होता।
जिनवाणी की विराधना करने वालो,
जिनवाणी के बिना आत्म कल्याण नहीं होता ।।9।।

जिनवाणी के जपने से मन का विकार जाता है,
जिनवाणी में खपने से सुख विस्तार पाता है।
अन्तर मन से सोचो सन्त की भाँति,
जिनवाणी में रमने से भव का अन्त होता है ।।10।।

समाज में अनुशासन होना चाहिये,
शासित में धैर्य होना चाहिये।
अगर समाज का उत्कर्ष करना है तो,
घर-घर जिनवाणी का स्वाध्याय होना चाहिये ।।11।।

जिनवाणी के पथ पर संसार में चलता है कोई-कोई,
मोक्ष मंजिल पाने के लिए बढ़ता है कोई-कोई।
सब प्रवीण हैं अध्यात्म की बातें करने में मगर,
संत की भाँति संसार का अन्त करता है कोई-कोई ।।12।।

जिनवाणी के शिखर पर चढ़ता है कोई-कोई,
विनय और नम्रता से पढ़ता है कोई-कोई।
सोया पड़ा है संसार सारा मोह की नींद में,
भव का अन्त करने के लिए जागता है कोई-कोई ।।13।।

वह समाज किस काम का, जिसमें जिनवाणी का सम्मान नहीं,
वह मानव किस काम का, जिसके सुन्दर विचार नहीं।
धनोपार्जन में जीवन खपाने वालो,
वह धन किस काम का जिससे जिनवाणी का प्रचार नहीं ।।14।।

जिनवाणी की गूढ़दृष्टि पहचानना आसान नहीं है,
बिना गुरु प्रवीण भी ज्ञानवान नहीं है।
किसी का उपकार करना हमारा कर्तव्य है मगर,
गुरु उपकार मानना कोई आसान नहीं है ।।15।।

वह शास्त्र ही क्या जिसमें वीतरागता नहीं है,
वह औषधि ही क्या जिसमें रोग का उपचार नहीं है।
धर्म का ढोंग करने वाले मिलेंगे बहुत,
वह धर्मात्मा ही क्या जिसे जिनवाणी से प्यार नहीं है ।।16।।

वीतरागता के बिना धर्म निस्सार होता है,
गति के बिना वाहन बेकार होता है।
नये-नये आविष्कारों की होड़ में खपने वालो,
धर्म के बिना मानव भी धरती पर भार होता है ।।17।।

यदि शास्त्र नष्ट होने लगे तो शस्त्र का क्या होगा,
यदि अन्दर की शर्म निकल गई तो बाहर की लाज से क्या होगा।
धर्म प्रचार के स्वप्न को साकार करने वालो,
धर्म रक्षक ही भक्षक बन गये तो धर्म का क्या होगा ।।18।।

समुद्र का महत्व सलिल से नहीं गम्भीरता से है,
साधु का महत्व नग्नता से नहीं साधना से है।
जिनवाणी चिन्तन से ऐसा अनुभव होता है,
ज्ञानी का महत्व क्षयोपशम से नहीं अनुभव से है ।।19।।

जिनवाणी के संयोग से अज्ञ भी ज्ञानी बन जाता है,
संतों के सत्संग से पापी भी बदल जाता है।
घबराना मत मैं तुम्हें सच कहता हूँ,
चोर जैसा मानव भी भगवान बन जाता है ।।20।।

साध्य उसी से सधेगा जो जिनवाणी में रमेगा,
समयसार उसी को मिलेगा जिसमें पूर्ण क्षमता है।
प्रशंसा को सुनकर कौन खुश नहीं होता किन्तु,
निन्दा को वही सुन सकेगा, जिसके दिल में समता है।।21।।

समाधिमरण पाठ

(कविवर सूरचन्द्र विरचित)

वन्दौं श्री अरहंत परम गुरु, जो सबको सुखदाई।
इस जग में दुख जो मैं भुगते, सो तुम जानो राई।।
अब मैं अरज करूँ प्रभु तुमसे, कर समाधि उर माहीं।
अन्त समय में यह वर मागूँ, सो दीजै जगराई ।।1।।
भव-भव में तनधार नये मैं, भव-भव शुभ संग पायो।
भव-भव में नृपरिद्धि लई मैं, मात-पिता सुत थायो।।
भव-भव में तन पुरुष तनों धर, नारी हूँ तन लीनों।
भव-भव में मैं भयो नपुँसक, आतमगुण नहिं चीनों ।।2।।
भव-भव में सुर पदवी पाई, ताके सुख अति भोगे।
भव-भव में गति नरकतनी धर, दुख पाये विधि योगे।।
भव-भव में तिर्यंच योनि धर, पायो दुख अति भारी।
भव-भव में साधर्मीजन को, संग मिल्यो हितकारी ।।3।।
भव-भव में जिन पूजन कीनी, दान सुपात्रहिं दीनो।
भव-भव में मैं समवसरण में, देख्यो जिनगुण भीनो।।
एती वस्तु मिली भव-भव में, सम्यक् गुण नहिं पायो।
ना समाधियुत मरण कियो मैं, तातैं जग भरमायो ।।4।।
काल अनादि भयो जग भ्रमते, सदा कुमरणहिं कीनो।
एकबार हू सम्यक्युत मैं, निज आतम नहिं चीनो।।
जो निज पर को ज्ञान होय तो, मरण समय दुख काँई।
देह विनाशी मैं निजभासी, ज्योति स्वरूप सदाई ।।5।।
विषय कषायनि के वश होकर, देह आपनो जान्यो।
कर मिथ्या सरधान हिये विच, आतम नाहिं पिछान्यो।।
यो कलेश हियधार मरणकर, चारों गति भरमायो।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरन ये, हिरदे में नहीं लायो ।।6।।

अब या अरज करूँ प्रभु सुनिये, मरण समय यह मांगों।
रोग जनित यह पीड़ा मत होवो, अरु कषाय मत जागो।।
ये मुझ मरण समय दुखदाता, इन हर साता कीजै।
जो समाधियुतमरण होय मुझ, अरु मिथ्यागद छीजै ।।7।।
यह तन सात सुधातमई है, देखत ही घिन आवैं।
चामलपेटी ऊपर सोहै, भीतर विष्टा पावै।।
अतिदुर्गन्ध अपावन सों, यह मूरख प्रीति बढ़ावैं।
देह विनाशी, जिय अविनाशी नित्य स्वरूप कहावै ।।8।।
यह तन जीर्ण कुटीसम आतम, यातैं प्रीति न कीजै।
नूतन महल मिलै जब भाई, तब यामें क्या छीजै।।
मृत्यु होन से हानि कौन है, याको भय मत लावो।
समता से जो देह तजोगे, तो शुभतन तुम पावो ।।9।।
मृत्यु मित्र उपकारी तेरो, इस अवसर के माहीं।
जीरन तन से देत नयो यह, या सब साहू नाहीं।
या सेती इस मृत्यु समय पर, उत्सव अति ही कीजै।
क्लेशभाव को त्याग सयाने, समता भाव धारीजै ।।10।।
जो तुम पूरव पुण्य किये हैं, तिनको फल सुखदाई।
मृत्यु मित्र बिन कौन दिखावै, स्वर्ग सम्पदा भाई।।
राग रोष को छोड़ सयाने, सात व्यसन दुखदाई।
अन्त समय में समता धारो, परभव पंथ सहाई ।।11।।
कर्म महादुठ बैरी मेरो, तासेती दुख पावै।
तन पिंजर में बंध कियो मोहि, यासों कौन छुड़ावै।।
भूख तृषा दुख आदि अनेकन, इस ही तन में गाढ़ै।
मृत्युराज अब आय दयाकर, तनपिंजर सों काढ़ै ।।12।।
नाना वस्त्राभूषण मैंने, इस तन को पहराये।
गन्ध-सुगन्धित अतर लगाये, षट्रस असन कराये।
रात दिन मैं दास होयकर, सेव करी तनकेरी।
सो तन मेरे काम न आयो, भूल रह्यो निधि मेरी ।।13।।

मृत्युराज को शरन पाय, तन नूतन ऐसो पाऊँ।
जामें सम्यक्रतन तीन लहिं, आठों कर्म खपाऊँ।।
देखो तन सम और कृतघ्नी, नाहिं सु या जगमाहीं।
मृत्यु समय में ये ही परिजन, सब ही हैं दुखदाई ।।14।।
यह सब मोह बढ़ावन हारे, जिय को दुर्गति दाता।
इनसे ममत निवारो जियरा, जो चाहो सुख साता।।
मृत्यु कल्पद्रुम पाय सयाने, माँगा इच्छा जेती।
समता धरकर मृत्यु करो तो, पावो सम्पति तेती ।।15।।
चौ-आराधन सहित प्राण, तज तो ये पदवी पावो।
हरि प्रतिहरि चक्री तीर्थेश्वर, स्वर्ग मुकति में जावो।।
मृत्यु कल्पद्रुम सम नहिं दाता, तीनों लोक मझारे।
ताको पाय क्लेश करो मत, जन्म जवाहर हारे ।।16।।
इस तन में क्या राचै जियरा, दिन-दिन जीरन होहै।
तेज कान्ति बल नित्य घटत है, या सब अथिर सु को है।।
पाँचों इन्द्री शिथिल भई अब, स्वास शुद्ध नहिं आवै।
तापर भी ममता नहिं छोड़ै, समता उर नहिं लावै ।।17।।
मृत्युराज उपकारी जिय को, तनसों तोहि छुड़ावै।
नातर या तन बन्दीगृह में, परयो परयो बिललावै।।
पुद्गल के परमाणु मिलकैं, पिण्डरूप तन भासी।
याही मूरत में अमूरती, ज्ञानजोति गुण खासी ।।18।।
रोग शोक आदिक जो वेदन, ते सब पुद्गल लारै।
मैं तो चेतन व्याधि बिना नित, हैं सो भाव हमारै।।
या तनसों इस क्षेत्र सम्बन्धी, कारण आन बन्यो है।
खानपान दे याको पोष्यो, अब समभाव ठन्यो है ।।19।।
मिथ्यादर्शन आत्मज्ञान बिन, यह तन अपना जान्यो।
इन्द्रीभोग गिने सुख मैंने, आपो नाहिं पिछान्यो।।
तन विनशनतैं नाश जानि निज, यह अयान दुःखदाई।
कुटुम आदि को अपनो जान्यो, भूल अनादी छाई ।।20।।

अब निज भेद यथारथ समझ्यो, मैं हूँ ज्योतिस्वरूपी।
उपजै विनसै सो यह पुद्गल, जान्यो याको रूपी।।
इष्टनिष्ट जेते सुख दुख हैं, सो सब पुद्गल सागैं।
मैं जब अपनो रूप विचारों, तब वे सब दुख भागैं ।।21।।
बिन समता तनऽनंत धरे मैं, तिनमें ये दुख पायो।
शस्त्र घाततैंऽनन्त बार मर, नाना योनि भ्रमायो।।
बार अनन्तहि अग्नि माहिं जर, मूवो सुमति न लायो।
सिंह व्याघ्र अहिऽनन्त बार मुझ, नाना दु:ख दिखायो ।।22।।
बिन समाधि ये दु:ख लहे मैं, अब उर समता आई।
मृत्युराज को भय नहिं मानो, देवै तन सुखदाई।।
यातैं जब लग मृत्यु न आवै, तब लग जप-तप कीजै।
जप-तप बिन इस जग के माहीं, कोई भी ना सीजै ।।23।।
स्वर्ग सम्पदा तपसों पावै, तपसों कर्म नसावै।
तप ही सों शिवकामिनी पति ह्वै, यासों तप चित लावै।।
अब मैं जानी समता बिन, मुझ कोऊ नाहिं सहाई।
मात-पिता सुत बाँधव तिरिया, ये सब हैं दुखदाई ।।24।।
मृत्यु समय में मोह करें, ये तातैं आरत हो है।
आरत तैं गति नीची पावैं, यों लख मोह तज्यो है।।
और परिग्रह जेते जग में तिनसों प्रीत न कीजे।
परभव में ये संग न चालैं, नाहक आरत कीजे ।।25।।
जे-जे वस्तु लखत हैं ते पर तिनसों नेह निवारो।
परगति में ये साथ न चालैं, ऐसो भाव विचारो।।
परभव में जो संग चलै तुझ, तिनसों प्रीत सु कीजै।
पंच पाप तज समता धारो, दान चार विध दीजै ।।26।।
दशलक्षण मय धर्म धरो उर, अनुकम्पा उर लावो।
षोडशकारण नित्य विचारो, द्वादश भावन भावो।।
चारों परवों प्रोषध कीजै, अशन रात को त्यागो।
समता धर दुरभाव निवारो, संयम सों अनुरागो ।।27।।

अन्त समय में यह शुभ भावहिं, होवैं आनि सहाई।
स्वर्ग मोक्षफल तोहि दिखावैं, ऋद्धि देहिं अधिकाई।।
खोटे भाव सकल जिय त्यागो, उर में समता लाकैं।
जा सेती गति चार दूर कर, बसहु मोक्षपुर जाकैं ।।28।।
मन थिरता करके तुम चिंतौ, चौ-आराधन भाई।
ये ही तोकों सुख की दाता, और हितू कोउ नाहीं।।
आगैं बहु मुनिराज भये हैं, तिन गहि थिरता भारी।
बहु उपसर्ग सहे शुभ भावन, आराधन उर धारी ।।29।।
तिनमें कछुइक नाम कहूँ मैं, सो सुन जिय चित लाकै।
भाव सहिंत वन्दौं मैं तासों, दुर्गति होय न ताकै।।
अरु समता निज उन में आवै, भाव अधीरज जावै।
यों निशदिन जो उन मुनिवर को, ध्यान हियेविच लावै ।।30।।
धन्य-धन्य सुकुमाल महामुनि, कैसे धीरज धारी।
एक श्यालनी जुग बच्चाजुत पाँव भख्यो दुःखकारी।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ।।31।।
धन्य-धन्य जु सुकौशल स्वामी, व्याघ्री ने तन खायो।
तो भी श्री मुनि नेक डिगे नहिं, आतम सों हित लायो।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ।।32।।
देखो गजमुनि के शिर ऊपर, विप्र अगिनि बहु बारी।
शीश जलै जिम लकड़ी तिनकौ, तो भी नाहिं चिंगारी।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ।।33।।
सनतकुमार मुनी के तन में, कुष्ट वेदना व्यापी।
छिन्न-भिन्न तन तासों हूवो, तब चिंत्यो गुण आपी।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ।।34।।

श्रेणिक सुत गंगा में डूब्यो, तक जिननाम चितारयो।
धर सलेखना परिग्रह छोड़यो, शुद्ध भाव उर धारयो।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ।।35।।
समन्तभद्र मुनिवर के तन में, क्षुधा वेदना आई।
तो दुःख में मुनि नेक न डिगियो, चिंत्यौ निजगुण भाई।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ।।36।।
ललित घटादिक तीस दोय मुनि, कौशांबीतट जानो।
नदी में मुनि बहकर मूवे सो, दुख उन नहिं मानो।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ।।37।।
धर्मघोष मुनि चम्पानगरी, बाह्य ध्यान धर ठाड़ो।
एक मास की कर मर्यादा, तृषा दुःख सह गाढो।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ।।38।।
श्रीदत्त मुनि को पूर्व जन्म को, बैरी देव सु आके।
विक्रिय कर दुख शीत तनो सो, सह्यो साधु मन लाके।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ।।39।।
वृषभसेन मुनि उष्णशिला पर, ध्यान धरयो मनलाई।
सूर्यघाम अरु उष्ण पवन की, वेदन सहि अधिकाई।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ।।40।।
अभयघोष मुनि काकन्दीपुर, महावेदना पाई।
बैरी चण्ड ने सब तन छेदो, दुख दीनो अधिकाई।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ।।41।।

विद्युतच्चर ने बहु दुख पायो, तो भी धीर न त्यागी।
शुभ पावन सों प्राण तजे निज, धन्य और बड़भागी।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ।।42।।
पुत्रचिलाती नामा मुनि को, बैरी ने तन घाता।
मोटे-मोटे कीट पड़े तन, तापर निज गुण राता।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ।।43।।
दण्डकनामा मुनि की देही, बाणन कर अरि भेदी।
तापर नेक डिगे नहिं वे मुनि, कर्म महारिपु छेदी।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ।।44।।
अभिनन्दन मुनि आदि पाँच सौ, घानी पेलि जु मारे।
तो भी श्रीमुनि समताधारी, पूरव कर्म विचारे।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ।।45।।
चाणकमुनि गौधर की माहीं, मूंद अगिनि परजाल्यो।
श्रीगुरु उर समभाव धारकै, अपनो रूप सम्हाल्यो।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ।।46।।
सात शतक मुनिवर दुख पायो, हथिनापुर में जानो।
बलि ब्राम्हणकृत घोर उपद्रव, सो मुनिवर नहिं मानो।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ।।47।।
लोहमयी आभूषण गढ़ के, ताते कर पहराये।
पाँचों पाण्डव मुनि के तन में, तो भी नाहिं चिगाये।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ।।48।।

और अनेक भये इस जग में, समता रस के स्वादी।
वे ही हमको हों सुखदाता, हर हैं टेव प्रमादी।।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरन-तप, ये आराधन चारो।
ये ही मोकों सुख की दाता, इन्हें सदा उर धारों ।।49।।
यों समाधि उरमाहीं लावों, अपनो हित जो चाहो।
तज ममता अरु आठों मद को, जोति स्वरूपी ध्यावो।।
जो कोई नित करत पयानो, ग्रामान्तर के काजै।
सो भी शकुन विचारै नीके, शुभ के कारण साजै ।।50।।
मात-पितादिक सर्व कुटुम मिल, नीके शकुन बनावै।
हलदी धनिया पुंगी अक्षत, दूब दही फल लावै।।
एक ग्राम जाने के कारण, करैं शुभाशुभ सारे।
जब परगति को करत पयानो, तब नहिं सोचो प्यारे ।।51।।
सर्वकुटुम जब रोवर लागैं, तोहि रूलावैं सारे।
ये अपशकुन करैं सुन तोकौं, तू यों क्यों न विचारै।।
अब परगति को चालत बिरियाँ, धर्मध्यान उर आनो।
चारों आराधन आराधो, मोह तनो दुख हानो ।।52।।
होय निःशल्य तजो सब दुविधा, आतमराम सुध्यावो।
जब परगति को करहु पयानो, परमतत्त्व उन लावो।।
मोह जाल को काट पियारे, अपनो रूप विचारो।
मृत्यु मित्र उपकारी तेरो, यों उर निश्चय धारो ।।53।।

मृत्यु महोत्सव पाठ को, पढ़ो सुनो बुधिवान।
सरधा धर नित सुख लहो, **'सूरचन्द'** शिवथान ।।54।।
पंच उभय नव एक नभ संवत् सो सुखदाय।
आश्विन श्यामा सप्तमी कह्यो पाठ मन लाय ।।55।।

卐 卐 卐 卐 卐

माँ जिनवाणी स्तुति

जयवन्तो जिनवाणी माता, जयवन्तो जिनधर्म महान।
जयवन्तो श्री कुन्दकुन्द अरू, जयवन्तो वीतराग-विज्ञान॥

भव सागर से तर जाने का, मार्ग तुम्हीं दिखलाती हो।
भेद-ज्ञान की अनुपम विधियाँ, हमको तुम सिखलाती हो॥
शुद्ध-बुद्ध अरु नित्य निरंजन, शाश्वत सुख की खान है।
द्रव्य द्रष्टि से जो देखेगा, स्वयं-सिद्ध भगवान है॥

हे माता! तेरी करुणा से, पायेंगे हम पद निर्वाण।
जयवन्तो जिनवाणी माता, जयवन्तो जिनधर्म महान॥

देहादिक संयोग कर्म के, पुद्गल का विस्तार है।
इन सबसे अति भिन्न चिदानन्द, आतम तत्त्व ही सार है॥
राग-द्वेष से भिन्न हो जिसने, अपनी वस्तु पिछानी है।
राग-द्वेष परिणति पुद्गल की, उनसे मेरी क्या हानि है॥

रत्नत्रय की निधि को पाकर, हम भी बन जायें भगवान।
जयवन्तो जिनवाणी माता, जयवन्तो जिनधर्म महान॥

होनहार वह भली हमारी, आज उदय में आयी है।
नरभव पाया जैनधर्म अरु, माँ जिनवाणी पायी है॥
है उपकार श्री गुरुओं का, जिनवाणी समझायी है।
हे गुरु! तव पावन करुणा से, हमको सुबुद्धि आयी है॥

भव कानन से हम निकलेंगे, आज रहे हैं मन में ठान।
जयवन्तो जिनवाणी माता, जयवन्तो जिनधर्म महान॥

अमूल्य तत्त्व विचार

बहु पुण्य पुंज प्रसंग से, शुभ देह मानव का मिला।
तो भी अरे ! भव चक्र का, फेरा न एक कभी टला॥
सुख-प्राप्ति हेतु प्रयत्न करते, सुक्ख जाता दूर है।
तू क्यों भयंकर भाव मरण, प्रवाह में चकचूर है॥
लक्ष्मी बढ़ी अधिकार भी, पर बढ़ गया क्या बोलिये।
परिवार और कुटुम्ब हैं क्या, वृद्धि कुछ नहीं मानिये॥
संसार का बढ़ना अरे! नर देह की यह हार है।
नहीं एक क्षण तुझको अरे! इसका विवेक विचार है॥
निर्दोष सुख निर्दोष आनन्द, लो जहां भी प्राप्त हो।
यह दिव्य अन्तस्तत्व जिससे, बन्धनों से मुक्त हो॥
पर वस्तु में मूर्छित न हो, इसकी रहे मुझको दया।
वह सुख सदा ही त्याज्य रे! पश्चात् जिसके दुःख भरा॥
मैं कौन हूँ, आया कहाँ से, और मेरा रूप क्या।
सम्बन्ध दुखमय कौन है, स्वीकृत करूँ परिहार क्या॥
इसका विचार विवेक पूर्वक, शान्त होकर कीजिये।
तो सर्व आत्मिक ज्ञान के, सिद्धान्त का रस पीजिये॥
किसका वचन उस तत्व की, उपलब्धि में शिवभूत है।
निर्दोष नर का वचन रे! वह स्वानुभूति प्रसूत है॥
तारो अरे तारो निजात्मा, शीघ्र अनुभव कीजिये।
सर्वात्म में सम दृष्टि द्यो, यह वच हृदय लख लीजिये॥

-श्रीमद् राजचन्द्र विरचित गुजराती रचना का हिन्दी पद्यानुवाद

वीतरागी ही पूज्य है। वीतरागता ही धर्म है।

तेरह पंथ के तेरह नियम

''आचार्य 108 श्री धर्म भूषणजी महाराज द्वारा संशोधित''

1. भगवान के चरणों में पंचामृत-अभिषेक व केसर लेप नहीं करना।
2. हरे व सूखे फूल भगवान को नहीं चढ़ाना।
3. भगवान के निर्वाण दिवस पर किसी भी प्रकार का लड्डू न चढ़ाकर मात्र गोला - बादाम आदि को चढ़ाना।
4. अशुद्ध अन्न (घुना हुआ, सुरसुरी-कीड़े आदि सहित) भगवान को नहीं चढ़ाना।
5. दीपक से आरती नहीं करना तथा अग्नि में धूप नहीं खेना।
6. अखण्ड ज्योत नहीं जलाना व आशिका नहीं लेना।
7. पूजा खड़े होकर करना, बैठकर नहीं। (यथाशक्ति अनुसार)
8. रात्रि में पूजन नहीं करना।
9. पद्मावती आदि रागी-द्वेषी देवी-देवताओं को नहीं पूजना।
10. भट्टारकों को नहीं पूजना एवं गुरु नहीं मानना।
11. दिशा, विदिशा, दिग्पालों को नहीं मानना और न ही ऋषिमण्डल, नवग्रह, कलिकुण्ड आदि की पूजा करना।
12. हरे (सचित्त) फलों को न ही भगवान को चढ़ाना और न ही सचित्त फलों से मुनिराज की पड़गाहन करना।
13. महिलाओं द्वारा भगवान का प्रक्षालन नहीं करना और न ही भगवान को स्पर्श करना। प्रक्षाल (गन्धोदक) को केवल मस्तक पर ही लगाना।

सन्देश-आचार्य १०८ श्री धर्मभूषण महाराज, हस्तिनापुर (मेरठ)

आचार्य कुन्दकुन्द महिमा

आचार्य कुन्दकुन्द जो भारत में न आते।
अध्यात्म समयसार, कहो कौन सुनाते॥
रच करके कौन देता आत्म ख्याति समयसार,
ऐसे अनेक ग्रन्थ भेद - ज्ञान के भण्डार।
उनके बिना हृदय में शान्ति कौन दिलाते॥ आ०....
जलती कषाय अग्नि सहज भाव जलाती,
कर्मों के महाबन्ध को आत्मा से कराती।
शान्ति का सहज प्याला, कहो कौन पिलाते॥ आ०....
सम्यक्त्व बिना मोह ने भव वन में घुमाया,
सम्यक्त्व बिना आत्मा को उसने रुलाया।
सम्यक्त्व बिना आत्म निधि कौन बताते॥ आ०....
हैं जगत के सम्बन्ध कोई पार न पाया,
हैं सब अनित्य, नित्य एक भी नहीं पाया।
होता न सगा, आप जिसे अपना बताते॥ आ०....

भगवान महावीर के तीन सिद्धान्त

हम स्याद्वाद का डंका फिर, दुनिया में आज बजायेंगे।
प्रभु वीर जिनेश्वर के गुण गा, जग से मिथ्यात्व हटायेंगे॥
हठ का हम भूत भगायेंगे, अपेक्षा से समझायेंगे।
अनेक गुण हैं वस्तु में, स्याद्वाद से बतलायेंगे॥
है एक उमंग भरी दिल में, लहरायें अहिंसा का झंडा।
है भव्य जीवों से भरी हुई, पृथ्वी को कर दिखलायेंगे॥
परिग्रह वृत्ति को दूर भगा, आकिंचन धर्म अपनायेंगे।
सिद्धान्त तीन महावीर के हैं, जन-जन में हम पहुँचायेंगे॥
समन्तभद्र जैसा डंका, अकलंक बन आज बजायेंगे।
आचार्य कुन्दकुन्द कह गये, अध्यात्म सुमन सजायेंगे॥
जिन धर्म का बिगुल बजायेंगे, हम दूर भगा कायरता को।
सब छोड़ वृथा झगड़ों को हम, झण्डे की लाज बचायेंगे॥

समाज सुधार के लिए छः परम आवश्यक नियम

1. प्रत्येक घर में जिनवाणी स्थापना होनी चाहिए और नित्य प्रति उसका स्वाध्याय परम आवश्यक है।
2. प्रत्येक नगर में धार्मिक शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिए।
3. विवाह आदि के अवसर पर हरे फूलों का प्रयोग, आलू, रायता आदि अभक्ष्य का प्रयोग एवं रात्रि–प्रीतिभोज का आयोजन नहीं करना चाहिए।
4. युवक वर्ग द्वारा मद्यपान आदि व्यसनों का सेवन नहीं होना चाहिए।
5. हर नगर में जनता की सहायता के लिए सहकारी धन की व्यवस्था होनी चाहिए।
6. दहेज प्रथा पर पूर्णतया प्रतिबन्ध होना चाहिए।

प्रिय बन्धुओं

मेरा आप सबको यही निर्देश है कि वर्तमान परिस्थितियों में सभी त्यागी वर्ग एवं समाज के नेता इन छः बातों की ओर अपना ध्यान केन्द्रित करते हुए नगर बच्चों के संस्कार सुधारने के लिए तुरन्त ही धार्मिक शिक्षा का प्रबन्ध अवश्य करें क्योकि आज के बच्चे ही कल का भविष्य होंगे। तभी हमारे धर्म एवं समाज मे सुधार हो सकता है, देश व समाज के नागरिकों का चरित्र उज्जवल हो सकता है एवं तभी तुम्हारे पैसे का भी सदुपयोग होगा।

- श्री धर्मभूषण जी महाराज

जैन दर्शन गणित